चाँदायन

[दाऊद-विरचित प्रथम हिंदी सूफ़ी प्रेम-काव्य]

संपादक

माताप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्०

निदेशक, क० मुं० हिंदी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा

प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा

प्रकाशक :
रामजी गुप्त,
प्रामाणिक प्रकाशन,
३५, लाजपत कुंज,
सिविल लाइन्स, आगरा

प्रथम संस्करण, मई, १९६७
११०० प्रतियाँ
मूल्य : २० रुपये

मुद्रक :
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
दरेसी नं० २ आगरा

प्रस्तावना

'चांदायन' की फारसी-अरबी में लिखी हुई कतिपय पूर्ण प्रतियों में बिखरे हुए ८० कड़वकों को नागरी में लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास अब से सात-आठ वर्ष पूर्व इन पंक्तियों के लेखक ने किया था। इसके अनन्तर क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक डा० विश्वनाथ प्रसाद ने फारसी में लिपिबद्ध भोपाल की एक प्रति के कड़वकों को, जो प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम बंबई में थी, नागरी में लिपिबद्ध किया था। ये दोनों प्रयास एक ही जिल्द में उक्त विद्यापीठ द्वारा १९६२ में 'चंदायन' नाम से प्रकाशित हुए थे। तीन वर्षों के लगभग हुए डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त ने जॉन राइलैण्ड्स लाइब्रेरी, मैनचेस्टर की एक प्राचीन प्रति, तथा अन्य कुछ नवीन संपादन-सामग्री के साथ उक्त प्रतियों का भी उपयोग करते हुए, जो मेरे और डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा प्रस्तुत किए हुए पाठों में प्रयुक्त हो चुकी थीं, 'चंदायन' नाम से रचना का एक पूर्णतर पाठ प्रस्तुत किया। इन प्रयासों ने हिंदी सूफी प्रेमाख्यान परंपरा की प्रथम रचना के संबंध में जहाँ विचारणीय सामग्री प्रस्तुत की, वहाँ रचना के एक ऐसे आलोचनात्मक संस्करण के अभाव की ओर भी निर्देश किया जिसको रचना और उसकी परंपरा के अध्ययन के लिए एक अधिक निश्चयपूर्ण आधार बनाया जा सकता। प्रस्तुत प्रयास इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए किया गया है।

ऊपर उल्लिखित प्रतियों के अतिरिक्त और उन सब की अपेक्षा पूर्णतर रचना की एक प्रति जयपुर के एक साहित्य-सेवी श्री रावत सारस्वत के पास थी और यह प्रति नागरी में थी, जबकि शेष समस्त प्रतियाँ फारसी-अरबी लिपियों में थीं। लगभग छः मास हुए इसी पाठ-शोध के प्रसंग में मैंने श्री सारस्वत को रचना के एक कड़वक का पाठ अपनी प्रति से भेजने को लिखा, तो उन्होंने न केवल उसका पाठ मुझे भेजा, बल्कि मेरी पाठ-शोध-निष्ठा को देखकर उन्होंने लिखा कि यदि मैं रचना का आलोचनात्मक पाठ-संपादन करने को प्रस्तुत हूँ तो वे उक्त प्रति को दे सकते थे और तदनन्तर उन्होंने उक्त प्रति विद्यापीठ को दे भी दी।

इस अंतिम प्रति के उपयोग के लिए मैं आगरा विश्वविद्यालय के विद्यानुरागी कुलपति, जिसका उक्त विद्यापीठ एक अभिन्न अंग है, डॉ० श्री रञ्जन जी

विषय-सूची

प्रियवर

राम तथा श्याम

को

सस्नेह

भूमिका

१. दाऊद और उनके समसामयिक

दाऊद ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। उन्होंने रचना की तिथि सन ७८१ दी है,[1] जो विक्रमीय सं० १४३६ के बराबर होती है, इसलिए इसी के लगभग सं० १४२० के आस-पास उनका जन्म और सं० १४७५ के आसपास उनका निधन माना जा सकता है। रचना का स्थान उन्होंने डलमौ (डलमऊ) नगर बताया है, जो गंगा-तट पर स्थित था।[2] यह नगर उत्तरप्रदेश के रायबरेली जिले में अब भी है और एक अच्छा कस्बा है। यहाँ के मीर उनके समय में मलिक बया के पुत्र मलिक मुबारक थे, जैसा कि दाऊद ने लिखा है।[3]

रचना के आरंभ में दाऊद ने पाँच कडवकों में खानेजहाँ की प्रशंसा की है[4] और उसे 'महाबल मंत्री' कहा है।[5] साथ ही उन्होंने शाहे-वक्त के रूप में फीरोजशाह की प्रशंसा की है।[6] इतिहास के अनुसार खानेजहाँ फीरोजशाह का वजीर था, जिसका देहान्त ७७२ हि० में हो गया था, और जिस समय दाऊद ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की, उसका वजीर खानेजहाँ का पुत्र जौना शाह या जूना शाह था।[7] दाऊद ने भी वज़ीर के रूप में जौना शाह का उल्लेख किया है।[8] 'खानेजहाँ' एक उपाधि थी, जो कि संभव है जौना शाह को भी दी गई हो, इसलिए इन उल्लेखों में परस्पर कोई विरोध नहीं ज्ञात होता है। इन खानेजहाँ को दाऊद ने 'पीर' (मुर्शिद-फ़ा०) लिखा है—

'पीर' खान जौ(कि ?) ना और गुनी को आहि।
'पीर' पाम मैं दान दियावै।[9]

'साहिब' 'स्वामी' का फारसी पर्याय है, इसलिए यह निश्चित है कि दाऊद खानेजहाँ के आश्रित थे। यद्यपि दाऊद ने लिखा नहीं है, किन्तु यह अनुमान

[1] कडवक १७। [2] वही। [3] वही। [4] कडवक १०-१४। [5] कडवक १०। [6] कडवक ८। [7] 'मुंतखिबुत्तवारीख' से श्री एस० एच० अस्करी के 'रेयर फ्रैगमेन्ट्स आफ़ चंदायन एंड मृगावती' शीर्षक लेख में पृ० ७ पर उद्धृत। [8] कडवक १७। [9] क्रमशः कडवक १० तथा ११।

उनकी भी स्तुति की है।[१२] किन्तु इन जैनुद्दीन के संबंध में और कोई जानकारी उन्होंने नहीं दी है और न अन्यत्र से प्राप्त हो सकी है।

रचना में दाऊद ने तीन स्थानों पर तीन विभिन्न व्यक्तियों को संबोधन भी किया है—ये हैं मुहम्मद, सिराजुद्दीन तथा मलिक नत्थन।[१३] इनके संबंध में कोई जानकारी न हमें दाऊद की रचना से मिलती है और न इतिहास से। एक मीर मसूद (मसऊद) को भी उनका समसामयिक माना गया है, किन्तु वह अशुद्ध है, वह 'मिस्क सूघि' का अपपाठ मात्र है।[१४]

२. रचना-काल और स्थान

मौलाना दाऊद के समय के सम्बन्ध में कुछ विवाद रहा है, किन्तु अब्बदायूनी के एक उल्लेख से उसका समाधान हो जाता है। 'मुंतखियुत्तवारीख' में उसने लिखा है—'सन् ७७२ हि० (१३७० ईस्वी) में खानेजहां, जो फ़ीरोजशाह का प्रधान मंत्री था, मर गया और उसका लड़का जूना शाह (या जौना शाह) उसके पद पर नियुक्त हुआ। 'चंदायन' जो हिन्दी की एक मसनवी है और लोरिक तथा चांदा के प्रेम का वर्णन करती है, उसके लिए मौलाना दाऊद द्वारा रची गई थी। यह इन भूभागों में इतनी अधिक प्रख्यात है कि इसकी प्रशंसा करना अनावश्यक होगा। मख्दूम शेख तक़ीउद्दीन वाइज़ रब्बानी ने एक अवसर पर इससे कुछ अंश पढ़ कर सुनाए, तो इसे सुनकर लोगों को एक अद्भुत आनंद प्राप्त हुआ। जब उस युग के कुछ विद्वानों ने शेख से मसनवी को इस प्रकार महत्व देने का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह पूरी रचना ईश्वरीय सत्य तथा संकेतों से भरी हुई थी, रोचक थी, ईश्वर-प्रेमियों और उपासकों को आनंदपूर्ण चिन्तन की सामग्री प्रदान करती थी, 'क़ुरान' की कुछ आयतों का मर्म स्पष्ट करने में उपयोगी थी और मारग्न के मधुर गीतों की परिभाषिका थी।[१५]

कुछ समय हुआ, श्री अगरचंद नाहटा ने 'मिश्रबंधु विनोद' की कुछ भूलों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा था कि मौलाना दाऊद की इस रचना की तिथि ७८१ हि० है जो १४३१ वि० होती है, और यह लिखते हुए उन्होंने उसकी एक प्रति में कुछ पंक्तियां भी उद्धृत की थीं।[१६] यह प्रति कदाचित् बी० थी, जिसके अनुसार संबंधित पंक्तियां निम्नलिखित हैं :—

[१२] कड़वक ६। [१३] क्रमशः कड़वक ७५, २६५ तथा ३२९। [१४] कड़वक २६५। [१५] एस० एच० अस्करी : 'रेयर फ्रैगमेन्ट्स ऑव चंदायन एंड मृगावती' पृ० ७ पर उद्धृत। [१६] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक १, पृ० ४२।

यह प्रकट है। प्रस्तुत रचना की नायिका 'चाँद' है, जिसका नाम छंद की आवश्यकताओं के कारण 'चाँदा' भी मिलता है। इसलिए रचना का नाम 'चाँद' या 'चाँदा' हो भी सकता है। साथ ही कवि ने अपनी रचना को 'कथा काव्य' कहा है—'कथा काबि कइ लोक सुनावउँ', इसलिए रचना का पूरा नाम 'चाँद-कथा' रहा हो तो भी आश्चर्य न होगा। किन्तु इस प्रसंग में एक तथ्य और भी विचारणीय है। जैसा हम इसी शीर्षक में आगे देखेंगे, रचना सम्भवतः २७ खंडों में विभक्त थी, और चंद्र की स्थितियों के नक्षत्र भी भारतीय ज्योतिष के अनुसार २७ हैं; साथ ही नायिका को आकाश के चन्द्र का अवतार कहा गया है, और इस प्रकार की उक्तियों का भी प्रयोग रचना में हुआ है जिनमें नायिका आकाश के चाँद के रूप में प्रस्तुत की गई है, और नक्षत्रों के प्रसंग में 'अयन' का अर्थ उनका वृत्त या मार्ग होता है, इसलिए 'चाँदायन' या 'चंदायन' नाम भी काफ़ी संभव लगता है।

बी० पाठ में 'चाँदायन' के स्थान पर जो 'चाँदायनि' मिलता है, वह उसकी एक विशिष्ट प्रवृत्ति के कारण भी हो सकता है : इस पाठ में कहीं-कहीं पर अकारान्त एक० पुं० के स्थान पर इकारान्त कर्ता-कर्म कारकों के चिह्न कि रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी की भाँति इकारान्त प्रस्तुत रचना में भी प्रायः अकारान्त एक० पुं० संज्ञाओं के करण-अधिकरण कारकों के चिह्न के रूप में ही मिलता है, किन्तु बी० पाठ में वह कहीं-कहीं पर कर्ता-कर्म कारकों के चिह्न के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है' जो नीचे दिए हुए बी० के पाठांतरों पर दृष्टि डाल कर स्वतः देखा जा सकता है—

कर्ता : 'महरि' बीत बावन कहुँ चाँदा (३९.७), जहाँ 'महरि' पटनारि सभारी (४१.१), मैं न अकेले सब 'जगि' देखा (६६.५), उगटि 'समदि' जनों मानिक रहे (६८.४), 'महरि' मंदिर चढ़ि देखा (९२.६), राय 'महरि' धरि आपनु साजा (१०२.१), भाटि कहा तब राउ स्यों (१०४.६), 'महरि' काढ़ि केकान पलाने (११८.१), सुना 'सियारि' पितर पख आवा (१२०.५), रैवत 'महरि' दीन्ह चकतारी (१२६.१), 'महरि' देखि तौ लोक बुलावा (१२८.१), लोरिन्ह 'महरि' पाट बैसारा (१५१.१). 'बीर' सुआ बरि बरहु फिरावा (१९१.१), परतिहार 'भरि' बैठ दुवारू (३६४.५), बि(बी)रह 'खिपरि' आसिका औधारी (३६६.२), मैना सबदु जु 'खिपरि' सुनावा (३७०.१), सुना 'लोरि' हिय गहबरि आवा (३७०.१)।

कर्म : बहुरि यही 'खंडि' गाउ (६४.६), राय महरि 'धरि' आपनु साजा (१०२ १) चलहु बेगि 'धरि' जाहि (१६९ ६)।

प्रति की पुष्पिका में रचना का नाम 'कथा चांदायन' आता भी है (दे० आगे 'रचना की सम्पादन-सामग्री' शीर्षक के अन्तर्गत दिया हुआ बी० प्रति का परिचय), इससे भी इसी की पुष्टि होती है।

'चान्दायनि' को स्त्री० वाची रूप मानकर उसे नायिका तथा उसके आधार पर रचना दोनों के नामों के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है जिस प्रकार उसके कुछ लोक-गाथा रूपों में हुआ है। इस दशा में शब्द 'चान्द्रायणिका' से व्युत्पन्न होगा, जिसका अर्थ होता है 'चान्द्रायण व्रत करने वाली स्त्री'। यद्यपि कथा में इस नाम के लिए कोई आधार नहीं मिलता है किन्तु नामकरण कभी-कभी बिना आधारों के भी हो जाता है, इसलिए यह विकल्प भी विचारणीय है। यह अवश्य है कि नायिका के नाम के रूप में 'चान्दायनि' रचना में एक स्थान पर भी नहीं आया है, 'चांद' या 'चांदा' ही आया है।

किन्तु बी० प्रति के प्रारम्भ में प्रति का परिचय 'चंदायन' नाम के साथ दिया गया है: 'तमामशुद चंदायन गुफ्तार मौलाना दाऊद रहमतई'। इस प्रति की पाठ-परम्परा फ़ारसी लिपि की थी, यह भली-भांति देखा जा सकता है। फ़ारसी में मिलने वाले ऐतिहासिक ग्रंथों में भी यही नाम मिलता है। अतः यह असंभव नहीं है कि फ़ारसी लिपि के माध्यम से इस ग्रंथ से परिचय प्राप्त करने वाले लोगों में 'चंदायन' नाम ही प्रचलित रहा हो।

फलतः 'चांद' 'चांदा', 'चांद कथा', 'चांदायन', 'चांदायनि' और 'चंदायन' में से कौन-सा निश्चित रूप से रचना का नाम रहा होगा, यह कहना कठिन है। इस कठिनाई की स्थिति में इस संस्करण के लिए मैंने 'चांदायन' नाम स्वीकार किया है, जो कि मुझे सबसे अधिक संगत लगता है।

इस रचना के स्फुट कड़वकों का जो संकलन मैंने पहले किया था, उसमें भी ऊपर उद्धृत कड़वक आता था, क्योंकि म० में, जो उस संकलन की एक आधार-भूत प्रति थी, यह कड़वक मिलता था। उसमें चौथी अर्द्धाली के प्रथम चरण का पाठ मैंने इस प्रकार दिया था—

लोर (लोर) कहा मईं यहि कंठ गाऊ (गावउँ)।

और इसके आधार पर मैंने लिखा था कि रचना में 'लोर-कहा' नाम आता है, जो 'लोर-कथा' का अपभ्रंश है (भूमिका, पृ० ८)। किन्तु कड़वक का जो पाठ मैंने अब दिया है, वह बाद में प्राप्त अन्य दो प्रतियों मं० तथा बी० की सहायता से निर्धारित हुआ है, इसलिए रचना के नाम के संबंध का मेरा पूर्ववर्ती अनुमान अब स्वीकार्य नहीं है।

जहाँ तक रचना के रूप का प्रश्न है, वह उद्धृत कड़वक की चौथी अर्द्धाली में दिया हुआ है और वह है 'कथा-काव्य' अर्थात् कथा-प्रधान वह रचना जिसे काव्य का रूप दिया गया हो। 'कथा' शब्द का प्रयोग रचना में अन्यत्र भी इसी अर्थ में हुआ है (यथा ९१.६)। साथ ही कवि ने उसके खंड-विशेष के गान करने का उल्लेख किया है. इससे यह प्रकट है कि यह कथा-कृति खंडों में विभाजित थी। यह खंड-विभाजन अब रचना की किसी-प्रति में नहीं मिलता है, किन्तु मैं० में कड़वक के शीर्षक में 'बिसहर खंड' की समाप्ति का स्पष्ट उल्लेख हुआ है : "आखिर बिसहर खंड खंद सुखन फ़रमूदने मौलाना दाऊद।" इससे यह प्रमाणित होता है कि मैं० के किसी पूर्वज में खंड-विभाजन अवश्य था, और इस खंड को उसमें 'बिसहर खंड' कहते हुए समाप्त किया गया था। एक अन्य स्थान पर रचना में पुनः इसी प्रकार 'खंड' शब्द का प्रयोग हुआ है जैसा कि बिसहर कड़वक में हुआ है : जब ब्राजिर राव रूपचंद से चाँदा का शृंगार-वर्णन प्रारंभ करते हुए उसकी माँग का वर्णन करता है, राव कह उठता है, कि वह इसी खंड को गाए—

राव रूपचंद बोला बहुरि इहइ 'खंड' गाउ।[२१]

फलतः यह निश्चित है कि रचना अपने मूलरूप में खंडों में विभक्त थी, जिनके नाम कदाचित् फ़ारसी की मसनवियों में खंड-विभाजन की प्रथा न होने के कारण रचना के फ़ारसी-सुर्खी-लेखकों ने निकाल दिए।

फ़ारसी के शीर्षक कवि के दिए हुए नहीं हैं, अन्य व्यक्तियों के दिए हुए हैं यह तथ्य एक तो इससे प्रमाणित है कि सभी प्रतियों में ये शीर्षक भिन्न-भिन्न हैं, दूसरे इससे कि ये कभी-कभी ग़लत भी हैं। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित शीर्षकों को लीजिए :

कड़वक ५३ अ (दे० परिशिष्ट) : शि० : कैफ़ियत करदन फ़िराके माह फागुन पेश सहेलियान जुदाई शौहर—फागुन मास के पति वियोग का सहेलियों के आगे वर्णन करना। किन्तु इस कड़वक में वर्णन माघ मास के कष्टों का है।

कड़वक ७५ : मै० : सिफ़त मोहरए महे पैकरे चांदा मिस्ल चर्खे कुलाल गुज़ाश्तन—चंद्र-बदनी की ग्रीवा की विशेषता को कुम्हार की चाक से अंकित करना। किन्तु इस कड़वक में ग्रीवा की तुलना कुम्हार की चाक से नहीं की गई है, बल्कि यह कहा गया है, उसकी ग्रीवा इतनी सुडौल है कि मानो किसी कुम्हार के द्वारा चाक पर रख कर फिराई गई हो।

[२१] कड़वक ६४।

कडवक १९५ : मैं० : सिफ़ते तख़्ते ज़री व मुकल्लल ब जवाहरातें(?) बिगाग—ज़री के तथा मुलम्मा किए हुए तख़्त और दीपों के रत्नों की विशेषता। किन्तु इस कडवक में तख़्त तथा रत्न-दीपों का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग सुन्दर पलंग और उस पर सोई हुई सुन्दरी चांदा का है।

कडवक १९६ : मैं० : बेदार कर्दन लोरिक चांदा रा अज़ ख़्वाब=लोरिक का चांदा को सोते से जगाना। किन्तु इस कडवक में कहा गया है कि बहुत चाहते हुए भी वह भय के कारण चांदा को जगा न सका।

कडवक १९८ : मैं० : जवाब दादने लोरिक बर चांदा रा बा नरमी — लोरिक का चांदा की बात का नरमी से जवाब देना। किंतु नरमी से उत्तर देने की कोई बात इस कडवक में नहीं है, केवल लोरिक का चांदा से यह कथन आया है कि वह चोर नहीं है, वरन् उसका प्रेमी है।

कडवक २०७ : मैं० : गुफ़्तने चांदा हिकायते इश्क ऊ—चांदा का उसके प्रेम का हाल कहना। किन्तु इस कडवक में चांदा लोरिक के इस कथन पर सन्देह व्यक्त करती है कि वह उस पर अनुरक्त है।

कडवक २०९ : मैं० : गुफ़्तने चांदा हिकायते मैना बा लोरिक=लोरिक से चांदा का मैना का हाल कहना। किन्तु कडवक में चांदा लोरिक से यह कहती है कि मैना जैसी स्त्री के रहते हुए भी वह जो उसके पास आया था, इससे ज्ञात होता था कि वह एक भ्रमर मात्र था, जो किसी पुष्प का रस लेकर पुनः उसके पास नहीं जाता है।

कडवक २२३ : मैं० : आमदनें मादर व पिदरे जानदन(?) दर ख़्वाब साख़्त में चांदा गुज़रा=माता-पिता का आना और चांदा का स्वयं नींद में होने का बहाना गढ़ना। किंतु कडवक में बहाना गढ़ने की कोई बात नहीं है। उसमें दो बातें हैं : एक तो माता-पिता का आकर उसके चरित्र पर सन्देह करना और दूसरी उनका अपने दो भृत्यों को इसलिए भेजना कि वे जाकर यह पता लगाएं कि कोई चांदा के कक्ष में कहीं छिपा हुआ तो नहीं है, जिसे देखकर लोरिक के प्राणों का सूखना।

कडवक २२४ : मैं० : विदाअ् कर्दने लोरिक बा चांदा=लोरिक को चांदा से विदा करना। किन्तु कडवक में लोरिक को चांदा का चैन में लाना और उसे यह ढाढ़स देना वर्णित है कि वह अब किसी प्रकार की शंका न करे क्योंकि अब चांदा प्रत्येक स्थिति में उसके साथ रहेगी।

कडवक २३४ : मैं० : तक़रीर कर्दने लोरिक बर मैना रा — लोरिक का मैना से कथन करना। किन्तु कडवक में उल्लिखित कथन मैना का लोरिक से है।

कड़वक २४४ : मै० : औसिफ़ते चांद नज़ारा दर बुतख़ाना बुतख़ाना महल — मन्दिर में के चांद के आह्लाद का हाल कहना। किन्तु कड़वक में मन्दिर में के चांद के आह्लाद का कोई कथन नहीं है, पंडित गणना करके चांदा को आषाढ़ी का पर्व बताता है और उक्त पर्व पर देव-मन्दिर में आकर सोमनाथ की पूजा करने का माहात्म्य बताता है।

कड़वक २६५ : मै० : रिहा कर्दन अमीर मसऊद व अनक व सामान बख्शूद मैना रा व मनअ् कर्दने चांदा रा — अमीर मसऊद का मुक्त करना, व मैना को सामान देना व चांदा को मना करना। किन्तु कड़वक में — और पूरी रचना में भी — अमीर मसऊद या अनक की कोई बात नहीं आती है, अशुद्धि 'मरई मुधि कइ' शब्दावली को गलत पढ़ने के कारण हुई है, जो कड़वक के प्रथम तथा सप्तम चरणों में आती है; मैना को सामान देने का भी कोई प्रसंग नहीं है, चांदा से लोरिक ने अवश्य कहा है कि उसे यह समझना चाहिए था कि मैना से किसी प्रकार का युद्ध (कलह) उसे नहीं करना था।

कड़वक २९५ : म० : दास्तान गुफ़्तने बावन बरहमन गुरु रा — बावन को भागलोकिन की कथा। किन्तु कड़वक में बावन का लोरिक से यह भर्त्सना-पूर्ण कथन है कि उसने उन दोनों को दंपति के रूप में स्वीकार कर लिया था और उन दोनों को सोकर नींद भगाना चाहिए था, जिस पर वे विश्वास न कर आगे बढ़ते हैं।

कड़वक २९६ अ (बै० परिशिष्ट) : म० रफ़्तन रवाना: शुदन बावन तरफ़ खाना: खुद — बावन का अपने घर की ओर प्रस्थान करने का वर्णन। किन्तु कड़वक में उस धीमर का, जिसकी नाव छीन कर दोनों ने नदी पार की थी, राजा से यह समाचार निवेदन करना वर्णित है कि एक अप्रतिम सुन्दरी एक पुरुष के साथ आई हुई थी, जिसके साथ सोने के आभूषणों से भरा हुआ एक पेटक भी था।

कड़वक २९९ : मै० : गिरफ़्तार शुदने बांठिया व दस्त बुरीदने लोरिक — बांठिया का गिरफ़्तार होना और लोरिक के द्वारा उसका हाथ काटा जाना। किन्तु कड़वक में बांठिया के हाथ काटे जाने का कोई उल्लेख नहीं है, उल्लेख बांठिया के द्वारा आगत परदेसियों के काटे हुए हाथ-नाक-और अंगुलियों के वहां पड़े हुए होने का है; बांठिया के हाथ काटने की बात बाद के कड़वक में आती है।

कड़वक ३२१ : म० : अर्ज़मंदी मूस गुफ़्तन लोरिक दरबार मुक़ाबिला (मुक़ाबिलन्) — लोरिक का कुल के समक्ष अपनी व्यथा का निवेदन करना। किन्तु इस कड़वक में लोरिक उन दुःखों को स्मरण करता है जिनको उसे चांदा के प्रेम में सहन करना पड़ा है।

३८—चांदा बावनै दीनी; ४०—बगल चाली; ४२—बीवाह हुवौ; ४६—चांदा मैं लेन गया; ५४—बाजुर आमद जोगी; ६०—बाजुर रूपचद कैं नाजबुनी [चाला ?]; ८७—रूपचंद बाठा आया; ११२—लोरिक महर की भीर अइन आया; १३६—चांदा ले(लो)रीक दीठ······, १४२—मैनाज; २५१—मैनां चाद जुध। ये सभी शीर्षक अनियमित रूप से दिए गए हैं, इसलिए ये निश्चित रूप से कवि के दिए हुए नहीं हो सकते है।

ऊपर दिए हुए तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत कार्य में पूरी कथा को खंडों में विभक्त किया गया है, और प्रत्येक खंड का शीर्षक भी सुझाने का यत्न किया गया है। फ़ारसी सुर्खियों का उल्लेख मात्र कडवकों का निर्धारित पाठ देने के अनंतर कर दिया गया है। किंतु खंडों का यह विभाजन पूर्णत: निश्चयात्मक न होने के कारण कडवकों की क्रम-संख्या पूरी रचना की रक्खी गई है।

इसके बाद केवल यह समझना शेष रह जाता है कि प्रस्तुत काव्यरूप फ़ारसी मसनवी का है अथवा भारतीय कथा आख्यायिका का। लेखक मुसलमान था, सुर्खियां फ़ारसी में मिलती हैं और मुसलमान लेखकों की आध्यात्मिक संकेतों से समन्वित कथाएं मसनवियों के रूप में ही मिलती हैं, इसलिए यह एक व्यापक विश्वास रहा है कि दाऊद की रचना फ़ारसी मसनियों की परंपरा में आती है, किन्तु मेरा मत इससे भिन्न है।

फ़ारसी में मसनवियां प्रायः अपने विषयों के अनुसार पांच प्रकार के ऐसे छंदों में लिखी गई हैं जिनमें दो-दो चरण समान तुकों के होते हैं और जो एक शृंखला में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इन छंदों की संख्या निश्चित नहीं होती है। मसनवियों के विषय भी अनेक हो सकते हैं—ऐतिहासिक, पौराणिक, दार्शनिक, सदाचार-निरूपक, रहस्यवादी अथवा धार्मिक। यह भी आवश्यक नहीं है कि पूरी रचना में कथा एक ही हो : मौलाना रूम की मसनवी में एक-दूसरे से स्वतंत्र अनेक कथाएं हैं, और ये सभी छोटी-बड़ी कथाएं अपने-आप में पूर्ण हैं; फिर भी बाहुल्य ऐसी मसनवियों का है जिनमें आदि से अंत तक कथा एक है। बड़ी मसनवियां प्रायः हम्द (ईश्वर-वंदना) से प्रारंभ होती हैं, तत्पश्चात् उसमें नात (रसूल की वंदना) होती है और उनके मेराज का उल्लेख आता है; तत्पश्चात् समसामयिक शासक या किसी महान् व्यक्ति की दुआ (स्तुति) और पीर की सिताइश की जाती है, रचना को प्रस्तुत करने के कारणों का उल्लेख किया जाता है और किसी को संबोधन होता

है। मूल रचना से विभिन्न प्रसंगों का निर्देश-निर्णय करने वाली भूमिका दी जाती है, और कि साथ उनके शीर्षकों के रूप में होती है।[१५]

भारतीय साहित्य में 'आख्यायिका' और 'कथा' दो ऐसे साहित्य-रूप हैं जो इस प्रसंग में विचारणीय हैं। प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों ने गद्य में प्रस्तुत किए गए साहित्य-रूपों के अन्तर्गत कथा-कृतियों को दो प्रकार की बताया है, आख्यायिका और कथा। कुछ बाद के साहित्य-शास्त्रियों ने कथाओं का प्राकृत भाषाओं में भी लिखा जाना माना है। भामह (काव्यालंकार १.२५-२८) के अनुसार 'आख्यायिका' एक प्रकार का ऐसा साहित्य रूप होता है जो गंभीर और उपयुक्त गद्य में प्रस्तुत किया जाता है, जो उच्छ्वासों में विभक्त होता है, इसमें अनुभवपूर्ण तथ्यों का समावेश किया जाता है, इसमें मूल कथा का वक्ता नायक स्वयं होता है, साहित्य-रूप के प्रतीक-स्वरूप इसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छंद होते हैं इसमें कवि को अपनी व्यक्तिगत छाप छोड़ने के लिए यथेष्ट अवसर रहता है; कन्यापहरण, युद्ध, विरह, पुनर्मिलन जैसे विषयों का इसमें समावेश होता है। 'कथा' में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छंद नहीं होते हैं और न उच्छ्वास-विभाजन होता है; कथा भी नायक द्वारा नहीं कही जाती है, अन्य व्यक्तियों द्वारा कही जाती है। भामह ने 'आख्यायिका' के लिए भाषा-माध्यम संस्कृत का और 'कथा' के लिए संस्कृत तथा अपभ्रंश का माना है।

रुद्रट (काव्यमाला १६.२०-३०) के अनुसार 'कथा' का आरंभ देवों और गुरुजनों की छंदोबद्ध वंदना से होता है, और उसके अनंतर उसमें लेखक के कुल तथा रचना के उद्देश्य का उल्लेख रहता है; रचना—जिसमें पुर-वर्णन आदि भी सम्मिलित रहता है—अनुप्रासपूर्ण तथा आनुप्रासिक गद्य में रची गई होती है, कथारंभ में एक कथान्तर आता है, जिसकी सहायता से मुख्य कथा अवतरित की जाती है, किसी कन्या की प्राप्ति 'कथा' का सामान्य उद्देश्य होता है और शृंगार रस 'कथा' में पूर्ण रूप से व्याप्त रहता है, इसकी रचना संस्कृत में गद्य में की जाती है, जब कि अन्य भाषाओं में पद्य में होती है। रुद्रट के अनुसार 'आख्यायिका' में भी रचना का आरंभ उपर्युक्त देव तथा गुरु-वंदना के साथ होता है, साथ ही उसमें पूर्ववर्ती कृतिकारों की प्रशंसा रहती है, इसके अनंतर रचना के उद्देश्य के संबंध में स्पष्ट कथन किया जाता है,

[१५] विस्तृत परिचय के लिए, देखिए, डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय : 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', पृ० १४३-६१।

मे गूंज उठा। दिन होने पर राजा ने उसे बुलवाया और गीत-नाद-सुर-कविता-कहानी द्वारा मनोरंजन करने के लिए उसे सेवा में रख लिया। बाजुर ने उसे अपना परिचय देते हुए कहा कि वह उज्जैन का था। फिर उसने चांदा के रूप की प्रशंसा की, और रूपचंद के आदेश पर विस्तार से उसका शृंगार-वर्णन किया। उसने क्रमश: उसके मांग से लेकर चरणों तक के उसके विभिन्न अंगों, उसकी काया-यष्टि, उसके वस्त्रों तथा आभरणों आदि का वर्णन किया। खंड को समाप्त करते हुए किसी 'मुहम्मद' को कवि ने संबोधन किया है।[२६]

७. गोबर-अभियान खंड (कड० ८६–१०१)

इस शृंगार-वर्णन को सुनते ही राव रूपचद ने गोबर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उसकी पदाति-सेना, अश्व-सेना और गज-सेना ने प्रयाण किया। प्रयाण के समय उसे कुछ अपशकुन हुए, किन्तु उन पर ध्यान न देते हुए उसने गोबर को जा घेरा। इस सेना ने पेड़ों-पौदों को काट डाला और मठों-देवालयों और अमराइयों में आग लगा दी। महर ने जब यह देखा, तो उसने राव रूपचंद के पास बसीठ भेजे। उनके पूछने पर राव रूपचंद ने बताया कि चांदा का विवाह उसके साथ कर दिया जाए, वह इसलिए आया था। बसीठों ने कह दिया कि यह असंभव था और महर युद्ध के लिए प्रस्तुत था। फिर भी रूपचंद ने उनके द्वारा अपना सन्देश भेजा। उन्होंने लौट कर महर को उसका सन्देश दिया। महर ने कुमारभुक्तों को बुलाकर उनसे परामर्श किया। कुछ ने तो चांदा को दे देने का समर्थन किया किन्तु कुंवरू और धंवरू ने इसका विरोध किया और युद्ध के लिए प्रस्तुत होने की सम्मति दी। उन्हीं की बात मानी गई।

८. गोबर-युद्ध खंड (कड० १०२–१२४)

महर की ओर से कुंवरू आगे बढ़ा, रूपचंद की ओर से उसका प्रमुख योद्धा वीर बांठा आया; बांठा के प्रहार से कुंवरू धराशायी हुआ। अब धवरू आगे आया, और वह भी बांठा के प्रहार से धराशायी हुआ। इन दोनों के गिरने पर महर के कुमारभुक्तों का साहस जाता रहा। यह देख कर महर ने लोरिक के पास संदेश भेजा, जिसने युद्ध में भाग लेना स्वीकार कर लिया। उसने रण-सज्जा की। उसकी माता तथा स्त्री मैंनां ने उसे रोका, किन्तु फिर

[२६] प्रसंग की इस प्रकार की समाप्ति से लगता है कि प्रसंग पूरे एक खंड का विषय था।

उन्होंने उसे हर्षपूर्वक विदा दी। तदनंतर लोरिक अपने गुरु (?) अजई के पास गया, जिसने युद्ध में न सम्मिलित होने के लिए आहत होने का स्वांग कर रक्खा था। लोरिक उससे शास्त्रास्त्र-संचालन की युक्ति लेकर विदा हुआ। लोरिक महर की सेवा में उपस्थित हुआ, तो महर ने उसे विजय-प्राप्त करने पर बहुत-कुछ देने का वचन और पान का बीड़ा देकर रण-धरा में भेजा। लोरिक के उतरते ही महर की सेना लौट पड़ी, और वहां डटकर स्थित हो गई। महर ने भी अब युद्ध की पूरी तैयारी की। उसकी सभी प्रकार की सेनाएं सज्जित हो गई। [यह देखकर] रूपचंद ने महर के पास यह कहलाया कि अब युद्ध एक-एक से एक-एक का हो, तीसरा कोई निकट न जाए। महर ने यह स्वीकार कर लिया, तो रूपचंद की ओर से (क्रमशः) सींह और सिंगार आगे आए। कुंवरू के चेर (पुत्र ?) ने सींह को खदेड़ दिया। अब सिंगार आगे बढ़ा तो वह भी धराशायी हुआ।

इसके बाद क्रमशः ब्रह्मदास और धरमूं रूपचंद की ओर से आगे आए। ब्रह्मदास को मार कर [कुंवरू के] चेर (पुत्र ?) ने धरमूं को भी समाप्त कर दिया। तदनतर रणमल आगे बढ़ा, जिसने कुंवरू के पुत्र को मारा। यह देखकर महर ने रणपति को आगे बढ़ाया, जिसने रणमल को समाप्त कर दिया। रूपचंद की ओर से अब सिरीचंद आगे आया, जिसे रणपति ने पाखर पर आघात कर आहत किया। तदनंतर अजयराज ने उस पर एक बेलक (बाण) छोड़ा, जो उसकी पाखर में रह गया। सिरीचंद भाग निकला। रूपचंद ने बांठा से परामर्श की, तो उसने तीस पाखरित योद्धाओं को युद्ध मे प्रवृत्त करने का वचन दिया। जब उनकी सेना बांठा रण-धरा में लाया, तो महर ने लोर से उसका सामना करने का अनुरोध किया। एक घड़ी तक तुमुल युद्ध हुआ, रूपचंद की सेना बहुत नष्ट हुई, उसके सिर पर कुंत (भाला) लगा, और बांठा भाग खड़ा हुआ। बांठा की सम्मति लेकर रूपचंद ने एक बार अपनी पूरी सेना को चलाया, किन्तु वह सेना भी भाग निकली। तब बांठा सौ पाखरित योद्धाओं को लेकर रण-धरा मे उपस्थित हुआ। उसका सामना महर से हुआ; उसने महर पर प्रहार किया तो महर का सन्नाह टूट गया, और उसका खड्ग छिटक कर भूमि से जा लगा। अब लोर सामने आया। उसके प्रहार से रूपचंद भाग निकला; फिर उसने महीराज, सिरीचद, भुईराज और बीरराज को समाप्त किया। यह देखकर बांठा आगे आया। वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ जब वह धराशायी हुआ, लोरिक उसका सिर काट कर ले चला। यह देखकर रूपचंद की सेना भाग निकली। लोरिक ने

उसका पीछा किया। रूपचंद ऐसा भागा कि फिर गोवर पर आक्रमण करने का वह नाम भी न लेता।

९. चांदा-लोर प्रथम दर्शन खंड (कड० १३५–१५३)

इस विजय का महर ने उत्सव मनाया, और उसमें लोरिक को एक हाथी पर चढ़ा कर सामंतों के साथ नगर भर में घुमाया। चांदा को इस गोवर का उद्धार करने वाले को देखने की साध हुई और उसने अपने धवलगृह पर से उसका दर्शन किया। उसे देखते ही वह लोरिक के स्नेह से अभिभूत हो गई। उसकी धाय बृहस्पति ने दूसरे दिन उसके इस प्रकार रोमांच में आने का कारण पूछा, तो चांदा ने बताया और उससे पुन: लोरिक को दिखाने का अनुरोध किया। इसके लिए बृहस्पति ने उक्त विजयोत्सव के प्रसंग में पिता से एक बृहत् ज्योनार आयोजित कराने का सुझाव दिया, जिसमें लोर को आमंत्रित किया जाता। चाँदा के अनुरोध पर महर ने एक बड़े ज्योनार का आयोजन किया। लोरिक तथा पूरे नगर के लोग इस ज्योनार में सम्मिलित हुए। जब चांदा पुन: श्रृंगार करके धवलगृह के ऊपर [लोरिक को देखने के लिए] आई, लोरिक की दृष्टि उस पर पड़ी और वह चांदा के सौन्दर्य से अभिभूत होकर सुधि-बुधि खो बैठा। उसे डांडी पर लेकर उसके घर पहुचाया गया।

१०. चांदा-लोर-पुनर्दर्शन खंड (कड० १५४–१८०)

लोरिक ने घर जाकर खाट ले ली। वैद्यों ने बताया कि वह काम-विद्ध था। संयोग-वश जब बृहस्पति उसके घर पर गई और उसने उसकी यह दशा देखी, उसने कारण पूछा। माता के वहाँ होने के कारण कारण बताने में लोरिक संकोच कर रहा था। माता हट गई, तब उसने कारण बताया और चादा से मिलाने का उससे अनुरोध किया। बृहस्पति ने बताया कि चांदा से मिलना दुर्गम था। लोरिक ने उसके पैरों पर पड़ कर इस कार्य में उसकी सहायता करने का अनुरोध किया, तो उसने यह युक्ति बताई कि वह तपस्वी के रूप में होकर [निर्धारित] मंदिर में रहे, तो वह देव-दर्शन के मिस से उस मंदिर में चांदा को ला कर उसे मिला देगी। यह युक्ति बताकर वह चादा की सेवा में चली गई। लोरिक तपस्वी का वेष बनाकर उस मंदिर में जा बैठा, वह कंद-मूल-फल खाता और चांदा का नाम जपता। एक वर्ष तक वह उस मंदिर में रह कर देवता की पूजा करता रहा। जब दीपावली का पर्व आया चांदा ने बृहस्पति को बुलाया और साठ सखियों को लेकर वह

उस देव-मंदिर में गई। संयोग से उसका हार टूट गया। जब उसकी सखिया हार के मोतियों को उठा कर पुनः हार गूंथने में लगीं, बृहस्पति उसको मंदिर की छाया मे ले गई। इसी समय उसकी कुछ सहेलियों ने किसी रूपवान् राजपुत्र-योगी के वहाँ होने की सूचना दी। चांदा ने जैसे ही उसके पास जाकर उसे सिर झुकाया, तपस्वी अचेत हो गया और चांदा वापस चली आई।

घर आकर चांदा अनमनी हो रही थी, उसने बृहस्पति से कोई रस-वार्त्ता कहने का अनुरोध किया तो उसने रस-कुंड में डूब कर मरते हुए उस तपस्वी को उबारने की बात कही। चांदा ने उसे ऐसा कहने से मना करते हुए कहा कि वह तो उसी दिन से लोरिक की हो चुकी थी जिस दिन से उसने उसे देखा था। बृहस्पति ने बताया कि मंदिर में जिस तपस्वी को उसने देखा था, वह वही लोरिक था। चांदा ने कहा कि तब वह तत्काल जाकर उसे उठाए और उस बिरहाभिभूत तपस्वी को आश्वासन दे कि उसकी आशा पूरी होगी। बृहस्पति ने जाकर जब लोरिक को सांत्वना दी, तो वह उसके पैरों पर गिर कर चांदा से मिलाने का अनुरोध करने लगा। उसे आश्वासन देकर बृहस्पति चादा के पास चली गई और लोरिक भी मंदिर से चला गया।

११. धवलगृह-आरोहण खंड (कड० १८०—१९६)

अब लोरिक इधर-उधर भटकता रहता था, घर में नहीं आता था, यह देख कर मैंना ने उससे चित्त को स्थिर करने और मन को शांत करने के लिए अनुनय-विनय की, किन्तु उसका कुछ असर न हुआ। दिन भर वह वनखंड मे फिरता और रात में गोबर चांदा की झलक पाने की लालच से आता। चादा भी लोरिक से मिलने के लिए छटपटाती रहती। उसने बृहस्पति से लोरिक को मिलाने का उपाय करने को कहा। बृहस्पति वनखंड में जाकर लोरिक से मिली, और उसने चांदा के धवलगृह पर किसी युक्ति से चढ़ कर उससे मिलने की राय दी। अनुरोध करने पर बृहस्पति ने उसे साथ ले जाकर चादा के धवलगृह का मार्ग दिखा दिया। लोरिक ने एक मजबूत बरहा (रस्सा) पटसन का बनाया, और उसमें एक लोहे की आंकड़ी लगाई, जो धवलगृह पर फेंकने पर कहीं फ़ंस सकती। भादों की छठी की रात को, जब वर्षा हो रही थी, वह निकल पड़ा। उस समय कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था, किन्तु बिजली के प्रकाश में उसे चांदा का धवलगृह दिखाई पड़ गया। उसने आगे बढ़कर उसके ऊपर बरहा फेंका। चांदा जाग गई। नीचे जब लोरिक को देखा तो उसने बरहा छिटका दिया। चांदा ने कई बार ऐसा ही किया, तो लोरिक ने अंतिम रूप से एक बार और उसे फेंकने का संकल्प किया

चादा ने सोचा कि बार-बार ऐसा करने से लोरिक चला जाएगा, इसलिए इस बार फेंके जाने पर बरहे की आंकड़ी को उसने एक खंभे से अटका दिया और चुपचाप जाकर पलंग पर लेट गई। अब वह वीर उस बरहे के सहारे धवलगृह पर चढ़ आया। खंभे की प्रतिच्छाया में खड़े होकर उसने चांदा की सुसज्जित और सुचित्रित चौखंडी का निरीक्षण किया। ईंगुर वर्ण की उस चौंखंडी में सोने के पानी से अनेक प्रकार के चित्र उरेहे हुए थे, भांति-भांति के सुगंधित द्रव्य, ताम्बूलादि और खाद्य-पदार्थ रक्खे हुए थे, और एक पुष्पालंकृत शैया पर चांदा विश्राम कर रही थी। चीर के हट जाने से उसके स्तन दिखाई पड़ रहे थे; बार-बार वह उसे जगाने की सोचता था, किन्तु इसके लिए उसका साहस नहीं पड़ता था।

१२. चांदा-लोर-संवाद खंड (कड० १९७—२११)

अंत में उसने उछल कर चांदा का हाथ जा पकड़ा। चांदा जाग गई और उसके केश पकड़ कर 'चोर-चोर' पुकारने लगी, किन्तु कोई न जागा। चित्त में वह प्रसन्न हुई कि वह उसे मिल गया था। लोरिक ने कहा कि वह चोर नहीं था, अन्यथा वह उसके आभरण लेकर चला जाता, वह उसका प्रेमी था, और वह अपने प्राण गंवा कर भी उससे प्रेम करना चाहता था। चांदा ने कहा कि वह अपनी मृत्यु को धोखा देकर आया था, और यदि बिस्तर पर उसने पैर रक्खा तो उसने अपने प्राण गंवाए। लोरिक ने कहा कि वह तो मर कर इस स्वर्ग में आया था, और तभी मर गया था जब उसने उसका दर्शन किया था, फिर मरे को मारने की बात कैसी थी? लोरिक की इस बात को सुनकर चांदा को ममता आई और उसने उसके केश छोड़ कर उसका अंचल पकड़ा और उसका परिचय मांगा। उसने बताया कि वह वही कूकू लोर था, जिसने उसको [रूपचंद के] ग्रहण से उबारा था, और जो उसके लिए प्राणों पर खेला था। इसके अनंतर चांदा ने लोरिक से उसके प्रेम-निवेदन की सत्यता का प्रमाण चाहा, और उसके उत्तर में लोरिक ने वह प्रमाण प्रस्तुत किया। [कवि के प्रेम-दर्शन को भली-भांति समझने के लिए यह संवाद अत्यधिक उपयोगी है और बाद के शीर्षक में विस्तार से इसका विश्लेषण किया गया है, इसलिए इसे वहां देखा जा सकता है।] लोरिक ने कहा कि ज्यौनार के दिन उसको जब उसने देखा था, उसके स्नेह ने उसे अभिभूत कर लिया था; उसके स्नेह का विटप उसके हृदय में उसी दिन आ लगा था; वह विटप धरती से आकाश तक बढ़कर ही रहने वाला था, भले ही उसके कारण उसका जीव जाता चांदा ने भी स्वीकार किया कि उसकी

विजय-संबंधी शोभा-यात्रा में जिस दिन उसे उसके दर्शन हुए थे, उसी दिन उसने उसके पेट में प्रविष्ट होकर उसके प्राण निकाल लिए थे, और ज्यौनार भी उसी ने उसे भरपूर देखने के लिए कराई थी। इस समय जो कुछ उसने किया था, वह उसके स्नेह की परीक्षा मात्र लेने के लिए किया था।

१३. चांदा-लोर-मिलन खंड (कड० २१२–२२५)

चांदा के इस अमृत-वचन को सुनकर लोर प्रसन्न हो गया, और उसने चादा का अंचल पकडा, किन्तु ऐसा करते ही चांदा का मुक्ता-हार टूट गया। चादा ने उसके मोतियों को बीन कर देने के लिए कहा, जिसमें वह रात बीत ही गई; दिन हुआ तो चांदा ने उसे शैया के नीचे छिपा दिया। दूसरी रात को कुछ कथोपकथन होने के बाद शैया में दोनों मिले और 'काम-तृप्ति-लाभ कर दोनों बहुत अपूर्व हो गए; उनके पंचभूत और आत्मा शीतल हो गए।' दूसरे दिन भी चांदा ने लोरिक को शैया के नीचे छिपा रक्खा। किंतु चादा की सखियों ने उसकी अस्त-व्यस्त वेष-भूषा के साथ ही देखा कि उसके नेत्र आनंद से रतनारे हो रहे थे, जैसे उन्होंने तांबूल खाया हो, अतः वे समझ गई कि फूल पर भ्रमर बैठ चुका था। यह भाप कर चांदा ने बहाना किया कि रात में उस पर बिल्ली कूद पड़ी थी, जिसके कारण ऐसा हो गया था। जब यह समाचार उसके माता-पिता को मिला, वे भी कन्या को देखने आए। लोरिक इन परिस्थितियों में शैया के नीचे पड़ा हुआ अपनी आसन्न-मृत्यु की कल्पना कर रहा था, उसका रक्त सूख गया था, बिना जीव का हुआ वह अपनी काया को भी न जान रहा था। जब पुनः रात्रि हुई, चांदा ने अमृत छिड़क कर उसको जीवित किया। अपनी मृत्यु को लोरिक अपने नेत्रों से देख चुका था जो कि, यह आश्चर्य की बात थी, आकर लौट गई थी। चादा ने उसे ढाढ़स दिया, कि वह अपने मन में चिन्ता न करता क्योंकि अब वह उसकी विवाहिता-जैसी हो चुकी थी। चांदा उसे पहुंचाने आई, तो पौरिया पैरों की आहट पाकर जाग पड़ा; चांदा उसे छिपाते हुए बोली कि वह चेरियों को फूल बीनने को फुलवाडी में भेजने के लिए बुलाने जा रही थी; यह सुनकर पौरिए ने पौरी खोल दी और लोरिक वीर भाग निकला। चांदा जब पुनः अपनी चौखंडी पर चढ़ गई, पौरी लगा दी गई। जब लोरिक घर पहुंचा, तो मैंना ने प्रश्न किया कि रात उसने किस नारी के गले में बाहें डाल कर व्यतीत की थी; लोर ने कहा कि उसने राधा की रास कछाई थी, उसी को देखते-देखते रात बीत गई थी। चांदा ने धवलगृह पर चढ़ कर देखा कि लोरिक अपने घर पहुंच गया था। फिर उसने ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति को

देखकर समझ लिया कि दोनों गंगा को पार कर जब हरदीं जाएँगे, तभी वे मिल सकेंगे।

१४. मैंना समाधान खंड (कड० २२६—२४३)

चांदा-लोरिक का यह प्रेम-प्रसंग गोपित न रह सका था; मैंना ने सुना तो लोरिक से सांकेतिक रूप से अपनी व्यथा उसने कही। खोलिन ने मैंना से उसकी प्रत्यक्ष व्यथा का कारण पूछा। चांदा-लोरिक के प्रेम की चर्चा की ओर उसने संकेत किया, फिर उसे बताया कि किस प्रकार भ्रमर कमल-कलिका की बात भी नहीं पूछता था और केतक (केवड़े) की सुगंध पर अनुरक्त हो गया था [जिससे वह अपने को संकट में डाल रहा था]। खोलिन से फिर उसने बताया कि लोरिक चांदा की अटा पर जाकर उससे रमण करता है, और समझाने पर भी नहीं सुनता है। रात बीतने पर लोरिक लौटा, तो देखा कि मैंना रुष्ट थी और रो रही थी। लोरिक को यह अनुमान हो गया कि मैंना ने उसके नए प्रेम-प्रसंग के विषय में कुछ सुना था और उसकी मनुहार करने लगा। मैंना ने जब चांदा के साथ उसके प्रेम-प्रसंग की चर्चा चलाई, उसने स्वर्ग जैसे धवलगृह पर पहुँचने की असंभावना का कथन किया, और कहा कि इस प्रकार यदि वह उसे स्वर्ग भेज रही थी तो उससे मिलना कैसा था? जब खोलिन ने लोरिक के आने का समाचार पाया, वह दौड़कर आई और उसने बुरा-भला कहकर दोनों में मेल कराया। मैंना ने फिर लोरिक को चांदा से प्रेम करने का उलाहना दिया, तो लोरिक ने कहा कि केवल दूसरों के कहने पर वह न जाए, क्योंकि उससे अधिक कोई भी स्त्री उसके मन में स्थान नहीं पा सकती थी। मैंना ने इस पर चांदा की तुलना में अपने सौन्दर्य की अधिकता बताई, तो लोरिक ने उसे शांत किया और मैंना ने भी उसका स्नेह-सत्कार किया। किन्तु घर से बाहर होते ही लोरिक पुनः जैसे का तैसा हो गया।

१५. चांदा-मैंना-विवाद खंड (कड० २४४—२६५)

आषाढ़ी आई तो गोवर की अन्य स्त्रियों के समान चांदा भी मनोकामना-पूर्ति के अभिप्राय से सोमनाथ की पूजा के लिए अपनी सखियों को लेकर सोमनाथ के मंदिर में गई। सुन्दरी चांदा को देखकर देवता की सुधि-बुधि जाती रही। लोरिक को पति के रूप में प्राप्त करने के विषय में उसने देवता से मान्यता की। तब तक अपनी सखियों की टोली लेकर मैंना भी वहाँ जा पहुंची, जो शोक-संताप के कारण कृष्ण वर्ण की हो रही थी। उसने देवता की पूजा कर उससे याचना की कि जो स्त्री अपनी शैया को छोड़ कर अन्यत्र दौड़ती

रहती है, उसे वह खा जाए। जब चांदा और मैनां मिलीं, उनमें विवाद छिड गया। फिर दोनों में हाथा-पाई की नौबत आ गई, जिसके परिणाम-स्वरूप दोनों के आभरण और वस्त्र टूटे और फटे और चांदा घर जाने को लौट पडी। यह देखकर मैना ने चांदा का चीर पकड़ कर खीचा, तो वह विवस्त्रा हो गई। मैनां ने जब जी-भर उसकी दुर्गति कर ली, तब उसका रोष ठडा हुआ। किन्तु वे पुन: परस्पर भिड़ गई। वे ऐसी विवस्त्रा हो रही थीं जैसे वे नदी या सरोवर में डूबने चल पड़ी हों। तब तक लोरिक आ पहुँचा था। उसने दोनों को समझा-बुझाकर शांत किया और दोनों को अकवारों में भरा। दाऊद ने लिखा है कि ये छंद उसने संवार कर [किन्हीं] सिराजुद्दीन से कहे हैं।[२७]

१६. चांदा-लोर परदेश प्रस्थान खंड (कड० २६६–२८०)

चांदा इस प्रसंग से अत्यधिक व्यथित हो कर घर गई, क्योंकि अब उसके मुख में ऐसा कालिख लग गया था जो धोया नहीं जा सकता था। मैनां हंसती हुई घर आई, क्योंकि उसने भरपेट चांदा का पानी उतारा था। खोलिन के पूछने पर उसने सारा प्रसंग सुनाया। तदनंतर मैनां ने अपनी मालिन को बुलाया और उसे चांदा के संबंध का उलाहना देने के लिए उसकी माता के पास भेजा। उसने जाकर चांदा-मैनां के बीच मंदिर में हुए कलह की चर्चा की। फूला महरी को अत्यधिक दु:ख हुआ; वह पछताने लगी कि ससुराल से चांदा बुलाई ही क्यों गई थी? तदनंतर उसने लौट कर मैना से बताया कि इस लोकोपवाद से महरी दु:खित हुई। उधर चांदा ने भी समझ लिया इस अपवाद के वाद उसका गोवर रहना ठीक नहीं था, इसलिए उसने बृहस्पति से लोरिक को कहलाया कि वह रातों-रात उसको लेकर निकल भागे, नहीं तो सबेरा होते ही वह विष खाकर प्राण त्याग देगी। बृहस्पति ने जब लोरिक को चाँदा का यह संदेश सुनाया, तो उसने वर्षाकाल में यात्रा की कठिनाइयां बताते हुए शरद, शिशिर, हेमंत अथवा वसंत ऋतु में चलने के लिए कहा। उसने जाकर चांदा से लोरिक की बात कही, जिस पर चादा सहमत नहीं हुई और उसने बृहस्पति को पुन: लोर के पास भेजा। बृहस्पति ने पुन: जाकर चांदा को निकल भागने की व्यग्रता का निवेदन किया, तो लोरिक ने पंडित से दूसरे ही दिन का मुहूर्त लेकर प्रस्थान करने का वचन दिया।

[२७] **प्रसंग को जिस प्रकार समाप्ति की गई है, उससे लगता है कि यह प्रसंग पूरे एक खंड का विषय था।**

सबेरा होने पर लोरिक ने पंडित से मुहूर्त लिया। रात होने पर लोरिक पुन बरहे की सहायता से धवलगृह पर चढ़ गया, चांदा पहले से तैयार बैठी थी। वह लोरिक के पैरों पर गिरी और लोरिक ने उसे उठा कर मत्थे से लगाया। तदनंतर अपनी [नवजीवन-] यात्रा पर वे दोनों निकल पड़े।

१७. कुंवरू-भेंट खंड (कड० २८१—२८५)

चांदा और लोरिक काले झगे पहन कर निकले तथा ओडन-खांडा-लोरिक ने और धनुष चांदा ने लिया। दस कोस जाने पर लोरिक का भाई कुंवरू मिला। कुंवरू ने कहा, "लोरिक तुमने यह अच्छा न किया कि तुम महर कन्या को लेकर भाग निकले। ······तुम्हारी बूढ़ी माता खोइलिन और बाल्यावस्था की तुम्हारी बिबाहिता मैंना चिल्ला-चिल्लाकर तुम्हारे विरह में मर जाएंगी।" चांदा ने कहा, "मैं लोरिक को जीते-जी न छोड़ूंगी।······वह मेरे और मैं उसके चित्त में बस रहे है, इस यात्रा में हम देशान्तर भी देख लेंगे।" इस पर कुंवरू ने कहा, "तुझे तो काला मुख करके फिरना चाहिए, ऐसा तेरा आचरण है।" लोरिक ने कुंवरू को गले लगाया और वह रोने लगा। फिर कुंवरू उसका गला छोड़कर उसके पैरों पड़ा। लोरिक ने कहा, "कार्तिक मास की ऋतु का उत्सव मनाकर हम लौट आएंगे। अब हम हरदी के मार्ग पर हैं, बिदा दो। मां से कहना कि मैंना पीहर न जाने पाए और उसकी सेवा में रहे।"

१८. बावन-युद्ध खंड (कड० २८६२—९६)

संध्या होने पर वे गंगा के तट पर पहुंच कर एक वृक्ष के नीचे सो रहे। गंगा बढ़ रही थी और उसे पार करना था, इसलिए लोरिक-चांदा ने एक छलपूर्ण युक्ति का आश्रय लिया—वह छिप गया और चांदा बार-बार अपने-आप को दिखाने लगी कि उसे अकेली देखकर कोई नाव वाला आ जाता। एक नाव वाला जब अपनी नाव के पास आया, तो उसे चांदा ने कगन दिखाया। उसे देखते ही नाव वाला वहां आ गया। दोनों नाव पर चढ गए, उन्होंने नाव वाले को वहीं छोड़ दिया और करिये (डांडे) को लोरिक ने अपने हाथों में कर लिया: इस प्रकार दोनों गंगा को पार कर गए। तब तक पीछा करता हुआ बावन नदी-तट पर आ पहुँचा, केवट ने उसे बताया कि वे उसकी नाव लेकर नदी पार कर गए थे। बावन लोरिक को नदी के उस पार देखकर नदी में कूद पड़ा। किन्तु उस ने जब तक नदी पार की, चांदा-लोरिक चार कोस आगे जा चुके थे। बावन ने दौड़कर दस कोस पर उन्हें पकड़ा, जहां पर एक ऊंचा वृक्ष था। बावन ने बाण चलाया, जिससे लोरिक का

ओड़न फूट गया, लहावट फूट गया। लोरिक एक आम के वृक्ष की आड़ मे जाकर खड़ा हो गया। चांदा ने कहा, "हे बावन, जब विवाह के अनंतर मैं तेरे पास बरस-दिन तक रही और तूने प्रेम पूर्वक बात न की, तरस-तरस कर मैं मर गई और तेरी शैया न मिली, जैसी आई थी, वैसी ही मायके गई, तब जो मेरे भाग्य मे लिखा था वह मुझको मिला। तू अब अपने घर को वापस जा; समझ ले कि यह वह कूंकू लोर है जिसने राव रूपचंद और थाँठा को मारा है।" किन्तु बावन ने लोरिक के साथ भाग निकलने के लिए उसे लज्जित करते हुए एक वाण और छोड़ा जो वृक्ष को फाड़ता हुआ निकल गया। चांदा ने उसे पास के देवकुल (मंदिर) का आश्रय लेने की राय दी। बावन के पास तीन ही वाण थे, जिनमें से दो को वह पहले छोड़ चुका था, शेष एक को भी उसने छोड़ दिया, किन्तु वह बाण उड़ (चूक) गया। चादा ने कहा, "शुक्र (काना बावन) अब अस्तमित हुआ और सूर्य (लोरिक) प्रकाशित हुआ!" बावन ने तब धनुष फेंक दिया और दोनों को शाप दिया, "मेरी विवाहिता होने पर भी इसे तुम ले जा रहे हो और यह तुम्हारे साथ जा रही है, इसलिए तुम, ऐ लोरिक, यमपुर में राज्य करोगे और चांदा को साप डसेगा।" बावन ने एक बार उन्हें यह भुलावा देकर लौटाना चाहा कि वे दोनों स्त्री-पुरुष होकर रहेंगे और वह इसमें कोई दखल न देगा, किन्तु चादा ने कहा, "जिसकी विवाहिता ली जाए, उसकी प्रतीति न करनी चाहिए," और, यह कहते हुए वे आगे बढ़े।

१९. कलिंग-युद्ध खंड (कड० २९७–३०७)

जब वे कलिंग के राज्य में पहुंचे, उन्हें बोदई नाम का एक दानी (कर उगाहने वाला) मिला, जो कर के रूप में चांदा को मांगने लगा। लोरिक अर्थ-कर देने लगा, किन्तु उसने उसे स्वीकार न किया। यह देखकर लोरिक और चादा दोनों युद्ध के लिए तैयार हो गए। उन्होंने विपक्ष के सभी जनों को मार गिराया। जब बोदई ने लोरिक को पहचान कर उससे जीवदान मांगा, उसने उसका मुख काला कर और उसके बालों में बेल बांधकर उसे राजा के पास भेज दिया। बोदई राजा के पास पहुंचा और उसने सारी घटना सुनाई। राजा उसको आगे करके चला। सयानों ने इस पर राजा से कहा, "कोई परदेशी यदि आता है, तो उससे इस प्रकार की छेड़-छाड़ न करनी चाहिए, क्योंकि यदि हार हो जाती है तो मुख काला होता है; अतः ऐसे वीर क्षत्रिय को बहुतेरे पसाव के साथ बुलाकर रखिए और फिर वह जहां जाए, जाने दीजिए।" सयानों की बात मान कर राजा ने लोरिक-चांदा को आदरपूर्वक

बुलाया और उस दानी को जो उन्होंने दंडित किया था, उसका समर्थन किया। लोरिक ने राजा के न्यायी होने की सराहना करते हुए उन्हें हरदी भेजने का अनुरोध किया। राजा ने उन्हें रुकने के लिए कहा, किन्तु वे न रुके।

२०. प्रथम सर्पदंश खंड (कड० ३०८–३१२)

राजा ने चांदा और लोरिक को सुखासन और घोड़े पर बिठाकर विदा किया। वे वहां से आकर [कलिंग देश में ही] एक ब्राह्मण के घर पर ठहरे। वे फूलों की शैया बिछा कर सोए तो फूलों की वासना से एक सर्प आ गया और उसने चांदा को डंस लिया। चांदा ने जब पुकार की तो लोरिक ने उठकर उस सर्प को मार डाला। किन्तु चांदा तब तक निर्जीव हो चुकी थी। चांदा को जीवित करने का कोई उपाय न चल सका, तो लोरिक ने चिता तैयार की और लाकर उस पर आग रखी कि वह चांदा के मृत शरीर को लेकर जल जाए, किन्तु तब तक एक गुणी आ गया जिसने चांदा को जीवित कर दिया। लोरिक ने चांदा के समस्त आभरण उसे दे दिए। तदनंतर चांदा को सुखासन पर चढ़ा कर वह आगे बढ़ा।

२१. द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खंड (कड० ३१३–३२९)

[यही एकमात्र खंड है जिसका नाम मिला है, और यह नाम मिला है मै० के फ़ारसी शीर्षक में जो स्वीकृत कडवक ३२९ के साथ उसमें मिलता है।]

खा-पीकर जब दंपति सो गए, तो रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक विषधर आ निकला और उसने चांदा को डस लिया। वह लोरिक को जगा कर इतना ही बता पाई थी और अचेत हो गई। विलाप करते हुए लोरिक ने कहा, "जिस चांदा के लिए अनेक बार इस जीवन का तिरस्कार कर चुका हूं, जिसके लिए युद्ध में प्रवृत्त होकर मैंने बांठ को मारा और रूपचंद को सीधा किया, रुग्ण होकर खाट पर मैं पड़ा, पुनः योगी बनकर भिक्षा मांगी, और एक वर्ष तक देवालय में जागता रहा, बरहा फेंक कर धवलगृह पर गया और अपने सिर की बाजी लगाकर उसको लाया, 'चोर-चोर' की पुकार होने पर पकड़े जाने और प्राण-दण्ड पाने से बचा, अब उसी स्त्री को मैं बनखंड में पहुंच कर गवा रहा हूं।" एक पूरा दिन और एक पूरी रात गए, तो लोरिक ने चिता बनाई और चांदा को सिर पर ले जाकर उस चिता पर रक्खा, किन्तु उसके आंसुओं से चिता की आग बुझ-बुझ जाती थी, तब-तक एक गुणी आ पहुंचा। सर्वस्व समर्पित करने का वचन देकर लोरिक ने उससे चांदा को जिलाने का निवेदन किया। उस गुणी ने मंत्र का उच्चारण कर जैसे ही पानी छिड़का, चांदा चेत में आ गई। इस पर लोरिक ने चांदा के और अपने आभरण एवं अन्य

वहुमूल्य पदार्थ उसे दे दिए । दाऊद कवि ने कहा है "इस ख़ंड में उसने चांदा की कथा इसलिए गाई है कि कथा-काव्य करके वह लोक को सुनाए । नथन मलिक ने यह दुःख का प्रसंग उठाया था, उन्हीं को इसलिए ये छंद (इस खंड के छंद) सुनाए हैं ।"[२८]

२२. हरदीं-पाटन-निवास खंड (कड० ३३०—३३८)

चौदह कोस आगे बढ़ने पर वे हरदीं पाटन पहुंचे । वहां का राजा छेतम आखेट के लिए निकल रहा था, तभी लोरिक ने उसे जुहार की और नगर देखने को आगे बढ़ गया । राजा ने एक नाई उसे ले जाकर आवास देने के लिए नियुक्त कर दिया । वह उन्हें एक राजभवन में ले गया और उससे आवश्यक जानकारी प्राप्त की । आखेट के अनंतर जब राजा लौटा, नाई ने उसे उनके बारे में जो कुछ ज्ञात हुआ था, बताया । उसने कहा कि वह गोवर का योद्धा लोरिक था और जिसके कारण राव रूपचंद को इसने मारा (मार भगाया) था, वह चांदा नारी [उसके साथ की स्त्री] थी । दूसरे दिन लोरिक राजा को भेंट देने आया, तो छेतम ने सम्मानार्थ निकट बुला कर उसे बाना (पहनावा) दिया और प्रसन्न होकर एक घोड़ा दिया । इस घोड़े को पाकर लोरिक हर्षित हुआ । इस प्रकार एक वर्ष तथा कतिपय मास तक दोनों ने वहां सुख-पूर्वक निवास किया ।

२३. मैनां-सन्देश-निवेदन खंड (कड० ३३९—३६२)

इधर मैनां निरंतर रोती और लोरिक की बाट जोहती रहती । वह उन पथिकों का मार्ग देखती रहती जिनसे उसे लोरिक का कुशल-समाचार मिल सकता । एक दिन उसने एक टांडे (सार्थ) के आने की बात सुनी । खोलिन ने उसके नायक को बुलाकर पूछा कि वह कहां का निवासी था और कहां जा रहा था । उसने बताया कि वह गोवर का था, सुरजन उसका नाम था और वह हरदीं पाटन जा रहा था । पाटन का नाम सुनते ही खोलिन रो पड़ी और मैनां नायक के पैरों पर गिर पड़ी । मैनां ने बताया कि उसका स्वामी एक वर्ष से [एक अन्य स्त्री] चांदा के साथ हरदीं पाटन में रह रहा था; उसी के पास वह सन्देश भेजना चाहती थी । उसने उससे सावन मास से लेकर आषाढ़ तक के बरस-दिन के कष्टों का वर्णन किया ।

तदनंतर उसने चांदा के लिए उसे सन्देश दिया । उसने कहा, "उसके

---

[२८] **प्रसंग की इस प्रकार की समाप्ति से यह स्पष्ट लगता है कि प्रसंग एक स्वतंत्र खंड का विषय था ।**

जिस स्वामी के लेकर उसने छः ऋतुओं तक शैया सूनी कर रखी थी, उसे वह दक्षिणा के रूप में ही दे देती। वह भी स्त्री थी, इसलिए उसे तो समझना चाहिए था कि पति के न होने पर स्त्री का हृदय रात्रि में किस प्रकार फटता है।" खोलिन ने भी उससे अपने हृदय की पीड़ा कही, उसने कहा, "मेरा जीवन तो [संध्या की] पीली धूप है······वह अस्त हो जाएगी तो तुम आकर भी क्या करोगे ?"

२४. संदेश-प्राप्ति तथा स्वदेश-आगमन खंड (कड० ३६३–३८०)

चार मास तक चलने पर टांडा हरदीं पहुंचा। सुरजन भेंट की वस्तुएँ लेकर उस राज-भवन की पौरी पर पहुंचा जिसमें लोरिक निवास कर रहा था। लोरिक पौरी पर आया, तो ब्राह्मण ने उसे अनेक अशीर्वाद दिए, और उसके ग्रह-नक्षत्रों की गणना करके उनके फल कहते हुए संकेतों में यह भी कहा कि वह पापकुंड (पर नारी का संसर्ग) छोड़ कर शुद्ध गंगा नहाएगा (विवाहिता के साथ रहेगा)। सुरजन ने पुनः कहा, "तेरा भाई कुंवरू, तेरी माता, तेरे कुटुंबी और तेरी पत्नी मैना—सभी तेरी बाट देख रहे हैं; मैना तो तेरी विरह-ज्वाला में सबसे अधिक जल गई है। तुझे उससे डरना चाहिए जो अपना विवाहित पुरुष छोड़ कर दूसरे पुरुष को लिए बैठी है।" फिर उसने बताया कि किस प्रकार उसको बुला कर उन्होंने सन्देश दिए, और मैना किस प्रकार उसके साथ आने का हठ कर रही थी, जब खोलिन ने उसे समझा कर शान्त किया। मैना का यह संताप सुनकर लोरिक रोने लगा, और दूसरे ही दिन उसके साथ स्वदेश के लिए प्रस्थान करने को तैयार हो गया। किन्तु चांदा ने जब यह सुना, उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी चाँद की ग्रहण होने पर होती है। लोरिक ने ब्राह्मण को लेकर भोजन किया, किन्तु चांदा उपासी रह गई।

सवेरा होने पर लोरिक ने पाटन-राज से विदा ली। पाटन-राज ने सम्मान पूर्वक उसे दो सौ पदातिकों के साथ विदा किया। चांदा ने गोवर जाने से उसे बहुत रोका, और हरदीं वापस जाने का उससे बहुतेरा आग्रह किया, किन्तु लोरिक ने उसकी एक न सुनी।

२५. मैना-सतीत्व-परीक्षा खंड (कड० ३८१–३९३)

पचास कोस चलकर गोवर के निकट देवहा में लोरिक-चांदा उतरे। लोरिक ने सवेरा होने पर एक माली को बुलाया और उसे कुछ फूल देकर गोवर में भेजा। वह गोवर में घर-घर फूल देता फिरा, किन्तु जब वह मैना के पास पहुंचा, तो उसने यह कह कर उसे स्वीकार नहीं किया कि उसका पति

परदेश गया हुआ था। फिर भी, हठपूर्वक माली ने उसके गले में एक पुष्प-हार डाल दिया। उसमें मैंनां को कुछ वैसी वासना मिली जैसी उसे केवल लोरिक के लाए हुए फूलों में मिलती थी, इसलिए रोते हुए वह उससे पूछने लगी कि उसका परदेशी प्रिय कहां पर आया हुआ था। उसने उत्तर दिया कि वह स्वयं परदेशी था, किन्तु उसके साथ अन्य लोग भी ठहरे हुए थे जो विभिन्न स्थानों से आए हुए थे, संभव था कि उनसे उसके परदेशी प्रिय का कोई समाचार मिल जाता, यदि वह सबेरे ही दूध बेचती हुई वहां आ जाती। लोरिक ने इस प्रकार माली द्वारा उसे वहां आने के लिए प्रेरित कर ग्वालिनो से दूध-दही लेने का प्रबंध किया। जो महरियां आईं, उनके सिर में सिंदूर डलवा कर और उन से दूध-दही लेकर उन सभी को जाने दिया, और जब मैंना आई, चांदा से उसके मांग में सिंदूर डालने और उसके दूध-दही का दस गुना दाम देने के लिए कहा। किन्तु मैंनां सिंदूर कराने के लिए तैयार नहीं हुई, क्योंकि, उसने कहा, उसका पति हरदीं गया हुआ था, और उसके न होने के कारण उसे इस प्रकार की साध नहीं होती थी। फिर भी लोरिक मैंनां को जाने नहीं दे रहा था, और छेड़-छाड़ कर उसका मर्म ले रहा था; मैंना ने उसे इसके लिए झिड़क दिया और वह चल पड़ी, तो चांदा उसको लेकर पलग पर अपने साथ बिठाने लगी, किन्तु मैंनां दूसरे दिन पुनः आने का वचन देकर चली गई। दूसरे दिन वह पुनः आई, जैसे और महरियां आईं। चांदा ने भीतर बुला कर पुनः उसकी उदासी के संबंध की बात चलाई, तो मैंनां ने कहा कि उसके दुःख-संताप का कारण एक चांदा थी जो बरस-दिन पूर्व उसके पति को भगा ले गई थी, और वह यदि मिल जाती तो उसका मुख काला कर वह उसे सर्वत्र घुमाती। चांदा ने इसके उत्तर में जब अपनी बडाई बताई, तब दोनों एक-दूसरे को पहचान गईं और आपस-में झगड़ने लगीं। लोरिक ने दोनों को शांत किया। चेरियों से उसने मैंनां का शृंगार करने को कहा और उसे रात के लिए वहीं रोक लिया। नहला कर मैंनां का शृंगार किया गया और रात्रि में लोरिक ने उसके पास जाकर उसकी मनुहार की।

२६. गृह-आगमन खंड (कड० ३९४—३९७)

यह अपयश की बात गोवर भर में फैल गई कि मैंनां पिछली रात को किसी परदेशी के साथ रह गई थी। खोलिन अजई के घर यह समाचार लेकर गई, तो अजई निकल कर वहां गया। लोरिक पर उसने खांडे का प्रहार किया, किन्तु उसके आघात से ज्यों ही लोरिक का टाटर टूटा, अजई पहचान गया कि यह लोरिक था। फिर उसने लोरिक को अंकों में भरा और

घर चलने को कहा। लोरिक घोड़े पर चढ़ा हुआ घर आया, माता के चरणों में पड़ा और उससे क्षमा-याचना की। माता ने कहा ऐसा कर उसे वह दुःखित न करता। तदनंतर दोनों बहुओं को खोलिन घर के भीतर ले गई। गीत गाए गए और बधावे हुए। लोरिक ने माता से अपनी अनुपस्थिति के बीच के समाचार पूछे, तो उसने बताया कि उसके जाने पर बावन आया था, जो मैनां और बैनां को निकाले ले जा रहा था, अजई ने उन्हें छुड़ाया। तब महर ने मांकर को कहला भेजा कि लोरिक के न होने पर यह अच्छा अवसर था कि वह उसकी गायों को हांक ले जाता, [शोक में] दुर्बल कुंवरू उसके समक्ष क्या था? यह सुनकर मांकर एक कटक लेकर आ गया। अकेला कुंवरू क्या कर सकता था? वह लड़ते-लड़ते मारा गया। जब महर ने यह समाचार एक नाई से पाया, उसको उसने वस्त्र पहनाए। एक दुःख तो उसे उस (लोरिक) का ही था, दूसरा जब कुंवरू के मारे जाने का लगा, वह दिन भर रोती और रात भर जागती रहती थी।

२७. अंत खंड (कड० ३९८—)

रचना का यह अंश अनुपलब्ध है। रचना के लोक-गाथा-रूप के अनुसार ऊपर लिखा विवरण पाने पर लोरिक मांकर के घर पर जाता है और उसे युद्ध के लिए ललकारता है, दोनों में युद्ध होता है, जिसमें मांकर मारा जाता है। तदनंतर मांकर के बेटे देवसिया से उसका युद्ध होता है, जिसमें एक क्षेत्रीय रूप के अनुसार लोरिक मारा जाता है, और एक अन्य क्षेत्रीय रूप के अनुसार वह विजय प्राप्त करता है, किन्तु उसके अनंतर किसी अन्य कारण से वह काशी जाकर करसी सीझ जाता है (अपने चारों ओर उपले जला कर जल मरता है)। दाऊद ने अपनी रचना में लोक-गाथा से स्थान-स्थान पर भिन्नता भी रखी है, इसलिए यदि इस अंत के विषय में अंतर हो, तो आश्चर्य न होगा। हरदी में सुरजन ने उससे भविष्य-कथन करते हुए कहा है—"राजा चंदु पाट बइसारा; मंति बिरसपति सुरिजु उभारा।"[२९] यह कथन किस रूप में चरितार्थ हुआ होगा, यह स्पष्ट नहीं है, किन्तु इसका संबंध कथा के इस अंश से ही है, यह स्पष्ट ज्ञात होता है। इसी प्रसंग में चादा की षष्ठी के अवसर पर का ज्योतिषियों का यह कथन भी विचारणीय है कि जीवन के ऊर्ध्व में ही वह मृत्यु को प्राप्त होगी: उरधइ सौं जाइहि जम बारा।[३०] फलतः ज्ञात होता है कि गोवर का राज्य प्राप्त कर जीवन के

[२९] चांदायन ३६९। [३०] वही, ३३।

ऊर्ध्व में ही किसी कारण-वश, असंभव नहीं कि लोरिक के मृत होने पर चांदा, और कदाचित् मैंना ने भी, देह-त्याग किया।

रचना की कथा का आधार क्या है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। कथा का मूल आधार निस्संदेह आभीरों की वह जातीय लोक-गाथा है जो 'लोरिकी' और 'चनैनी' के नामों से अधिकांश हिन्दी-क्षेत्र में प्रचलित रही है। इसके अनेक क्षेत्रीय रूपों का पता चला है और 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' के योग्य लेखक डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय अमरीकन इंस्टीट्यूट आव इंडियन स्टडीज की आर्थिक सहायता से एक विशाल परियोजना विगत दो वर्षों से चला रहे है, जिसमें इन समस्त विभिन्न रूपों को वे गायकों के कण्ठ से टेप-बद्ध कर रहे हैं, बाद में वे इन विभिन्न रूपों का विश्लेषण कर इनके प्राचीनतम रूप की स्थापना करेंगे और दाऊद के 'चांदायन' का उनसे क्या संबंध है, इसे स्थिर करेंगे। उसके कुछ क्षेत्रीय रूपों के संक्षेप विभिन्न विद्वानों और लेखकों ने दिए हैं। नीचे खंड क्रम से हम देखेंगे कि 'चांदायन' की कथा के कौन से तत्व इन लोक-गाथा रूपों से विशिष्ट हैं।

खंड १ : यह कवि का अपना है। इसमें स्तुतियों के अनंतर उसने अपनी रचना के संबंध में उसका रचना-काल आदि दिया है, किन्तु उसके आधार का उल्लेख नहीं किया है। कथा का कोई भाग इस खंड में नहीं आता है।

खंड २ : यह भी कवि का अपना है। कथा के लोक-गाथा रूपों में गोवर-वर्णन जैसी कोई वस्तु नहीं मिलती है, दो-चार पंक्तियों में गोवर की प्रशंसा भले ही मिल जाए।

खंड ३ : पद्मिनी के रूप में चंद्र का अवतार 'चांदायन' के कवि की अपनी कल्पना है। बारह मासों की होने पर ही उसके सौन्दर्य का ख्याति देश-विदेश मे होने लगती है, यह भी उसकी अपनी ही कल्पना है। बावन सिउहर से उसका विवाह लोक-गाथा की वस्तु है।

खंड ४ : बावन के द्वारा चांदा की उपेक्षा लोक-गाथा की ही वस्तु है किन्तु उसका अपने भाई को बुलाकर पीहर जाना 'चांदायन' का अपना है। लोक-गाथा रूपों में वह अकेली चली जाती है। पीहर जाने पर उसका जो वर्णन शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा के संदर्भ में किया गया है, वह भी 'चांदायन' का अपना है।

खंड ५ : बाजुर-मूर्च्छा का सारा प्रसंग 'चांदायन' का अपना है और निस्संदेह कवित्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है—विशेष रूप से प्रहेलिका की सहायता से उसका चांदा के अपरूप का कथन। बाजुर नाम अवश्य किसी

लोक-गाथा रूप से लिया हुआ हो सकता है। मैथिली गाथा-रूप में 'बाजिल' उस संदेश वाहक कौवे का नाम बताया गया है जो मैंना का संदेश लेकर उस समय लोरिक के पास गया था जब वह हरदी में था। संभवतः वही नाम 'चांदायन' में उस भिक्षुक का रख लिया गया है, जिसकी मूर्च्छा का इस खंड मे उल्लेख होता है।

खंड ६ : रूपचंद के सम्मुख बाजुर द्वारा चांदा के रूप-शृंगार-वर्णन की कल्पना 'चांदायन' की अपनी वस्तु है। लोक-गाथा रूपों में न रूपचंद मिलता है और न बाजुर द्वारा चांदा के रूप-शृंगार-वर्णन का प्रसंग आता है।

खंड ७ : प्रायः समस्त लोक-गाथा रूपों में बांठा चांदा से छेड़-छाड़ करता दिखाया जाता है, जब वह पीहर लौटती हुई चांदा को मार्ग में मिलता है। 'चांदायन' में राव रूपचंद बांठा को लेकर चांदा के लिए उसी प्रकार आक्रमण करता है जिस प्रकार अलाउद्दीन ने चित्तौर की पद्मिनी के लिए किया था। उसकी सेना के द्वारा मार्ग में किया हुआ तहस-नहस भी उसी प्रकार वर्णित हुआ है जैसा कि सुल्तानों के हिंदू राज्यों पर किए हुए आक्रमणों के समय देखा जाता था। मठों-देवालओं-अमराइयों को ढहाना और उनमें आग लगाना रूपचंद के संबंध में उतने तथ्यपूर्ण नहीं लगते हैं जितने वे अलाउद्दीन तथा दिल्ली के अन्य कुछ सुल्तानों के संबंध में थे, किंतु इस प्रकार के वर्णन से हिन्दुओं और उनकी धार्मिक संस्थाओं के साथ कवि की सहज सहानुभूति के संकेत अवश्य मिलते हैं।

खंड ८ : गोवर-युद्ध का समस्त विस्तार 'चांदायन' की अपनी वस्तु है, जिस प्रकार बाजुर-मूर्च्छा और गोबर-अभियान के प्रसंग उसके अपने हैं। माता, मैंना तथा अजई से विदा लेने के अनंतर लोरिक का युद्ध में सम्मिलित होना भी उसका अपना है। बांठा का लोरिक के द्वारा मारा जाना कथा के लोक-गाथा रूपों में भी मिलता है, किन्तु 'चांदायन' में वह चांदा से छेड़-छाड़ करने के कारण नहीं मारा जाता है, वह तो रूपचंद का महता होने के कारण युद्ध में सम्मिलित होता है और लोरिक द्वारा मारा जाता है।

खंड ९-१० : कथा के लोक-गाथा रूपों में चांद-लोर में छेड़-छाड़ के प्रसंग प्रारंभ से ही मिलते हैं : दोनों एक ही गांव में रहते हैं और झूले, होली तथा जल-विहार आदि के गांव के कार्यक्रमों में बराबर मिलते रहते हैं। उनमें बावन की उपेक्षा के अनंतर चांदा अधिकाधिक लोरिक की ओर खिंचती जाती है और अन्त में उसकी हो जाती है। प्रथम दर्शन और पुनर्दर्शन के प्रसंग 'चांदायन' में उसके सर्वथा अपने हैं और तत्कालीन सामंतीय परिवेशों में

समाज-वर्जित अनुराग का जो विकास इन प्रसंगों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह अवश्य ही सराहनीय है।

खंड ११ : धवलगृह-आरोहण का प्रसग उसी प्रकार लोक-गाथा रूपो मे भी मिलता है जिस प्रकार वह 'चांदायन' में है, किन्तु चित्रित चौखंडी और चादा के विलास के प्रसाधनों का वर्णन 'चांदायन' का अपना है।

खंड १२-१३ : चांदा-लोर मिलन के पूर्व एक विस्तृत संवाद रचना मे आता है, जिससे उसके प्रेम-दर्शन का अच्छा परिचय मिलता है। निस्सदेह रचना का सबसे उपयोगी अंश यही है, जो कि उसकी कथा के लोक-गाथा रूपों से अलग करता है। इस खंड में मरण-मार्ग से जिस अमरत्व की प्राप्ति कराई गई है वह दाऊद के प्रेम-दर्शन का एक उज्ज्वल उपादान है, जो कि आगे जायसी और मंझन की कृतियों में भी अविकल रूप में प्रयुक्त होता है।

खंड १४-१५ : लोरिक द्वारा मैंनां का समाधान और चांदा-मैंनां विवाद के प्रसंग भी 'चांदायन' के अपने है और ये दोनों ही अपने स्वाभाविक परिवेशो मे दिखाए गए हैं—विशेप रूप से दूसरा।

खंड १६ : मालिन द्वारा चांदा की मां फूला के पास मैंनां द्वारा उलाहना भेजे जाने का प्रसंग भी 'चादायन' का अपना है। चांदा-लोरिक के हरदी-प्रस्थान की बात दोनों में समान रूप से मिलती है।

खंड १७ : कुंवरू से भेंट का प्रसंग भी दोनों में समान रूप से मिलता है।

खंड १८-१९ : बावन और कलिंग युद्ध के प्रसंग भी थोड़े से अंतर के साथ दोनों में मिलते हैं।

खंड २०-२१ : सर्पदशों के प्रसंग भी दोनों में मिलते हैं, यह अवश्य है कि द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खंड में लोरिक के आत्म-निवेदन-पूर्ण आत्मोत्सर्ग का जो भव्य रूप प्रस्तुत किया गया है, वह कृति का अपना है।

खंड २२ : हरदीं-निवास का प्रसंग दोनों में मिलता है, किन्तु अन्तर के साथ। लोक-गाथा रूपो मे इसका विकास लोरिक को एक चपल और उद्धत नायक के रूप मे चित्रित करते हुए किया गया है, जो एक ओर एक कलालिन से प्रेम करने लगता है, और दूसरी ओर इतने उद्दंडतापूर्ण कार्य करता है कि हरदीं के राजा को उससे पीछा छुड़ाने का उपाय करना पड़ता है। 'चादायन' मे लोरिक का हरदीं-निवास वहां के राजा के साथ सौहार्दपूर्ण है। वह किसी अन्य स्त्री के हाथो में बिकता भी नही है और मनचाही चांदा को पाकर भली भांति संतुष्ट और प्रसन्न है। हरदीं के राजा का नाम भी दोनो मे भिन्न भिन्न है।

खंड २३ : बनजारे के द्वारा संदेश-निवेदन मैंना ने लोकगाथा-रूपों में भी किया है, जिस प्रकार उसने 'चांदायन' में किया है, किन्तु बारहमासे के रूप मे उसका कष्ट-निवेदन और चांदा को दिया हुआ उसका संदेश रचना के अपने हैं, और निस्संदेह कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। नायक के नाम भी दोनों में भिन्न-भिन्न हैं।

खंड २४ : संदेश-प्राप्ति और स्वदेश-आगमन के प्रसंग दोनों में मिलते है, किन्तु ज्योतिष-विचार पूर्वक सुरजन का लोरिक के जीवन का भावी क्रम-निरूपण 'चांदायन' की अपनी वस्तु है। हरदीं-नरेश से सौहार्दपूर्ण बिदा प्राप्त करने का प्रसंग भी रचना का अपना है।

खंड २५ : मैंना-सतीत्व-परीक्षा दोनों में प्रायः समान है, विस्तारों में कुछ अंतर है। माली को फूल लेकर गोवर भेजने और मैंना को आमंत्रित करने का प्रसंग रचना का अपना है। चांदा-मैंना का कलह भी इसी प्रकार उसका अपना है।

खंड २६ : गृह-आगमन का प्रसंग भी दोनों में प्रायः समान है।

रचना की कथा का शेष अंश अप्राप्य है, और उसके निश्चित रूप का अनुमान करना संभव नहीं है।

इस सबके अतिरिक्त एक बात और विचारणीय है, लोक-गाथा के अनेकानेक कथा-विस्तार रचना में नहीं लिए गए है, और उनके छोड़ देने मे कवि की सुरुचि का ही प्रमाण मिलता है।

फलतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि रचना के लिए लोक-गाथा की स्थूल रूपरेखा को भले ही ग्रहण किया गया है, उसके विस्तारों को भिन्न ढग से भरा गया है। यह कुल नवीनता दाऊद का निजी कृतित्व है, या कथा से संबधित किसी पूर्ववर्ती कृति का भी इसमे योग है, यह कहना कठिन है। यद्यपि यह असंभव नहीं है, किन्तु जब तक इसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं, यही मानना होगा कि यह दाऊद का मौलिक कृतित्व है।

५. रचना का सन्देश

रचना का सन्देश एक विवाद का विषय बना हुआ है। दाऊद ने जिस प्रेम का प्रतिपादन अपनी रचना में किया है, वह किस प्रकार का है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए चांदा और लोरिक के पूरे प्रेम-प्रसंग को देखना पड़ेगा।

रचना में प्रेम नायिका (चांदा) में पहले-पहल अंकुरित होता दिखाया गया है। गोवर-युद्ध के विजेता लोरिक को सम्मानित करने के लिए नायिका

का पिता महर उसकी शोभा-यात्रा का आयोजन करता है, जिसमें लोरिक एक हाथी पर बिठा कर राजकीय सम्मान के साथ नगर में घुमाया जाता है। नगर भर उसे देखने को उमड़ पड़ता है—उस लोरिक को देखने के लिए जिसने अपने खांडे की बदौलत गोवर की रक्षा की है, और उसकी भुजाओं की पूजा करता है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस युद्ध में वह किसी कामना के साथ नही प्रवृत्त हुआ था। जहाँ रूपचंद ने चांदा के लिए गोवर का अभिमान किया था, लोरिक चांदा की प्राप्ति को लक्ष्य बना कर युद्ध मे नहीं उतरा था, वह योद्धा केवल इसलिए युद्ध में उतरा था कि उसे महर ने एक आक्रान्ता से, जो उसकी कन्या चाहता था, लोहा लेने के लिए आमंत्रित किया था। महर के भेजे हुए भाट ने उससे ज्योंही कहा था—

लोर महर तुम्हं बेगि हंकारे। कुंवरू धवरू बांठइं मारे।[31]
जा रबि गोवरु लागि गोहारी। लइ(लेइ) अब चांद होइ अंधियारी।[32]

वह आक्रान्ताओं को मार भगाने के लिए उठ खड़ा हुआ था—

उठ लोरु सुनि नाखा परलैं महर भया अवसान।
आज बांठु रन मारउं देखउं राइ परान ॥[33]

अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उसने चादा के संबध के एक अस्फुट स्नेह के कारण अपने प्राणों की बाज़ी लगाई थी, जैसा उसने एक स्थान पर कहा भी है—

तुम्हरिय माख जो दीति न काऊ। मारिउं बांठ खिदेरिउं राऊ।[34]

यद्यपि यह कथन केवल प्रेमिका का स्नेह अर्जित करने के लिए भी किया गया हो सकता है, क्योंकि युद्ध-यात्रा के प्रकरण में इस प्रकार का कोई भाव लोरिक मे नहीं अंकित किया गया है।

इस युद्ध-यात्रा के प्रसंग में महर की सेवा में भी जब वह उपस्थित होता है, वह किसी रूप में यह मांग नहीं करता है कि विजयी होने पर उसे चादा दे दी जाए यद्यपि उस युद्ध में कदाचित् ऐसे भी योद्धा थे जो इसी लक्ष्य से महर की ओर से लड़ने को प्रस्तुत हुए थे; रणपति नाम का एक कुमार इसी प्रकार लगता है—

रनपति महर दीन्ह अगुसारी। चाह बियाहि आनइं कुंवारी।[35]

किन्तु लोरिक ऐसों में नही था।

---

[31] **चांदायन, १०५।** [32] **वही।** [33] **वही।** [34] **वही, २०२।**
[35] **वही, १२६।**

कथा के लोक-गाथा रूपों में से किन्हीं-किन्हीं में यह मिलता है कि चांदा और लोरिक में फाग-झूले आदि के उत्सवों में स्वच्छंद प्रेम के संकेत होते रहते थे, किन्तु दाऊद ने अपने दोनों पात्रों को इससे बचाया है---और निश्चय ही जान-बूझ कर बचाया है। दाऊद की कथा में तो उनका परस्पर का प्रथम दर्शन ही गोबर-युद्ध के अनंतर विजयोत्सव और ज्योनार के अवसरों पर होता है। इसलिए लोरिक की युद्ध-यात्रा निष्काम है और मात्र धर्म अथवा स्नेह से प्रेरित है।

चांदा के मन में तो रचना में इस वीर के प्रति किसी प्रकार का स्नेह-भाव पहले से नहीं दिखाया गया है। जब वह उसकी विजय-संबंधी शोभा-यात्रा में उसका दर्शन करने के लिए धवलगृह के ऊपरी खंड पर जाती है, उसमें उस वीर के दर्शनों की एक श्रद्धापूर्ण उत्सुकता भर है, जिसने उसको और उसके देश-ग्राम को उबारने के लिए प्राणों की बाजी लगाई है—

सो कस आहि जेइं गोवरु उबारा। कवनु वीर जेंहि कटकु संघारा।
कवनु सिंघु जेंहि गैवरु हना। धनि सो जननि अइस जेइं जना।
पूछेउं (पूंछउं) धाइ बचनु सुनि मोरा। एंहि दर कवनु सो कूंकूं लोरा।[36]
कवनु रूपु कहं मंदिर आछइ आखउं ब्रिरस्पति तोहि।
साधि मरति हउं बीरनि लोरु दिखावहि मोहि ॥[37]

लोरिक-दर्शन की उसकी यह साध अवश्य ही बहुत उत्कट है—जो 'मरति हउ' से प्रकट है, किन्तु यह 'साध' अपने त्राणकर्ता के दर्शनों द्वारा अपने श्रद्धापूर्ण कुतूहल को संतुष्ट करने के मात्र लिए है, इससे आगे और किसी बात के लिए नहीं है।

किन्तु जब बृहस्पति उसे लोरिक का दर्शन कराती है, वह उसे देखकर विमोहित हो जाती है और बेक़रार (बेचैन) भी; उस पर पानी छिड़का जाता है, तब वह चेत में आती है। फिर भी, पून्यों के उस चांद की सोलह कलाएं सूर्य (लोरिक) की सहस्र कलाओं की छाया पड़ने पर तिरोहित हो जाती हैं और वह अमावस्या की रात्रि हो जाती है—

चांदहि लोरिक निरखि निहारा। देखि बिमोही गई बेकरारा।
गुरिज सनेह चांद कुंबिलानी। आइ बिरसपति छिरका पानी।
घरु आंगनु सुख सेज न भावइ। चांद उमाही सुरिजु बोलवाइ।
पूनिउं चंद्र जइस मुख अहा। गई सो जोति गहन होइ रहा।

[36] वही, १२६। [37] वही, १२६।

सहस करा सूरिज कइ रही चांद चित छाइ ।
सोरह करा चांद कइ भई अमावसि जाइ ।।[३८]

ऐसा लगता है कि जैसे उसकी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धा ने उस नींव का रूप ग्रहण कर लिया, जिस पर प्रेम का नव प्रासाद खड़ा हुआ, अथवा वह बीज का वह पौदा बन गई जिस पर प्रेम के अधिक सुरस फल की क़लम लगी । यदि उस अपूर्व पौरुषपूर्ण सौन्दर्य के दर्शन के लिए पहले से उसने मानसिक तैयारी की होती, तो कदाचित् उसे झेल जाती, किन्तु अकस्मात् ही उसका संपूर्ण अस्तित्व उस अप्रतिम पुरुष-सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है, और दूसरे दिन बृहस्पति जब उससे पूछती है—

कहु सो बात जिहिं तूं असि भई । काहि लागि भरि आंकुर गई ।[३९]

वह बृहस्पति के पैरों में पड़कर पुनः लोरिक का दर्शन कराने को कहती है—

चांद बिरस्पति कै पां परी । काल्हि सुरिजु देखिउ एक घरी ।
कइ ओहि मोरे घरें बुलावहि । कइ मोहि लइ ओकें डंड लावहि ।[४०]

लोरिक तो और भी बिना किसी तैयारी के—अकस्मात्—चांदा का दर्शन करता है, और इसीलिए उसे देखते ही उसके जीव का अपहरण हो जाता है—

अमिरितु जेवन तेहि माहुर भएउ । जीउ काढि हरि चांदइं लिएऊ ।
मुक्ख न जोति कया अति रूखी । चांद सनेह सुरिजु गा सूखी ।[४१]

उसे लोगों को उसके घर तक डांडी पर ले जाना पड़ता है । वह खाट पर पड़ जाता है और तभी उठ पाता है जब चांद की धाय बृहस्पति चांद से मिलाने का उसे आश्वासन देती है । उस समय बृहस्पति से भी उसने इस जीवापहरण की बात कही है जो चांदा के प्रथम दर्शन का परिणाम था—

जेहिं दिन हउं जेंवनार बोलावा । महर मंदिर काहू दिखरावा ।
सो जिउ लइ गइ कही न जाई । बिनु जिउ भएउ परेउं घहराई ।[४२]

नायिका-नायक में प्रेम के प्रादुर्भाव का यह रूप रचना की विशेषता है, कथा के लोक-गाथा रूपों में यह कहीं नही मिलता है ।

इस प्रेम का विकास जिस प्रकार रचना में होता है, वह भी हमें उस मे ही मिलता है, लोक-गाथा रूपों में नहीं । प्रेम-रुग्ण लोरिक को देख कर बृहस्पति ने

---

[३८] वही, १३८ । [३९] वही, १४० । [४०] वही, १४० । [४१] वही, १५३ ।
[४२] वही १५८ ।

अनुमान कर लिया कि यदि उसके इस रोग की औषधि न हुई, तो वह जीवित न रहेगा—

बिरस्पति देख लोरिक कइ कया। मरन सनेह उठी मन भया।
पाइ छाडि लोरिक पिइ पानी। ओषद करउं पीर तोरि जानी।[४३]

यह 'मरण' ही लोरिक की प्रेम-यात्रा का सबसे बड़ा संबल है; यही हिन्दी सूफी प्रेम-कथाओं में प्रेमी को अमरत्व प्रदान करता है; इस 'मरण' के आधार पर ही प्रेमी काल से भी नहीं डरता है, क्योंकि उसे विश्वास होता है कि मरे हुए को काल भी नहीं मारता है। इसी कारण इस 'मरण' को जायसी ने 'उपकार' की संज्ञा से अभिहित किया है। जो दशा लोरिक की यहां पर सौन्दर्य के साक्षात्-दर्शन से हुई है, वही रत्नसेन की शुक-द्वारा पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन को सुन कर होती है, और चेत में आने के बाद अबन (असुन्दर) जगत् को देख कर रत्नसेन रोने लगता है—

जौं भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनहुं सोइ अस जागा।
अबन जगत बालक जस रोवा। उठा रोइ हाग्यान सो खोवा।[४४]

और कहता है—

हौं तो अहा अमरपुर जहां। इहां मरनपुर आएउं कहां।
केइं उपकार मरन कर कीन्हा। सकति जगाइ जीउ हरि लीन्हा।[४५]

इसी कारण वह मृत्यु-जयी प्रेमी काल से भी भय नहीं करता है—

गजपति यह मन सकती सीऊ। पै जेहि प्रेम कहां तेहि जीऊ।
जौं पहिलें सिर दइ पगु धरई। मुए केर मींचुहि का करइ।[४६]
कत तेहि मीचु जो मरि कै जिया। भा अम्मर मिलि कै मधु पिया।[४७]

इन प्रेम-कथाओं में प्रेमी बार-बार मरता है। रचना में यह लोरिक का दूसरा मरण है, उसका पहला मरण तो रणक्षेत्र में हो चुका है। उसने चांदा की रक्षा के लिए ही तो उस मरण का वरण किया था, जिसको न उसका विवाहित पति बावन कर सका था और न महर के वे भृत्य कर सके थे जिन्होंने सब दिन उससे लाभ उठाए थे—प्राणों का संकट आने पर वे सभी भाग निकले थे।

लोरिक का तीसरा मरण उस समय होता है जिस समय वह बरस-दिन तक तपस्वी के वेष में आसन मारे और चांदा का नाम जपते हुए प्रतीक्षा करने के अनन्तर चांदा को नमस्कार करती देखता है—

[४३] वही, १६१। [४४] पद्मावत १६१। [४५] वही, १६१। [४६] वही, १४२। [४७] वही, ३०५।

चांद सीसु भगिवंतहि नावा। भा अचेतु मन चेतु गंवावा।
मुनिवर मन देखन गुन गएऊ। पीत बरन मुख भेंभर भएऊ।
नैन झुरहिं अति कया सुखानी। धनि धानुक चखि हना बिनानी।
नैन दिस्टि चांदा मुख लाएसि। रहा पाइ न सो देखइ पाएसि।
भउह फिराइ चांद गुन तानी। नैन बान मुनि हनां सयानी।
काटि दीन्ह जस बकर देवारीं रगत कीन्ह घर बार।
देखि गई घर धरती मुनिवर देउ दुवार॥[४८]

चांदा के चले जाने पर लोरिक निर्जीव-सा पड़ा-पड़ा सोचने लगता है—

माता पिता बंधु नहिं भाई। संगु न साथी मीतु न धाई।
एहि बन खंड कोइ पास न आवइ। को रे 'मरत' मुखि नीर चुवावइ।
को रे उठाइ बइसार संभारी। एहि कंथा गुन देइ हंकारी।[४९]

और इसके कुछ समय बाद उसका जीव लौटता है—

दई (दइय) पेट जीउ (जिउ) बहुरि संचारा। बांधेसि सीसु झारि कइ बारा।[५०]

इसीलिए योद्धा और गोवर-युद्ध के विजेता लोरिक के विरह से पीडित चादा ने जब बृहस्पति से कोई रस की वार्त्ता करने के लिए कहा है, उसने इस घटना की ओर संकेत करते हुए कहा है कि वह रस की बातें तो तब करती जब कि रस की घड़ी आने पर वह विरसता न करती : रस के कुंड मे डूबता-मरता हुआ उसका जो प्रेमी उस मंदिर में पड़ा था, पहले वह उसको तो उस कुंड में से पकड़ कर बाहर लाती, तब रस की ऐसी बातें करती—

रस कइ बात चितहिं जउ धरसी। रस कइ घरिय बिरस जनि करसी।
रस के कुंड परा मरहि मुनिवरु गन (गहन ?) गहीरु।
रस क बूड धरि बाहइं चांदा लावहि तीर॥[५१]

—उस प्रेमी को जो उसके रस की आशा-पिपासा में उसके विद्यमान होते हुए मर रहा है—

तोरें रस घर आहि पियासा। निससत रहइ लेइ मरि सासा।[५२]

लोरिक का चौथा 'मरण' चांदा के धवलगृह-आरोहण में घटित होता है और यह 'मरण' अकेला नहीं पूरी एक मरण-श्रृंखला है। जब और कोई युक्ति दोनों के मिलन की नहीं रह जाती है, बृहस्पति धवलगृह-आरोहण की युक्ति की ओर संकेत करती हुई लोरिक से कहती है कि उसका अवलंबन

---

[४८] चांदायन १६८। [४९] चांदायन, १७०। [५०] वही, १७०। [५१] वही, १७३। [५२] वही, १७५।

करने पर वह या तो स्वर्ग (धवलगृह) पर चढ़कर वह चांदा के रूप का भ
करता और या तो उसे फांसी ही मिलती—दोनों ही अवस्थाओं में उसे म
का निवास-लाभ प्राप्त होता—

उटउ बीर जउं उटवइ पारसि । सरग पंथ जउ चढ़त संभारसि ।
कइ कारन हनिवत बरु बांधसि । कइ कर लाइ पुत्र सर सांधसि ।
कइ रे फांस बरु मेलसु जउ रे सरग चढ़ि जासु ।
कइ रे चांद रबि भूजसु दुहुं तस मरग निवा(वा)सु ॥[५३]

दाऊद ने उसके स्वर्ग (धवलगृह) के आरोहण का वर्णन भी इसी दृ
से किया है—

चला बीरु बरहा कर लावा । जिय के परे दूसर न बोलावा ।[५४]
बीर परान बरन गुन काहा । बेडिनि बांस चढ़ति जनु आहा ।[५५]

सोती चांदा को जगाते समय भी उसके प्राण निकल जाते हैं, प्राणों
बाजी लगाकर वह चांदा को जगाता है—

'गा परान' बर पौरुष बीरहि बकति न आउ ।
जीउ उडान मनि संका केहि विधि सोवत जगाउ ॥[५६]

चांदा जब जाग कर 'चोर-चोर' पुकारते हुए उसके केश पकड़ती है,
उससे कहता है—

तोहि लागि जउ 'मरऊं' नेह न छाडउ काउ ।
पिरीति तुम्हारि लागि मोरे हिरदइं जइ 'जीउ' जाइ तउ जाउ ॥[५७]

और चांदा इसका उत्तर देती हुई कहती है—

'जिउ देइ चाह' आइ सो वेगा । जियतहि न कोउ चोर मुह हेगा ।
'मींचु' टारि तूं आलेसि कइसेइं मेटि न जाइ ।
पाउ धरहि लोहि बिस्तर 'जाइहि जीउ गंवाइ' ॥[५८]

प्रत्युत्तर देते हुए लोरिक मरण-साधना द्वारा अमरत्व की सिद्धि के अ
उसी विश्वास का प्रतिपादन करता है जिसकी ओर ऊपर संकेत किया
चुका है, और यह प्रतिपादन कितना स्पष्ट और दृढ़ है, इसको सुगमता
देखा जा सकता है—

जउ लहि जीउ घट महंहि होई । तउ लहि सरगि न आवइ कोई ।
परथमि मानुस 'जीउ गंवावइ' । तउ पाछें चढ़ि सरगहि आवइ ।

---

[५३] वही, १८५ । [५४] वही, १८८ । [५५] वही, १९१ । [५६] वही, १९
[५७] वही, १९८ । [५८] वही, १९९ ।

'मरि कइ' चांद सरगि हउं आवा। जउ जिउ होइ डराइ डरावा।
हउं तउ 'मरिउं' जउहि तूं देखी। तोहि देखि धनि 'मुइउं बिसेखी'।
'मुए' जो मारइ सो कस आहा। चाँद 'मुएं' कर मारब काहा।
देखि रूप 'जिउ दीन्हा' तउं आइउ तोहि पास।
रहे नैन जेहिं देखउं रहइ जियहु लइ सांस॥[५९]

प्रेमी के इस मरण-निवेदन से जो प्रभाव प्रेम-पात्र पड़ना चाहिए था, वही चादा पर पड़ता है और जो वह उसको चोर की भांति पकड़े हुए थी, छोड़ देती है—

कहत बचन मोहिं असभा का गहि करियहि तोहि।
महर रूखि लइ टांगइ सो हत्या फुनि मोहि॥[६०]

इस मरण-शृंखला की सबसे दृढ़ कड़ी हमें लोरिक-चांदा-मिलन के अनतर उस समय मिलती है जब चांदा चौखंडी में उसे अपनी शैया के नीचे छिपा देती है, और दो राज-भृत्य उसे खोज कर पकड़ ले जाने के लिए आते हे। कवि ने इस 'मरण' का वर्णन भी बड़ी पूर्णता के साथ किया है—

चांद सुरिजु घर धरा छपाई। राहु गरह दुइ गरहइं आई।
लोर चउखंडी दई संभारा। कउहु देवस अंथवइ करतारा।
अइस कुलखनां मूंड कटाउब। पापधि चोर परि रूखि टंगाउब।
'नियरि मींचु होइ ढूकी रगत न रहा सुखान'।
'विनु जिय' लोरिक सेजि तराही आपनि कया न जान॥[६१]

लोरिक ने इस बार अपनी मृत्यु अपने नेत्रों से स्वयं देखी है, जो आकर और उसे पहचान कर लौट गई है, और यह भी उसे तब भान हुआ है जब चादा ने उसे अमृत छिड़क कर जिलाया है—

अथवा सुरुज चांद दिखरावा। अंबिरित छिरका लोर 'जियावा'।
आपनि 'मींचु' नैन मइं देखी। 'मींचु' आइ फिरि गई विसेखी।
हउं जइ जिया चांद कुंबिलानी। अत अवसान भया तेहिं बानीं।
एहि परि रइनि 'जउ दई जियावइ। 'नाखउं मींचु' नहि नियरें आवइ॥[६२]

किन्तु इस बार के मरण में लोरिक को यह आश्वासन भी मिल जाता है कि [मरण में भी] अब वह अकेला न रहेगा, चांदा उसकी संगिनी होगी—

---

[५९] वही, २००। [६०] वही, २०१। [६१] वही, २१३। [६२] वही, २२४।

सुनहु लोर एक बिनती अब तुम्हं काह मंखाहु ।
हउं तुम्हरइ जइसि व्याही तूं मोर व्याहु नाहु ।।[६३]

और इस प्रकार उसकी मरण-साधना उसे अमरत्व की सिद्धि प्रदान करती है ।

दाऊद ने इस मरण-साधना का निर्वाह चांदा के सर्पदंश के प्रसंगों में भी किया है । दोनों बार लोरिक चिता रच कर चांदा के निर्जीव शरीर के साथ उस पर जल मरने को उद्यत होता है, यद्यपि दोनों बार गारुड़ियों द्वारा चांदा के जीवित किए जाने पर उसका यह 'मरण' टल जाता है । प्रथम सर्प-दंश का प्रसंग तो संक्षिप्त है, उसमें 'मरण' की तत्परता मात्र ही आ पाई है, किन्तु दूसरे सर्पदंश प्रसंग में वह चिता की रचना कर चांदा के निर्जीव शरीर के साथ उस पर बैठ भी जाता है, और तब गारुड़ी आकर चांदा को जिलाता है ।

मरण से अर्जित होने वाले दाऊद के इस 'प्रेम' का एक अभिन्न सहचर 'सत्य' है । जब लोरिक चांदा से अपना प्रेम-निवेदन करता है, वह जानना चाहती है कि उसमें 'सत्य' भी है अथवा नहीं, क्योंकि यही वह बल है जिससे 'प्रेम' की नाव पार लगती है—

पूछउं लोरिक कहु 'सति' मोही । केइं असती बुधि दीन्ही तोही ।
'सत' हि तिरइ सायर माँहि नावा । बिनु 'सत' बूड़इ थाह न पावा ।
जेहि 'सतु' होइ सो लागइ तीरा । 'सत' कर हीन बूड़ मंझि नीरा ।
'सत' गुन खैंचि तीर लइ लावा । 'सत' छाड़ें गुन तोरि बहावा ।
'सत' संभार तउ पावइ थाहा । बिनु 'सत' थाह होइ अवगाहा ।
'सतु' साथी 'सतु' सांभल 'सत' इ नाउ कंडहार ।
करि 'सत' कत तूं आवसि बर सिधि देइ करतार ।।[६४]

'प्रेम' और 'सत्य' के इस अटूट संबंध को जायसी ने भी इसी प्रकार महत्ता दी है—

कै अस्तुति जौं बहुत मनावा । सबद अकूट मंडप महं आवा ।
मानुस प्रेम भएउ बैकुंठी । नाहि त काह छार एक मूंठी ।
प्रेमहि माहं बिरह औ रसा । मैन के घर मधु अंब्रित बसा ।
'निसत' धाइ जौं मरै तो काहा । 'सत' जौं करै बैसेइ होइ लाहा ।
एक बार जौ मनु कै सेवा । सेवहि भल परसन हो देवा ।[६५]
हां अब कुसल एक पै मांगौं । प्रेम पंथ 'सत' बांधि न खांगौं ।

[६३] वही- २२४ । [६४] वही, २०५ । [६५] पद्मावत, १६६ ।

जौं 'सत' हिए तौ नैनन्ह दिया । समुंद न डरै पैठि मरजिया ।
तहं लगि हेरौं समुंद ढंढोरी । जहं लगि रतन पदारथ जोरी ।
सपत पतार खोजि जस काढ़े बेद गरंथ ।
सात सरग चढ़ि धावौं पदुमावति के पंथ ।।[६६]
सायर तिरै हिएं 'सत' पूरा । जौं जियं 'सत' कायर पुनि सूरा ।
तेहिं 'सत' बोहित पूरि चलाए । जेहिं 'सत्त' पवन पंख जनु लाए ।
'सत' साथी सत कर सहिवांरू । 'सत्त' खेइ लै लावै पारू ।
'सतै' ताक सब आगू पाछू । जहं जहं मगर मच्छ औ काछू ।
उठै लहरि नहि जाइ संभारा । चढ़ै सरग औ परै पतारा ।
डोलहिं बोहित लहरै खाहीं । खिन तर खिनहिं उपराही ।
राजैं सो 'सतु' हिरदै बांधा । जिह 'सत' टेकि करै गिरि कांधा ।[६७]

दाऊद की निम्नलिखित पंक्ति—

'सतु' साथी 'सतु' सांभल' 'सत' इ नाउ कंडहार' ।[६८]

जायसी की निम्नलिखित पंक्ति से तुलनीय है—

'सत' साथी 'सत' कर 'सहिवांरू' । 'सत्त' खेइ लै लावै पारू' ।[६९]

'सत्य' सम्बन्धी उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए लोरिक कहता है जिस दिन से उसने उसे देखा है, उसका रंग (अनुराग) ही उसका जीवन गया है, और वही रंग (अनुराग) उसके नेत्रों से नदी बन कर बहा है, 'सत्य' न हुआ होता, तो उसके गहरे जल में वह डूब चुका होता, 'सत्य' ने उसे इस गहरी सरिता में डूबने से बचाया और पार लगाया है ।

इस 'सत्य' का प्रमाण देते हुए लोरिक जब रंग (अनुराग) की कहने लगता है, किस प्रकार इस रंग (अनुराग) ने उसके समस्त जीवन आपूरित किया है, वह उसके विवरण निम्नलिखित प्रकार से देता है—

जेहिं दिन चांद गइउं जेवनारा । देखि बिमोहिउं रूप तुम्हारा ।
तुम्हरी जोति जु भा उजियारा । परिउ पतंग होइ भइं न संभारा ।
सो रंग रहा न चित हुत जाई । चितहु मांझ रंग कुरिया छाई ।
रंग जेंवन रंग भोजन करउं । रंग पुनि जीवन निरंग फुनि मरउ ।
तेहि रंग नैन नीर नइ बहा । होइ बर रंग करारन ढहा ।

---

[६६] वही, १४६ । [६७] वही, १५० । [६८] चांदायन, २०
[६९] पद्मावत १५०

रंग जउ देह मन भारी बिनु रंग उठइ न पाउ।
जीउ चाहि रंगि दूलह सुनु चांदा 'सत' भाउ ॥[१०]

'प्रेम' के अभिन्न सहचर के रूप में 'सत्य' का यह कथन भी दाऊद के काव्य की विशेषता है, कथा के किसी लोकगाथा-रूप में दोनों के इस अभिन्न संबंध का निर्वाह ही नहीं संकेत भी नहीं हुआ है।

इसी प्रकार दाऊद प्रेम के एक अन्य आत्मीय 'दुःख' का भी परिचय हमें कराते हैं। उपर्युक्त प्रसंग में लोरिक के कथन पर जब चांदा कहती है कि रंग (अनुराग) के कोई लक्षण उसे उसमें दीखे नहीं, यह रंग (अनुराग) तो 'दुःख' से पक्का होता है; जिसे रंग (अनुराग) होता है वह इस प्रकार चल और चढ़ कर नहीं आता है, वह तो पड़ा (गिरा) हुआ आता है; रंग (अनुराग) में विद्ध को न अन्न रुचता है और न नींद आती है, मोटा और स्थूल होते हुए लोरिक यह कैसे कह रहा था कि उसे रंग (अनुराग) लगा हुआ था ?

रंग कइ बात कहउं सुनु लोरा। कइसे रात मोहि मन तोरा।
जाति अहीरु रंग आहि न तोही। रंग बिनु निरंग न राता होई।
कहु 'दुख' जो तइं मोहि निति सहा। 'बिनु दुख यह रंग कइसें रहा'।
जउ न सहिय सिर खोडइ घाऊ। रंग रती एक होइ न काऊ।
अगिनि क्षार विनु रंग न होई। जेहि रंग होइ अवटि मर सोई।
अन न रुच रंग बेधा जाइ नींदि निसि जाग।
मोंट थूल तूं लोरिक कहु कइसे रंग लाग ॥[११]

तो उत्तर में लोरिक कहता है—

पानु भएउं चांदा तोहि जोगू। सिर देइ मैलेउं चित धरि भोगू।
गाल किहेउं अस जइसि सुपारी। खांडि पीसि दाई कीलेउ नारी।
अबन स काढि कीन्ह दुइ आधा। अइस चाद मइं आपुहि साधा।
बिरहू दगध हुउं चूना कीन्हां। जरत नीरु तेहि ऊपर दीन्हां।
अनु छोडेउं बिरहइं कइ आरा। पानीं कै हउं रहिउं अधारा।
कहिउं निरति सब आपनि अब जउ पूछहि बात।
अधर धरत गई पियरई तोहि रंग तोरें रात ॥[१२]

जायसी की प्रेम-कथा 'पद्मावत' में भी रत्नसेन और पद्मावती में प्रेम

---

[१०] चांदायन २०६। [११] वही २०७ [१२] वही २०८

के इस पक्ष को लेकर जो संवाद होता है, वह यहाँ पर उधृत करने की अपेक्षा रखता है। जब रत्नसेन कहता है—

रंग तुम्हारे रातेउं चढेउं गंगन होइ सूर।[७३]

और जब पद्मावती उसके 'रंग' पर शंका व्यक्त करती है—

जोगि भिखारि करसि बहु बाता। कहेसि रंग देखौ नहि राता।
कापर रंगैं रंग नहि होई। हिएं औटि उपनै रंग सोई।
चांद के रंग सुरूज जौं राता। देखिय जगत सांझ परमाता।
दगधि बिरह निति होइ अंगारू। ओहि की आंच विकै संसारू।
जौं मंजीठि औटै औ पचा। सो रग जरम न डोलै रंचा।
जरै बिरह जेउं दीपक बाती। भीतर जरै उपर होइ राती।
जर परास कोइला के भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू।
पान सुपारी खैर दहुं मेरै करै चकचून।
तब लगि रंग न राचै जब लगि होइ न चून॥[७४]

रत्नसेन भी कुछ-कुछ उसी प्रकार की शब्दावली में उत्तर देता है जिसमें लोरिक ने दिया है—

धनिआ का भुरंग का चूना। जेहि तन नेह दगध तेहि दूना।
हौं तुम्ह नेहुं पियर भा पानू। पेंड़ी हुत सुनिरास बखानू।
सुनि तुम्हार संसार बड़ौना। जोग लीन्ह तन कीन्ह गडौना।
करभंज किंगरी लै बैरागी। नवती भएउं बिरह की आगी।
फेरि फेरि तन कीन्ह भुंजौना। औटि रकत रंग हिरदै औ(अव)ना।
सूखि सुपारी भा मन मारा। सिर सरौत जनु करवत सारा।
हाड़ चून भै बिरह जो डहा। सो पै जान दगध इमि सहा।
कै जानै सो बापुरा जेहि दुख अैस सरीर।
रकत पियासे जे हहिं का जानहिं पर पीर॥[७५]

'प्रेम' की साधना में दुःख की यह स्वीकृति इन प्रेम-कथाओं की ही विशेषता है और इनके लोक-गाथा रूपों में नहीं मिलती है।

पुनः द्वितीय सर्पदंश प्रसंग में कवि ने प्रेम और दुःख का जो अभिन्न संबंध प्रतिपादित किया है, वह ध्यान देने योग्य है। वह लोरिक से कहलाता है—

जरम न छूट पिरम कर बांधा। पिरम खांड आहइ बिस सांधा।
जेहि एह चोट लागि सो जानी। कइ लोरिक कइ चांदा रानी।

---

[७३] पद्मावत ३०७। [७४] वही ३०८। [७५] वही ३०९।

मुखी न जान दुख काहू केरा। सोई जान परइ जेहि बेरा।
पिरम झार जेहि हिरदइ लागइ। नींदि न जान तपत निसि जागइ।
सात सरग जउ बरिसहि आई। पिरम आगि कइसेहुं न बुझाई।
चिनगि एक जउ बाहिर मारइ एहि पिरम कइ झार।
भसम होइ जरि धरती खिन एक सरग पतार।।[७६]

इसी प्रकार वह पुनः लोरिक से कहलाता है—

जेहि रे पिरम तेंहि बिरह संतावइ। बिरह जेहि तेहि पिरम सुहावइ।
पिरम सेल आहइ अनियारा। पैग न जोर पिरम कर मारा।
पिरम घाउ तेहि पूंछहु जाई। जेइं यह भाल करेजइं खाई।
पिरम घाउ ओषदि नहि मानइ। पिरम बान जेहि लाग सो जानइ।
भल फुनि होइ खांड कर मारा। जग्म न पलुहइ पिरम कर जारा।
कवनिहु भांति न छूटहि देखेउं परे पिरम कइ झेल।
पिरम खेल सोई पइ खेलहि जो सिर सेतिहं खेल।।[७७]

इन पंक्तियों को इसी आशय की 'पद्मावत' में बार-बार आई हुई जायसी पंक्तियों से भली भांति मिलाया जा सकता है; दोनों में किसी प्रकार अन्तर न मिलेगा।

इस प्रसंग में लोरिक ने एक बार अब तक के उन दुःखों को संक्षे विवृत भी किया है जिनको उसने अपनी प्रेम-साधना में अपनाया है—

चांद लागि मइं बहु दुख देखे। गिनति न आवइ एकउ लेखे।
मारेउं बांठ किएउं मुख गाई। राखेउं महर केरि महगाई।
परेउं खाट लइ पिरम जउ मारा। आइ बिरसपति दीन्ह अधारा।
एक बरिस मढ़ देवर जागेउं। जोगी भेख भीख फुनि मांगेउं।
बरहा मेलि सरग चढ़ि धाएउं। सिर सेउं खेलि चांद लइ आएउं।
चोर चोर कइ मारत उबरेउं तेइं धनि लिएउं छड़ाइ।
अब तेइं धनि बन खंड मैं छाडेउं केहि घरि आएउं चाइ।।[७८]

चांदा के साथ निकल भागने पर उसके हेतु लोरिक को जो अनेक झेलने पड़े हैं, वे भी उसकी इस दुःख-सूची में आते हैं।

दाऊद की कथा का अंत किस प्रकार होता है, यह ज्ञात नहीं है। के कतिपय लोकगाथा-रूपों के अनुसार काशी जा कर वह करसी लेता है, और इस प्रकार चांदा के कारण अंगीकृत किए गए दुःखों को झेल

[७६] चांदायन, ३२३। [७७] वही, ३२४। [७८] वही, ३२१।

वह अपने प्राण-विसर्जन भी करता है। यदि दाऊद की कथा का अंत भी इसी प्रकार हुआ हो, तो ऐसी दुःख-प्लावित प्रेम-कथा हिन्दी साहित्य में अन्य नही दिखाई पड़ती है। यदि इसके निकट कोई पहुंचती है, तो वह है जायसी की 'पद्मावत'।

फलतः इस बात में रत्ती भर सन्देह नहीं रह जाता है कि दाऊद की यह रचना पूरी अवधी सूफ़ी प्रमाख्यानक काव्य परंपरा की यशस्विनी पूर्वज है और इस दृष्टि से अप्रतिम महत्त्व की है।

मानवीय और ईश्वरीय प्रेम के संबंधों को लेकर सूफ़ियों में दो प्रमुख विचार-धाराएं रही हैं : एक विचार-धारा के अनुसार पुरुष और स्त्री का प्रेम ईश्वरीय प्रेम का ही प्रतिरूप है और दोनों में किसी प्रकार का अतर नही है; दूसरी विचार-धारा के अनुसार उक्त मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिए एक पुल मात्र है, ईश्वरीय प्रेम सजातीय होते हुए भी मानवीय प्रेम से भिन्न स्तर की वस्तु है और ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति प्राप्त होने पर मानवीय प्रेम त्याज्य हो जाता है।[७९] प्रश्न यह है कि दाऊद इनमें से किस विचार-धारा के है। दाऊद की तीन पंक्तियां इस प्रसंग में विचारणीय हैं, जो लोरिक के द्वारा चांदा के द्वितीय सर्पदंश के अवसर पर कहलाई गई हैं—

दइय गोसाई सिरजनहारा। तोहि छाडि किसु करउं पुकारा।
जस कीन्हेउं तस पाएउं रहेउ चांद चित लाइ।
जो बाउर मनुसहि चित बांधइ सो अइसइं पछताइ॥[८०]

इन पंक्तियों के आधार पर दाऊद की गणना कदाचित् दूसरी विचार-धारा के सूफ़ियों के साथ ही करनी पड़ेगी। ये पंक्तियां रचना की धर्म-सापेक्ष्यता भी निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर देती हैं।

इस प्रेम के संबंध में स्वभावतः एक शंका उठती है जो प्रस्तुत रचना और 'पद्मावत' के पाठकों और आलोचकों की सचमुच एक बड़ी शंका है, वह यह है कि जो एक स्त्री—और रूपवती स्त्री—के होते हुए दूसरी की ओर दौड रहा है, वह रूप-रस-लोभी स्नेह का प्रपंच मात्र करता है, और उसकी आड़ में एक मुग्धा को छलना ही चाहता है। दाऊद ने तो इस शंका को नायिका के माध्यम से उपस्थित भी किया है, जो कि 'पद्मावत' के रचयिता ने नहीं किया है। चांद कहती है—

---

[७९] डा० श्याम मनोहर पांडेय : 'मध्य युगी प्रेमाख्यान', पृ० १८-२४।
[८०] चांदायन, ३२७।

सुरग सेजि भरि 'फूल बिछावसि । कंवल कली तसि मैनां रावसि
असि धनि छाडि जउ अनतइं धावा । कइ सनेह तउ हीं छटकावा
भंवर फूल पर रहइ लोभाई । रसु लइ तार्गाहं बहुरि जाई
काहि लागि तूं कोड करावसि । मोहि कुल राका भूरि भगावसि
अरे लोर तूं कहं बउरावसि । तहं बउराउ जहां कछु पावसि

का अचेति हउं बाउरि कै तूं लोर बउरावसि ।
कइ सनेह मोहिं छरंगसि जित भावइ तित जावसि ।।[८१]

और इस शंका का उत्तर लोरिक निम्न प्रकार से देता है :

जेहि दिन चांद दइय हउं गढ़ा । तेहि दिन हुंते तोर रंग चढ़ा ।
बिसरा लोक कुटुंब घर बारू । बिसरा अरथु दरबु ब्यवहारू ।
मुख तंबोलु सिर तेलु बिसारा । बिसरा परिमलु फूल कइ मारा ।
अन न रूच निसि नींदि बिसारी । बिसरी सेज सो कलि फुलवारी ।
बुधि बिसरी रंग भएउ सवाई । ताकहं निरंग कहइ बउराई ।

तहं तोरइ रंग बिरवा हिरदइं लागेउ आइ ।
कोंप सरग जरि धरती जिय बरु जाइ तउ जाइ ।।[८२]

इस उत्तर में कदाचित् इस तथ्य की कवि-द्वारा स्वीकृति है कि एक
 रहते हुए भी अन्य स्त्री से प्रेम किया जा सकता है, आवश्यक इतना है
क वह ऐसी आसक्ति हो जिसके लिए जीवन-दान का अनुष्ठान किया
। । इसीलिए चांदा को इस उत्तर से संतोष हो जाता है, और वह लो
 अपने प्रेम की 'सत्यता' का प्रतिपादन करने में लग जाती है :

जेहिं दिन लोरिक रन जीति आएहु । पइसत नगर धायं दिखराएहु
तेहिं दिन हुंत मइं अन न कराई । परी न नींदि सेज न सुहाई
पेट पइसि जिउ लीन्हा काढ़ी । बिनु जिउ नारि देख बरु ठाढ़ी
मइं तोहि लागि जेवनार कराई । छत्तीस कुरी गिता हुंकराई
मकु इक तिल तुम्हं देखइ पावउं । देखि रूप मकु नैन सिराहउ

तेहिं दिन हुत हउं भूलिउं मोर जिउ तोहि कों चाहु ।
चरचा मरमु तुम्हारा लोर दहुं करियहु काहु ।।[८३]

कथा के लोक-गाथा रूपों में न यह शंका ही उठाई गई है और न
.कार के किसी समाधान की आवश्यकता ही समझी गई है ।

---

[८१] वही, २०९ । [८२] वही, २१० । [८३] वही, २११ ।

प्रस्तुत प्रसंग में केवल एक बात और विचारणीय रह जाती है, वह यह है—हिन्दी की किसी भी अन्य सूफी प्रेम-कथा में प्रेम का आलंबन किसी अन्य की विवाहिता पत्नी नहीं है, जैसी वह इस कथा में है। चांदा के प्रसंग मे ध्यातव्य यह है कि; (१) चांदा अपने विवाहित पति के पास बरस-दिन रह चुकी थी किन्तु उसने चांदा से कभी प्रेमालाप तक न किया था, (२) इस उपेक्षा के जीवन की अपेक्षा अपने पितृगृह जाकर निवास करने का जब उसने सकल्प किया, उसके विवाहित पति बावन ने उस समय भी अपने व्यवहार मे किसी प्रकार का परिवर्तन न किया और उसकी माता ने उसे उसके पितृगृह जाने के लिए एक प्रकार से भड़काया ही; (३) उसके पितृ-गृह से चांदा को ले आने या वापस बुलाने की बावन और उसके माता-पिता ने कल्पना तक न की; (४) जब रूपचंद ने चांदा के लिए गोवर-युद्ध छेड़ा, बावन वन खंड मेंछिप रहा, चांदा की लाज बचाने आया तक नही। इन परिस्थितियों में वैवाहिक सबध किसी भी जाति में समाप्त समझा जायगा। अहीरों में तो इससे कम आपत्तिजनक स्थितियों में भी जाति के द्वारा वैवाहिक संबंध का विच्छेद स्वीकार कर लिया जाता है, और उसे सामाजिक मान्यता दे दी जाती है, इसके बाद दोनों प्राणी इस बात के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं कि वे अपना दाम्पत्य संबंध जाति के किसी भी अन्य सदस्य के साथ स्थापित कर ले। जहा तक लोरिक का प्रश्न है, निस्संदेह लोरिक की एक स्त्री पहले से थी, किंतु एक से अधिक विवाह करना पुरुषों के लिए मध्ययुग में मान्य था। इसलिए सामाजिक दृष्टि से भी लोरिक और चांदा का पारस्परिक प्रेम निषिद्ध नहीं है।

इस प्रसंग में इतना और ध्यान देने योग्य है कि फ़ारसी की अनेक सूफी मसनवियों में प्रेम का आलंबन अन्य की विवाहिता स्त्री है। प्रसिद्ध सूफ़ी कवि निजामी की 'खुसरो-शीरीं' की नायिका शीरीं खुसरो की विवाहिता है, और फरहाद नाम का शिल्पी उस पर अनुरक्त होता है। निज़ामी की 'लैला-मजनूं' की नायिका लैला भी, जिससे मजनूं प्रेम करता है, इब्नसलाम से ब्याही हुई है। नायिका शीरीं का प्रेमी फ़रहाद उसकी मृत्यु का गलत समाचार सुनकर प्राण दे डालता है और मजनूं लैला की मृत्यु के अनंतर उसकी कब्र पर प्राण देता है।[८४]

---

[८४] **विशेष विवरण के लिए दे० डा० श्याम मनोहर पांडेय, 'मध्य युगीन प्रेमाख्यान', पृ० २६-२६।**

फलतः दाऊद ने जिस प्रेम का निरूपण किया है उसमें सूफी धर्म के तत्त्वों की विद्यमानता प्रकट है।

६. रचना की संपादन-सामग्री

आधारभूत संपादन-सामग्री का विवरण इस प्रकार है .

(१) का० : काशी के कलाभवन के प्रति : रचना की किसी चित्रित प्रति के छः स्फुट पत्र भारत कला भवन, काशी में हैं। इन समस्त पत्रों पर एक ओर कथा के चित्र हैं और दूसरी ओर रचना का पाठ है। ये पत्र लगातार नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रित पत्रों का महत्त्व समझकर उनको सुरक्षित रक्खा गया था, और शेष को नष्ट हो जाने दिया गया था। चित्रों की शैली, अनुमानतः सोलहवीं शती ईस्वी के मध्य की है। इसलिए प्रति संभवत रचना के सौ-डेढ़ सौ वर्षों से अधिक बाद की न होगी। इसकी लिपि अरबी है। ये पत्र बहुत यत्न से सुरक्षित हैं। प्रतिलिपि भी सावधानी से की गई है। प्रस्तुत कार्य के लिए पाठ इसके एक फ़ोटोग्राफ़ से लिए गए हैं, जो क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ ने मँगाए थे इसलिए लेखक कलाभवन तथा विद्यापीठ का आभारी है।

(२) बी० : बीकानेर की प्रति : यह प्रति बनी पार्क, जयपुर के श्री रावत सारस्वत के पास थी, और इसका एक विस्तृत परिचय कुछ उद्धरणों के साथ उन्होंने राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ (राजस्थान) के मुखपत्र 'वरदा' (वर्ष २, अंक ३, पृ० २६-३३) में 'मौलाना दाऊद और उनका चंदायन' शीर्षक से सात वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। अब यह प्रति क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ में आ गई है। प्रति सं० १६७३ की लिखी हुई है और उसका लेखन-स्थान शेखावाटी (राजस्थान) का फ़तेहपुर है, यह बीकानेर के किन्हीं सज्जन के लिए लिखी गई थी। प्रति के आदि-अंत निम्नलिखित हैं—

आदि : ॥६०॥ स्वस्ति श्री सारदायनमः ॥ नुसखः चंदायन गुफ्तार मौलाना दाऊद दलमइ ॥

अंतः ॥ श्री अथ संवत्सरेस्मिन् श्री नृप विक्रम संवतु १६७३ वर्षे हिम रितौ महा ॥ मांगल्येमार्गसिर मासे शुक्ल पक्षे सप्तम्यां ७ तिथौ गुरु वासरे ॥ श्री जुगिनपुरी से श्री साहि सलेम अदल राज्ये श्री मत्यु (मत्सु ?) फतयहपूर मध्ये श्री अलफ खान राज्यः ब्राह्मण गौडान्ये प्रधान महारसिया असक तत्पुत्र दुरगा लिषितं पठनार्थे कथा चांदायन पठनार्थे महीराम ओसवाल महाराजा

श्री राइस्यह: तस्यपुत्र श्री सूरं बास्तव्य बीकानेर मध्ये श्री सुभमस्तु मांगल ददातु ।।

प्रति का आकार ९½"×६" है। प्रारंभ के दो पृष्ठ शेष प्रति के लिपिकर्त्ता से भिन्न व्यक्ति के हस्तलेख में हैं। प्रति १६२ पत्रों तक लिखित है, उसके बाद उसमें तेरह पृष्ठ सादे छोड़े हुए हैं। तदनंतर ऊपर दी हुई पुष्पिका आती है। लिखित पृष्ठों के अन्तर्गत ४३९ कडवक आते हैं। उस अनुपात से सादे छोड़े हुए पृष्ठों में लिखने के लिए अधिक से अधिक २९-३० कडवक और हो सकते थे। इस प्रकार रचना की पूरी कडवक-संख्या बी० पाठ के अनुसार ४६८-४६९ के लगभग रही होगी। इस हस्तलिखित प्रति के उपयोग के लिए प्रस्तुत लेखक विद्यापीठ का विशेष रूप से आभारी है।

(३) भो० : भोपाल की प्रति : प्रस्तुत प्रति अत्यधिक खंडित है। इसके कुल ६८ पत्र ही उपलब्ध हो सके हैं, जिनमें से चार पर साधन के 'मैना सत' के कडवक हैं। शेष ६४ पत्र भी रचना के विभिन्न अंशों के हैं। यह पूरी प्रति चित्रित थी : पत्र के एक ओर रचना के कडवक तथा दूसरी ओर संबंधित चित्र थे। यह अत्यधिक खेद का विषय है कि प्रति के शेष पत्र लुप्त हो गए। प्रति अरबी लिपि में है। यह पहले भोपाल में एक सज्जन के पास थी, जिनसे इसे प्रिंस आव् वेल्स म्यूजियम, बंबई के निदेशक डॉ० मोती चन्द्र ने उक्त संग्रहालय के लिए प्राप्त किया। जिस समय प्रस्तुत लेखक 'लोर-कहा' का संपादन कर रहा था, उसी समय उसे भोपाल मे इस प्रति के होने का पता लगा था, और पुरातत्व विभाग के डॉ० तैमूरी की कृपा से इसके दो पृष्ठों के फ़ोटोग्राफ़ भी उसे प्राप्त हो गए थे। प्रस्तुत लेखक के प्रयास से लखनऊ संग्रहालय के लिए उसे प्राप्त करने का प्रयत्न चल रहा था कि तब तक वह बंबई पहुँच गई। प्रस्तुत लेखक के अनुरोध पर डॉ० मोती चन्द्र जी ने प्रति के पत्रों के फ़ोटोग्राफ़ क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ को देना स्वीकार किया, और वे मँगा लिए गए। इन्हीं के आधार पर रचना का एक पाठ विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने 'चंदायन' नाम से संपादित कर अन्य प्राप्त प्रतियों के आधार पर लेखक द्वारा संकलित 'लोर-कहा' के साथ प्रकाशित किया था। यह प्रति भी अनुमानतः ईस्वी १६वीं शती के मध्य की है। फ़ोटोग्राफ़ प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम से विद्यापीठ को प्राप्त हुए थे, और इस कार्य के लिए प्रस्तुत लेखक को विद्यापीठ से मिले, इसलिए प्रस्तुत लेखक उक्त म्यूजियम और विद्यापीठ का आभारी है।

(४) म० : मनेर शरीफ़ के ख़ानकाह् की प्रति : इस प्रति के प्रारंभ के १४३ पत्र तथा १७८ के बाद के पत्र नहीं हैं। बीच के भी कुछ पत्र नहीं हैं। कुछ पत्रों पर तो प्रतिलिपिकार के द्वारा दी हुई पत्र-संख्या है, और कुछ पर नहीं है। 'तर्क' भी समस्त पत्रों पर नहीं हैं। फिर भी प्रति सिली हुई है, इसलिए कुछ अस्त-व्यस्त हुए पत्रों को छोड़कर शेष अपने पूर्ववर्ती क्रमानुसार ही हैं। जिन पत्रों पर प्रतिलिपिकार की दी हुई पत्र-संख्याएं नहीं रह गई है, उन पर अन्य व्यक्तियों ने पत्र-संख्याएं लगा दी हैं, जो निर्भरता-योग्य नहीं मानी जा सकती हैं। इस बहुमूल्य प्रति को ढूंढ़ निकालने और प्रकाश में लाने का श्रेय पटना विश्वविद्यालय के इतिहास के अवकाश-प्राप्त प्रोफ़ेसर श्री एस० एच० अस्करी को है। यह प्रति भी अपनी लिखावट में आदि से प्राचीन लगती है और असंभव नहीं कि सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी की हो। इसकी लिपि फारसी है। प्रतिलिपि इसमें भी सावधानी से की गई है। इस प्रति के फोटोग्राफ़ प्रस्तुत लेखक को स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल से प्राप्त हुए थे, अतः इस प्रति के पाठ के लिए वह मनेर शरीफ़ ख़ानक़ाह् के अधिकारियों तथा उनका आभारी है।

(५) मसा० : मसाचसेट्स (संयुक्त राज्य अमेरिका) के श्री फ्रांसिस होफ़र के संग्रह की प्रति : भो० तथा मै० की भांति प्रस्तुत प्रति भी चित्रित है, पत्रों के एक ओर रचना के कडवक तथा दूसरे ओर तत्संबंधी चित्र दिए हुए हैं। किन्तु खेद का विषय है कि केवल दो पत्र इसके प्राप्त हैं, जिन पर रचना के दो ही कडवक मिल सके हैं। ये अरबी लिपि में हैं। मेरे एक प्रिय शिष्य और 'हिन्दी प्रेमाख्यान' के योग्य लेखक डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय उस समय (१९६४ ई० में) शिकागो में थे जिस समय इन पत्रों का पता लगा। उन्होंने बहुत यत्न करके अपने एक मित्र श्री गोपाल शरण से, जो उस समय हारवर्ड में थे, इन दोनों पत्रों का अक्स उतरवाया था। फलतः इन पत्रों के पाठ के लिए प्रस्तुत लेखक उनके स्वामी श्री होफ़र के साथ ही डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय और श्री गोपाल शरण का आभारी है।

(६) मै० : मैनचेस्टर के जॉन राइलैण्ड्स पुस्तकालय की प्रति : आदि से अंत तक चित्रित यह प्रति अरबी अक्षरों में लिखी हुई है, किन्तु यह प्रारंभ तथा अंत में त्रुटित है, और बीच-बीच में भी इसके कुछ पत्र निकले हुए तथा अस्त-व्यस्त हैं, जो कि संबंधित चित्रों और उनके सामने के पृष्ठों पर दिए हुए रचना के कडवकों में परस्पर वैषम्य से ज्ञात होता है। प्रति का अन्तिम प्राप्त कडवक वर्तमान पाठ का ३९७ है। यदि रचना की समाप्ति बी० में

छोड़े गए सादे पत्रों के अनुसार मानी जाए, तो यह समझना चाहिए कि रचना के अंत के लगभग १४ कडवक अब प्रति में नहीं रहे। प्रस्तुत कार्य के लिए उपलब्ध प्रतियों में बी० के बाद यही सबसे अधिक पूर्ण है। यह प्रति भी काफी प्राचीन है, और कदाचित् १६वीं शती ईस्वी के मध्य की ठहरेगी।

इस प्रति को खोज निकालने का श्रेय पटना संग्रहालय के निदेशक डा० परमेश्वरी लाल गुप्त को है। इसका उल्लेख उन्हें तासी के हिंदुई और हिन्दुस्तानी के इतिहास में मिला था, जो १९वीं शती ईस्वी में लिखा गया था। तब से यह कई हाथों में होती हुई वर्तमान संग्रह में पहुँची है। हिन्दी जगत् को इस उपलब्धि के लिए डॉ० गुप्त का कृतज्ञ होना चाहिए। प्रस्तुत लेखक को इस प्रति का पाठ उसके एक माइक्रो-फ़िल्म से मिला, जो राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है, अतः इस प्रति के पाठ के लिए प्रस्तुत लेखक उक्त जॉन राइलैण्डस पुस्तकालय तथा उसके साथ ही राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का आभारी है।

(७)-(८) शि० : शिमला संग्रहालय की प्रतिया : रचना की दो चित्रित प्रतियों के दस पत्र—नौ पत्र एक प्रति के हैं तथा शेष एक अन्य प्रति का है—शिमला के राजकीय संग्रहालय में है। इन पत्रों पर भी एक ओर कथा के चित्र हैं और दूसरी ओर रचना का पाठ है। ये पत्र भी लगातार नहीं है। इन पत्रों की भी कथा वही प्रतीत होती है जो कलाभवन के पत्रों की रही होगी। इन प्रतियों का लेखन-काल भी अनुमानतः सोलहवीं शताब्दी का मध्य है, इसलिए इन प्रतियों का भी महत्व कला भवन की प्रति के समान है। एक प्रति वाले नौ पत्र अरबी लिपि मे हैं और दूसरी का शेष एक पत्र फारसी लिपि में है। लेख दीर्घकाल तक अरक्षित रहने के कारण अनेक स्थलों पर अपाठ्य हो गया है। इन प्रतियों का पाठ भी इनके फ़ोटोग्राफ़ से लिया गया है जो क० मु० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के लिए कराए गए थे, अतः इन प्रतियों के पाठ के लिए लेखक शिमला संग्रहालय और विद्यापीठ का आभारी है।

रामपुर के रज़ा पुस्तकालय में जायसी के 'पद्मावत' की फ़ारसी अक्षरो मे लिखी हुई एक बहुमूल्य प्रति है। उसके मुखपृष्ठ पर निम्नलिखित पंक्तिया दी हुई हैं :—

(१) कोइल जइसि फिरिउं सब रूखा। पिउ पिउ करत जीभ मोरि सूखा।
(२) बनखंड बिरिख रहा नहिं कोई। कौनि डारि जेहिं लागि न रोई।
(३) पीत कहे बद्ध आ मिले (?) उत्तिम जिय की लागि।

(४) सो जग जो मिलि मैं रही गही न चकमक आगि ।।
(५) एक बाट गई हरदी दूसरि गई महोब ।
(६) ऊभ हाथ कइ चांदा विनवइ कवनि बाट [हम होब ?] ।।
(७) फाटहि तासु नारि को हिया । एक छाडि जेहि दूसर किया ।
(८) एक एक करत जिउ देऊं । जग दूसर को नांउं न लेऊं ।

उद्धृत पहली पंक्ति के ऊपर 'चंदायन' शीर्षक दिया हुआ है, और वह प्रस्तुत संस्करण के कडवक ५३ में देखी जा सकती है । दूसरी पंक्ति के लिए कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है, किन्तु वह मंझन की 'मधु-मालती' की ४०९.५ है (दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित तथा मित्र प्रकाशन लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित संस्करण) । (३)-(४) के ऊपर शीर्षक 'त्रिपम धूत (?)' दिया हुआ है । (५)-(६) के ऊपर कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है । उसमें चांदा-कथा का कोई प्रसंग आता है, यह उसका नाम आने से प्रकट है, किन्तु दाऊद की रचना के अब तक प्राप्त अंशों में ये पंक्तियां नहीं मिली हैं, इसलिए या तो ये उसके अंत के उस अंश की होंगी जो अब तक अप्राप्य है, और या तो ये किसी अन्य कवि की चांदा-संबंधी किसी कृति से आई होंगी । (७) के ऊपर 'सत मैनां' शीर्षक दिया हुआ है और वह उस में मिलती भी है (दे० प्रिंस आव् वेल्स म्यूज़ियम, बंबई के भो० के साथ प्राप्त 'सत मैनां' के पृष्ठ) । (८) भी 'सत मैनां' की ही पंक्ति है और रचना में उपर्युक्त (७) के साथ ही उसके बाद की पंक्ति के रूप में आती है । इसके ऊपर शीर्षक 'ऐज़न' दिया हुआ है, जो 'सत मैनां' के लिए ही है । फलतः 'पद्मावत' की प्रति पर ये पंक्तियां किसी ने अपनी स्मृति के आधार पर ही विभिन्न रचनाओं से टांक दी हैं, और 'चांदायन' के संपादन में इनकी उपयोगिता शून्यप्राय है ।

७. रचना की लिपि-परंपरा

दाऊद मुसलमान थे । अपने गुरु जैनुद्दीन की स्तुति में कहते हुए एक स्थान पर उन्होंने लिखा है :

उघरे नैन हिये उजियारे । पायो लिख नौ अक्षर कारे ।
पुनि मैं आखिर की सुधि पाई । तुरकी लिखि लिखि हिंदुकी (गो?) गाई ।[८५]

अर्थात् शेख जैनुद्दीन की कृपा से उन्होंने लिखना सीखा और तुर्की (अरबी-फ़ारसी) में लिख-लिख कर उन्होंने हिन्दुगी (तत्कालीन हिन्दी)

[८५] चांदायन, ९ ।

[गीतों-कविताओं] का गान किया। किन्तु यह उनके जीवन के प्रारंभ की बात थी। आगे चल कर उन्होंने अपनी रचनाओं को भी तुर्की (अरबी-फ़ारसी) में ही लिपिबद्ध किया, पूरी निश्चयात्मकता के साथ यह नहीं कहा जा सकता है।

प्रस्तुत रचना के पाठ का यदि इस दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होगा कि उसकी विभिन्न प्रतियों में जितनी अरबी-फ़ारसी लिपि से संबंधित भूलें मिलती हैं, नागरी से संबंधित भूलें उनसे किसी प्रकार कम नहीं है। और ध्यातव्य यह है कि जहाँ पर नागरी में लिखी हुई बी० प्रति मे नागरी से और उससे अधिक अरबी-फ़ारसी लिपियों से संबंधित भूलें मिलती है, रचना की उन समस्त प्रतियों में जो अरबी-फ़ारसी में लिखी हुई हैं, विशेष रूप से मै० में, अरबी-फ़ारसी लिपियों से संबंधित भूलों के साथ-साथ नागरी की भूलें भी प्रचुरता के साथ मिलती हैं। इससे यह तो प्रमाणित ही है कि अरबी-फ़ारसी में लिखी हुई प्रतियों के कोई न कोई पूर्वज नागरी में लिपिबद्ध थे, और इसी प्रकार उसकी नागरी में लिखी हुई प्रति बी० का कोई न कोई पूर्वज अरबी-फ़ारसी में लिपिबद्ध था। बी० सत्रहवीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध की प्रति है, अरबी-फ़ारसी लिपियों में प्राप्त अनेक प्रतियाँ इससे पहले की है (दे० ऊपर 'रचना की संपादन-सामग्री' शीर्षक)। इन सबके नागरी में लिपिबद्ध पूर्वजों का लेखन-काल १४वीं अथवा १५वीं शती ईस्वी हो तो आश्चर्य न होगा। रचना की आदि प्रति नागरी में थी, यद्यपि यह कहने के लिए पर्याप्त प्रमाण अभी उपलब्ध नहीं हैं किन्तु यह असंभव भी नहीं है, और रचना की अरबी-फ़ारसी लिपियों में लिपिबद्ध समस्त प्रतियों की प्राचीनता और उन सभी में नागरी लिपि से संबंधित भूलों का अतिरेक इस संभावना की ओर स्पष्ट निर्देश करते हैं। जो भूलें जिन लिपियों से संबंधित हैं, आगे प्रायः उनका उल्लेख यथा-स्थान किया गया है, और उनको वहां पर आसानी से देखा जा सकता है।

८. रचना के संपादन-सिद्धान्त

रचना की विभिन्न प्रतियों में संकीर्ण संबंध निम्नलिखित प्रकार से मिला है :

(१) म० बी० : परिशिष्ट में दिए हुए कडवक २७९ अ, २७९ आ, २८० अ, २८० आ, २९६ अ, ३२८ अ, ३३१ अ, ३३१ आ, ३३१ इ जो कि निश्चित रूप से प्रक्षिप्त हैं, इन दोनों ही प्रतियों में पाये जाते हैं।

(२) शि० बी० : परिशिष्ट में दिया हुआ कड़वक ३२८ ए, जो निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है, इन दोनों प्रतियों में पाया जाता है।

(३) भो० बी० : २६५.१ तथा २६५.७ में दोनों प्रतियों में 'मरइ मुधि कइ' के स्थान पर पाठ 'मीर मसऊदामसूद किताकी' है, और भो० में शीर्षक भी तदनुसार है। बी० में कोई शीर्षक नहीं है, इसलिए दोनों के शीर्षक-साम्य का कोई प्रश्न नहीं उठता है। म० तथा शि० यहां पर खंडित हैं, अन्यथा ऊपर दिए हुए बी० के साथ शि० और म० के संकीर्ण संबंधों को देखते हुए उसमें भी यह विकृति मिल सकती थी।

फलतः बी० म० शि० तथा भो० निश्चित रूप से परस्पर संकीर्ण संबंध से संबंधित हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि परस्पर उनका यह संबंध किस प्रकार का है। अलग-अलग उनके अपने-अपने प्रक्षेपों पर दृष्टि डाली जाए तो इसका निराकरण सुगमता से हो सकता है। ऐसे प्रक्षेप निम्नलिखित हैं :

बी० : २४ अ, ३१ अ, २१० अ, २७८ अ, २८१ अ-ई, २८२ अ-आ, २८६ अ-ई, ३२८ आ-लृ, ३१८ ऐ-छ।

म० : ३२८ अक-अठ।

शि० : ५३ अ-आ।

भो० : ३११ अ-आ।

मैं० : २८८ अ-आ, ३०७ अ।

इस तालिका से ज्ञात होगा कि बी०, म०, शि० तथा भो० के अपने-अपने प्रक्षेप भी हैं।

अतः संपूर्ण रूप से स्थिति यह ज्ञात होती है कि मैं० से स्वतन्त्र---और उससे कदाचित् कुछ अधिक प्रचलित—एक पाठ-शाखा थी, जिसमें से पहले भो० का कोई पूर्वज अलग हुआ; भो० में बी० म० शि० का कोई प्रक्षेप साम्य नहीं है, केवल उपर्युक्त पाठ-प्रमाद-साम्य है, यह इसी ओर निर्देश करता है। उसके अनंतर बी० म० शि० के किसी सामान्य पूर्वज में प्रक्षेप-वृद्धि होती रही---शि० में ऐसा एक ही प्रक्षेप मिला है, किन्तु शि० प्रतियों के केवल दस ही अंश प्राप्त भी हैं, यदि अधिक प्राप्त होते तो संभव था कि ये प्रक्षिप्त कड़वक भी उसमें मिलते जो इस समय केवल बी० तथा म० में मिलते हैं। आगे चल कर बी०, म० और शि० के पूर्वज परस्पर अलग-अलग हो गए और उनमें उनके अपने-अपने प्रक्षेप मिलने लगे। यह प्रक्रिया बी० में अधिक हुई, क्योंकि ऊपर दी हुई तालिका में २७८ के बाद भी जहां से ३२८ तक म० प्रति मिलती है, बी० में प्रक्षेप-वृद्धि अधिक हुई है।

का० तथा मसा० की स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी है क्योंकि उनके क्रमशः छः और दो ही कडवक प्राप्त हुए हैं, और इतने छोटे 'अंश में' कोई ऐसी विकृतियाँ नहीं मिलती हैं जो अन्य किसी प्रति में भी पाई जाती हो।

इन परिणामों को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।
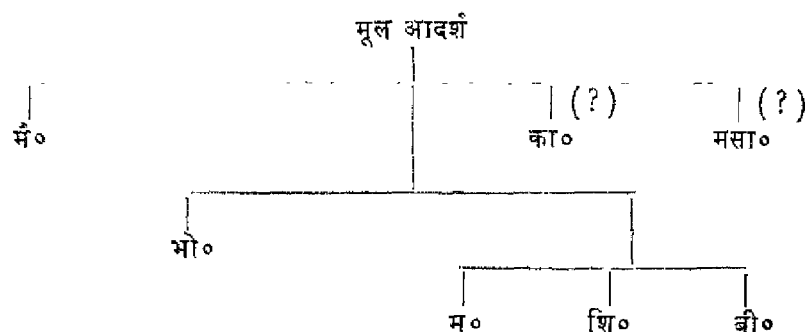
इस पाठ-संबंध के आधार पर रचना के पाठ-निर्धारण के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त स्वीकार किए जा सकते हैं :

(१) जो पाठ मैं० तथा अन्य किसी प्रति में समान रूप से मिलता है, उसे मूलादर्श का माना जा सकता है।

(२) जब कि मैं० में एक पाठ हो और भो० म० शि० बी० में उससे भिन्न पाठ हो, तो दोनों की बहिर्साक्ष्य-मूलक स्थिति समान मानी जाएगी और पाठ-निर्धारण का आधार होगा रचना का अन्तस्साक्ष्य।

(३) जिस पाठ का आधार उक्त दोनों शाखाओं में से एक ही होगी—और प्रतियों अथवा उनके पूर्वजों में पाठ त्रुटित होने के कारण ऐसे कडवकों की संख्या नगण्य नहीं है—वह निश्चय ही अंतिम रूप से निर्धारित न किया जा सकेगा।

(४) जो पाठ केवल भो० म० शि० बी० शाखा में मिलेंगे और उनमें से जो भो० से साम्य रखता होगा, वह उनके सामान्य पूर्वज का माना जाएगा, और यदि भो० में एक पाठ तथा म० शि० बी० में भिन्न पाठ मिलता होगा तो पाठ-निर्धारण का आधार रचना का अन्तस्साक्ष्य होगा।

(५) जो पाठ केवल म० शि० बी० में मिलेगा, उसमें भी दो या अधिक पाठों के मिलने पर पाठ-निर्धारण का आधार रचना का अन्तस्साक्ष्य होगा।

(६) पाठ-भेद की शेष स्थितियों में सामान्यतः वह पाठ मूलादर्श का माना जाएगा जिसकी अन्तस्साम्यों एवं वहिर्सादियों के अनुसार अधिक संभावना होगी।

कहना नहीं होगा कि दो-चार अपवादों के अतिरिक्त प्रस्तुत संस्करण के लिए पाठ-चयन इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार किया गया है।

पाठ-सुधार के लिए समस्त अन्तरंग और बहिरंग संभावनाओं (Intrinsic and Extrinsic probabilities) का साक्ष्य ग्रहण करते हुए दो बातों का बराबर ध्यान रक्खा गया है : एक तो यह कि रचयिता भाषा के एक ऐसे रूप में रचना प्रस्तुत कर रहा था जो बाद में परिवर्तित हुआ है, और दूसरे यह कि रचना की पाठ-परंपरा नागरी तथा फ़ारसी-अरबी दोनों प्रकार की लिपियों में चली है। इसीलिए प्रस्तुत संस्करण में रचना का एक ऐसा पाठ प्रस्तुत किया जा सका है जो पहले नहीं प्रस्तुत किया जा सका था, और ऊपर दी हुई विधियों का अनुसरण कर हम रचना के एक ऐसे निर्भरता और विश्वास-योग्य पाठ पर पहुँच सके हैं जो अन्यथा संभव नहीं था।

जहां तक बी० के पाठ दिए गए हैं, कोष्ठकों में ऐसे पाठों को सुझाने की आवश्यकता अन्य प्रतियों की तुलना में अधिक पड़ी है जो रचना के अन्तस्साक्ष्य और बहिसक्ष्यि के अनुसार प्राप्त पाठ के स्थान पर अधिक संभव हो सकते हैं। ऐसा इसलिए करना पड़ा है कि बी० प्रति का प्रतिलिपिकार रचना की भाषा तथा वस्तु से एक तो अन्य प्रतिलिपिकारों की तुलना में कदाचित् कम परिचित है, दूसरे वह अपनी बोली के रूपों से भी प्रायः प्रभावित है जो शेखावाटी (राजस्थान) की है, और तीसरे उसके लेखन की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ हैं जो उसके देश-काल की हैं और अन्यत्र उस रूप में नहीं मिलती है। शेष समस्त प्रतियां फ़ारसी-अरबी लिपियों में है, उनके संबंध में ऐसी कोई समस्याएं नहीं हैं। उनकी समस्या फारसी-अरबी लिपियों और लेखन-शैलियों की अपूर्णता की यह सामान्य समस्या है कि वे हमारी बोल-चाल की भाषाओं को लिपिबद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होती हैं, और बी० के मिल जाने से यह त्रुटि प्रायः दूर हो गई है।

९. रचना की भाषा

दाऊद के संबंध की अन्य कुछ समस्याओं के समान ही उनकी भाषा भी विवाद का विषय बनी हुई है। यहाँ पर उसके व्याकरण के रूपों को लेकर[८६]

[८६] रचना के व्याकरण-रूपों के विश्लेषण के लिए देखिए क० मुं० विद्यापीठ के मुखपत्र 'भारतीय साहित्य' में प्रकाशनीय 'दाऊद की भाषा' शीर्षक लेख। यह विश्लेषण रचना के 'द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खंड' के आधार पर किया गया है।

'यह देखने का प्रयत्न किया जा रहा है कि दो सौ वर्ष पूर्व के दामोदर के 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' और प्राय: दो सौ वर्ष बाद की जायसी की 'पद्मावत' मे उनकी क्या स्थिति है। आशा है कि इससे दाऊद की भाषा की स्थिति अधिक स्पष्टता के साथ समझी जा सकेगी।

उक्ति० के संदर्भ सामान्यत: उसकी उस भाषा-भूमिका (उ० भा०) से उसके अनुच्छेदों की सहायता से दिए गए है, जो डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की लिखी हुई है। इसी प्रकार जायसी की भाषा के सन्दर्भ सामान्यत डॉ० प्रभाकर शुल्क की 'जायसी की भाषा' (जा० भा०) से उसके पृष्ठों की सहायता से दिए गए हैं। जो रूप इन विवेचनों में न मिलकर पाठों में मिल गए हैं, उन्हें उक्ति० के पृष्ठों-पंक्तियों और 'पद्मावत' के (मेरे द्वारा संपादित सस्करण के) कडवकों और उनकी पंक्तियों की सहायता से दिया जा रहा है।

संज्ञा

रचना में एक०।बहु०,।पुं०।स्त्री० कर्त्ता का रूप निर्विभक्तिक है, केवल अकारान्त पु० एक० में -उ प्रत्यय भी है।

उक्ति० में भी स्थिति यही है (उ० भा० अनु० ५६)।

जायसी की भाषा में भी यही स्थिति पाई जाती है (जा० भा० पृ० ८६)। उसमें भी-उ प्रत्यय उपर्युक्त प्रकार से मिलता है—यथा : 'भंडारू' (पदमावत' ५ १)

कर्म का रूप रचना मे कर्त्ता के समान ही है, केवल अकारान्त पु० एक० में -उ प्रत्यय भी है।

उक्ति० में भी ऐसा ही है (उ० भा० अनु० ५६)।

जायसी की भाषा में भी यही स्थिति पाई जाती है (जा० भा० पृ० ८८)। उसमें भी-उ प्रत्यय उपर्युक्त प्रकार से मिलता है—यथा 'करतारू' 'संसारू' ('पदमावत' १.१)

करण का भी एक० पुं०।स्त्री० का सामान्य रूप रचना में निर्विभक्तिक है। बहु० में -न्ह युक्त विकारी रूप प्रयुक्त हुआ है। विभक्ति के रूप में एक० पु० में-अइं का और परसर्गों के रूप में 'सेउं' 'सेतीं' तथा 'सइं' का प्रयोग मिलता है।

उक्ति० मे करण का रूप निर्विभक्तिक नहीं है, उसमें पुं० में सामान्य रूप से-एं।ए तथा स्त्री० में ईं।ई विभिक्तयाँ (उ० भा० अनु० ५६), और परसर्गों के रूप में एक० में 'सउं'। (सेउं), तथा बहु० में -हु प्रयुक्त हुए है उ० भा० अनु० ६२ ६३)।

रचना में जो करण में भी संज्ञा का निर्विभक्तिक रूप प्रयुक्त हुआ है, वह उक्ति० के बाद का विकास हो सकता है। उक्ति० की-एं रचना में-अइं के रूप में आई है, और उक्ति० का परसर्ग -सेउं रचना में यथावत् मिलता है, 'सेतीं' और 'सइं' परसर्ग बाद में विकसित हुए हो सकते हैं। इसी प्रकार बहु० में उक्ति० के -हु के स्थान पर रचना में जो-न्ह् मिलता है, वह उक्ति० के बाद का विकास हो सकता है।

जायसी की भाषा में करण एक० प्रायः निर्विभक्तिक है, केवल कहीं-कहीं पर -हिं।हि अथवा -इं (-अइं)। -इ (अइ) अथवा-ऍ।ऐ।ए विभक्तियां मिलती हैं। ये उक्ति० की-एं।ए तथा रचना की -अइं के समान ही हैं। जायसी की भाषा में बहु० में -न्ह।न्हि मिलता है (जा० भा० पृ० ८९-९०)। रचना का 'सेउं' जायसी की भाषा में 'सों।सैं' होकर और उसका 'सेंती'। सेतीं' यथावत् मिलते हैं (जा० भा० पृ० ९५-९६)।

रचना में संप्रदान एक० का रूप या तो निर्विभक्तिक है, और या तो -हि विभक्तियुक्त है; उसमें परसर्गों के रूप में 'कहं' और 'लागि' प्रयुक्त हुए हैं।

उक्ति० में संप्रदान एक० का रूप निर्विभक्तिक अथवा -हि विभक्तियुक्त है, और परसर्ग के रूप में उसमें 'किहं' का प्रयोग मिलता है (उ० भा० अनु० ६२)।

जायसी की भाषा में भी संप्रदान या तो निर्विभक्तिक है, और या तो एक० में उसकी विभक्ति-हिं।हि है (जा० भा० पृ० ९२)। परसर्ग के रूप में उसमें भी 'कहं' मिलता है (वही, पृ० ९६)।

अपादान का रचना में एक ही रूप मिला है और वह 'हुत' परसर्ग युक्त है।

उक्ति० में अपादान में 'हुंत' परसर्ग मिलता है (उ० भा० अनु० ६२), जो कि रचना के 'हुत' का पूर्ववर्ती रूप हो सकता है।

जायसी की भाषा में अपादान में 'हुंत' है तथा उसके 'हुति।हुतै।हुतें' रूप भी पाए जाते हैं (जा० भा० पृ० ९६-९७)।

संबंध रचना में परसर्ग-युक्त है; उसमें एक० पुं० का परसर्ग 'कर'। 'क', एक० स्त्री० का 'कइ' है, और बहु० पु० का 'के' है।

उक्ति० में परसर्ग एक० पु० में 'कर' तथा एक० स्त्री० में 'करी' है, बहु० में भी 'कर' है (उ० भा० अनु० ५९)। 'क' तथा 'के' उसमें नहीं मिलते हैं।

जायसी की भाषा में एक० में परसर्ग 'कर' और 'क' और बहु० में 'के' प्रयुक्त हुए हैं (जा० भा० पृ० ९७)।

अधिकरण रचना में प्रायः निर्विभक्तिक है और जहां वह विभक्तियुक्त है, अकारांत एक० में विभक्ति-इ। अइं है। परसर्ग के रूप में उसमें कहीं-कहीं 'माझ' भी प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० में भी अधिकरण का रूप प्रायः निर्विभक्ति है, विभक्ति-युक्त रूप में विभक्तियां -इ तथा-एं प्रयुक्त हुई हैं (उ० भा० अनु० ५६), और परसर्ग के रूप में 'मांझ' प्रयुक्त है (पाठ : १६-२०)। रचना का-अइं उक्ति० के-'एं' का ही एक रूप है, जैसा वह ऊपर करण में देखा जा चुका है, और 'माझ' दोनों में समान रूप से मिलता है।

अधिकरण में जायसी की भाषा में भी प्रायः निर्विभक्तिक प्रयोग मिलते हैं, और विभक्ति के रूप में उसमें भी-अइं का प्रयोग मिलता है, यद्यपि उक्ति० के समान उसमें-एं का भी प्रयोग मिलता है (जा० भा० पृ० ९२-९३)। -इ विभक्ति कदाचित् उसमें नहीं मिलती है। परसर्ग 'मांझ' उसमें भी प्रयुक्त मिलता है (वही, पृ० ९८)।

रचना में संबोधन निर्विभक्तिक है, केवल पुं० आकारान्त शब्द उसमे एकारान्त होकर आते हैं, और कभी-कभी ह्रस्व-स्वरान्त शब्द दीर्घ-स्वरान्त हो गए हैं। क्रियाविशेषण के रूप में 'रे' का प्रयोग भी मिलता है।

उक्ति० में संबोधन एक० के निर्विभक्तिक प्रयोग नहीं मिलते हैं, बहु० मे अकारान्त शब्द उसमें एकारान्त होता बताया गया है, और संबोधन के क्रिया-विशेषण 'अहो' तथा 'अरे' हैं (उ० भा० अनु० ६२)।

उक्ति० की तुलना में रचना में अन्तर यह है कि उसमें एक० मे भी आकारान्त का परिवर्तन एकारान्त में हुआ है, तथा उक्ति० का 'अरे' उसमे 'रे' के रूप में आया है।

जायसी की भाषा में भी आकारान्त के अतिरिक्त सभी संज्ञाएं निर्विभक्तिक रूप में आई हैं; आकारान्त संज्ञाएं सामान्यतः एकारान्त होकर प्रयुक्त हुई हैं (जा० भा० पृ० ९४), तथा संबोधन वाचक क्रियाविशेषण के रूप में उसमे भी 'रे' का प्रयोग हुआ है (वही, पृ० १६५)।

सर्वनाम

रचना में कर्त्ता प्रथम पु० एक० सर्व० 'मइं', कर्म-संप्रदान प्रथम पु० एक० सर्व० 'मोहि', संबंध प्रथम पु० एक० सर्व० पुं० मोर, स्त्री० 'मोरि' है।

कर्त्ता प्रथम पु० एक० का दूसरा सर्व० 'हउं' है, जिसका बहु० का रूप 'हम' और संबंध प्रथम पु० बहु० का रूप 'हमार' है।

उक्ति० में प्रथम पु० एक० के समानांतर रूप क्रमशः 'हउं', मोंहि' और 'मोर' तथा बहु० के 'अम्हे' और 'अम्हार' हैं; 'मइ' उसमें करण एक० का रूप माना गया है (उ० भा० अनु० ६६)। रचना के एक० के रूप पूर्णतः उक्ति० के समान हैं, बहु० के उसके 'हम' तथा 'हमार' रूप उक्ति० के 'अम्हे' और 'अम्हार' से विकसित हुए हैं।

जायसी की भाषा में 'हउं' के स्थान पर रूप 'हौं' तथा 'मइं' के स्थान पर 'मैं' है; 'हम' और 'हमार' उसमें रचना के समान ही आते हैं (जा० भा० पृ० १००-१०२)।

रचना में द्वितीय पु० कर्त्ता० एक० के सर्व० 'तइं' तथा 'तूं' हैं; इनके संबंध का रूप उसमें 'तोर' है। एक अन्य सर्व० 'तुम्हं' है जो कर्त्ता में एक०।बहु० तथा संप्रदान में एक० में प्रयुक्त मिलता है। किन्तु 'तुम्हं' का यह प्रयोग आदरार्थक भी हो सकता है।

उक्ति० में 'तूं' रचना के समान ही मिलता है, 'तइं' करण में प्रयुक्त माना गया है, संबंध का रूप उसमें भी 'तोर' है। 'तुम्हं' उसमें बहु० में ही कर्त्ता 'तुम्हे' तथा कर्म 'तुम्ह' के रूपों में मिलता है। सम्भवतः उक्ति० का बहु० 'तुम्ह' ही सानुनासिकता से युक्त होकर रचना में बहु० तथा आदरार्थक एक० के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जायसी की भाषा में 'तूं' तथा 'तोर' रचना के समान ही हैं, 'तइं' के स्थान पर 'तैं' है और 'तुम्हं' 'तुम्ह' के रूप में बहु० अथवा आदरार्थक एक० में प्रयुक्त मिलता है (जा० भा० पृ० १०३-१०५)।

रचना मे तृतीय पु० का कर्त्ता एक० का० सर्व० 'सो' तथा कर्म-संप्रदान एक० का सर्व० तेहि' और संबंध एक० का सर्व० 'तेहिं' है, करण० एक० में विकारी रूप 'तेहि' के साथ सेतें।सेतीं परसर्ग लगा हुआ है। बहु० में कर्त्ता का रूप 'ते' है।

उक्ति० में 'सो' तथा 'ते' रचना के समान ही मिलते हैं, कर्म एक० का रूप 'ताहि' है और संबंध एक० का 'ताकर' है (उ० भा० अनु० ६६)। ऐसा ज्ञात होता है कि रचना के समय तक संबंध का 'तेहिं' ही अपनी सानुनासिकता छोड़कर कर्म-संप्रदान के लिए भी प्रयुक्त होने लगा था।

जायसी की भाषा में 'सो' रचना के समान ही है, कर्म-संप्रदान एक० में 'तेहि'। 'तेहि' तथा 'ताहि' दोनों हैं, तथा विकारी रूप में 'तेहि' उसमें भी मिलता है (जा० भा० पृ० १०९ १०६)

रचना में संबंधवाचक सर्व० कर्त्ता एक० 'जो', है; कर्म-करण-संबंध एक० 'जेहि' है, जो उसका विकारी रूप लगता है। किंतु कहीं-कहीं पर उसमें कर्म एक० के लिए 'जेइं' भी प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० में संबंधवाचक कर्त्ता। कर्म एक० 'जो' है; करण एक० उसमे 'जेइ'।'जेइं' है (उ०भा० अनु० ६६)। उक्ति० का यह 'जेइं' ही रचना मे 'जेहिं' होकर आया है, किन्तु संबंध का रूप उक्ति० में 'जा' है।

ऐसा लगता है कि 'जो' का विकारी रूप 'जेहि' विकल्प से संबंध के लिए भी प्रयुक्त होने लग गया था।

जायसी की भाषा में भी संबंधवाचक कर्त्ता० एक० 'जो' है और उसके विकारी रूप 'जा' तथा 'जेइ'।'जेहिं'।'जेहि' हैं (जा० भा० पृ० ११४-११५)।

रचना में अनिश्चयवाचक सर्व० कर्त्ता एक० 'कोइ' तथा 'कोउ' हैं; इनका विकारी रूप 'केहुं' है और संबंध एक० 'काहुकेर' है। अप्राणिबोधक अनिश्चयवाचक सर्व० के रूप में 'किच्छु। किछु।' मिलता है।

उक्ति० में कर्त्ता एक० 'कोउ' है, जिसका 'केहुं' रूप करण में प्रयुक्त माना गया है, संबंध एक० 'काहु' मात्र है, किन्तु असंभव नहीं कि वैकल्पिक रूप मे उसके साथ परसर्ग 'कर' का भी प्रयोग होता रहा हो। अप्राणिबोधक अनिश्चय-वाचक के रूप में उसमें भी 'किछु' मिलता है (पाठ : १५.५)।

जायसी की भाषा में 'कोइ' तथा 'कोउ' रचना के समान ही मिलते है, विकारी रूप 'केहुं' के स्थान पर 'केहु' है, और संबंध के लिए उसमें 'काहू। काहु' तथा 'काहूं (काहुं)।कर' मिलते हैं। 'काहु' तथा 'केहु' के साथ सानुनासिकता का आगम बाद का विकास हो सकता है। अप्राणिबोधक अनिश्चय-वाचक 'किच्छु।किछु' जायसी की भाषा में 'किछु' के रूप में मिलता है (जा० भा० पृ० १११-११३)।

रचना में प्रश्नवाचक सर्व० का साधारण रूप कदाचित् नहीं है, उसका विकारी रूप 'केइं' मात्र है, जो कर्त्ता और संबंध में प्रयुक्त हुआ है। कर्म मे उसका एक अन्य विकारी रूप 'किसु' भी मिलता है।

उक्ति० में प्रश्नवाचक कर्त्ता एक० 'को' है, जो कर्म एक० के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है; उसका विकारी रूप 'केइं'। 'केइ' है जो करण में प्रयुक्त माना गया है; संबंध का रूप उसमें 'काकर' है (उ० भा० अनु० ६६)।

जायसी की भाषा में 'को' तथा 'केइं' रचना के समान ही मिलते है, किसु उसमें नहीं मिलता है

रचना में निजवाचक सर्व० 'आपु' है, जो बलात्मक क्रियाविशेषण 'हि' के साथ एक मात्र कर्म में प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० में निजवाचक सर्व० कर्म का रूप 'अपाण' है, जिस में प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली की छाप विद्यमान है।

जायसी की भाषा में निजवाचक सर्व० 'आपु' है, जो कर्म में बलात्मक क्रिया विशे० 'हि' के साथ भी मिलता है (जा० भा० पृ० ११६)।

विशेषण

रचना में पुं० विशे० प्रायः अकारान्त हैं, और स्त्री० विशे० प्राय इकारान्त/ईकारान्त, पुं० अकारान्त विशे० कभी-कभी छंदानुरोध से आकारान्त भी हो गए हैं।

उक्ति० की भाषा-भूमिका में इस विषय में कुछ नहीं कहा गया है।

जायसी की भाषा में स्थिति रचना के समान ही है (जा० भा० पृ० ११८-१२०)।

रचना में परिमाण के विशे० 'बहुल', 'बहु', 'बड', 'सभ' तथा 'अउर' हैं।

उक्ति० में इनमें से 'बहु' (पाठ : २६) और 'सब' के 'रूप' में 'सब' (पाठ : ५-२५, ६-३०, ४७-१३) ही हैं।

जायसी की भाषा में 'बहु' है (जा० भा० पृ० १२५, १८७), 'बहुल' है (जा० भा० पृ० १२५), 'बड़' है (पद्मावत ४४७.३, ४६२.१, ५०२.४) 'सब' है (जा० भा० पृ० १२५), और 'अउर' है (सर्व० के रूप में पद्मावत ७.७, ५.६, विशे० के रूप में वही, १२.६)। 'सभ' और 'सब' में संभवतः परस्पर विकल्प था, जिसमें एक में 'सभ' और दूसरे में 'सब' मिलता है।

रचना में संख्यावाचक विशे० 'एक' तथा 'सात' हैं।

उक्ति० में 'एक' यथावत् है, (पाठ : १५.२०, २१.२६, १५.२७), सात नहीं है।

जायसी की भाषा में 'एक' यथावत् आता है (जा० भा० पृ० १२२) और 'सात' भी रचना के समान ही है (जा० भा० १२२)।

रचना में समुदाय वाचक विशे० एक ही है : 'दुहूं' (दुहुकं); इसी प्रकार क्रमवाचक विशे० भी एक ही है : 'दूसर'।

उक्ति० में दोनों में से कोई नहीं है।

जायसी की भाषा में ये रचना के समान ही आए हैं (जा०भा० पृ० १२४)।

रचना में निकट संकेतवाचक विशेषण एक० पुं०।स्त्री० 'एह' है, जिसका विकारी रूप एहि एहि है

उक्ति० मे इसका रूप 'ए' है, जो अपने सार्वनाधिक रूप में रचना में अनेक बार आया है (उ०भा० अनु० ६६)। असंभव नहीं कि 'ए' और 'एह' का परस्पर विकल्प रहा हो, अथवा 'ए' ही बाद में 'एह' के रूप में विकसित हुआ हो।

जायसी की भाषा में भी 'एह' रूप ही मिलता है (जा० भा० पृ० ११८) और उसका विकारी रूप 'एहि'।'एही' है (वही, पृ० ११८)।

रचना में दूर संकेतवाचक विशे० एक० 'सो' है, जिसका विकारी रूप 'तेइं'।'तेहिं' है।

उक्ति० में 'सो' है (पाठ : १०.८) तथा 'तेइं' है (पाठ : ५१.२०)। संभव है कि 'तेंहि' 'तेइं' ही का बाद का रूप हो।

जायसी की भाषा में 'सो' है (जा० भा० पृ० ११८), और उसका विकारी रूप 'तेहि' है (पद्मावत ६२.६, ६३.६)। सानुनासिकता रचना तथा उक्ति० दोनों के विकारी रूपों में है, इसलिए यह असंभव नहीं है, कि 'तेहि' 'तेंहि' का ही बाद का रूप हो।

रचना मे संबंध वाचक विशे० 'जो' है।

उक्ति० में भी यह मिलता है (पाठ : २०.८, २१.१८)।

जायसी की भाषा में तो यह मिलता ही है (जा०भा० पृ० ११८)

रचना में प्रश्नवाचक विशे० पुं० 'कवन'।स्त्री० 'कवनि' है, जिसके विकारी रूप 'कवनें' तथा 'केइं' हैं।

उक्ति० में 'कवन' के स्थान पर 'कवण' है (पाठ : १५.२, १६.२०, २१.१४), जिस पर प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का प्रभाव बना हुआ है, और उसका विकारी रूप 'केइं'।'केइ' है (पाठ २१.६, २७.४)।

जायसी की भाषा में पुं० 'कवन' है (पद्मावत ८.५), स्त्री० 'कवनि' है (जा० भा० पृ० ११८), तथा विकारी रूप 'केहि' है (पद्मावत ३५१.७)। ऐसा लगता है कि 'केहि' उस 'केइं'। 'केइ' का ही बाद का रूप है। जो रचना तथा उक्ति० में मिलता है।

रचना में अनिश्चयवाचक विशेषण 'कोउ' है।

उक्ति० में भी यह मिलता है (पाठ : २१.१८)।

जायसी की भाषा में यह 'कोइ' के रूप में मिलता है (जा० भा० पृ० ११८)।

रचना में निजवाचक विशेषण स्त्री० रूप में ही आया है, वह है 'अपनी'।

उक्ति० में यह 'अपणीं' के रूप में मिलता है (पाठ : ५२.१३)। इसमें प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का अवशेष बना हुआ दिखाई पड़ता है।

जायसी की भाषा में यह 'अपनी' के रूप में है (पद्मावत ३३०.१)। कदाचित् 'अपनी' 'अपणी' का विकसित रूप है।

क्रिया

रचना में सामान्य वर्त० प्रथम पु० एक० के लिए धातु में -अउं लगा है। संभावनार्थ वर्त० में भी ऐसा ही हुआ है। द्वितीय पु० एक० का साधारण रूप नहीं मिलता है, संभावनार्थ में धातु में-असि लगा हुआ है। तृतीय पु० एक० के लिए धातु में-अइ लगा हुआ है, संभावनार्थ वर्त० में भी ऐसा ही है। यह रूप धातु में-अ लगाकर भी बना है। तृतीय पु० बहु० धातु में-अहिं लगाकर बना है। एक स्थान पर वह भी-अ लगाकर बना है।

उक्ति० में भी प्रथम पु० एक० धातु में-अउं, द्वितीय पु० एक०-असि और तृतीय पु० एक०-अ [कभी ही कभी-अइ] लगा कर बने हैं (उ० भा० अनु ७१)। उसमें तृतीय पु० बहु०-अति लगाकर बना है (पाठ : १६.५)।

जायसी की भाषा में रचना के ही रूप हैं (जा० भा० १३०-१३१)।

रचना में द्वितीय पु० एक० आज्ञार्थ के रूप धातु में -उ अथवा -अउ।-अहु लगाकर बने हैं, द्वितीय पु० एक० का आदरार्थक आज्ञा का रूप धातु में -इय लगाकर बना है, और तृतीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -अइ लगाकर बना है।

उक्ति० में द्वितीय पु० एक० का आज्ञार्थक रूप -उ लगा कर बना है, और तृतीय पु० एक० का -अउ लगाकर (उ० भा० अनु० ७४)। शेष के संबंध की स्थिति ज्ञात नहीं है।

जायसी की भाषा में द्वितीय पु० एक० आज्ञार्थक रूप -उ अथवा -औ।-अहु लगाकर (जा० भा० पृ० १३७), आदरार्थक आज्ञा का रूप -इए लगाकर (वही, पृ० १३७), द्वितीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -असि। अहिं लगा कर (वही, पृ० १३७) तथा तृतीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -अइ लगा कर (पद्मावत १३.७, २२७.५) बने हैं।

रचना में वर्त्त० कृदन्त का रूप धातु में -अत लगाकर बना है।

उक्ति० में यह -अत लगाकर बना है किन्तु कहीं-कहीं पर उसमें -अंत लगा है (उ० भा० अनु० ८१)।

जायसी की भाषा में यह -अत लगाकर बना है (जा० भा० पृ० १३८)।

सामान्यभूत प्रथम पु० एक० पुं० का रूप रचना में सामान्यतः धातु में

-एउं लगाकर बना है, किन्तु कुछ सक० क्रियाओं में यह -ईन्हेउं लगाकर भी बना है, द्वितीय पु० स्त्री० एक०-इहु लगाकर बना है, तृतीय पु० एक० पु० -आ।-अ,-एउ, -एसि, -आन, ईन्ह।इन, ईत, और -उत लगाकर बने हैं, तथा स्त्री० -अई।अइ, -इसि, -आनी लगाकर बने हैं। बहु० पुं० -ए लगाकर बना है। भूतकृदन्त एक० पुं० -आ। एक० स्त्री० -ई लगाकर तथा उसका विकारी रूप -अएं लगाकर बना है। संभावनार्थभूत प्रथम पु० एक० -अतेउं लगा कर बना है।

उक्ति० में अकर्मक क्रियाओं के सामान्यभूत के समस्त पुरुषों के एक० रूप -आ लगाकर बने हैं, जैसाकि रचना में केवल तृतीय पु० एक० के लिए हुआ है, फिर भी एक स्थान पर उक्ति० में भी तृतीय पु० एक० -एसि लगा कर बना है (उ० भा० अनु० ७५)। सकर्मक क्रियाओं के कर्म प्रथम पु० पु० एक० के रूप -आ, द्वितीय पु० पु० एक० के -इअ तथा तृतीय पु० पु० एक० के -एसि लगाकर बने हैं; तृतीय पु० बहु० पुं० -ए लगाकर बना है (वही, अनु० ७५)। भूत कृदन्त पुं० रूप -अ और कभी-कभी -आ लगाकर बने हैं, तथा स्त्री० रूप -ई लगाकर बने हैं (उ० भा० अनु० ८२)। धातु के साथ -ईन, जो रचना में -ईन्ह के रूप में मिलता है, लगाकर बना हुआ रूप भी उक्ति० में भूत कृदन्त का माना गया है (उ० भा० अनु० ८२)। संभावनार्थ भूत का तृतीय पु० का रूप धातु में -अत लगाकर बना है (उ० भा० अनु० ७६)। उसका विकारी रूप उक्ति० में नहीं है। संभावनार्थ भूत प्रथम पु० का रूप भी उक्ति० में नहीं मिलता है।

जायसी की भाषा में रचना के सामान्यभूत के सभी रूप यथावत् मिलते हैं (जा० भा० पृ० १४०-१४६), तथा संभावनार्थ का प्रथम पु० एक० का —अतेउं रूप भी उसी प्रकार उसमें मिलता है (जा० भा० पृ० १४०)। भूत कृदन्त का विकारी रूप इसमें भी -अएं लगाकर बना है (जा० भा० १४२-१४३)।

उक्ति० के साथ दाऊद और जायसी की भाषाओं में मिलने वाले सामान्य-भूत के रूपों में जो अंतर है, वह संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है :

	उक्ति०	दाऊद तथा जायसी की भाषा
सा० भूत :	अक० प्रथम पु० एक० पुं० : -आ	-एउं
	सक० ,, ,, : -आ	-ईन्हेउं
	अक० द्वितीय पु० एक० स्त्री० -आ	-इहु

ऐसा ज्ञात होता है कि या तो ये अन्तर क्षेत्रीय हैं और या तो उक्ति० के लेखक की भूल से हैं। एक० तथा बहु० और प्रथम पु० और द्वितीय पु०

के सामान्य भूत के रूप परस्पर समान रहे होंगे, इसकी संभावना बहुत कम है, क्योंकि प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में इनके रूपो मे भेद दिखाई पड़ता है।

रचना में प्रथम पु० एक० के सामान्य भविष्यत् के रूप में -इहउं अथवा -अब लगाकर बने हैं।

उक्ति० में केवल -अब रूप मिलता है (उ० भा० अनु० ७७)।

जायसी की भाषा में समानान्तर रूप -इहौं तथा -अब लगाकर बने है (जा० भा० पृ० १३४)।

रचना में पूर्वकालिक कृदन्त रूप धातु में -इ लगाकर बना है।

उक्ति० में भी वह इसी प्रकार बना है (उ० भा० अनु० ८०)।

जायसी की भाषा में भी वह इसी प्रकार है (जा० भा० पृ० १५३)।

रचना में क्रियार्थक संज्ञा धातु में सामान्यतः -अइ लगाकर बनी है, किन्तु कहीं-कहीं पर वह -अ मात्र भी लगाकर बनी है।

उक्ति० में यह -अण लगाकर बनी है (उ० भा० अनु० ८३), जिसमे प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का अवशेष स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

जायसी की भाषा में भी यह रचना की भांति -अइ लगा कर बनी है। (जा० भा० पृ० १५१-१५२)

रचना में भूत कृदन्त का विकारी रूप धातु में -अएँ लगा कर बना है।

उक्ति० में यह नहीं है।

जायसी की भाषा में यह रचना की भाँति ही है (जा० भा० पृ० १४२-४३)

अव्यय और क्रियाविशेषण

रचना में संयोजक अव्यय 'अउ', 'अरु', 'जनु', 'पइ', 'बरु' और 'कइ' मिलते हैं।

उक्ति० में 'जउ' के स्थान पर 'जइ' है (उ० भा० अनु० ८९), जो 'जउ' का पूर्ववर्ती रूप ज्ञात होता है। शेष में से कोई नहीं है।

जायसी की भाषा में 'औ' [कभी-कभी 'अउ'] है (जा० भा० पृ० १६४), 'अरु' के स्थान पर 'औरु' है (वही, पृ० १६४), 'जनु' है (वही, पृ० १६४), 'बरु' है (पद्मावत १४२.५, १४२.७, १६८.४ आदि)। 'जउ' 'जौ' के रूप मे है (पद्मावत ५८.१, ७०.४, ७८.५ आदि)। 'पइ' 'पै' के रूप में है (जा० भा० पृ० १६४), तथा 'कइ' 'कै' अथवा 'की' के रूप में है (वही, पृ० १६४)।

निषेधवाचक क्रिया विशे० रचना में 'न', 'नहि' तथा 'जनि' हैं।

उक्ति० में 'न' है (उ० भा० अनु० ८९) 'नहि' उसका दृढतासूचक क्रि०

वि० युक्त रूप मात्र है। रचना का 'जनि' उसमे 'जणि' के रूप में है (उ० भा० अनु० ८६), जिसमें प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली की छाप विद्यमान है।

जायसी की भाषा में 'न', 'नहि' तथा 'जनि' हैं (जा० भा० पृ० १६२)।

कारण वाचक क्रिया विशे० रचना मे 'काहे' हैं।

उक्ति० में 'काहे' 'काहें' के रूप में मिलता है (उ० भा० अनु० ६८)।

जायसी की भाषा में भी 'काहे' है (जा० भा० पृ० १६२)।

प्रकारवाचक क्रिया विशे० रचना में 'कस', 'जस', 'कइसे' तथा 'अइसें' है।

उक्ति० में इनमें से 'कइसे' 'कइसें' के रूप में मिलता है (उ० भा० अनु० अनु० ६८); शेष नहीं मिलते हैं।

जायसी की भाषा में 'कस' है (जा० भा० पृ० १६१), 'कइसे' 'कैसे' के रूप मे है (जा० भा० पृ० १६१) और 'अइसें', 'अइसे' के रूप में है (जा० भा० पृ० १६१)।

कालवाचक क्रिया वि० रचना में 'जउ', 'अब', 'फुनि' तथा 'बहुरि' हैं।

उक्ति० में 'जउ' के स्थान पर 'जब' है (उ० भा० अनु० ६८), जो 'जउ' का विकल्प ज्ञात होता है, और 'फुनि' के स्थान पर 'पुनि' है (उ० भा० अनु० ८६)। शेष नहीं है।

जायसी की भाषा में 'जउ' 'जौ' के रूप में है (पद्मावत ८२.८, १७९ १, २२१.७ आदि), 'अब' यथावत् है (जा० भा० पृ० १५६), 'फुनि' भी है (जा० भा० १६०), और 'बहुरि' भी है (जा० भा० पृ० १६०)।

स्थानवाचक क्रिया वि० रचना में 'नियर', 'विच', 'कित', 'तहं' और 'वाहेर' हैं।

उक्ति० में इनमें से 'तहवा' 'तहां' के रूप में है (उ० भा० अनु० ६८), शेष नहीं है।

जायसी की भाषा में 'नियर', 'विच', 'तहं' और 'बाहर' (जा० भा० पृ० १५८-१५६) तथा 'कित' (पद्मावत ३३९.६) सभी हैं।

समुदायबोधक क्रिया विशे० रचना में 'उ' तथा 'हुं' हैं।

उक्ति० में ये नहीं हैं।

जायसी की भाषा में ये हैं (जा० भा० पृ० १६५)।

दृढ़ता वाचक क्रिया विशे० रचना में 'इ' तथा 'पइ' है।

उक्ति० में 'इ' यथावत् है (उ० भा० अनु० ८६), किन्तु 'पइ' अपने तत्सम/अर्द्धतत्सम रूप 'पर' के रूप में है (उ० भा० ८९)। असंभव नही है कि पइ' तथा पर का परस्पर विकल्प रहा हो

जायसी की भाषा में -'अइ' '-ऐ' हो गया है (पद्मावत १०२.२-६) और 'पइ' 'पै' के रूप में मिलता है (वही, ८१.६, १४०.१, २२६.१, आदि)।

केवलार्थ बोधक क्रिया विशे० रचना में 'हि' है।

उक्ति० में भी यह है (उ० भा० अनु० ८६)।

जायसी की भाषा में भी यह है (जा० भा० पृ० १६५)।

परिमाणवाचक क्रिया वि० रचना में 'अत', 'कैत' और 'अति' हैं।

उक्ति० में इनमें से कोई नहीं है।

जायसी की भाषा में 'अत' है (पद्मावत ५१.४, ५१.८), 'कैत' है (वही, ५७६.५) और 'अति' भी है (वही ३४५.१)।

संबोधनबोधक क्रिया विशे० रचना में 'रे' है।

यह उक्ति० में है (उ० भा० अनु० ८६)।

जायसी की भाषा में भी यह है (जा० भा० अनु० १६५)।

इस प्रकार ऊपर दिए हुए कुछ सौ रूपों में से चार-छः रूपों में ही रचना की भाषा उक्ति० की भाषा से भिन्न दिखाई पड़ती है, अन्यथा वह उसके समान अथवा उससे विकसित प्रमाणित होती है। जायसी की भाषा से वह मिलती-जुलती होते हुए भी किंचित् पूर्व की स्थिति का आभास देती है।

चांदायन

१. स्तुति खण्ड

(१)

पहलै गाउ(उं) सिरजन हारू।
जिनि सिरज्या यह दौ(दे)स वि(दि)यारू।
सिरजसि धरती औरु अगासू।
सिरजसि मेर म(मं)दर कबिलासू।
सिरजसि चांद सुरुज उजियारा।
सिरजा(सिरजसि?)सरग नषत की मारा।
सिरजसि छाह् सीव औ धूपा।
सिरजयि(सि) किर तन और सरूपा।
सिरजसि मेघु पवन अ(अं)धकारा।
सिरजसि बीज करै चमकारा।
जाकर सभै पिरथमी सिरजसि(?) कह्यो(ह्यों) येक सो गाई।
हीय गहवर मन हुल्हसै दूसर चित न समाई॥

सन्दर्भ—बी० १-३।

शीर्षक—बी० सिफति धणी की।

अर्थ—(१) पहले मैं सृष्टिकर्ता का [गुण] गान करता हूँ, जिसने इस देश-प्रदेश की सृष्टि की है, (२) जिसने धरती और आकाश की सृष्टि की है, जिसने मेरु, मन्दर और कैलास की सृष्टि की है, (३) जिसने उज्ज्वल (प्रकाशपूर्ण) चन्द्र और सूर्य की सृष्टि की है, जिसने स्वर्ग (आकाश) और नक्षत्र-माला की सृष्टि की है, (४) जिसने छाया, शीत और धूप की रचना की है, जिसने किल शरीर और रूपों की सृष्टि की है, (५) जिसने मेघ, पवन और अन्धकार की सृष्टि की है, और जिसने उस विद्युत् की सृष्टि की है जो चमत्कार करती है। (६) जिसकी सृष्टि की हुई (?) समस्त पृथ्वी है उस एक का कथन मैंने गा कर किया है ७ [उसके स्मरण से]

हृदय हर्षित होता और मन उल्लसित होता है, और अन्य कोई चित्त में नहीं समाता है।

(२)

सिरजसि तीन (तेइँ ?) मेदनि नव षडा।
सिरजसि नदी अठारह गंडा।
सिरजसि नीर षीर ओ(औ) षारू।
सिरजसि सम(मु)द न जानौं पारू।
सिरजसि गिर(रि) परष(ब)त तरवरा।
सिरजसि बनष(षं)ड औ मरवरा।
सिरजसि रतन पदारथ मोंती।
सिरजसि मान(नि)क दीय(?) जोती।
सिरजसि माकार(मकर) गोह घार(रि)यारा।
सिरजसि बहुले मंछ अपारा।
सिरजसि सभ संसार सपूरन जल[?] महियल सोइ।
ज(जि)ह कर ठाव न जानीये तिह बिन ठाव न होइ॥

सन्दर्भ—बी० ४-६।

शीर्षक—बी० : सिफति धणी की।

अर्थ—(१) उसने (?) नौ खण्ड पृथ्वी की सृष्टि की, और उसने अठारह गण्डे (१८×२०=३६०) नदियाँ रचीं। (२) उसने नीर, क्षीर तथा क्षार [समुद्रों] की रचना की, और [ऐसे] समुद्रों की रचना की जिनका पार हम नहीं जानते हैं। (३) उसने गिरियों, पर्वतों और तरुवरों की रचना की, उसने वनखण्ड और सरोवरों की रचना की। (४) उसने रत्नों, पदार्थों (बहुमूल्य पत्थरों) और मोतियों की रचना की, और उसने माणिक्यों की रचना की, [जिन्हें] उसने ज्योति दी। (५) उसने मकरों, गोहों, और घड़ियालों की रचना की, और उसने अपार [अपरिमित] मत्स्यों की रचना की। (६) उसने समस्त संसार और उसी ने सम्पूर्ण जल-राशि और महीतल की रचना की। (७) वह ऐसा है कि जिसका स्थान हम नहीं जान सकते हैं यद्यपि उसके बिना कोई स्थान नहीं होता है

(३)

सिरजसि बेलि फूल ओ(औ) बासू(सू) ।
सिरजसि भ(भं)वर न छाडहि पासू ।
सिरजसि सीतर चंदनु सुहावा ।
सिरजसि नाग तिही यु(जु) बिढवि (विढावा) ।
सिरजसि कोइल(लि) मधुरी बैनी ।
सिरजसि दादुर चवै यु (जु) रैनी ।
सिरजसि क(कं)वर पदम जर माहां ।
सिरज[सि]पानौ यु(जु)अछैहि बाहा(छाहां) ।
सिरजसि अगनि जरत यों (जो) दहा ।
सिरजसि कनिक झार यों (जो) सहा ।
सिरजसि षानि अठारा(र)ह सिरजसि अगनित मूरि ।
सिरजसि कत अगुरायनि (आकरायनि?) सबै रहा भरपूरि ॥

सन्दर्भ—बी० ७-६ ।

शीर्षक—बी० : याह भी सिफति धणी की ।

अर्थ—(१) उसने वल्लियों, फूलों और (उनकी) सुवासों की रचना और उसने उन भ्रमरों की रचना की जो (उनका) पार्श्व नहीं छोडते (२) उसने शीतल और सुख देने वाले चन्दन की रचना की, और उसने नागों की रचना की जो उसका [सुख] भोग करते हैं। (३) उसने कोकिला की रचना की जो मधुर वचनों वाली है, और उसने उस दादुर रचना की जो रात्रि मे (?) बोलता है। (४) उसने कमल और पद्म रचना की जो जल में होते हैं, और उसने उनके पर्णों [पत्तों] की भी र जो छाये रहते हैं। (५) उसने उस अग्नि की रचना की जो जलते ही करती है, और उसने उस स्वर्ण की [भी] रचना की जो [उस अग्नि व ज्वाला को सहन करता है। (६) उसने अट्ठारह खानियों (प्रकार प्राणियों) की और अगणित [प्रकार की] मूलों (जड़ी-बूटियों) की रचना (७) उसने कितनों की ही आकर पदार्थों के रूप में (?) रचना की अ
वह सभी मे भरित-पूरित व्याप्त हो रहा

(४)

सिरजसि अंन य (यु-जु) मानसु (मानुस) पाई।
सिरजसि भूष यु (जु) तिही बुझाई।
सिरजसि दाष दो (ऊ)षि रस भरी।
सिरजसि बेलि य(जु)बीन (विन) यर(जर) फरी।
सिरजसि मीठ षांड के (कै) उ(ऊ)षा।
सिरजसि कर(रु)ये बहोति (तें) रूषा।
सिरजसि साप डंक बिस भरा।
सिरजसि गारुरि यों (जो) तिह हर(रा)।
सिरजसि माहु (हु) रु मनै(रै) यु (जु)षाइ(ई)।
सिरजसि मधु माषी लै जाइ(ई)।
सिरजसि हाथी घोरे औ गै(ग)हि बा(बा)धे राइ दुवारि।
सभ राय(ज)नि कर राया(जा) यु (ज्यों) यों(जो?) ससि रैनि अहार॥

सन्दर्भ—वी० १०-१२।

अर्थ—(१) उसने अन्न की रचना की जिसे मनुष्य खाता है, और उसने उस भूख की रचना की जो उससे ही बुझती है। (२) उसने द्राक्षा [अंगूर] और रसभरी ऊख (इक्षु) की रचना की, और उसने ऐसी बेलों की [भी] रचना की जो बिना जल से [सिंचे भी] फला करती हैं। (३) उसने ऊख (इक्षु) [की रचना] कर खाँड (शर्करा) की रचना की और उसने बहुतेरे कड़ुए वृक्षों की [भी] रचना की। (४) उसने उस सर्प की रचना की, जिसके डंक (दंश) में विष भरा रहता है, और उसने उस गारुड़ी की [भी] रचना की जो उसे हरण करता है। (५) उसने उस महाविष की रचना की जिसे खाकर जीव मर जाता है, और उसने उस मधु की रचना की जिसे मक्खियाँ ले जाती हैं। (६) उसने हाथी-घोड़े रचे, और उन्हें पकड़ (पकड़वा) कर राज-द्वार पर बाँध [बँधवा] दिये। (७) वह समस्त राजाओं का राजा है, जैसे शशि रजनी का आधार है।

(५)

सिरजसि मिरग नारि भि? यो जो वी ची ना

सिरजसि भगती (भुगुती) जरमहि पाई ।
सिरजसि पंषि(पष्षि) राति उजियारी ।
सिरजसि बरन यों (जो) द्योस बिकारी ।
सिरजसि भ(भं)वर पाट यों (जो) तना ।
सिरजसि गुबिरोरा भुवि पना ।
सिरजसि पंष(षि?) अवर(?) फर माहा ।
सिरजसि बरु(बरुं)सु तिह(हि) ठाहा ।
सिरजसि आंथि न साथि औ झा(झां)कि (षि)* मरै जिन(नि)कोइ ।
येकि अकेल्नै सब जगु सिरजा दु(दू)सर औरु न कोइ (होइ ?) ।।

सन्दर्भ—बी० १३-१५ ।

* बी० प्रति अपने मूल रूप में इसके बाद मिलती है, इसके पूर्व का अंश मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में है; ऐसा लगता है कि मूल प्रति का प्रथम पत्र गल कर निकला जा रहा था, इसलिए उसकी प्रतिलिपि कर यहाँ से पूर्व का अंश जो उक्त पत्र पर था उसमें रख दिया गया ।

अर्थ—(१) उसने उस मृग (कस्तूरे) की रचना की, जिसकी नाभि में चीना रहता है (कस्तूरी रहती है); और उसने उस [चीना—कस्तूरी] की वासना की रचना की जो ली जाती है । (२) उसने स्थल के बीच श्वापदों (हिंस्र जन्तुओं) की रचना की, और उनके लिए उस भुक्ति (भक्ष्य) की रचना की जिसे वे जन्म भर खायें । (३) उसने रात्रि के उज्ज्वल (शुक्ल) पक्ष की रचना की, और उसने उस······दिवस की रचना की जो······। (४) उसने उस भ्रमर (कीट) की रचना की जो पाट (रेशम) [का धागा] तनता है, और उसने उस गुबरोरे की [भी] रचना की जो भूमि को खनता (चालता) है। (५) उसने पक्षियों (?) की रचना की जो [?] फलों में···और उसने उसी स्थान पर भिडों की भी रचना की। (६) उसने [इस प्रकार यह समस्त] रचना की कि कोई [उसका] साथी-संगी नहीं था, और कोई [इस प्रकार के उसके साथी-संगी की खोज में] झंष कर न मरे (व्यर्थ श्रम न करे)। (७) एक और अकेले ही उसने समस्त जगत् का निर्माण किया, दूसरा और कोई [निर्माता] नहीं हुआ है ।

(६)

पुरिपु येकु सिरजसि उजियारा ।
नाउ महमदु जगतु पियारा

जिह(हि) लग सवै पिरथमी सिरी ।
औ तिहि नाउ मोनदी फिरी ।
जिह जिहवा वह नाउ न लीजा ।
बर(रु) सी(सि)र काटि अगनि मुष दीजा ।
दूसर ठाउ(उं) दइ(ई) यों (जों) कीन्हा ।
बचनु सुनाइ पंथु कै दीन्हा ।
तिह(हि) मारगि जौ चाल(लि?) सिराइ(ई) ।
दुह(हुं) महि गति पि(?) छहि बडाई ।
पाप पुन की त(ता)री कालि युों (ज्यों ?) बरै(नै ?) तुम्हार(रि) ।
दइ(ई) लिषा सभु मागिहों(है) धरहर कै हम (?) भार ॥

सन्दर्भ—वी० १६-१८ ।

अर्थ—(१) उसने एक उज्ज्वल (निष्पाप) पुरुष का निर्माण किया, जिसका नाम मुहम्मद है, और जो जगत् का प्रिय है, (२) जिसके लिए (ही) सभी पृथ्वी निर्मित हुई, और उसके नाम की मुनादी (दुंदुभी) फिरी। (३) जिसने [भी] जिह्वा से उसका नाम न लिया, [उसके लिए] अच्छा यह होता कि वह [अपना] सिर काटकर आग के मुख में डाल देता। (४) दूसरे (उसके बाद के) स्थान पर दैव ने उन्हें [निर्मित] किया जिन्हें उसने अपना वचन (कलमा) सुना कर अपने धर्म-पथ (इस्लाम) पर लगा दिया। (५) उस [धर्म-] पथ पर चल कर जो उसे समाप्त कर लेता है, उसे दोनों [जगत्] में सद्गति और बड़ाई······। (६) कल जब (?) तुम्हारी पाप-पुण्य की तालिका बनेगी (?) (७) और दैव (विधाता) उनका समस्त लेखा माँगेगा, तब वही हमारा (हमारे अपराधों का?) भार सँभालेगा।

(७)

चारि मीत मिलि यकु मत कीन्हा ।
बेद पुरांन चहूं कहुं दीन्हा ।
ओ जस सुना कहत तस आवइ ।
चहू ब(च)क तिहि उ(औ)रेहि पत्या[व]इ ।
पंडित येकु चहू मिलि गनी ।
चहु महि पचवा और न सुना(नी

सो पढति जाकौ ति पढावहि।
ते वहु पंथ सु(सो?)धि कै पावहि।
तिहु कर(रि) जिह वोहु नाउ न भावा।
आपनु कुाँ(क्यों ?) बैरी स कहावा।
अबाबकर उमरै उसमाना अली स्यंघ ये चारि।
जे निद तु(?) कर विज ति(?) सतुरह(हि) घालै(ले) मारि ॥

सन्दर्भ—बी० १६-२१।

अर्थ—(१) चार मित्रों ने मिलकर एक विचार किया [कि वे ह० मुहम्मद से धर्मोपदेश ग्रहण करें], तो उन्होंने उन चारों को वेद-पुराण (इस्लाम के धर्म-ग्रंथ) दिये। (२) उन्होंने जैसा सुना, वैसा वे कहते आये; [पृथ्वी के] चारों चक्रों ने उन्हें उच्चरित किया और उन पर प्रतीति की। (३) चारों को मिलाकर एक ही पंडित समझिए; चारों में पाँचवाँ और किसी को न सुनिए (जानिए)। (४) उसी ने पढ़ा जिसको उन्होंने पढ़ाया; वे ही वह [धर्म-] मार्ग शोध कर पा सके। (५) इस प्रकार कर के जिसे वह नाम अच्छा न लगा, वह आत्म (अपना ही) वैरी क्यों कहलाया? (६) अबूबकर, उमर, उसमान और अली—ये चार सिंह हुए, (७) जिन्होंने·········[इस्लाम के ?] शत्रुओं को मार डाला।

(८)

साहि प(ये)रोज ढीली बड़ राजा।
छात पाट औ ते* पै छाज (जा)।
येकु पड़ितु(पंडितु) औ है पडिवाहा।
दानि अपरिस (अपार ?) सराहै काहा।
नीर पीर निरमर करि छानै।
छोटें बड़े बेव(ह)रि जानै।
अति सिरवंतु (सिरिवंतु) भागे(गै)भरा।
मान(नि)क जोति जानु परय(ज)रा।
परग झार लंका लहु जाइ(ई)।
हनवतु स(सं)गु सि(सइ?)रहै बुझाइ(ई)।
देइ असीस पिरथमी य(ज)सु पु(पू)रौ बरुवाहा (पडिवाह?)।
राजु करौ गढि ढीलरी जुगि जुगि हम अ(प ?)र छाह ॥

* 'ते' को ता बाद में बनाया गया है

सन्दर्भ—बी० २२-२४।

शीर्षक—बी० : साही पेरोज की सिफत [किन्तु यह शीर्षक अन्य लिखावट में है और हाशिए में दिया हुआ है]।

अर्थ—(१) फ़ीरोज शाह [तुग़लक़] दिल्ली का बड़ा राजा (सुल्तान) है; छत्र तथा सिंहासन उसी को शोभित होते हैं। (२) एक तो वह पंडित है और दूसरे प्रतिवाह (आक्रमण को रोकने अथवा शत्रु को पीछे ढकेलने वाला) है; वह ऐसा अपार (अपरिमित ?) दानी है कि उसकी क्या सराहना की जाए ? (३) वह [ऐसा न्याय करने वाला है कि] निर्मल कर के नीर से क्षीर को (असत्य से सत्य को) अलग कर देता है, और छोटे-बड़े के साथ उचित व्यवहार करना जानता है। (४) वह अत्यधिक श्रीमंत और भाग्य से पूरित है, [उसे देखने पर ऐसा लगता है] मानो माणिक्य की ज्योति प्रज्ज्वलित हो रही हो। (५) [उसके] खड्ग की ज्वाला लंका तक जाती है, और उसके साथ हनुमान भी रहते हैं, वही उसको बुझा कर रखते हैं। (६) पृथ्वी भर उसको आशीर्वाद देती है, "हे प्रतिवाह (शत्रुओं को पीछे ढकेलने वाले ?) तुम यश-लाभ करो। (७) तुम दिल्ली के गढ़ में युगानुयुग राज्य करो और हम पर तुम्हारी छाया [बनी] रहे !"

(९)

सेष जैनदी हौ(हौं) पथि लावा।
धरम पंथु जिह्(हिं) पापु गवावा।
पाप दीन्ह में गांग बहाइ(ई)।
धरम नाव हौं लीन्ह चुराइ (चड़ाई)।
उघर(रे) नैन हिये उजियारे।
पायो लिष(षि) नौ अक्ष(क्ख)र कारे।
पुनि मै(मैं)अषि(ष्षि)र की सुधि पाइ(ई)।
तुरकी लिषि लिषि हिंदुकी(गी?)गाइ(ई)।
ये(जै ?) पढ़ए या(जा)इ स(से)ष पसारा।
पाप गये तसीकर(तसिकर) मारा।
त्यहु का घरु निरमरा जिह चितु रहा लुभाइ।
सेष जैनदी सेवता पाप निरंतरु जाइ ¹।

सन्दर्भ—बी० २५-२७।

अर्थ—(१) शेख जैनुद्दीन ने मुझे मार्ग पर लगाया, उस धर्म-मार्ग पर जिस पर [चल कर] मैंने अपने पाप गँवाये। (२) मैंने [अपने] पाप गंगा में बहा दिये, [जब] उन्होंने मुझे अपनी धर्म-नौका पर चढ़ा लिया। (३) [उनकी कृपा से] मेरे हृदय में उज्ज्वल (ज्ञान के) नेत्र उद्घाटित हुए, और मैंने [क़लमे के ?] काले नौ अक्षर लिख पाये। (४) तदनन्तर मैंने [वर्णमाला के] अक्षरों का शोध प्राप्त किया और तुर्की (अरबी-फ़ारसी) लिख-लिख कर हिन्दुकी (हिन्दुगी ?) का गान किया। (५) यदि इस प्रकार शेख (जैनुद्दीन) [की कृपा] का प्रसार प्राप्त हो जाए तो पाप उसी प्रकार मारे जाते है जैसे तस्कर (चोर-डाकू) मारे जाते है। (६) उनका घर (सम्प्रदाय) निर्मल है, जिससे उस पर मेरा चित्त लुब्ध हो रहा है। (७) शेख जैनुद्दीन की सेवा करते रहने से पाप निरन्तर जाते (नष्ट होते) रहते हैं।

(१०)

खानजहां वरि जुग जुग षानी।
अति नागरु बुधिवंतु बिनानी।
चतुर सुजान भाष सब जान(नू)।
रूपवंत मंत(ति)री सयानु(नू)।
बहुत बिनानु दइ(ई) दे(दै) गढ़ा।
चौदह पढतु हिये पै पढा।
पोथि पुरान अवहिरै (अवरेहि ?) लगावै।
पंडित कै(के) मुष बकत न आवै।
पिरथमि पति(?)ये (जे) चोर स(सि)यारा।
भवर पुरष प्रिथमी महिआरा।
भयो राजु फुनि बररुचि (बररुचि) जोरत अरथ अगाह(हि)।
षौंद षान [?] जी(त्रि?)ना और गुनी को आह(हि)॥

सन्दर्भ—२८-३०।

अर्थ—(१) ख़ानेजहाँ युगानुयुग से चले आते हुए ख़ानी कुल से है; वह अत्यधिक नागर, बुद्धिमान और विज्ञानी है। (२) वह चतुर, ज्ञानी और समस्त भाषाओं का जानकार है; वह रूपवान् है और [सुल्तान का] सज्ञान मन्त्री है (३) बहुतेरा विज्ञान प्रदान कर दैव ने उसे निर्मित किया है वह,

हो न हो, हृदय में चौदह विद्याएँ पढ़े हुए है। (४) [धर्म-] पुस्तक और पुराण के वह ऐसे अर्थ (?) लगाता है कि [उन्हें सुनकर] पंडितों के मुखों में [उसकी प्रशंसा के उपयुक्त] वाक्य नहीं आते हैं। (५) पृथ्वी में (?) जहाँ चोर-शृगाल [बहुलता से] हैं, [खानेजहाँ जैसा] उसी मही तल पर (गुणग्राही) भ्रमर-पुरुष भी है। (६) वह [सुल्तान के] राज्य में वररुचि [जैसा पंडित] हुआ है और [धर्म-पुस्तक के] अग्राह्य (पकड़ में न आने वाले) अर्थों को भी वह जोड़ (लगा) लेता है। (७) [इस समय] खाविंद (स्वामी) ख़ानेजहाँ [?] को छोड़ कर (?) दूसरा गुणी कौन है?

(११)

षौंद जान गैं दान दिवावै।
देते(त) करनु नि सरभरि पावै।
सम(मु)द लहरि जिहि दिन दिन आवै।
मानिक आनै तीर चरा (डा)वै।
तस सतु दानु पाइ औतरा।
देत न घसि (खसइ ?) सम(मु)[द] जस भरा।
देत न अंतु रवा(खा ?)गी द(दा)रिदु गयौ पराइ।
उठा सबदु जसु लीन्हा कीरति जगत फिराइ॥

सन्दर्भ—बी० ३१-३२। कडवक की दो अर्द्धालियाँ उसमें छूटी हुई हैं, इसीलिए एक चतुष्पदी की क्रम-संख्या में कमी हो गई है।

अर्थ—(१) खाविंद (स्वामी) ख़ानेजहाँ हाथियों को दान में दिलाता है, [इसलिए] उसके दान करते समय कर्ण भी उसकी समता नहीं पाता है। (२) समुद्र की लहर जिस प्रकार दिनानुदिन आती और तटपर माणिक्य ला कर चढ़ा (डाल) जाती है, (३) इसी प्रकार दान (का संसर्ग) पाकर उसका सत्व अवतरित हुआ है; वह देते हुए घटता नहीं है, और उसी प्रकार भरपूर रहता है कि जिस प्रकार समुद्र। (४) "(दान) देते हुए उसका अन्त.......... और दारिद्रय भाग गया," (५) यह कथन (चारों ओर से) उठने लगा और यह यश उसने प्राप्त किया, उसकी कीर्ति जगत् भर में फिर गयी।

(१२)

मदन म(अ?)नंगु तु र(रे) पर बिन बानै।
सावन बरन देह तोरा जानै

चंदु लिलाट धरा जनु लाइ(ई)।
चंदु घाटि वह अधिक सवाइ(ई)।
सहस करा जौं सुरिजु बषानौ(नौ)।
सुरिजु चाहि जगि निरमर जानौ।
देषि पिरथमी रूप भुलानी।
मानु मनोहर सकरत(संकिरित) बानी।
घन(नि) सु राति(राट ?) जिह तूं औतरा।
जो देषो (षा) सो सिरुभुइ धरा।
तोहि रूप जगु[?] गहा चंदु तराइनु जानु।
इह (एहि ?) रूपि जग कोइ न देषा अब फुनि होइ न आन ॥

सन्दर्भ—बी० ३३-३५।

अर्थ—(१) तू अनंग मदन है, किन्तु बिना बाणों के है, तेरी देह स्वर्ण के वर्ण की जान पड़ती है। (२) तेरा ललाट ऐसा [देदीप्यमान] है कि मानो उस पर चन्द्रमा लाकर रख दिया गया हो; किन्तु चन्द्रमा उससे घट कर है, और वह उससे सवा-गुना अधिक है। (३) सहस्र कलाओं के सूर्य का यदि वर्णन करो, तो उस सूर्य की अपेक्षा भी तुझे जगत् में [अधिक] निर्मल जानना चाहिए। (४) पृथ्वी तेरा रूप देख कर [उस पर] इस प्रकार भूली हुई है, मानो मनोहर संस्कृत वाणी हो। (५) वह रात्रि (अथवा राष्ट्र—राज्य ?) धन्य है जिसमें तू [सूर्य] अवतरित हुआ है, क्योंकि जिसे देखो वही [तेरे आगे] अपना सिर भूमि पर रख देता है। (६) रूप मानो जगत् में चन्द्र तथा तारागण ने तुझसे ही ग्रहण किया है। (७) ऐसा रूप जगत् मे [अवतरित हुआ] कभी नहीं (?) देखा गया है, और न अब अन्य पुन. होगा।

(१३)

हय चरि(ढ़ि) कोप(पि) षांडह(हि) जो धरा(र)इ।
सरगि यन्दु बासिगु षहराइ(षरहरइ ?)।
गहि सी(सी)गनि जा कौ(क)हु कहुं सरु मेलै।
रहै न सो धरु सुर्गहि षेले (षेलै)।
षरगु ज देषौं तिरीअ धारू।
बारक काटै जनम किवारू

साग़ि (?) कै षरगु ति अरि सिर धरा।
येक पुरिष सिघ(घ्घ) तिरि परा।
षान षरगु मै फु(सु)ने न आना।
टूटि(ट) पाउ सिर धरनि पराना।
पूरब पछिम उत्तर दषिन तुम सरि औरु न आन।
षान परग वैरनि(बैरिन) सिर तपै जैसें देषि(षी)रबि भान ॥

सन्दर्भ—बी० ३६-३८।

अर्थ—(१) खानेजहाँ! जब तू घोड़े पर चढ़ कर खड्ग धारण करता है, तब स्वर्ग में इन्द्र और [पाताल में] बासुकी खलबला उठता है। (२) जिस पर तू सिंगिनी ग्रहण कर शर छोड़ता है, उस [शत्रु का] धड़ भूमि पर नहीं रहता है, वह स्वर्ग (आकाश) में खेलने लगता है। (३) जब तेरे खड्ग की तीक्ष्ण धार देखता हूँ, तो [लगता है कि] इस जन्म (?) का किवाड़ (भी) एक बार वह काट देगा। (४) तू जब साथ (?) करके शत्रु के सिर पर उस खड्ग को रखता है, तो एक पुरुष शीघ्र ही नीचे तिर्यक् पड़ा (गिरा) हुआ होता है। (५) खानेजहाँ! [ऐसा] खड्ग मैंने अन्य नहीं सुना है कि [उसके लगते ही] [शत्रु का] सिर धरती पर टूटा और दूर गया हुआ मिले। (६) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में तुम्हारे समान अन्य नहीं है। (७) ऐ खानेजहाँ! तुम्हारा खड्ग बैरियों के सिर पर ऐसा तप्त होता है जैसे रवि-भानु को देखिये।

(१४)

एकु खंभु 'मेदिनि कह' 'कीन्हां'। 'डोलि परइ' 'जउ होत न दीन्हां'।
'तेहि कें बेरे' 'लोक चढावइ'। 'कर' गुन 'खैंचि' तीरु लइ 'लावइ'।
'हिंदू' तुरुक 'दुहू' सम 'राखइ'। सत्ति 'जो होइ' 'दुहुन्ह कह भाषइ'।
'गउव' सिघु एक पंथु 'रेंगावइ'। एक घाटि 'दुहुँ' पानि 'पियावइ'।
एक' दीठि' 'देखइ सय(यं)सारू'। 'अचल न चलइ' 'चलइ बेवहारू'।
'मेरु धरति जस' भारनि जग भारनि 'सयंसारु'।
'खानजहां' 'सो' 'कवनि' बडाई 'वड जो कीन्हा' करतारु ॥

सन्दर्भ—बी० ४१-४२ [बी० में ३९-४० की संख्याएँ संभवतः भूल से छूट गयी हैं], भो० पत्र १० (नवीन)।

शीर्षक भो० **ओज़न** लहू फी मन्हे खानजहाँ दर **बाब** अदल व इन्साफ

इस कडवक पर भो० में पुरानी पत्र-संख्या बनी हुई, जो १२ है। उसमे प्रत्येक पत्र पर एक कडवक है, इसलिए उसमें इस कडवक की क्रम-संख्या भी वही रही होगी।

पाठान्तर—(१) १. बी० मेदुनि कौ। २. बी० कीन्हा। ३. बी० बूडि परी। ४. बी० जिहि कोइ न दीन्हा। (२) १. बी० तिह कैं बैरी। २. बी० लोगु चरावा। ३. बी० धर। ४. बी० षांचि। ५. बी० लावा। (३) १. बी० ह्यदू। २. बी० कोइ। ३. बी० राषै। ४. बी० यैं होय। ५. बी० दहू को भाषै। (४) १. बी० गाव। २. बी० चलावैं। ३. बी० दुहु। ४. बी० पिलावै। (५) १. बी० दृष्टि। २. बी० देषै सैसारू। ३. बी० अनत नि चलै। ४ बी० चलै बौहारू। (६) १. बी० मोर धनि जस। २. बी० सैंसार। (७) १. बी० खानज (खानजहाँ ?)। २. बी० सें, भो० सो जो बाद मे 'फुनि' बनाया गया है। ३. बी० कौन। ४. बी० बडौ कीन्हु।

अर्थ—(१) खानेजहाँ को [विधाता] ने मेदिनी (पृथ्वी) के लिए एक [ही] खम्भा [निर्मित] किया है; यदि यह [खम्भा] न दिया होता, तो [पृथ्वी] डोल पड़ती। (२) [विधाता] उसके बेड़े पर—अथवा वह बेड़ा बना कर—लोक को चढ़ाता है और हाथों में [उस बेड़े के] गुण को खींच कर [लोक को] तीर पर लाकर लगा देता है। (३) वह हिन्दुओं और तुर्कों—दोनों—को समभाव से रखता है, और जो-कुछ सत्य होता है, [वही] दोनो को (से) कहता है। (४) वह [न्यायी ऐसा है कि] गाय और सिंह [जैसे परस्पर विरोधियों] को एक ही मार्ग पर रेंगाता [चलाता] है और एक ही घाट पर दोनों को पानी पिलाता है। (५) वह संसार [मात्र] को एक ही दृष्टि से देखता है और [न्याय पर] अचल ऐसा है कि विचलित नहीं होता है, भले ही [संसार का] व्यवहार चलायमान हो जा। (६) जैसे मेरु धरती के भार के लिए [निर्मित] है, वह संसार में जगत् के भार के लिए [निर्मित] है। (७) [किन्तु] इसमें खानेजहाँ की कौन-सी बड़ाई है जब कि उसे सृष्टि-कर्त्ता ने ही बड़ा कर रखा है।

(१५)

मलिक 'ममारखु' दर 'क' सिंगारू। दान 'जूझ' बड बीर 'अपारू'।
खडग घाइ 'ढंहि' 'परंहि' पहारा। 'बासुगि कांपइ' 'नाहिं' उबारा।
कांध तोरि नई रगत 'बहावइ'। धर बिनु सिरु 'तेंहिं' मांझ 'तरावइ'।

'जेहिं' सिरु 'देइ' मुदगर कर घाऊ । 'फेरि' न 'धरइ' 'सीध कइ' पाऊ ।
'बिधना मारि देस महं आनी' । 'भागहिं राइ छाडि निसु' रानी ।
चहुं जग परा 'भंगानां' छाडि 'देस नृप भाग' ।
'कइ रे दीन्ह सरब डंड' 'कइ ते' पायनु लाग ॥

सन्दर्भ—बी० ४३-४५, मसा० ।

भो० पत्र १० (नवीन) पर तर्क है 'मलिक मुबारक', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मसा० : मदहे मालिकुल उमरा मुबारक इब्न मलिक बयाँ मकत असतू डलमऊ ।

पाठान्तर—(१) १. मसा० मुबारक । २ बी० कौ । ३. बी० सिगारू । ४ मसा० में 'रू' पर चिप्पी लगी हुई है । (२) १. बी० में नहीं है । २. बी० परै । ३. बी० बासिगु कंपै । ४. बी० नहीं । (३) १. बी० कंध । २. बी० नै । ३. बी० बहावै । ४. बी० तिस । ५. बी तिरावै । (४) १. बी० जिह । २ बी० दे । ३. बी० जनमि । ४. बी० धरै । ५. बी० सिध कौ । (५) १. बी० बैरिन्हि मारि देषि तवु (सशोधित) बानी । २. बी० भागैहि राज छाडि निसि । (६) १. बी० भगाना । २. बी० राइ निसि भागि । (७) १. बी० कै आइ दे डंड सभै । २. बी० कै राइ ।

अर्थ—(१) मलिक मुबारक [शाही] सेना के शृंगार हैं । वे दान तथा युद्ध—दोनों—में अपार बीर हैं । (२) उनके खड्ग के आघात से पहाड़ ढह (गिर) पड़ते हैं, और बासुकी इसलिए काँपने लगता है कि उससे [उसका भी] उबार (बचाव) नही है । (३) वह [युद्ध में] कन्धों को तोड़ कर रक्त की नदी बहाता है, और फिर उसमें धड़ से हीन सिरों को तैराता है । (४) जिसके सिर पर भी वह मुद्गर का घाव देता है, वह फिर पैर सीधा करके नहीं रख सकता है । (५) [शत्रु राजा-गण कहते हैं] 'विधाता ने देश में मारी ला दी है', [और यह कहते हुए] वे अपनी रानियों तक को छोड़कर भाग निकलते है । (६) [उसके आतंक से] जगत् में चारों ओर भगदड़ पड़ गयी है, और [शत्रु] राजा-गण अपने देश को छोड़कर भाग रहे हैं । (७) या तो उन्होंने अपना सर्वस्व दण्ड (कर) [के रूप में] दे दिया है, और या तो वे उनके पैरों से लगे हैं ।

(१६)

करन बिसेष दानु तसैं (तस) देइ(ई) । दारिदु छाडि दिसंतरु लेइ(ई) ।
मूषा देखि पास जौ आवैं जनम सभै कर भूष गवावा'वैं) ।

अमी मेघ जनौ बरसै पानी । ना डरु देषै (देषिय) भुमि सुकानी ।
करि दीया ति सवर के वेषा । दूसर रांक न चित मैं लेखा ।
किरति जाइ चहु भ(भु)वन जनावा । दान [पुं]न जसु हाथ उपावा ।

मलिक ममारष न्हावताह बार षिसौ जिन काव(उ?) ।
रिन रावर(रि) मुष वानी दिनु दिनु बधियो आव(उ?) ॥

सन्दर्भ—बी० ४६-४८ ।

अर्थ—(१) "जो कर्ण से भी विशेष (अधिक) हो, ऐसा दान तू देता है, [जिसके परिणाम-स्वरूप] दारिद्र्य [देश को छोड़ कर] देशान्तर को जा रहा है। (२) तुझे देख कर यदि कोई भूखा तेरे पास आता है, तो वह समस्त जन्मों की क्षुधा गँवा देता है। (३) मेघ मानो अमृत-जल की वर्षा करते हैं, [जिसके परिणाम-स्वरूप] यह डर नहीं है कि भूमि शुष्क दिखाई पड़ेगी। (४) उनको तूने सबलों के वेष का कर दिया है, अतः दूसरे रंक चित्त में मैं नहीं समझ पाता हूँ। (५) तेरी कीर्ति जा-जाकर चारों भुवनों में [अपने को] व्यक्त करने लगी है, क्योंकि दान-पुण्य के द्वारा तेरे हाथों ने यश उत्पादित किया है। (६) ऐ मलिक मुबारक ! नहाते हुए भी तेरा बाल न गिरे (तेरा कोई अनिष्ट न हो)। (७) ······तेरे मुख की वाणी दिनानुदिन बढ़ती ही जाए।"

(१७)

वरस सातै(त) सै होये इक्यासी ।
तिहि याह कबि सरसे(स) उभासी ।
साहि पेरोज ढीली सुलतानू ।
जौना साहि इ*जीरु (उजीरु) वषानू ।
दलमौ (डलमउ) नयरु बसै नवरंगा ।
उपरि कोटु तलै बहै गंगा ।
धरमी लोगु बसहि भगवंता ।
गुनगाहका नागर जसवंता ।
मलिक बयां पुतु उ(यु ?)ध* रन धीरू ।
मलिक ममारषु तहा का (तहां क) मीरू ।

दाउद येह कबि जइ* गाइ(ई) मन महि लेहु बिचारि ।
जुरत बोलु चित राषहु टूटत लेहु स सं वारि

सन्दर्भ—बी० ५०-५२; ४६ की संख्या भूल से छूटी लगती है। *चिह्नित अक्षरों पर प्रति में संशोधन किए हुए हैं।

अर्थ—(१) जब ७८१ का साल हुआ, तब [मैंने] इस सरस काव्य को उद्भाषित [प्रकाशित] किया। (२) [इस समय] दिल्ली का सुल्तान फ़ीरोजशाह है, और जौनाशाह [उसका] वज़ीर कहलाता है। (३) एक नवरंग [नये रंग का] नगर डलमऊ बसता है, जिसके ऊपर [की भूमि में] कोट (गढ़ या गढ़ का परकोटा) है और [जिसके] नीचे गंगा बहती है। (४) उसमें धर्मिष्ठ और भाग्यवान् लोग निवास करते हैं, वे गुण-ग्राहक, नागर और यशवान् हैं। (५) युद्ध में रणधीर मलिक बयाँ के पुत्र मलिक मुबारक वहाँ के मीर हैं। (६) दाऊद ने···यह कविता गाई, इसे मन में विचार कर ग्रहण कीजिए। (७) इसके जो बोल (वाक्य) जुड़ रहे हों, उन्हें चित्त में [उसी प्रकार] रख लीजिए, और जो त्रुटिपूर्ण हों, उन्हें संवार (ठीक) कर स्वीकार कीजिए।

२. गोवर-वर्णन खण्ड

(१८)

कहू(हूं) कवितु मन भयो गियानू।
कहत सुहावन सुनहु दै कानू।
गोवर कहौ(हौं) महर कर ठाउ(ऊं)।
कूवा बाइ बहुत (अंबराऊं)।
नारियर गो(गू)वा के तह(हं) रूषा।
देषत रहै न लागै भूषा।
दार्यौ(यौं) दाष वह(हु)ल लै लाइ(ई)।
नारि(रिं)ग झारिग कहे न जाइ(ई)।
कटहर तारा(र) भरे अ(अं)बराना(मा?)।
जामिनि कैथ* न* को जाना।
बांस षिजूरि बर पीपरा(र?) अ(अं)बिली भई सैवार।
राइ महर की बारी धोस होइ अ(अं)धियार॥

सन्दर्भ—बी० ५३ ५५

शीर्षक—बी० में हाशिए में 'गोवर की वरनी' शीर्षक दिया हुआ है [किन्तु यह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में है।]

*चिह्नित अक्षर बी० में संशोधित हैं।

अर्थ—(१) मेरे मन में ज्ञान [उदित] हुआ है, इसलिए मैं कवित्व (कविता) कह रहा हूं; यह [कवित्व] कहने में सुहावना है, इसे कान देकर सुनो। (२) मैं [अब] महर के स्थान गोवर का कथन कर रहा हूँ; वहाँ पर कूप, वापी और आम्राराम बहुतेरे थे। (३) वहाँ पर नारियल तथा गूवा (एक प्रकार की सुपारी) के वृक्ष थे, जिन्हें यदि कोई देखता रहता तो उसे भूख न लगती। (४) दाडिम (अनार) तथा द्राक्षा (अंगूर) वहाँ पर बहुतेरे लेकर लगाये हुए थे, नारंगी-झारंगी (?) तो इतने थे कि कहे नहीं जा सकते थे। (५) कटहल और ताड़ उस आम्राराम (?) में भरे हुए थे और जामुन तथा कैथ (कपित्थ) इतने थे कि उन्हें कोई जानता न था। (६) बाँस, खजूर, वट, पीपल तथा इमली [इस प्रकार] अधिकता से [लगे] हुए थे कि (७) राजमहर की बाटिका में दिन में ही अन्धकार हो रहता था।

(१६)

अति घन फेर(रि) देषि अ(अं)बराइ(ई)।
वासहि(हिं) पंखि कहूं ते आइ(ई)।
चुहचुहाहि(हि) ते सूवा सारी।
कुहकुहाहि(हि) ते कोकिल कारी।
पिउ पिउ बबिहा करै पुकारा।
नाचहि(हिं) मोर सबद झनकारा।
महर पुकार ले रि दह (हि) आइ(ई)।
आडुकि (पाडुकि) येक येक चिललाई।
हरियर आइ देस कर रहा।
कागरूद्र (रूक) बहु भाषा कहा।
अस अंवर(रा)उ सुहावना(न) जिहि चितु रहा लुभाइ।
बासैहि(सहि)पंषी रहही(हिं)अ(उ?)ति छाडि न अंननरि(अंतरि)जाइ॥

सन्दर्भ—बी० ५६-५८।

मै० प्रति इस कडवक से सम्बंधित चित्र से मिलती है, इसके पूर्व वह खण्डित है

अर्थ—(१) पुनः अत्यधिक सघन आम्राराम देख कर कहीं से भी आए हुए पक्षी वहाँ बोलते रहते थे; (२) शुक-सारिका वहाँ चुहचुहाते रहते थे और काली कोकिला कुहकुहाती रहती थी; (३) पपीहा पी-पी पुकारता रहता था, और मोर नाचते रहते तथा उनके शब्द झंकृत होते रहते थे, (४) महर पुकारता रहता था 'आकर दही लो', जबकि पंडुक 'एक' 'एक' चिल्लाता रहता था; (५) हारिल तो देश भर के आकर वहीं रहते थे और काकरूक (उलूक) बहुतेरी भाषाएँ बोलते थे। (६) वह आम्राराम इतना सुहावना था कि जो [पक्षियों के] चित्त को लुब्ध किये हुए था; (७) उसमे पक्षी बोलते तथा निवास करते रहते थे, और उसे छोड़ कर अन्य [आम्रारामों] मे नहीं जाते थे।

(२०)

तारा 'पोखर' कुंड 'खनाए'। मढ़ 'देवर' चहुं पासि 'उठाए'।
'खूना' तपसी अछंहि तहां। 'अउ' भगवंतु 'रहइ तिन्ह महां'।
मसवासी सिव मंडपु छाई। 'पुरुख नांउ' तेहि 'ठौर' न जाई।
भररा 'डंवरू' डाक 'बजावा'। सबदु सुहाव 'नींद' सुनि आवा।
जोगी सहंस 'चारि तहं' 'गावहिं'। सींगी पूरहिं भसम 'चढावहिं'।
सिद्ध पुरुख गुनआगर देखि 'लुभाने' ठाउं।
कहत सुनत अस 'जानिय' 'दहुं' 'चलि देखइं जाउं'।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३, बी० ५९-६१।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते बुतखानः बर हौज़ व मानदन जोगियान मर्दान व जनान दर आं।

पाठान्तर—(१) १. बी० पोषरि। २. बी० षनाइ। ३. मै० देव। ४ बी० उठाइ। (२) १. बी० षैना। २. बी० औ। ३. बी० रहै तिन माहा। (३) १. बी० पुरप ना। २. बी० ठाव। (४) १. बी० डौरू। २ बी० वजावा। ३. बी० मै० इन्द्र। (५) १. बी० मै० पाच एक। २. बी० गावैहि। ३. बी० चरावहि। (६) १. बी० लुटाने। (७) १. बी० जानौ। २. बी० धौ। ३. बी० चलु देषौ जाउ।

अर्थ—(१) [गोवर नगर में] तडाग, पुष्कर और कुंड खुदवाए हुए थे और उनके पास चारों ओर मठ और देवालय उठाए हुए थे। (२) वहाँ (उनमें) खूना-पंथी (शरीर को क्षुण्ण—मर्दित चूर्णित करने वाले) तपस्वी थे और भागवत (अथवा भाग्यवान साधक) उनमें निवास करते थे

(३) शिव के मण्डपों में मास-कल्प करने वाली स्त्रियाँ छाई रहती थीं, उनमे पुरुष नामधारी [मात्र] नहीं जाते थे। (४) उनमें भरडे (एक प्रकार का वाद्य), डमरू और डक्क बजते थे, जिनके सुहावने शब्द सुनकर निद्रा आती थी। (५) चार सहस्र योगी वहाँ गाते [रहते] थे; वे शृंग पूरते (फूंक कर बजाते) और [शरीर पर] भस्म चढ़ाते थे। (६) सिद्ध पुरुष और गुणों मे अग्र—अथवा गुणों की खानि—लोग उस स्थान को देखकर [उस पर] लुब्ध थे। (७) कहने-सुनने में से ऐसा जान पड़ता था कि मानो चलकर उसे देखने जाऊं।

(२१)

सरवरु एकु सुभर भरि रहा। झरनां सहंस 'एक अउ' बहा।
अति 'अवगाहु न पाइय' थाहा। पानीं चोख 'सराहउं' काहा।
बास कपूर पियत खिन्न 'आवइ'। देखत मोंतीचूर 'सुहावइ'।
'कुंवरि' लाख दोइ पानी 'जाहीं'। तीरि 'बइठि' ते लेंहि भराहीं।
'ठाउं ठाउं बइसे' रखवारा। 'खोरि नहाइ' न 'कोउव' 'पारा'।
'छाय(?)' होइ तरुन्ह 'कइ' 'केहुं' न 'पाइय' बाट।
चाप रूप सरवर कै रावत(ट) बांधे घाट॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४, शि०, बी० ६२-६४।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते हौज़ व लताफ़ते आव ऊ गोयद। शि० : अपाठ्य है।

मै० मे (३)। १, (४)। १, (५)। १, (६) तथा (७) के अधिकांश पत्र के त्रुटित होने के कारण नहीं हैं। शि० में (३), (४)। २, (६) तथा (७) के अधिकांश अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. मैं० पांच तहं। (२) १. बी० औगाहु न पाइये। २. बी० सराहौं। (३) १. बी० आवा। २. बी० र(स ?)हावा। (४) १. बी० कवरि। २. बी० जाहीं। ३. बी० वैसी। (५) १. बी० ठाव ठाव राषे। २. बी० षोरा न्हाहि। ३. बी० कोउ, शि० कोइ। ४. बी० वारा। (६) १. बी० चापा। २. बी० मरुन (?) की। ३. बी० ककरि। ४ बी० सूझै।

अर्थ—(१) [वहाँ पर] एक सरोवर भरपूर भर रहा था, और [उसे भरने के लिए] एक सहस्र एक झरने प्रवाहित हो रहे थे। (२) वह [सरोवर] अत्यधिक गम्भीर (गहरा) था और उसकी थाह नहीं मिलती थी। उसका

पानी ऐसा चोखा (अच्छा) था कि उसकी क्या सराहना करूँ ? (३) उसको पीते समय क्षणमात्र में कपूर की सुवास आती थी, और देखने में वह मौक्तिक-चूर्ण जैसा सुहाता था। (४) दो लाख कुमारियाँ [वहाँ] पानी भरने के लिए जाती थीं, किन्तु वे उस सरोवर के तट पर ही बैठ कर पानी भर लिया करती थीं। (५) स्थान-स्थान पर रखवाले बैठे हुए थे, [जिससे] उसमें कोई भी खोर (अंग-मार्जन कर) अथवा स्नान नहीं कर सकता था। (६) वहाँ पर वृक्षों की ऐसी [सघन] छाया थी कि मार्ग नहीं मिल पाता था, (७) उस सरोवर को धनुष के आकार का [बना] कर उसके घाट रावट पत्थर से बाँधे हुए थे।

(२२)

‘पैरहिं’ हंस ‘मांछ’ फहराहीं। चकवा चकवी केरि कराहीं।
‘धौला’ ‘ढेंक’ ‘बइठ छिरियाए’। बगुला बगुली सिहरी ‘खाए’।
‘पीलू’ सोन ‘तहाँ रहे’ छाई। ‘अरु जल कुकुरी’ ‘चुहचुहाई’।
पसरी ‘पुरइनि तूलमतूला’। हरियर पान ‘ते’ रातुर फूला।
‘जलपंखी आइ देस’ कर परा। कार ‘कुरुंजवा जलहर भरा’।
　　सारस ‘कुरलहिं राति नींदि तिल एक न आवइ’।
　　सबद ‘सुहाव कान पर’ जागत ‘रइनि बिहावइ’॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५; बी० ६५-६७। बी० में यहाँ भूल से एक संख्या बढ़ गयी है।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते जानवरां दर आं हौज़ गोयद।

मैं० में (३) के कतिपय अंश अस्पष्ट हैं।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहरैंहि। २. बी० मछ। (२) १. मैं० देला। २. बी० ढीक। ३. बी० बैसि छिहरांहीं। ४. बी० खांही। (३) १. बी० पीयर। २. बी० रहे दुहु। ३. बी० और जकूकरि। ४. बी० चुहांचुहाई। (४) १. बी० परयनि (पुरइनि—फ़ा०) टोलमटूला (तूलमतूला—फा०)। २ बी० तु। (५) १. बी० कंपिल देसु आइ। २. बी० करौंजा जरहर भारा। (६) १. बी० कुररहिं सभ निस तिलक नीद न आव। (७) १. बी० सुहावा कान रस। २. बी० रैनि बिहाइ।

अर्थ—(१) [उस सरोवर में] हंस तैरते रहते थे, मत्स्य फहराते (ऊपर आते ?) रहते थे तथा [उसके तट पर] चक्रवाक और चक्रवाकी केलि

करते रहते थे। (२) धौले और ढेंक [वहाँ पर] छिरिआए (पानी के छीटे लिए) हुए बैठे रहते थे और बकुले-बकुलियाँ शफरियाँ (मछलिया) खाते रहते थे। (३) पीलू तथा सोन वहाँ छाए रहते थे, और जल-कुक्कुटियाँ चुहचुहाती रहती थीं। (४) पुटकिनी (कमलिनी) [जल के] विस्तार के बराबर ही फैली हुई थी, [उसके] पत्ते हरे थे और उसमें फूल लाल थे। (५) देश [भर] के जल-पक्षी आ कर [वहाँ] पड़े हुए (निवास कर रहे) थे और काले क्रौंच उस जलाशय में भरे हुए थे। (६) [वहाँ पर] रात्रि मे सारस बोलते थे, [जिससे] तिल मात्र (तनिक) भी नींद नहीं आती थी। (७) [उनका] सुहावना शब्द कानों में ऐसा पड़ता रहता था कि [उसको सुनते हुए] जागते ही रजनी व्यतीत हो जाती थी।

(२३)

'जाइ देखि' गोवर कइ खाई। 'पुरुस' 'पचास' 'कइ रे गहिराई'।
'तरहुत' 'पथरहिं तस कइ' बांधी। 'कतहुं न सूझइ आंतरु' सांधी।
'डुबुकी(कि) फिरे' 'आछे पैराऊं'। तिल 'एक नीर घटइ न[हि] काऊं'।
नीर डरावन हरियर बानूं। 'झांखत' हिए 'कांप तस पानूं'।
जो खिसि परइ 'सो जमपंथ' जाई। 'परतहि मांछ मंगर' 'तेहि' खाई।
राइ बीसि 'एक जउ चलि' आवहि 'कैसहुं लिएहुं' न जाइ।
'दइ कै (कइ)' आपनु 'भागहि' साहन जाहि गंवाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६, बी० ६९-७१।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते खंदक बर गिर्दे शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० देषि जाइ। २. बी० की। ३. बी० पुरुस। ४ बी० की र (रे) गहराई। (२) १ बी० तरहुत। २. बी० पथरह अस कै। ३. बी० कितहि न सूझै अंतरु। (३) १. बी० डभकै भरी। २. बी० अच्छे पैराऊ। ३. बी० इक पानि न सूझैं काऊ। (४) १. बी० देषत। २. मै० कीन्ह डर आनूं। (५) १. बी० सु जमपुरि। २. बी० परतेह मगर मंच्छ। ३. बी० लै। (६) १. बी० औ मिलि कै। २. बी० कैसै लियो। (७) १. मै० डडी (डंडि) कइ। २. बी० भाजहि।

अर्थ—(१) गोवर की खाई जाकर देखी। पचास पुरसे (५० × ३½ = १७५ हाथ) की उसकी गहराई थी। (२) वह तल से ही पत्थरों से इस प्रकार बाधी गयी थी कि उसमें कहीं पर भी अन्तर या सन्धि नहीं सूझती थी

(३) उसमें डुबकी लगा कर अच्छे-अच्छे तैरने वाले भी लौट चुके थे; उसका जल कभी तिल [भर] भी नहीं घटता था। (४) उसका जल डराने वाला तथा हरे वर्ण का था; यदि उसको कोई झाँकता था तो वह अपने हृदय मे पर्ण (पत्ते) के जैसा काँपने लगता था। (५) जो उसमे गिर पड़ता था, वह यम (मृत्यु) के मार्ग में गमन करता था, [क्योंकि] गिरते ही उसे मत्स्य तथा मकर खा जाते थे। (६) यदि बीस-एक राय [भी] चले आते, तो किसी प्रकार भी वह खाई उनके अधिकार में नही जा सकती थी; (७) वे अपना ही देकर भाग जाते और साधन (सैन्यादि) को भी वहाँ पर गँवा कर जाते।

(२४)

'तेहु' 'चाहि' 'जो कोटु' उचावा। 'कारु' सेतु गढि पाथरु लावा।
'पुरस (पुरुस)' तीस 'यक' आहि उंचाई। 'हाथ बीस केरी चकराई'।
कौसीसेहि 'सब' ईंगुर लागा। ऊपर 'हेर' त खिसि पर पागा।
तेल 'धार' जइसि चिकनाई। ऊपर 'चांटी चरे (चड़ी)' न जाई।
सगर 'देवसु' चहुं दिसि फिरि 'आइय'। सूरु 'आंथवइ' 'ओर' 'न पाइय'।
बीस 'पवरि बीसउ' जरि लोहे 'सोनेइं' 'रसे' किवार।
'देवसहिं रहहिं' पंवरिया 'राति भंवहिं' कोटवार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७; बी० ७२-७४।

शीर्षक—मै०: सिफ़ते हिसार गिर्द शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. मै० एहुं। २. बी० चाहु। ३. बी० जो कोटु। ४ बी० कारु। (२) बी० मे चरणों का क्रम बदला हुआ है। १. मै० हाथ। २ मै० करि। ३. मै० पुरुप सात कइ हइ चौड़ाई। (३) १. बी० सभ। २ मै० देख। (४) १. बी० ढार। २. मै० देखत चढ़ी। (५) १. बी० द्योसु। २ बी० में नहीं है। ३. बी० अथवै पै। ४. बी० वार। ५. बी० में नहीं है। (६) १. बी० पैरि बीसै। २. बी० सोनै। ३. मै० मढे। (७) १. बी० द्योसहि राषहिं। २. बी० रति राषैहि। दोहे की दोनों पंक्तियों के बीच बी० मे एक और पंक्ति है: षतरी षगेहि बहुत वीर दानि जुधि जूझार।

अर्थ—(१) उसी प्रकार जो परकोटा उठाया हुआ था, उसे देखिए। उसमें श्वेत पत्थर कारुओं (पत्थर-कटों) ने गढ़-गढ़ कर लगाये थे। (२) उसकी ऊचाई तीस पुरसे (३०×३ १०८ हाथ) के लगभग थी और उसकी

चौड़ाई बीस हाथ की थी। (३) समस्त कौसीसों (कपिशीर्षों—बुर्जों) पर ईंगुर लगा हुआ था, और उनके ऊपर देखिए तो पाग (पगड़ी) गिर पड़ती थी। (४) उसकी चिकनाहट तेल की धार जैसी थी, इसलिए उसके ऊपर चींटी भी न चढ़ सकती थी। (५) सारे दिन उसके चारों ओर फिर आइए और सूर्यास्त हो जाए, तो भी उसका अन्त न पाइए [वह इतना लम्बा था]। (६) उसमें बीस पौरियाँ थीं, बीसों लौह-मण्डित थीं, और सोने से मढ़े हुए उनके कपाट थे। (७) [उनकी सुरक्षा में] दिन में पौरिये रहते थे और रात में कोटपाल भ्रमण करते (चक्कर लगाते) थे।

(२५)

'बांभन' खतरी 'बैंस' 'गोवारा'। 'खांडरवा[र]' 'अउ' अगरवारा।
बसहिं तिवारी 'अउ' पंचवानां। धाकर 'जोसी' 'अउ' जजमानां।
बसहि 'खंधाई' 'अउ' बनिजारा। जाति सरावग 'अउर' प(पं)वारा।
सोनी बसहिं सुनार बिनानी। रावत लोग 'दसाए' आनी।
ठाकुर 'बहुत' बसहिं चौहानां। परजा 'पौनि' गिनति को जानां।
बहुत 'चाप(पि)' 'दरमरि उठ' 'खोरिन्ह हींडि' न जाइ।
'बीस' 'बार बस' 'गोवरा' 'मानुस' चलत भुलाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८; बी० ७८-८०।

शीर्षक—मैं० : सिफ़त खल्के शहर कज़ सुकना बूदन्द दर आं शहरे मजकूर।

पाठान्तर—(१) १. बी० बाभन। २. मैं० बसहिं। ३. बी० गवारा। ४ मैं० गहरवार। ५. बी० औ। (२) १. बी० औ। २. मैं० चौबे। ३. बी० औ। (३) १. बी० खदाइ। २. बी० औ। ३. बी० और। (४) १. बी० बसायो। (५) १. बी० बहुता। २. बी० नाव। (६) १. मैं० जात। २. बी० दरम बुठ। ३. बी० घोरन हाथि। (७) १. मैं० तीस। २. बी० पाच (?) रे। ३. बी० गोबारा। ४. बी० मानस।

अर्थ—(१) [नगर में] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ग्वाल, खण्डेलवाल और अग्रवाल बसते थे; (२) तिवारी, पंचवान, धाकड़ और जोशी बसते थे जो यजमान (यज्ञ कर्म करने वाले) थे; (३) खंधाई (गन्धी), बनजारे, श्रावक और पंवार निवास करते थे; (४) सोनी (सोने का पानी चढ़ाने वाले) तथा विज्ञानी सुनार बसते थे और रावत थे जो (वहाँ) लाकर बसाये हुए थे

(५) बहुतेरे चौहान ठाकुर [वहाँ] निवास करते थे। प्रजा-पवनियों की गिनती कौन जानता ? (६) [वहाँ की भरी गलियों में] चंप (दब) कर बहुतेरे दलित-मृदित हो उठते थे, और उन में चला-फिरा नहीं जाता था। (७) यदि बीस दिनों तक भी गोवर में कोई निवास करता, तो भी वह मनुष्य चलते हुए [मार्ग] भूल जाता।

(२६)

'राइ कुरी' 'कइ' 'बइस अथाई' । हम पुनि 'ठाढ' भए तहां जाई।
अति 'बिदबांस' पंडित 'ते पढे' । 'रूपि बेरासि दइय के गढ़े'।
अधरन 'लागइ' पान चबाहीं। दांत ति मुख 'महि' 'दीसहिं' नाहीं।
दान झूझ 'के' 'बिरुद बोलावहिं' । 'भांटन्हि कापर घोर देवावहिं'।
हाथ खरग 'वै अरि' सिर देही। 'बैरिन्ह ऊपरि' बीरा लेहीं।

'छत्तीस कुरी' राजपुत 'भूंजहिं सासन गांउं'।
'देस के डांड आव महरई कहं' तिन्ह कुंवरनि के 'नांउं' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६; बी० ८१-८३।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते मजलिसे तरकश बन्दाने राय महर गोयद।
बी० : सिफति रावलाह् की।

पाठान्तर—(१) १ मैं० राजकुरी। २. बी० की। ३. बी० बैठ औथाई। ४. मैं० मैं नहीं है। (२) १. बी० बिधवांस। २. बी० तोहि पठा। ३. बी० रूपि मदन गति बिधना गढ़ा। (३) १. बी० लागैं। २. बी० महिं। ३. मैं० सूझहिं। (४) १. मैं० कार। २. बी० बिरद बुलावहिं। ३. बी० भाटेहिं कौंपरु देहि दिवावैहि। (५) १. मैं० बैरिन्ह (दे० दूसरा चरण)। २ बी० बैरी उपरी। (६) १. बी० छतीस्यौं कुरि। २. बी० भूचहि सहंस ये गाँव। (७) १ बी० देस का डंडु महर कै आवै। २. बी० नाव।

अर्थ—(१) राजकुल के लोगों की वहाँ अथाई (गोष्ठी) बैठती थी, पुनः हम भी वहाँ जाकर खड़े हो गए। (२) वे अत्यधिक विद्वान् तथा पढ़े हुए पण्डित थे और रूप तथा विलास के लिए दैव के द्वारा निर्मित थे। (३) वे पान चाबते रहते थे, जो उनके अधरों पर लगता रहता था; [पान से रंग कर लाल हो जाने के कारण] उनके मुखों में जो दांत थे वे दिखते नहीं थे। (४) वे दान और युद्ध के विरद [भाटों से] बुलवाया करते थे और पुरस्कार में [भा]टों को कपड़ [त]था घोड़ दिलाते थे। (५) वे खड्ग का हाथ वैरियो

के सिरों पर देते थे, और वैरियों के ऊपर [खड्ग चलाने के लिए] वे बीड़ा लेते थे। (६) ऐसे छत्तीस कुलों के राजपुत्र [राज्य में] शासनादेशों से प्राप्त ग्रामों का भोग करते थे। (७) उन कुमारों (कुमारभुक्तों) के नामों से महर को देश भर के दण्ड (कर) आते रहते थे।

(२७)

'सून' फूल 'हाटन्ह सब' फूला। 'जिउ बिमोहि गा' देखत भूला।
अगरु चंदनु 'सबु' धरा बिकाई। कूंकू 'परिमल' सुगंध 'खंधाई'।
'बेनां अउरु' 'कपूर' सुहावा। 'मेद' 'कस्तूरी महंक सनावा'।
पान 'उडांगर (अडागर)' सुरंग सोपारी। जैफर लौंग बिकाइ 'छुहारी'।
'दौनां' मरुवा 'कुंद' निवारी। गूंदे 'हार' ति 'बेचहिं' मारी।
खांड 'चिरउंजी' दाख खुरुहरी बहुतइ लोग 'बेसाहिं'।
हीर 'पवार' 'सोन भल' कापर 'जत चाहिय सब आहिं'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०; बी० ८४-८६।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते बाज़ार इत्रियात शहरे गोवर व खरीदने ख़ल्क़।

पाठान्तर—(१) १. बी० सोवन। २. बी० हाटन (?) भल। ३. बी० जीउ बिमोहा। (२) १. बी० सभु। २. मै० परीमल (परिमल)। ३. बी० सुहाइ। (३) १. बी० बीना औरु। २. बी० कफूर। ३. मै० मोद। ४. बी० कस्थूरी मह घसि ल्हावा। (४) १ मै० नगरखंड। २. बी० चहारी। (५) १ बी० दोन। २. बी गूद। ३. बी० हर। ४. बी० बेचिहै। (६) १. बी० चिरौंजी। २. बी० बसाहि। (७) १. मै० पंवर। २. बी० बहु। ३. बी० भवै अैसे अैसे साहि।

अर्थ—(१) [गोवर की] हाटों में सभी [प्रकार के] प्रसून तथा फूल फूल रहे थे। उनको देखते ही जी विमुग्ध हो जाता और भ्रमित हो जाता था। (२) अगुरु और चन्दन —सभी [उन हाटों में] रखे हुए बिकते रहते थे; कुंकुम, परिमल [आदि] सुगन्धित द्रव्य महकते रहते थे। (३) वीरण (खस) और सुहावना कर्पूर था, मेद था, और कस्तूरी थी जो महक से सनी हुई थी; (४) अडाकर (समूचे) पान और अच्छे रंग की सुपारी थी, जायफल, लवंग तथा छुहारी बिकते थे; (५) दौना, मरवा, कुंद और निवारी [के] गूंथे हुए हार माली बेचते रहते थे। (३) खांड, चिरौंजी, दाख (मुनक्का) तथा खुरहुरी को बहुतेरे लोग मोल लेते रहते थे। (७) हीरा प्रवाल सोना और अच्छा कपड़ा जितना भी चाहिए सभी था

(२८)

'हाट छरहंटा पेखन' होई। 'देखहिं' निसरि 'मनुस अउ' जोई।
बरुवा राम रमाइनु कहहीं। गावहिं गीत नांच भल करही।
बहुरूपी 'बहु भेस फिरावा'। बार 'बूढ़' चलि 'देखइ आवा।
'राधा कान्ह् देस छंद ल्यावहिं'। मटकि मुंड 'मसि देह चरावहिं'।
'गावहिं गीत औ (अउ) कहहिं' पंवारा। नट नाचहि 'अउ' बाजहिं तारा।
'भामनगारी' कोड 'चरित हम देखा होइ' अपार।
'अंछ' बधावा 'गोबर' 'घरि घरि मंगराचार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११, बी० ६०-६२।

शीर्षक—मै० : सिफ़त बाज़ीगरां दर बाजार शहर गोबर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० हाट चढ़े तो पिपिला अस। २. बी० ते देषनि। ३ बी० मनु औ। (३) १. बी० बहु भेस फिरावहि, मै० बहु फेग (भेस) फिरावा। २. मै० बूड। ३ बी० देषन आवहिं। (४) १. मै० गासई गावहि भल छंद लावहिं। २. बी० लै निसेहिं चरावहि। (५) १. मै० कीनर गावहिं होइ। २. बी० औ। (६) १. बी० भाटमगारी। २. बी० रचित देषन सबै। (७) १. बी० इछ। २ बी० गोबर। ३. बी० घर घर मंगलचार।

अर्थ—(१) उन हाटों में छरहंटा (छल-कृत्य) के प्रेक्षणक (तमाशे) होते रहते थे, जिन्हें पुरुष और स्त्रियाँ निकल-निकल कर देखते थे। (२) बरुवा (बटु) राम का रामायण कहते थे, वे गीत गाते थे और अच्छा नृत्य करते थे। (३) बहुरूपिए अनेक वेष धारण करते रहते थे, जिन्हें चल कर देखने के लिए बालक-वृद्ध [सभी] आते थे। (४) वे राधा-कृष्ण के सुन्दर छद्म लगाते (धारण करते) थे तथा वे [राधा के छद्म के लिए] सिर पर मटकी और [कृष्ण के छद्म के लिए] देह पर मसि चढ़ाते (लगाते) थे। (५) वे गीत गाते और पंवारे कहते थे, नट नृत्य करते और [उन नृत्यों पर] ताल बजते थे। (६) हमने देखा कि वहाँ पर भुलावे में डालनेवाले अपार खेल तथा चरित्र होते थे। (७) गोबर [भर] में बधावा और घर-घर में मंगलाचार होता रहता था।

(२९)

'कहउं महर सीह' बारु 'बखांनी'। 'बइठ सीह् गढ़ि धरे' बिनांनी।
बहुत बीर तिन्ह देखि पराहीं हिएं लाग डर खेंदि न खाही

'देखत पवरि डीठि' फिरि जाई। एक सूति 'सुतिहार' उचाई।
'ओपि' रूप 'कइ' पानीं ढारा। अस 'कइ' महर दुवार 'संवारा'।
सात लोह 'एकहिं' 'औटाए'। बजर केवार 'पंवरि गढ़ि लाए'।
'राति जु' 'बइसइ' चौकी कुंत खरग 'रह' छाइ।
पाखर 'सहस साठ फिर' 'चांटहि' संचरि न जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२, बी० ८७-८९।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते दरबारे राय महर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहौं महर सभ (?)। २. मै० बखानी। ३ बी० बैठ (?) स्यंघ घरि धरौ। (२) १. बी० चाहत। २. बी० बी। ३ बी० पीर। (३) १. बी० देखि पौरि दिप्टि। २. मै० सुतिधार। (४) १. मै० औटि। २. बी० कै। ३. बी० कै। ४ बी० दुवारा। (५) १. बी० केये। २. बी० औटाइ। ३. बी० पौरि धरि लाइ। (६) १. मै० रातिहिं। २. बी० बैसहि। ३. बी० रहि। (७) १. बी० साठिन आगर। २ बी० चींटी।

अर्थ—(१) [अब] मैं महर के सिंह-द्वार को बखान (वर्णन) कर कह रहा हूँ, [जिस पर] सिंह बैठे हुए थे, जिन्हें विज्ञानी (सुतारों—गढ़ने वालो) ने गढ़कर (बना) रखा था। (२) बहुतेरे वीर [भी] उन्हें देख कर भाग जाते थे, उन्हें हृदय में डर लगता था कि वे दौड़ा कर (पीछा कर) उन्हें खा न जाएँ। (३) उस पौरी को देखते दृष्टि फिर जाती थी (उस पर ठहरती नही थी), [लगता था कि] सूत्रधार ने एक ही सूत (नाप-जोख) में उसे उठाया था। (४) उसको चमकाकर [उस पर] रौप्य (चाँदी) का पानी ढाला हुआ था, इस प्रकार से महर का द्वार संवारा हुआ था। (५) सात [चादरों के ?] लौहों को एक मे औटा कर बनाए हुए वज्र (फ़ौलाद) के कपाट उस पौरी में गढ़ कर लगाये हुए थे। (६) रात्रि में (उस पर) जो चौकी बैठती थी (जो पहरेदारी होती थी), [उसके] कुन्त (बर्छे) और खड्ग छाये रहते थे, (७) साठ सहस्र पाखरे हुए (कवचित) सैनिक फिरते [हुए पहरा देते] थे, [जिसके कारण] चींटे से भी वहाँ संचरण नहीं किया जाता था।

(३०)

फुनि 'हउं कहंउं' 'धौरहर' बाता। 'ईंगुर' पानि 'ढारि किय' राता।
सत खंड पाटा अनवन भाती स सा ठि चौखंडी भई जिन्ह पाती

'असि' रचना 'किय' कौन बिनानी। 'साठि' करस 'लै' धरे 'सोनबानी'।
चउरासी सै(सइ) 'भांति' उचाई। लिपी देररीं 'अतें' सुहाई।
कनक खंभ 'जडि' मानिक 'धरे'। जगमगाहि 'जनु तरई' भरे।

अगरु चंदन 'उपंटना' 'अछइ' 'सुहाई' बासु।
देवलोक 'अस' भाषहि 'म कहुं आहि कबिलासु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२; बी० ६३-६५।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते क़सरहाय राय महर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ कहौ। २. मै० धौराहर। ३ बी० हींगुर। ४ बी० ढरि किही। (२) १. बी० बिन। २. बा० अनअन। ३. मै० सात। ४ बी० भइ वहु। (३) १. बी० अस। २ बी० की। ३. मै० सात। ४. मै० मे नहीं है। ५. बी० सुबानी। (४) १. मै० में नहीं है। २. मै० अती। (५) १. बी० जानौं। २. बी० जरे। ३ बी० जानौ तरियर। (६) १. मै० दुहु तुलइं। २. बी० अछै। ३. मै० सुहावनि। (७) १. बी० सभ। २. बी० सुष ही आई बिलासु।

अर्थ—(१) पुनः (इसके अनन्तर) मैं धवल-गृह (राज-प्रासाद) की बात कह रहा हूँ, जो हिंगुल का पानी ढाल कर राता (लाल) किया हुआ था। (२) उसका सतखंडा (सप्तभौमिक प्रासाद) अनोखी भाँति से पाटा हुआ था, और उसमें सात चौखण्डियाँ थीं जिनकी पंक्तियां [बनी] हुई थी। (३) ऐसी रचना किस विज्ञानी [विश्वकर्मा] ने की थी ? (सातों चौखण्डियों पर) साठ कलश ले (बना) कर रखे हुए थे, जो सोने का पानी किए हुए थे। (४) [महर की चौरासी रानियों के लिए] चौरासी [सदन] सुन्दर (?) भाँति से उठाये हुए थे, जिनमें अत्यधिक सुहाई देररिएँ (धारियाँ ?) लिखी (खिची ?) हुई थीं। (५) सोने के खम्भ माणिक्यों से जटित होकर रखे हुए थे जो ऐसे जगमगाते थे जैसे वे तारिकाओं से भरे हुए हों। (६) अगुरु, चन्दन तथा उपंटने (?) की सुहावनी वास [उनमें] बनी रहती थी। (७) देवलोक [के प्राणी] ऐसा कहते थे कि "कहीं यही तो कैलास (शिवलोक) नहीं है ?"

(३१)

राइ महर रानीं 'चउरासी'। इक इक के 'लर' चेरि 'इकासी'।
'बेगर' बेगर 'होइ जेवनारा'। बेगर मंदिर सेज संवारा।
पाट 'महादे' फूला रानी सबइ 'अचेति वह अही' सयानी

अगर चंदन फूल 'अउ' पानूं । कूंकूं मेद न 'बेरसहि आनूं' ।
रचे हिंडोला झूलइं नारी । गावहिं अपर सब जोबन बारी ।
अरथ दरब 'घोर अउ हस्ति(हस्ती)' गिनत न आवइ काउ ।
अन धन पाट 'पटोर भल' 'कउतुक भूला' राउ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४; बी० ६६-६८ ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते हरमां राय महर किहश्ताद व चहार बूदंद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० चौरासी । २. बी० कै घर । ३. बी० यीक्यासी । (२) १. बी० बेग । २. बी० हैइ ज्यैंनारा । (३) १. मै० महादेवि । २. बी० अचेती उहै । (४) १. बी० औ । २. बी० कवरि तन बानू । (५) बी० में यह पंक्ति हाशिए में मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा इस प्रकार दी हुई है : चरे (रचे ?) हिंडो [ला] उवरैं ना [री] : गावहिं गी[त] सब जो[ब]न बारी । (६) १. बी० औ घोर बर । (७) १. बी० पटोरा हस्ती । २. बी० तीस कौअर ।

अर्थ—(१) राजमहर की चौरासी रानियाँ थीं, और एक-एक (रानी) के नीचे (साथ) इक्यासी-इक्यासी चेरियाँ थीं । (२) उनके ज्यौनार अलग-अलग होते थे, और अलग-अलग मन्दिरों (भवनों) में उनकी शैयाएँ सँवारी जाती थीं । (३) पट्ट महादेवी फूला रानी थी; और सब रानियाँ अचेत (मुग्धा) थीं, एकमात्र वही सयानी (प्रौढ़ा) थी । (४) अगुरु, चन्दन, पुष्प, सज्जित तांबूल, कुंकुम और मेद का भोग वही करती थी, अन्य [रानियाँ] नहीं करती थीं । (५) हिंडोले रचे हुए थे, जिन पर नारियाँ झूलती थीं, अन्य सब यौवनवती बालिकाएँ गीत गाती थीं । (६) महर के अर्थ, द्रव्य, घोड़ों और हाथियों को कदापि नहीं गिना जा सकता था । (७) राजा (राजमहर) अन्न, धन, पाट (रेशम), अच्छे और पट्टकूल (रेशमी वस्त्र) के कौतुक में भूला रहता था ।

३. चांदा-जन्म एवं विवाह खण्ड

(३२)

सहदेव मंदिर चांद 'अवतारी' । धरती सुरगि भई उजियारी ।
'पहिलिइं' घरी 'भएउ' अवतारू । 'दुइ रातन(नि) जानौं' 'सयंसारू' ।
सातवं चंद्रु नखत भा मांगा । जानौं सूरु दिपइ 'तिसु' आंगा ।

भई सपूरन 'चउदसि' राती। चांद महर 'धिय पदुमिनि' जाती।
राहु केतु 'दुइ' सेव कराहीं। 'सूकु' 'सनीछरु' 'पहरइं' जाहीं।

'अउर' नखत 'ओरगावन' आछहिं 'पंवरि' दुवारि।
चांद चलत नर 'मोहहिं' जगत 'भएउ' उजियार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५; बी० १०३-१०५।

शीर्षक—मैं० : तवल्लुद शुदने चांदा दर ख़ान-ए-महर व ख़िदमत फ़र्न्दने हमह सितारगान।

बी० : जिस पृष्ठ पर यह कडवक आता है, उसके ऊपरी हाशिए में मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में लिखा हुआ है "चांदा कौ जनमु।" प्रसंग एक कडवक पूर्व प्रारम्भ होता है, जो (३१ अ) के रूप में परिशिष्ट में दिया गया है, और वह कडवक प्रति में पूर्ववर्ती पृष्ठ पर है, यह भी विचारणीय है।

पाठान्तर—(१) १. बी० औतारी। (२) १. बी० पहली। २. बी० भयो। ३. मैं० दूज क चाद जानु। ४. बी० संसारू। (३) १. बी० सातवैं। २. मैं० चह। (४) १. बी० चौदसि। २. बी० घरि पदमनि। (५) १. बी० दोउ। २. बी० शूकु। ३. मैं० सनीचर। ४. बी० पहरैं। (६) १. बी० और। २. बी० उरगावन। ३. बी० पौरि। (७) १. बी० मोहे। २. बी० भयो।

अर्थ—(१) सहदेव के घर में चांद ने अवतार लिया तो धरती और स्वर्ग (आकाश) में उजाली (चांदनी) हो गयी। (२) [रात्रि की] प्रथम घड़ी में ही अवतार हुआ था, इसलिए संसार में मानो दो रातें हुई थीं। (३) उसकी माँग में सप्तमी का चन्द्र नक्षत्र [-वत्] हुआ, और उसके अंग (शरीर) में मानो सूर्य दीप्त हो रहा था। (४) [इस प्रकार] रात्रि सम्पूर्ण रूप से चतुर्दशी की हो गई, और पद्मिनी जाति की महर की वह कन्या [उसका] चांद हुई। (५) राहु तथा केतु दोनों उसकी सेवा कर रहे थे और शुक्र तथा शनैश्चर पहरे पर जा बैठे थे। (६) अन्य नक्षत्र उसकी सेवा में [उपस्थित होकर] उसकी पौरी के द्वार पर थे। (७) चांद से [उसको देख कर] मार्ग चलते हुए लोग मुग्ध हो जाते थे, और जगत् [उससे] प्रकाशित हो गया था

(३३)

'पांचउं' दिवसु छठी भइ राती। 'नेउता' गोबर 'छतीसउ' जाती।
घर घर 'कहं कर टेका' आवा। 'अउ' नेहि 'पाछे (पाछें)' 'बाज बधावा'।
महरी सहस 'सात' इक 'आई'। आंग मूंड 'संदुर अन्हवाई'।
बाभन सभा आइ 'जो' बईठी। काढि पुरानु रासि गनि दीठी।
'छठी क' आखरु 'दीख लिलारा'। 'उरधइ सों जाइहि' 'जम बारा'।
अगिनि 'पुरगु भा चांदहि' 'औ (अउ)' कट 'छुई' न जाइ।
जस उजियारें 'फतिगा' 'मरिहंहि' राइ उडाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६, बी० १०६-१०८।

शीर्षक—मैं० : रोजे पंजुमे शशमी शबे ज़ियाफ़ते रवांदा करदन व दीदन जुन्नार दां (दागं) तालअ्।

पाठांतर—(१) १. बी० पाँचवों। २. बी० न्यौता। ३. बी० छतीसै। (२) १ मैं० सभ कर नेउता। २. बी० औ। ३. मैं० ऊपर। ४. बी० बाजि बजावा। (३) १. बी० तीस। २. बी० आनी। ३. बी० सब सिंदुर अन्हवानी। (४) १. बी० जु। (५) १. बी० छठि का। २. बी० लिख्या लिलारू। ३. बी० उवरै सौ जाइहै। ४. बी० जमबारू। (६) १. बी० बरनु भया चांदेहि। २. मैं० अउर। ३. बी० छुवन। (७) १. बी० फतका (फतिगा—फ़ा०)। २. बी० मरिहैं।

अर्थ—(१) पाँचवें दिन को ही रात में [जब चांदा के जन्म की छठी रात थी] उसकी छठी हुई, गोबर की छत्तीसों जातियाँ आमन्त्रित हुईं। (२) [निमन्त्रण के उत्तर में] घर-घर का कर-टेका (नमस्कार) आया, और उसके बाद [उनके] बधावे बजे। (३) [तदनन्तर] लगभग सात सहस्र महरियाँ आईं, जो अंग तथा शिर में सिन्दूर से स्नात थीं। (४) ब्राह्मणों (पंडितो) की सभा जो आकर बैठी, उसने पुराण (ज्योतिष-ग्रंथ) निकाल कर उसकी राशि गिन कर देखी। (५) [उन्होने कहा,] "[इस कन्या के] ललाट में छठी का यह अक्षर (लेख) दिखाई पड़ रहा है कि ऊर्ध्व (अपने जीवन के सर्वोच्च समय) में ही यह यम-द्वार को जाएगी। (६) चांदा को अग्नि का पुटक (आच्छादन) हो गया है, और उसकी कट (शरीरयष्टि) [इस कारण] छुई नहीं जा सकती है। (७) जिस प्रकार [दीपक के] प्रकाश के लिए पतिंगे, उसी प्रकार [इसके रूप के लिए] राजा-गण उड़-उड़ कर आएँगे और मरेंगे।"

(३४)

'बरहें' मांस 'देसि' गई बाता। धौर समंद 'मावर' गुजराता।
तिरहुति अवधि 'बदांऊं जानी'। चहूं भुवन 'असि' बात बखानी।
'गोबरहि' आहि महर 'कइ धिया'। 'चांद नांउं' धौराहर 'दिया'।
'असि तिरिया' 'जउ मांगे पाइय'। अरथ लाइ 'कइ' 'व्याहइं जाइय'।
'राजा' के नित 'बरउत' आवहिं। बहुरि जाहिं 'पइ' उतरु न 'पावहिं'।

महरु 'कहइ' को 'मोरें जोगित' 'कासों करउ बिबाहु'।
टिकइतु 'मित सब को आहइं' जाति न 'देखउं काहु'।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७, बी० १०६-१११।

शीर्षक—मैं०: सिफ़ते जमाल सूरते चांदा दरहरमः महरहा मुश्तहिर शुद।

पाठांतर—(१) १. बी० बरहैं। २. मैं० में नहीं है। ३. बी० मारव। (२) १. बी० चांद उजियानी। २. बी० अस। (३) १. बी० गोवर। २. बी० की धीया। ३. बी० सरग चांद। ४. बी० दीया। (४) १. बी० अस तिरियौ। २. बी० मागें जौ पइयहि। ३. बी० कैं। ४. बी० जाइ बिवाहहि। (५) १. बी० राजे। २. बी० परियन। ३. बी० पै। ४. बी० पावैहि। (६) १. बी० कहै। २. बी० मोरि जुगति। ३. बी० का तासौं करै बिहाउ। (७) १. बी० परयलु कोय को देपो। २. बी० देपौं काउ।

अर्थ—(१) बारहवें महीने में [यह] बात देश में फैल गयी—वह धुर समुन्द (द्वार समुद्र), माबर (दक्षिण भारत का पूर्वी समुद्र तट) और गुजरात [तक] जा पहुँची; (२) तिरहुत, अवध तथा बदाऊँ ने यह बात जानी और चारों भुवनों में यह बात इस प्रकार बखानी गई (वर्णित हुई), (३) "गोबर में ही महर की एक कन्या है, जिसका नाम चांदा है और जो [महर के] धवल-गृह (प्रासाद) का दीपक है। (४) ऐसी स्त्री यदि माँगने से पा सकिए तो अर्थ (संपत्ति) लगा कर उसे व्याहने के लिए जाइए।" (५) राज (महर) के पास नित्य वर होने के आकांक्षी आते थे, वे लौट जाते थे किन्तु उत्तर नहीं पाते थे। (६) महर कहता था, "मेरी योग्यता (जोड़ी) का कौन है जिससे मैं (कन्या का) विवाह करूँ? (७) टिकइत (तिलकधारी) तथा मित्र सभी कोई (बहुतेरे) हैं, किन्तु [उनमें से] किसी में [अपनी] जाति नहीं देख रहा हूँ।"

(३५)

'चउथें बरिसि धरिसि' जउ पाऊ। 'जइत' बोलावा बांभन 'नाऊ'।
दीन्हि सुपारी 'मोतिन्ह' हारू। 'कहिहु' महर 'सों' मोर 'जुहारू'।
'अउ अस कहेहु' 'मोर तूं' भाई। 'राजा नइ कइ करहु' सगाई।
'औ' जस 'जानि[सु]' 'कहिसु' संवारी।
'जइसइं बर घर सुनी(नि) रे संकारी'।
महर 'कें राध' 'गवनहुं पइ' आजू। हम चाहत 'सु(सो) कीजै' काजू।
'एत कही कइ' बांभन नाऊ 'दोऊ' 'दीत' चलाइ।
बरी चांद बावन 'कहुं' बेगि 'कहउ' मोंहि आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८; बी० ११२-११४।

शीर्षक—मैं० : फ़रिस्तादन गए जैत बरंभन व हज्जाम रा बर महर बराए पैग़ाम बावन रू।

पाठान्तर—(१) १ बी० चौथें बरसि धरसि। २. बी० ज्योतिषि। ३. बी०······न्हाउ। (२) १. बी० मोतिका। २. बी० कहसि। ३. बी० सौं। ४. बी० छुहारू। (३) १. बी० औ अस कहौ तु। २. बी० तु मोर त। ३. बी० मोसैं नवि करि करौहु। (४) १. मैं० और। २. बी० जानौहु। ३. बी० कहहु। ४. बी० जैसे पुरषु न पावहि गारी। (५) १. मैं० कहेसि। २. बी० कहौन। ३. मैं० हहि आपन। (६) १. बी० अस करि करियहि। २. बी० दाउ। ३. मैं० दीन्ह। (७) १. बी० कौंहु। २. बी० कहहु।

अर्थ—(१) जब उस (कन्या) ने चौथे वर्ष में पैर रखा, जैत ने ब्राह्मण तथा नाई को बुलाया। (२) उन्हें [उसने] सुपारी दी तथा मोतियों का हार दिया और कहा, "महर से मेरा जुहार कहना, (३) और ऐसा कहना, 'तुम मेरे भाई (जाति के) हो, इसलिए हे राजा, तुम मुझसे नमित होकर सगाई (संबंध) कर लो।' (४) और भी जैसा-कुछ जानना, संवार कर कहना और जिस प्रकार से भी वर तथा घर [का बखान] सुनकर वह [प्रस्ताव को] सकारे, [उस प्रकार से कहना]। (५) महर के निकट, हो न हो, आज ही जाओ, और हम जो कार्य चाहते हैं उस कार्य को करो ३ इतना कहकर

(३६)

'बांभन' नाऊ 'गए सीह' बारू। देखि महर 'दुहुं' कीन्ह जोहारू।
महर कहा 'कित' पांडे आवा। 'ओहट लहि अवधारिय' पावा।
सुनहुं 'देउ' हम 'जइत' पठाए। धरम लागि 'तुम बिनती' आए।
वोहू आहि 'तुम्हारेउ' भाई। राजा 'नइ कइ' करहु सगाई।
धरम राज 'तुम जुग जुग पावहु'। हम 'दिए' 'बेटी' बोलु सुनावहु।
जाति करम 'गुन' आगर देस मान सभ लोग।
'सुनइ बोल जउ दीजइ बेटी' बावन जोगु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६; बी० ११५-११७।

शीर्षक—मैं० : आमदने बरंभन व हज्जाम बर महर व अर्ज़ करदने पैगामे बावन।

पाठांतर—(१) १. बी० बंभन। २. बी० जु गयो दुवारू। ३. बी० तिन्ह। (२) १. बी० कत। २. बी० औहट तौं अववौरे। (३) १. बी० देव। २. बी० जैंह। ३. बी० अस बीनति। (४) १. बी० तुम्हारा। २. बी० नवि करि। (५) १. बी० तुम्ह जाग जु पावोहु। २. बी० दे। ३. मैं० बेटी। (६) १. बी० कर। (७) १. बी० सुनै बोल जौ बेटी दीयहि।

अर्थ—(१) ब्राह्मण और नाई [सहदेव महर के] सिंह-द्वार पर गए, और महर को देखकर दोनों ने जुहार की। (२) महर ने कहा "पांडे (पंडित), तुम कहाँ (किस प्रयोजन से) आए हो? ओहट (दूर) से [निकट] पैर अवधारो (रक्खो)।" (३) [पंडित ने कहा,] "हे देव, सुनो; हम जैत के भेजे हुए हैं, और धर्म [के कार्य] के लिए तुम्हारे पास बिनती [करने] आए हुए हैं। (४) वह भी तुम्हारा भाई है, हे राजा, [अतः] तुम [उससे] नमित होकर सगाई (संबंध) कर लो। (५) तुम युगयुगान्तर तक के लिए धर्म का राज्य पाओ; 'हमने कन्या दी'—यह वचन सुनाओ। (६) जाति, कर्म तथा गुणों में वह अग्र (बढ़ा-चढ़ा) है और देश में सभी लोग उसको मानते हैं (उसका सम्मान करते हैं)। (७) [हमारी बिनती है कि] वह यह बात सुने कि आप बावन की जोड़ के लिए अपनी बेटी दे रहे हैं।"

(३७)

सुनु साधू तू पंडित सयाना। 'गनित कार' कस 'होसि' अयाना।
छठि 'आठइं कइसें' जुर रासी। 'घरी धरसि अउ' गनत भुलासी।

अस फुनि 'असकिति' करी न जाई। 'पाछें रहइ न तोरि' बडाई।
नेह सनेह 'जउ पुरत न' होई। 'कहां क पुरखु' 'कहां कइ' जोई।
'दइय क लिखना जो पइ आहा'। 'ताकों हम तुम करिहहिं काहा'।

तोर कहा 'हउं कैसे मेटउं' सुनि 'कइ रहउं' लजाइ।
'गनत रासि जनि भूलहि' 'पाछें' होइ 'पछिताइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०; बी० ११८-१२०।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने बरंभन व हज्जाम का अज तालअ् चाँदा व बावन।

पाठान्तर—(१) १. बी० गनतकार। २. बी० होई। (२) १. बी० आठै कैसे। २. बी० परी (घरी—फा०) धरत औ। (३) १. बी० असगति। २ बी० पाछौ रहै न तोर। (४) १. बी० जौ न पै। २. बी० कत कर पुरिषु। ३. बी० कहो कर। (५) १. बी० दई कर लिखा जो रु पै अहा। २ बी० तिह कउ हउं तू कहिहैह कहा। (६) १. बी० हौ कैसै मेटौ। २. बी० कै रहौं। (७) १. बी० गिनतकार जिनि भूलहु। २. बी० पाछै। ३ बी० गुहराइ।

अर्थ—(१) [सहदेव महर ने कहा,] "ऐ साधु (सज्जन पुरुष), सुन; तू सज्ञान पंडित है; तू गणित करने वाला है, [फिर] तू कैसे अज्ञ हो रहा है? (२) छठी (कन्या) तथा आठवी (वृश्चिक्) राशियाँ कैसे जुड़ सकती है? तू घड़ी का निर्धारण कर रहा है और गणना करते हुए भूल रहा है? (३) पुन:, ऐसी असत्कृति की नहीं जाती है, क्योंकि [ऐसा करने से] पीछे तेरा बड़प्पन न रहेगा। (४) यदि नेह-स्नेह पूरा न पड़ता हो, तो कहाँ का पुरुष [रहा] और कहाँ की स्त्री [रही]? (५) दैव का लिखा जो भी है, उसको हम और तुम क्या कर सकेंगे? (६) तेरा कथन मैं कैसे मिटाऊँ? [किन्तु] उसे सुन कर मैं लज्जित हो रहा हूँ। (७) राशियों की गणना करते हुए तू भूल न कर कि पीछे पछतावा हो।"

(३८)

'बाभन' टेक बोल 'कइ' पाई। 'बरउ' चांद 'रह' 'मोरि' बडाई।
'तू नरिंद' देस 'कर' राऊ। तो कहुं 'बुरह न आवइ' काऊ।
रासि 'गनित कर' नांउं न 'लीजा' 'दइ[य]आनि बिचि' बेटी 'दीजा'

'दइय' लागि काजु जो करा । 'ता कहुं' धरमु दुहूं जगि धरा ।
बाभन बोलु महर 'जउ' माना । 'गूवक बिरचि' देवाए पाना ।
सेंदुर फूल 'चढ़ाए' 'अउ मोतिन्ह' 'गैं (गियं) हार' ।
दीत 'चांदा बावन कहं' तीरि लाउ करतार ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१; बी० १२१-१२३ ।

शीर्षक—मैं० : बाज़ नमूदने ज़ुन्नारदार पैग़ामे बावन व क़बूल करदने महर व दहानीदने नेग ।

बी० में बाएँ हाशिए में इस कडवक के सामने मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति का लिखा हुआ है 'चांदा बावनै दीन्ही' ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बाभनि । २. बी० की । ३. बी० बगै । ४ बी० रहि । ५. बी० सोर । (२) १. बी० तू नरयंद । २. बी० कौ । ३ बी० बुरा न आवै । (३) १. बी० गिनतकरा । २. बी० लीया । ३. मैं० देइय जइत घर । ४. बी० दीया । (४) १. बी० दइ । २. मैं० तावर । (५) १. बी० जौ । २. बी० गोवा (गूवा—फ़ा०) परन्त । (६) १. बी० चरावा । २. बी० अध मोती । ३. मैं० गलहार । (७) १ बी० चाद बावन कैं ।

अर्थ—(१) ब्राह्मण को बोलने के लिए टेक मिल गई और उसने कहा, "आप चाँद को वर (ब्याह) दें तो मेरी बड़ाई रहेगी । (२) आप नरेन्द्र है और देश के राजा है, आपको कोऊ बुरा (अनिष्ट) कदापि न आएगा । (३) राशि-गणना का नाम न लीजिए, दैव को बीच में ला कर अपनी कन्या दीजिए । (४) दैव के सहारे से जो कोई भी कार्य करता है, उसको (उसके लिए) धर्म दोनों जगत् में रक्खा (सुरक्षित) रहता है । (५) जब महर ने ब्राह्मण का वचन मान लिया, उसने [जइत की भेजी हुई] गूवा (सुपारी) का सत्कार कर [सम्बन्ध-स्वीकार-सूचक] पान दिलाया; (६) उस पर सिन्दूर और फूल चढ़ाए तथा मोतियों का एक गलहार [उसे दिया] । (७) उसने चाँदा बावन को दी और कहा, "सृष्टिकर्त्ता [इस संकल्प को बाधाओं के समुद्र से खेकर] तट से लगाए ।"

(३९)

तेल फुलेल 'दुवउ' अन्हवाए । 'अपुरुब बस्तर काढि फिराए' ।
'महर' मंदिर 'जेएन्हि जेंवनारा' । 'प(पा)ए' पान भए असवारा ।

दिए असीस फिराए 'बागा'। रहसत चले बोलु 'भल' लागा।
जाइ 'जइत' घरि 'दीति' बधाई। बरी चांद बावन कहुं पाई।
'बिहफइ निसि अंधियारि बिहावा'। करहु बियाहु चांद घरि 'आवा'।
'जइत बुलाए' लोगु 'कुटुंब' जन सुनहु एक मंति आइ।
'महर' दीति बावन 'कह' चांदा 'चलहु बियांहइं' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२; बी० १२४-१२६।

शीर्षक—मै० : बाज गश्तन जुन्नारदारा व हज्जाम व बाज गुफ्तन कैफियत निकाह बर जैत।

पाठान्तर—(१) १. बी० दोउ। २. बी० अपुरब वस्त्र लेइ पहराये। (२) १. बी० महरि। २. बी० जेयें ज्यैनारा। ३. मै० लीन्ह। (३) १. बी० पागा। २. बी० टलु। (४) १. बी० जैतु। २. बी० दीन्ह। (५) १. बी० विप्रहि निसि अंधियार न भावै। २. बी० आवै। (६) १. बी० जैत बुलावा। २. बी० में नहीं है। (७) १. बी० महरि दीत। २. बी० कौ। ३ बी० चलौहु बिवाहि।

अर्थ—(१) महर ने दोनों को तेल-फुलेल से नहलवाया (स्नान कराया) और अपूर्व वस्त्र निकलवा कर दोनों को पहनवाए। (२) महर के मन्दिर (प्रासाद) में [दोनों ने] ज्योंनार जेंई, पान ग्रहण किए और वे [लौट कर जाने को] सवार हुए। (३) [उन्होंने महर को] आशीर्वाद दिया और बागा पहना, [तदनन्तर] वे हर्षित होते हुए चल पड़े, क्योंकि उन्हें [महर का] वचन भला लगा। (४) जैत के घर जा (पहुँच) कर [उन्होंने] बधाई दी और कहा, "चाँदा ने बावन को प्राप्त कर उसका वरण किया। (५) [वार-विशेष तथा चाँदा की धाय] बृहस्पति और अँधेरे पक्ष की रात्रि को छोड़ कर ब्याह करो तो चांद (चाँदा) घर आ जाएगी।" (६) जैत ने अपने आत्मीयों तथा कुटुम्बी-जनों को बुलाया और कहा, "आ कर एक मति (विचारणीय बात) सुनो, (७) महर ने चाँदा बावन को दी है; चलो जा (चल) कर उसे ब्याह लाएँ।"

(४०)

भार सहस 'दुइ' लाडू 'लावन'। 'जाजर पापड भए पकावन।
कीत' खिरउरा अउ' कुसियारा बहुत कं' ख'डौर भए'

चीर पटोर फिराए बागा। 'टांका लाख सौं' अभरन लागा।
डांडी असी नवै इक 'चली'। इक इक 'चाहि सों' इक इक 'भली।'
सात आठ सै घोर पलाने। भए असवार राइ 'अउ' राने।
'जस' वसंत रितु टेसू 'फूलें' चहुं 'दिसि देखिय' गात।
भाट 'कलावंत' भररिया 'तुरिया' तस होइ चली बरात॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३; बी० १२७-१२६।

शीर्षक—मै० : रवाँ करदन जैत बराय निकाह् बर करदन दरखास: गाय महर।

बी० मे बायें हाशिए में इस कड़वक के सामने कदाचित् भिन्न व्यक्ति के हस्तलेख में लिखा हुआ है : बरात चाली।

मै० में (२)।२ में 'कंडौर' शब्द बाद में और कदाचित् प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा बढ़ाया गया है।

पाठान्तर—(१) १. बी० दोइ। २. बी० लवाना। ३. बी० चाचर (जाजर—फ़ा०) पापर भये पकवाना। (२) १. मैं० कीन्ह। २. बी० षिरौरा औ। ३. बी० लाद सिविलड। (३) १. बी० टंका लाखु सँ। (४) १. बी० चाली। २. बी० चैहि स। ३. बी० भाली। (५) १. बी० औ। (६) १. बी० जैसैं। २ बी० में नहीं है। ३. बी० दिस दीसैं। (७) १. बी० बिदावंत। २. बी० में नहीं है।

अर्थ—(१) दो सहस्र भार (बैलों के बोझ ?) लावन (लावण्य पूर्ण) लड्डू, जर्जर (खस्ता) पापड़ तथा [अन्य] पक्वान्न हुए। (२) खिरौरे (दूध के लड्डू) और कुसियारे (गोझे) किये (बनाये) गए; खंडौर (?) तो इतने अधिक हुए कि वे संभाले नहीं जा रहे थे। (३) बरातियों को चीर (सूती वस्त्रों) तथा पटोर (रेशमी वस्त्रों) के बागे पिन्हाए गये, सौ लाख टंकों के आभरण [उनकी सज्जा में] लगे हुए थे। (४) अस्सी-नब्बे के लगभग डाँडियाँ (पालकियाँ) चलीं, और वे एक से एक अधिक सुन्दर (सुसज्जित) थीं। (५) सात-आठ सै घोड़ों पर पलानें पड़ीं, [जिन पर] राजे और राने सवार हुए। (६) जिस प्रकार बसन्त ऋतु में टेसू (किंशुक-पुष्प) के फूलने से चारों दिशाएँ लाल दिखाई पड़ती हैं, (७) उसी प्रकार भाटों, कलावन्तों, भरडा बजाने वालों तथा तुरही बजाने वालों से [सज्जित] होकर बारात चल पड़ी

(४१)

जहा 'महर' 'पटसारि' संवारी। आनि बरात 'तहां बइसारी'।
'छींपर' नेत पटोर बिछाए। 'कुसुंभी' 'एक रंग खंडि' लाए।
'दीया' सहस 'चहूं दिसि बारा'। 'घर बाहर सभ भा' उजियारा।
मानुस बहुत 'सो देखत' अहा। 'को कहइ' रात दिवस 'कोइ' कहा।
भइ 'जेवनार' फिराए पानां। बेद भनहिं 'बांभन' परधानां।

लाइ 'बरहिं' बावन 'कहं' चांदा आरति 'दीन्हि उतारि'।
जाति 'सरागति देखउं नाहीं' 'पटुवा भुइंहर बारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २४; बी० १३०-१३२।

शीर्षक—मै० : निशानीदने जैत रा दर ख्वान: व ख्वानदन निकाह मियान बावन व चाँदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० महरि। २. बी० पटसार। ३. बी० तही बैसारी। (२) १. बी० छीवर। २. बी० कसूभी। ३. बी० मक खंडी तर। (३) १. मै० दिया। २. बी० दिसह सँवारा। ३. बी० रात पटोर होय। (४) १. बी० देखतह। २. बी० का कहि। ३. बी० को। (५) १. बी० जिवनार। २. बी० बंभन। (६) १. बी० बरी। २. बी० कौ। ३. बी० महर उतार। (७) १. बी० सरभरि नाहिन देषत। २. बी० तीर लाउ करतार (तुल० पूर्ववर्ती ३८.७)।

अर्थ—(१) जहाँ पर महर ने पटशालिका (शामियानी) सँवार (निर्मित कर) रक्खी थी, वहीं पर बारात लाकर बिठाई गई। (२) छपहुले नेत्र और पटोर वहाँ बिछाए गए, जो वहाँ एक ही—कुसुंभी—रंग के फाड़-फाड़ कर लगाये गए थे। (३) एक सहस्र दीपक चारों ओर जलाए गए थे, जिससे घर में तथा बाहर प्रकाश हो रहा था। (४) [इस प्रकाश को] बहुतेरे मनुष्य देख रहे थे; कोई कहता था कि रात थी, और कोई कहता था कि दिन था। (५) ज्यौनार हुई और सज्जित तांबूल घुमाए गए, प्रधान ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे। (६) वर बावन को लगा (लक्ष्य) कर चाँदा ने आरती उतार दी। (७) कौन-कौन सी जातियाँ और जमातें [दर्शकों की भीड़ में] थीं, यह नहीं दीख पड़ रहा था, [यथा] बुनकर थे, भूमिघर थे और बारी थे।

(८२)

'गांउं तीस भल' दइजे पाए। 'भैंस' साठि 'एक' दरबि भराए।
घोर पचास आनि 'किए' ठाढे। टका लाखु 'लखु' 'अहहिं' ते बांधे।
चेरी चेर सहस 'एक पावा'। गाइ 'भइंसि' नहिं गिनतिन आवा।
कापर जाति 'बरन गुन काहा'। हीरा 'मोति लाग जिन्ह आहा'।
सेज 'संउर' कर नांउं न 'जानउं'। कहां 'सजि असि' काह बखानउं।

'चाउर' कनिक खाड घिउ 'लोनु' तेल बिसवार।
लादि टांड 'मोकरावा' 'बरदी भई' असंभार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५; बी० १३३-१३५।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते जहेज़ चाँदा गोयद।

बी० में बाएँ हाशिए में इस कड़वक के सामने कदाचित् किसी भिन्न व्यक्ति द्वारा लिखा हुआ है : बीवाह हुवी।

पाठान्तर—(१) १. बी० गाव तीस ईक। २. बी० उट। ३. बी० यक। (२) १. बी० कैं। २. मै० में नहीं है। ३. बी० लहहि। (३) १. बी० यक पाया। २. बी० म्हैसि। (४) १. बी० बरगै (बरन गुन—फ़ा०) कहा। २. बी० मोती सब लागे अहा। (५) १. बी० सैर। २. बी० जानौ। ३ बी० सेज कस। (६) १. बी० चावर। २. बी० लूंनु। (७) १. बी० मुकरावा। २. बी० बरदे भये।

अर्थ—(१) तीस अच्छे गाँव जइत ने दायज में प्राप्त किए और उसने साठ-एक भैंसे द्रव्य से भराए। (२) पचास घोड़े ला कर खड़े किये [गये]; वे लाख-लाख टंके [हुमेल आदि के रूप में] बाँधे हुए हैं (थे)। (३) सेविकाएं और सेवक एक सहस्र प्राप्त हुए, गायें भैंसें तो गिनती ही में नहीं आती थीं। (४) कपड़ों की जातियों और वर्णो को क्या गुना जाये, जिनमें हीरे-मोती लगे हुए थे? (५) शैयाओं और सौरों के नाम नहीं जानता हूँ; कहाँ पर ऐसी शैयाएँ हैं और [उनका] क्या वर्णन करूँ? (६) चावल, आटा, खाँड, घी, नमक, तेल, मसाले—(७) इनका टाँडा लाद कर मुक्त (रवाना) किया गया, तो इनकी बरदियाँ बेसँभाल हुई।

४. चांदा-पितृगृह-आगमन खण्ड

(४३)

'बरिख' दुवादस 'भएउ बियाहू' । 'चांदा' तिरी 'सूक' जस नाहू ।
'उनंत' जोबनु 'भइ' चांदा रानी । नांहु छोटु 'अउ अंखियउ' कांनी ।
'जाकहं सिउहर बोलइं' लोगू । 'सो लइ चांदइं दीन्हेउ' भोगू ।
हाथु पाउ मुख 'जरमि' न धोवा । औ 'तेहि' ऊपर संगि न सोवा ।
'दइया कवनि मइं कीन्हि' बुराई । 'सरई कचोरइं बूडउं' आई ।
राात दिवस मनि 'झुरवइ' 'ऊभि सांस कइ रो[व?]इ' ।
चांद 'धौराहर' ऊपरि बावन धरती 'सो[व?]इ' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २६; बी० १३६-१३८।

शीर्षक—मै० : दुवाज़ दहुम साले शुदन निकाह चाँदा बा बावन व नज़दीक न आमदने बावन ।

पाठान्तर—(१) १ बी० बरष । २. बी० भयो बिवाहू । ३. बी० चाँद । ४. बी० सुक्र । (२) १. बी० उमत । २. बी० भयो । ३. बी० इक अंषि है । (३) १. बी० जाकौ सहुरव बोलै । २. बी० सो लौ चांद दीन्ह अस । (४) १. बी० जनमि । २. बी० तिहि । (५) १. बी० दइ कौन मैं कीन्ह । २. बी० सर कजैरै बूडौं । (६) १. बी० झूरवै । २. बी० उभ सांस लै रोई । (७) १. बी० धौरहर । २. बी० सोइ ।

अर्थ—(१) बारह वर्ष की अवस्था में विवाह हुआ, किन्तु चांदा स्त्री का शुक्र जैसा काना स्वामी था । (२) जिस समय चाँदा रानी उनन्त यौवन में हुई, उस समय उसका स्वामी छोटा तो था ही, उसकी एक आँख भी कानी थी । (३) जिसको लोग सिउहर कहते थे, वही ले कर चांदा को भोग के लिए दिया गया था । (४) वह [गन्दा इतना था कि] हाथ-पैर और मुख वह जन्म भर भी न धोता था, इसके अतिरिक्त वह चाँदा के साथ सोता भी न था । (५) [चाँदा कहती,] "हे दैव, मैंने कौन सी बुराई की [थी] कि शराव और कच्चोल में मै यहाँ आकर डूब रही हूँ ?" (६) वह रात-दिन मन में सन्ताप करती और ऊँची श्वास करके रोती । (७) चाँदा धवल-गृह के ऊपर (ऊपरी खण्ड में) सोती और बावन धरती पर (भूमि-तल के खण्ड में) सोता ।

(४४)

'बरिसु दिवस' 'भा' चांद बियाहें। सूरु न देखी 'आछिइ छाहें'।
पिउ 'अनतिइ' निसि सेज दुहेली। 'सो धनि कइसें जियइ' अकेली।
बावन 'काउ पूछ नहि' बाता। 'हउं रे न चीन्हउं' कार कि राता।
'एकउ' साधि न हिएं बुझानीं। 'मुइउं' पियास नांक 'ल्गहि' पानी।
'एहिं' परिहंसि उठि 'मइकें जाऊं'। 'तिय सों रांध सुहागिनि नाऊं'।
ननंद बात 'सभ' सुनि 'कइ' कही महरि 'सों' जाइ।
'दीदी' जाइ मनावहु चांदा 'चली' कुहाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७; बी० १३९-१४१।

शीर्षक—मै० गिरियः व ज़ारी करदन चाँदा अज़ दूर मानदन बावन शुनीदन ननद।

मै० में (५) में 'रांड' था जिसे बाद में 'रांध' बनाया गया है।

पाठान्तर—(१) १. बी० बरसु द्यौंस। २. बी० भया। ३. बी० आछै छाहा। (२) १ बी० अनतीइ। २. बी० सा घन कैसे जिवै। (३) १. बी० काहु न पूछै। २. बी० हैं का चीन्हौ। (४) १. बी० येकौ। २. बी० मुयो। ३. बी० लिहि। (५) १. बी० यैं। २. बी० मरि करि जाउ। ३. बी० पिय स्यौं रांड सुहागनि नाउ। (६) १. बी० तस [हाशिए मे है]। २. बी० कै। ३ बी० सौ। (७) १. बी० देदे (दीदी—फ़ा०)। २. मै० में यह शब्द नहीं है।

अर्थ—(१) चाँदा के ब्याह के एक वर्ष के दिन हो गए, किन्तु सूर्य (पति) ने उसे अच्छी छाया (भावना) से [कभी] न देखा। (२) [उसने कहा,] "जिसका प्रिय अन्यत्र रहता हो और जो रात्रि में शैया में दुःखित रहती हो, वह स्त्री अकेली [रह कर] कैसे जी सकती है? (३) बावन कभी मुझ से बात नहीं पूछता है और मैं नहीं पहिचानती (जानती) हूँ कि वह काला (कुरूप) है या राता (सुन्दर)। (४) [विवाहिता होते हुए भी] हृदय म (की) मेरी एक भी साध (आकांक्षा) न बुझी, [मानो] नाक के बराबर पानी होते हुए भी मैं प्यासी मर गई। (५) इस परिहास से [अच्छा तो यही होगा कि] उठ कर मैं मायके चली जाऊँ; मेरा 'स्त्री' की अपेक्षा सुहागिनी (मात्र) नाम श्रेस्ठतर होगा। (६) उसकी ननद ने सारी बातें सुनकर महरी से जाकर कहा, (७) "दीदी को जाकर मनाओ, चाँदा रूठ कर जा रही है।"

(४५)

सुनि 'कइ' महरि चांद पहिं आई। काहे बहुवरि चलिसि कुहाई।
दूध दांत 'हसि' बिटिया बारी। 'तूं का जानसि पुरुष' रिहारी।
तू 'अचेति' पुरुषहि का जानसि। बिनु पानी सातू 'कस' सानसि।
सोन रूप भल पहिरि फिराई। दिन दिन 'पहिरहि चीर धोवाई'।
'जउ' लहि बावन 'होइ संजोगा'। पान फूल 'रस करही भोगा'।

'जउ तुम्हं' राइ महर 'कइ' बेटी 'आछहिं कुर न लजाइ'।
तात दूध 'औटहु दहु(हुं)' चांदा पियहु 'सिराइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८, बी० १४२-१४४।

शीर्षक—मैं० : आमदन ख्वुशूअ व तह्फ़ीम करदन चाँदा रा।

मैं० में (७) का 'वह' बाद में बढ़ाया हुआ है।

पाठांतर—(१) १. बी० कै। (२) १. मैं० तू। २. बी० तू को चीन्हसि पुरुष। (३) १. बी० अचेत। २. बी० का। (४) १. बी० पहिरौ चीर स(?) वाई। (५) १. बी० परु। २. बी० होय संजोगू। ३. बी० औ करियों भोगू। (६) १. बी० जैं तहु। २. बी० की। २. बी० आछै कुरह लजाई। (७) १. बी० दुहु वोटाह। २. बी० सिरायी।

अर्थ—यह सुनकर महरी चाँद के पास आयी, [और उसने पूछा,] "ऐ बहू, तू क्यों क्रुद्ध होकर जा रही है? (२) तू, ऐ बेटी, [अभी] दूध (जन्म) के दाँतों वाली बालिका है; तू क्या जाने कि पुरुष की रेखा (कार्य-शैली?) कैसी होती है? (३) तू अभी मुग्धा है, तू पुरुष को क्या जाने? बिना पानी के सत्तू तू कैसे सान रही है? (४) सोना-चाँदी खूब पहने तथा चीर दिन-प्रतिदिन धुलाकर धारण करे। (५) जब तक कि बावन संयोग्य हो, तू पानों फूलों के रस का [ही] भोग करे। (६) यदि तू राजमहर की कन्या है, तो तू (उसके) अच्छे कुल को लज्जित न करे। (७) दूध को तप्त भले ही औटो, उसे, ऐ चाँदा, ठण्डा करके ही तो पीती हो।"

(४६)

'तुम्हं हूं सासु एतनेहि कों' आनी। राखहु दूध 'पियावहु' पानी।
दही न देहु खाउं 'जेहिं' लाई। महियरि 'केहूं परें' अडाई।
सोन रूप का 'हमरें' नाहीं। 'जनां' सहस 'जेवनारिहिं' खांही

'तुम्हरी धिय' 'जो ससुरें' आहा। 'पीउ न पूछ त' बोलहु काहा।
अब लहि 'मइं' कुरु आपनु धरा। 'काम लुबुधु बिरहइं' तनु जरा।
निसि अंधियारि नीरु घन 'बरसै(सइ)' 'बीजु लवइ' भुइं लागि।
'सेजि' अकेलि फाटु 'मोर' 'हियरा' 'जउ जउ देखउं' जागि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २९; बी० १४५-१४७।

शीर्षक—**मैं०** : जवाब दादने चांदा ख़ुशूअ रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० तुम्हि हौए सासु अंति कैं। २. बी० पिलावहु। (२) १. बी० जिहि। २. बी० करि तुझ्झ परै। (३) १. बी० मोरैं। २ बी० जने। ३. बी० जिवनारैं। (४) १ बी० तुह्मरी धीय। २. बी० जु सुसरैं। ३. बी० जौ पिउ न चहैं तौ। (५) १. बी० मैं। २. बी० कम लबधू बिरहै। (६) १. मैं० में नहीं है। २. बी० बिजु लेवै। (७) १. बी० सेज। २. बी० मोरौ। ३ मैं० हिरदैं। ४. बी० ज्यैं ज्यैं देपौं।

अर्थ—(१) [चाँदा ने उत्तर दिया,] "ऐ सास, तुम भी मुझे इतने ही के लिए लायीं कि दूध रख छोड़ो और पानी पिलाओ। (२) दही [भी] नहीं देती हो कि जिसे लगाकर मैं [जो-कुछ रूखा-सूखा मिलता है उसे] खा सकूं, मही-तल (भूमि) पर पड़े-पड़े वह कितना भी अडाता (गिरता) रहे! (३) सोना-चाँदी क्या मेरे [घर पर] नहीं हैं? एक सहस्र मनुष्य [प्रतिदिन हमारी] ज्योनार में खाते हैं। (४) तुम्हारी कन्याएँ जो अपने सासुरों (श्वसुर-गृहों) में हैं, यदि [मेरी ही भाँति] उन्हें [भी] उनके पति न पूछें, तो क्या कहोगी? (५) अब तक मैंने अपनी कुल-मर्यादा को धारण किया है और काम-लुब्ध होकर विरह में [मेरा] शरीर जलता रहा है। (६) अंधेरी रातों में जब घना पानी बरसता होता है, और बिजली भूमि से लगकर लपलपाती है, (७) शैया में अकेली होने के कारण जब-जब मैं जाग कर यह देखती हूँ, मेरा हृदय फटता है।"

(४७)

'तोरी आधि मइं तहिया' जानी। बात 'कहत तू मोंहि' न 'लजानी'।
तो 'कहुं' 'चाही कीनर' पीऊ। बिनु दहि मथें 'कि' 'निसरइ' घीऊ।
बावन मोर दूध कर 'फोबा'। 'तिसु कत्त पावउं' तो संग सोबा।
'तू उभरैलि' नहि देखिसि काहू। बिनु 'धाठें' 'कस' नवइ 'कयाहू'।
'जउ' लहु बावनु होइ सियाना। 'अउर बियाह कइ' तोही आना।

'जउ तूं जइहसि मइकें' अब हीं 'पठउ' संदेस ।
'कहां केरि' तू बागरि 'बिटिया' 'जारउं' सोई देसु ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०; बी० १४८-१५० ।

शीर्षक—मैं० : गुस्स. करदने खुशूअ बर चाँदा व रज़ा दादन बगाय वहर रफ़्तन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० तेरी आदि मैं तैंही । २. बी० कहतु तूं मुहि । ३. बी० लजानी । (२) १. मैं० कों । २. बी० चहिये गोवर । ३. मैं० की । ४. बी० निकरै । (३) १. मैं० पोवा । २. बी० सो कत पांउ । (४) १. बी० तू अकरी । २. बी० धाठी । ३. बी० बरु । ४. बी० किवाहू । (५) १. बी० घरु । २. बी० और बियाहि कि । (६) १. बी० जइ तुम जइहहु माइकैं । २. बी पठवौहु । (७) १. बी० जाहि भई । २. बी० बिटिया (विटिया-नागरी) । ३. बी० जारौं ।

अर्थ—(१) [सास ने कहा,] "तेरी आधि (मानसिक व्यथा) मैंने तभी जान ली जब तूने बातें कहते हुए मुझसे लज्जा नहीं की । (२) तुझको [तो] किंनर [जैसा सुन्दर] पुरुष चाहिए, [किन्तु] दही को मथे बिना भी क्या घी निकलता है (बिना कुछ किए कुछ होता है) ? (३) मेरा बावन तो दूध का फाया (दूध में डुबोया हुआ रुई का फाया) है, उसे तेरे साथ में मैं कैसे सोया हुआ पाऊँ ? (४) तू ऐसी उभरैल (उठ भागने वाली) है कि तूने स्वयं किसी को (बावन को) देखा नहीं; बिना ढाठा (मुँह-बन्द) लगाए कयाह (घोड़ा) कैसे नमित हो सकता है ? (५) जब तक बावन सयाना हो, वह दूसरे को ब्याहे या तुझे ही लाए । (६) यदि तू मायके जाएगी, तो तू अभी [मायके को] सन्देश भेज । (७) तू कहाँ की वक्र (कुटिल) बेटी है ? उस देश को मैं जला दूं ।"

(४८)

'चांदहि करुव' 'भएउ' घर बारू । चेरी 'बांभनु' जाइ हंकारू ।
आइ 'सो बांभनु दीन्ह' असीसा । चांद 'बरन' मुखु 'भेभरु' दीसा ।
परिहंसु 'कही(हि)' संदेस 'पठावा' । बोलु 'थाक हिय' गहबरि आवा ।
नैन 'सींप' 'जस मोतिन्ह भरे' । 'रोएसि चांद आंसु तस ढरे' ।
'चोली' चीरु भीजि गा पानीं । 'जनु अभरन सउं' 'गांग नहानी' ।

बांभन कहसि महर 'सों' 'मोरे' दुख 'कइ' बात।
भाइ कहारु सुखासनु बेगि 'पठउ' परभाति ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१, बी० १५१-१५३।

शीर्षक—मैं० : तलबीदने चांदा जुन्नारदार रा व फ़रिस्तादने अख़बार दुश्वारी बर पिदर।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदेहि करू। २. बी० भयो। ३. बी० बंभनु। (२) १. बी० सुबंभन देइ। २. मैं० चंद्र बदन। ३. बी० भ्यंभरु। (३) १. बी० कहै। २ बी० न पावा। ३. बी० थाकि मनु। (४) १. मं० सीत। २. बी० अस मोत्यैंहु भरी। ३. बी० रोय सासु लै तह आसु ढगी। (५) १. बी० चोरी। २. बी० जानु अभरन सौं। ३. बी० गंगा न्हांनी। (६) १. बी० स्यौं। २. बी० मोरैं। ३. बी० की। (७) १. बी० पठवो।

अर्थ—(१) चाँदा को घर-बार कटु हो गया; [उसने कहा,] "ऐ चेरी, जाकर ब्राह्मण को बुला ला।" (२) ब्राह्मण ने आकर आशीर्वाद दिया, उसे दीखा कि (चाँदा का) चन्द्र-वर्ण का मुख भँभर (तमतमाया हुआ) है। (३) [अपनी] परिहास [-पूर्ण स्थिति] कह कर [चाँदा ने] सन्देश भेजा, उसके बोल थक थे और उसका हृदय व्यथा से पूरित हो गया था। (४) उसके सीप जैसे नेत्रों में मोती [जैसे आँसू] भर गये, चाँदा रो पड़ी और इसलिए [उसके नेत्रों से] अश्रु गिरने लगे। (५) [उसके] चोली और चीर पानी (अश्रु) से [इस प्रकार] भीग गए मानो आभरणों के साथ [उसने] गंगा में स्नान किया हो। (६) [उसने कहा,] "ऐ ब्राह्मण, तुम [जाकर] महर से मेरी दुःख की वार्ता कहना, (७) और कहना—'भाई, कहार और सुखासन (डोली) [कल] प्रभात में शीघ्र ही भेजो"।

(४९)

'बाभन' जाइ महर 'सों' कहा। हिएं लागि 'दौं' जरि तनु रहा।
जस मंछरी 'देखिय' बिनु पानी। तपत महर सभ 'रइनि' बिहानी।
'भानु' मंझान न कीत 'पियारू'। 'कैसें आहि सो' चांद दुलारू।
दीत सुखासन चले कहारा। नाती पूत भए असवारा।
धानुक पाइक 'आगें' भए। 'जइत महर कह बाखरि' गए।
काढ़ि चांद 'बइसारि' सुखासन तुरत बेगि 'लइ' आइ।
'वी (वा) रने होइ महर गए' चूंबि चांद 'के' पाइ ।।

संदर्भ—मैं० ३२, बी० १५४-१५६।

शीर्षक—मैं० : बाज़ नमूदने बरंभन बर महर व आरानीदने महर चांदा रा व दाश्तन दर खानः।

बी० में बाएं हाशिए में 'चांद ने लेन गया' संकेत लिखा हुआ है, किन्तु वह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति का लिखा लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० बांभनि। २. बी० स्यौं। ३. बी० दैं। (२) १. बी० देषै। २. बी० रैनि। (३) १. बी० भोर। २. बी० बियारू। ३. बी० कैसैं आहिसि। (५) १. बी० आगैं। २. बी० जैत महर कर बाखर। (६) १. बी० बैसारि। २. बी० लै। (७) १. बी० बरसे महरि हौंगी। २. बी० कैं।

अर्थ—(१) ब्राह्मण ने जाकर [जब चांद की दुःख वार्ता] महर से कही, तो उसके हृदय में दावाग्नि लग गई और उसका शरीर जलने लगा। (२) जैसे आप मछली को पानी के अभाव में देखते हैं, उसी प्रकार महर को तपते (संतप्त होते) समस्त रात्रि व्यतीत हो गई। (३) [उसने कहा], "मध्यान्ह (तरुणावस्था) में भानु (उसके प्रिय) ने जिसे प्यार नहीं किया, वह [मेरी] दुलारी चांद (चांदा) कैसी होगी ?" (४) उसने सुखासन दिया और कहार चल पड़े, [साथ में] उसके नाती-पुत्र [घोड़ों पर] सवार हुए। (५) धानुष्क और पदातिक आगे-आगे हुए और वे सब जैत महर की बाखर को गए। (६) चांदा को [उसके श्वसुरालय से] काढ़ (ले) कर और उसे सुखासन पर बिठाकर वे तुरंत और वेग-पूर्वक [गोबर] ले आए। (७) चांदा के पैरों को चूमकर महर उस पर वारने (न्यौछावर) हो गया।

(५०)

कूकू 'मरदि चांद अन्हवाए'। 'सिंदुरी' चीरु काढ़ि 'पहिराए'।
मांग 'चीरि' सिर सेंदुर पूरा। 'जानहु' चांद बहुरि 'औतरा'।
सखी सहेली 'देखुन आईं'। 'हंसि हंसि चांद फेरि गियं लाईं।
सेज पिरम रस 'पूछ' सुहागू। 'पिरिति पियार भुगुति कस' भागू।
आंग 'पेट' देखहि चहुं पासा। 'कहु न चांद कस' कीन्ह बिलासा।
'चांद सहेलिन पूंछहिं' 'रस धरि रहरां' लाइ।
'सपत आहि जुन(जु न) फिरि कहु कैसें रह्यो (रहिउ) ज माइ'॥

सन्दर्भ—मै० ३३, बी० १५७-१५९।

शीर्षक—आमदने चांदा दर खान-ए-मादर व पिदर व रसीदन सहेलियान चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० मरदनि चांद न्हवाइ। २. बी० सेंदुर। ३ बी० पहिराइ। (२) १. बी० चीरु सिर सैंदुरी भरा। २. बी० जानौं। ३ मै० औतरी (औतरा-नागरी)। (३) १. बी० देखै आइ। २. बी० हसि कै चांद बिहसि गै लाइ। (४) १. बी० पूछी। २. बी० पिरति पियार भोगु कैसें। (५) १. बी० पूठि। २. बी० देपैंहि। ३ बी० कहू भोगु कैसैं। (६) १. बी० चांदहि पूछ सहेलीया। २. बी० रसि धरि हियरैं। (७) १. बी० अपतु आहि न फिर कहु। २. मै० कैसें रैनि विहाइ।

अर्थ—(१) [सेविकाओं ने] कुकुम का मर्दन कर चांदा को स्नान कराया और [भांडार से] निकाल कर उसे सिन्दूरी चीर पहनाया। (२) उन्होंने [बालों में] मांग चीर (निकाल) कर उसे सिन्दूर से भरा, तो [ऐसा लगा] मानो चंद्र पुनः अवतरित हुआ हो। (३) सखियां-सहेलियां उसे देखने को आईं। तब उन्होंने चांदा को हँस-हँस कर गले लगाया। (४) उन्होंने शैया के प्रेम का रस तथा सुहाग पूछा; [उन्होंने कहा,] "प्रीति-प्यार और भुक्ति (भोग) तुम्हें भाग्य में कैसे मिले ?" (५) वे उसके अगों और पेट को चारों पार्श्वों से देखने लगीं, [और कहने लगीं,] "चांदा, कहो न कि तुमने कैसा विलास किया ?" (६) चांद से उसकी सहेलियाँ [प्रश्न में] रस लेती हुई बिनोद सुख के लिए पूछती हैं, (७) "तुम्हें शपथ है यदि तुम फिर भी यह न कहो कि ऐ सखी, तुम [वहां] किस प्रकार से रहीं।"

(५१)

'जो(जउ) मोहि' पूछहु 'तौ(तउ)' 'हउं कहउं'।
कुर 'कइ' कानि 'लजाती अहउं'।
माह मासि 'मोएउं' धुधुवाई। 'लागइ' सीउ न 'पिउ बिनु' जाई।
'रइनि' छमासी 'परइ' तुसारू। हिएं 'अंगीठी बर' असरारू।
बरसइं नैन न आगि 'बुझाई'। 'सउरि सुपेती' जाड़ु न जाई।
अस 'कइ' सखी 'बिगूतिउं नांहां'। सेजि बही निसि जलहर मांहा।
'जस (जइस ?) परें दह बारी हीनेंउ सहरी सुखाइ'।
पिउ बिरहें 'मोर' जोबनु फूल जइस 'कु(कुं)बिलाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३४, बी० १६०-१६२।

शीर्षक—मैं० जवाब दादन चांदा बा सहेलियाने खुद चहार माहे जमिस्तां।

पाठान्तर—(१) १. मैं० जस तुम्हं। २. मैं० तस। ३. बी० हैं कहौं। ४. बी० की। ५. बी० लजावति रहौं। (२) १. बी० मोयौं। २. बी लागै। ३. बी० पिय बीनु। (३) १. बी० रैनि। २. बी० परै। ३. बी० अगीठि वरै। (४) १. बी० बुझाही। २. बी० सौरि सपेती। (५) १. बी० कँ। २. बी० वेगित्यौं नाहीं। ३. बी भइ सर जलहर माहीं। (६) १. बी० जस प्रपंनि दहि हीं मरै हों वत रहै सुकाइ। (७) १. बी० मोरा। २. मैं० कुमिलाइ।

अर्थ—(१) [उसने उत्तर दिया,] "क्योंकि तुम मुझसे पूँछ रही हो, इसलिए मैं कह रही हूँ, [यद्यपि मैं ऐसा करते हुए] कुल की कानि के कारण लज्जित हो रही हूं। (२) माघ मास को मैंने धुँधुँआते हुए (गीली लकड़ी के सामान धुंआ देकर धीरे-धीरे जलते हुए) मुक्त किया (बिताया); जो शीत लगता था वह प्रिय (पति) के बिना नहीं जाता था। (३) जैसे उसकी छः मासी (छः मास की जैसी लंबी) रातों में तुषार पड़ता था, मेरे हृदय की अगीठी वैसे ही निरंतर जलती भी रहती थी। (४) नेत्र बरस रहे थे इसलिए वह अग्नि नहीं बुझती थी और सौर (गद्दे) तथा सुपेती (चादर) से शीत नहीं जाता था। (५) इस प्रकार से मैं स्वामी के द्वारा तिरस्कृत हुई कि रात्रि में [मेरी] शैया आंसुओं के जलाशय में वह निकलती। (६) जैसे ह्लद में पड़ने पर [भी] वारि (जल) के हीन होने पर मछली सूख जाती है, (७) उसी प्रकार प्रिय के विरह में (उसके द्वारा परित्यक्ता होने के कारण) मेरा यौवन फूल की भांति कुम्हलाता रहा।

(५२)

जेठ का(क) घामु सहै(हइ) को बारा (पारा)।
तपहि बुंजासन (बजासनि) परैंहि (रहिं) अ(अं)गारा।
पिय की(कइ) छाव न बैठौं (बइठउं) काऊ।
जरत हि भानु धरौं(रउं) भुइ पाऊ।
जौ(जउ) चंदनु लांउ (लावउं) थनहारा।
अधिकी उठे (ठइ) पिरम की (कइ) झारा।

पान फूल कस थैर सुपारी ।
भोगु न जानों (नउं) बिरहैं मारी ।
जौंनुं (जानुं ?) लुवारी तपौं (पउं) अकेली ।
नाह [न] सेज कैसें (कइसें) सोंउ (सोवंउ) सहेली ।
सुषु तिल येकु न जानियों बूडों दुष की(कइ) गांग ।
चांद लीत है (हइ) गहनै (नइं) सुकु बैठा जौ मांग ॥

सन्दर्भ—वी० १६३-१६५। मै० में पिछले कडवक के साथ जो चित्र है, वह बाजिर-मूर्छा प्रसंग का है और कडवक ५५ का ज्ञात होता है, इससे प्रकट है कि वह इस स्थान पर त्रुटित है। प्रसंग से भी इस तथा परवर्ती कडवक की आवश्यकता प्रकट है।

अर्थ—(१) ज्येष्ठ मास का घाम कौन सहन कर सकता था ? जैसे व्रजाशनि तप रहा था, और अंगारे पड़ रहे थे। (२) किन्तु प्रिय (पति) की छाया में मैं कभी न बैठ पाई, और तप्त होते हुए भानु [की ज्वाला] में ही मैं भूमि पर पैर रखती थी। (३) [अपने] भारी स्तनों में मैं चंदन लगाती थी, तो प्रेम (काम) की ज्वाला अधिकाधिक उठती थी। (४) मेरे लिए पान-फूल तथा कत्था-सुपारी कैसे थे ? विरह से मारी हुई मैं भोग जानती ही नहीं थी। (५) मैं तो मानो [जेठ की] लुवार (लू) में अकेली हो कर तपती थी; शैया में स्वामी के न होने के कारण, ऐ सखियो, में कैसे सो सकती थी ? (६) सुख मैंने तिल-एक भी नहीं जाना, और मैं दुःख की गंगा में डूब गई। (७) चांद को तो ग्रहण ने ले लिया था—उसका ग्रहण हो गया था, क्योंकि उसकी मांग-में सौभाग्य के स्थान पर शुक्र (काना बावन) बैठा हुआ था।"

(५३)

भादौं (दउं) मास देव घरराइ(ई) ।
नैन नदी देउं (दीनिउं?) मु(मो)कराइ(ई) ।
बिनु करिया मोरि डोलै(लइ) नावा ।
नीगुन गारा (करिया?) कंत न आवा ।
कोइल जैस (जइस) फिरै(रइ) अति रूंखा ।
पिउ पिउ करत जीभ मोर सूषा

पिन तरफौं (फउं) बरसै अति वानी।
सेज सून(नि) हौं(हउं) सरगि लुकानी।
कत हौं कहां सु बावन वीरू।
जस जरमी तुसु (तसु) आहि सरीरू।
नैनहु दीठे बोलते हिया बिरुधा(द्धा) तित्त।
जै (जइ) नैनहु औगुणु किया हिया बिरुधा(द्धा) कित्त॥

सन्दर्भ—बी० १६६-१६८; मैं० यहाँ पर त्रुटित है (दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी)।

बी० में किसी भिन्न व्यक्ति द्वारा राहिने हाशिए में निम्न लिखित दोहा भी दिया हुआ है :

जौ मै हौंस न देषीयौ कूर कहुं हुं काहु।
सुपने (?) सेज न आवै मोरी कौंन बरन सौ नांहु॥

इस दोहे के लिए अर्द्धालियों के बाद हंस पद अंकित हुआ है, किन्तु पूर्ववर्ती दोहा ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया है, अतः यह स्पष्ट नहीं है कि यह दोहा अतिरिक्त है अथवा उसके स्थान पर है। पाठ के साथ दिया हुआ दोहा असंगत और अन्य भाषा-शैली का लगता है। उसकी अपेक्षा यह अधिक संगत और भाषा-रूप के अनुसार अधिक संभव लगता है। फिर भी अनिश्चय की स्थिति बनी रह जाती है।

अर्थ—(१) भादों मास में दैव गड़गड़ाने लगा और उसने मेरे नेत्रों की नदी को मुक्त कर दिया। (२) बिना करिया (पतवारी) के मेरी नौका [उस अश्रु-नदी में] डाँवाडोल होने लगी, फिर भी मेरा निर्गुण करिया (?)—मेरा पति—उस अश्रु-नदी से मुझे पार करने के लिए नहीं आया। (३) कोयल जैसे अत्यधिक वृक्षों में भटकती है, मैं भी 'पिय-पिय' करती रही और [उसको रटते-रटते] मेरी जिह्वा सूख गई। (४) जब मेघ आत्यंतिकता से बरसता था, किसी-किसी क्षण मैं (विद्युत् की भाँति) तड़प उठती थी, और क्योंकि मेरी शय्या सूनी थी, मैं उस आकाश (ऊपर की मंज़िल में) छिप जाती थी। (५) मैं कहाँ थी और बावन वीर कहाँ था? दोनों भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहते-सोते थे। फलतः मैं जैसी जन्मी थी, मेरा शरीर उसी प्रकार अछूता रह गया। (६)-(७) पाठ अनिश्चित है

५. बाजुर-मूर्च्छा खण्ड

(५४)

बाजुरु एकु 'कतहुं हुत' आवा। गोवर 'फिरइ' 'बिहाऊ' गावा।
घर घर भुगुति मांगि 'लइ' खाई। खिन खिन राजदुवारेंहि जाई।
दिन 'एक' चांद धौरहर ठाढी। 'झांकिसि' मांथ 'झरोखड' काढी।
'तिहि खिन' बाजुर मूंड उचावा। 'देषी' चांद 'तवारा' आवा।
'देखतहिं' जनु 'नौहारन्ह' लीन्हां। 'बरका' चांद झरोखा 'दीन्हा'।
 धर 'हुत' जीउ न 'जानिय' कित गा कया भई बिनु सास।
 सीतर नीरु 'देह मुंह छिरकहिं' आए लोग चहुं पास॥

सन्दर्भ—भो० पत्र २२ (नवीन), मै० यहाँ पर त्रुटित है—देखिए पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी, बी० १६६-१७१।

शीर्षक—भो० : आमदने बाजिर दर गोवर व गुज़श्तने ज़ेर क़स्र चादा व दीदन व आशिक़ शुदन व उफ़्तादन।

बी० : बाजुर आमद जेगी (जोगी ?); किन्तु यह शीर्षक बाएं हाशिए मे लिपिकार से भिन्न व्यक्ति के द्वारा दिया हुआ लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहूं हूंते। २. बी० फिरै। ३. बी० पहाऊ। (२) १. बी० लै। (३) १. बी० यक। २. बी देयसि। ३. बी० झरोषै। (४) १. भो० ततखिन। २. भो० देषिसि। ३. बी० झरोखई। (५) १. बी० देषि। २. बी० नौहारेहि। ३. बी० बरि गई। ४. बी० दीना। (६) १. बी० हुतै। २. बी० जानौं। (७) १. बी० देहि महु छिरकैहि।

अर्थ—(१) एक बाजिर (कोई वाद्य बजा कर मांगने-खाने वाला) कहीं से आया। वह गोवर में चक्कर लगाता और बिहाऊ (त्याग के गीत ?) जाता। (२) वह घर-घर से भुक्ति (भोजन) मांग कर उसे लेकर खाता और [इसलिए] क्षण-क्षण (बार-बार) राज-द्वार पर [भी] जाता। (३) एक दिन चादा धवल-गृह पर खड़ी थी और उसने मस्तक को झरोखे से निकाल कर देखा। (४) उस क्षण बाजिर ने सिर उठाया और चांदा को देखा तो उसे तवारा (ताप) आ गया। (५) उसे देखते ही उसकी दशा ऐसी हो गई मानो उसे वधिकों ने [पकड़] लिया हो। चांद (चांदा) ने अपने को [उसकी दृष्टि से] बचाया और झरोखे को बन्द कर दिया। (६) [बाजिर के] धड

से जीव न जाने कहाँ चला गया और उसकी काया बिना श्वासों की हो गई (७) लोग उसके चारों ओर इकट्ठा हुए और वे शीतल जल उसके शरीर और मुँह पर छिड़कने लगे।

(५५)

सांप डसा जस उठै(ठइ) न बारा।
हाथ पाउ सिरु कछु न संभारा।
कै (कइ) छरि गया कै (कइ) भया सनिपातू।
कै (कइ) इहि आइ मिरिगी(गि)या बातू।
पहर द्योस (दिवस) सूता जस जागा।
लोगु कहै(हइ) यह राषसु लागा।
आंग मूंड सब लागी षेहा।
हरद पीर (पियर) जसु हु है(हइ) देहा।
तिरि जौ (जउ) देषि लोगु जो (जउ) राधा।
उपर देषि झा(झ)रोषा बाधा।
नैन देषि भनु बेघा हिये चटपटी दाहु।
टूट करेज लोहू भा पानी कहौ (कहेउ ?) न बोलै काहु॥

सन्दर्भ—बी० १७२-१७४। मैं० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु मैं० पत्र ३४ के साथ अब जो चित्र है वह इसी कडवक का है, क्योंकि उसमें झरोखे में चांदा नहीं है, और वह बन्द भी है, जैसा कि इस कडवक की पांचवीं अर्द्धाली में कहा गया है।

अर्थ—(१) [वे कहने लगे,] "यह बालक जैसे कोई साप से डसा हुआ हो, उसकी भांति नहीं उठ रहा है, और हाथ, पैर तथा सिर कुछ भी नहीं सँभाल रहा है। (२) या तो यह [किसी छल के द्वारा] छला गया है, या इसे सन्निपात हो गया है, या इसे मृगी की बात-व्याधि हो आई है।" (३) पहर-दिन सोने के जैसे पड़े रहने के उपरान्त [जब] वह जागा (चेत मे आया), तो लोग कहने लगे, "इसे कोई राक्षस लग गया है। (४) इसके शरीर तथा सिर में धूल-मिट्टी लगी हुई है, और इसकी देह हल्दी जैसी पीली हो गई है। (५) यह नीचे देखता है तो उन लोगों को देखता है जो निकट [आगत] हैं, और ऊपर देखता है तो उस झरोखे को देखता है जो बंद है। (६) ऐसा जान पड़ता है कि [चांदा को] देखने के कारण ही इसके नेत्र

[उसके रूप से] विद्ध हो गए हैं, और इसके हृदय में दाह की चटपटी (विकलता) हो रही है, (७) इसका कलेजा टूट गया है, और इसका रुधिर पानी हो गया है, [इसीलिए] यह कहने पर भी किसी से [कुछ] नहीं कह रहा है।"

(५६)

कहु बाजुर 'तोहि' बेदन काहा। लोगु महाजनु पूछत आहा।
पीर कहसि 'तउ सुनहु' बिनानी। 'ओखदु' मूरि देहिं तोहि आनी।
'कइ' जुर जाड पेट कइ पीरा। 'कइ' सिरवाहि 'गूद' महिं कीरा।
'कइ' खरि 'लागि' घाम 'कइ' झारा। 'पानि' पियत तूं गा बिसंभारा।
कइ दरसन काहू 'के' राता। पिरम भुलान कहसि नहि बाता।
'कइ तोहि' अरथ गंवावा मारि लीन्ह बटपार।
'नांउं' कहसि नहि ताकर बाजुर मुरिख गंवार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३५, बी० १७५-७७।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने ख़लक़ बाजिर रा अज़ हाले बेहोशी ऊ।

पाठान्तर—(१) १. मै० तोरि। (२) १. बी० तौ सुनौहु। २. बी० औषधु। (३) १. बी० कै। २. बी० की। ३. बी० गुदा। (४) १. बी० कै। २. बी० लाग। ३. बी० कै। ४. बी० पानी। (५) १. बी० कै। (६) १. बी० कै तैं। (७) १. बी० नाउ।

अर्थ—(१) "ऐ बाजिर," लोग (सामान्य जन) और महाजन पूछ रहे थे, "तुझे कौन सी वेदना हो गई है? (२) ऐ विज्ञानी सुन; यदि [तू] हम से अपनी पीड़ा कहे, तो हम तुझे औषधि-मूल ला कर दें। (३) तुझे जाड़े का ज्वर है, या पेट की पीड़ा है, या सिर की व्याधि है, या तेरी गुदा में कीड़े पड़े हुए है, (४) अथवा तुझे धूप की झार (गरमी) प्रखर रूप से लग गई है कि पानी पीते ही तू बेसंभाल हो गया है, (५) अथवा, तू किसी के दर्शनों पर अनुरक्त है, और उसके प्रेम में भूला हुआ बातें नहीं बता रहा है, (६) अथवा तूने अपना अर्थ गंवा दिया है, जिसे किसी बटपार ने तुझ से छीन लिया है? (७) ऐ मूर्ख और गंवार बाजिर, तू उसका नाम [क्यों] नहीं कह रहा है?"

(५७)

लोगु 'कहइ' यहु मुरिखु अयाना। 'कहउं' हियारी बूझि सयाना।
'बिरिख' ऊंचु 'फरु' 'लाग' अकासा। हाथ 'चढइ कइ' नांहीं आसा।

'कहु जोगित' को बांह 'पसारइ' । तरुवर डारि 'धरइ को पारइ' ।
राति दिवस 'राखहिं' रखवारा । 'नैनहु देखइ' जाइ सो मारा ।
'उरग डारि फरु देखेउं' रूखा । कंवल फूल 'मोर' 'हिरदा' सूखा ।
'पियर' पात जस बिनु 'जीवा(उ)' 'रहेउं कोंप' 'कु(कुं)बिलाइ' ।
विरह पवन 'जउ डोलेउं' टूटि 'परेउं' खहराइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३६, बी० १७८-१८० ।

शीर्षक—जवाब दादन बाजिर खल्क रा तरीक़े मुअम्मा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहै । २. बी० कहौ । (२) १. बी० विरख । २. मै० फलु । ३. मै० में नहीं है । ४. बी० चरै की । (३) १. बी० कही जुगति । २. बी० पसारा । ३. बी० डार धरै को पारा । (४) १. बी० वहुत । २. मैं० नैन जो देषै । (५) १. बी० अरग डार फरु देख्यो । २. बी० मो । ३. मैं० हिरदैं । (६) १. बी० पीर । २. मैं० जर । ३. बी० रह्यो डार । ४. मैं० कुमिलाइ । (७) १. बी० जब डोलै । २. बी० परै ।

अर्थ—(१) [बाजिर ने उत्तर दिया,] "लोग कहते हैं, 'यह मूर्ख और अज्ञ है'; सयाने लोगो, मैं अपनी हियारी (हृदय की व्यथा) कह रहा हूँ, उसको समझो । (२) एक वृक्ष इतना ऊंचा है कि उसका फल आकाश मे [लगा हुआ] है, और वह फल हाथ लगेगा, इसकी आशा नहीं है । (३) बताओ कि किसे ऐसी योग्यता है जो [उस फल को तोड़ते के लिए] बाहे पसारे ? उस तरुवर की डालों को कौन पकड़े ? (४) रात-दिन रखवाले उसकी रक्षा करते हैं, और नेत्रों से भी जो उसे देख लेता है, वह मारा जाता है । (५) [पुनः] जब उस वृक्ष की डालों और फलों पर सर्प मैंने देखे तो, कमल-पुष्प [जैसा] मेरा हृदय सूख गया । (६) पीले पत्ते-सा बिना जीव का हो मैं कोंपल [जैसा तरुण] होते हुए [भी] कुम्हला रहा । (७) [तदनंतर] विरह का पवन जो चला, मैं खरहरा ('खड़खड़' करता) टूट पड़ा ।"

इस छंद में एक प्रहेलिका है जिसमें चांदा ही ऊँचा वृक्ष, चांदा के उरोज फल, उसकी बाहें डालें, उसकी लटें सर्प हैं । दोहे में पीली पत्तियां इंद्रियां हैं, कोपल प्राण हैं, पवन विरह का है ।

(५८)

'हउं मारिउं इहिं गाउं' तुम्हारे । नैन बान हनि 'गई बिसारे' ।
रगत न 'आवा दीस न' घाऊ । हिएं सालु 'मोर उठइ' न पाऊ ।

कत 'भइं देखि धौराहर' ठाढी । हिएं 'पइसि' जिउ 'लइ' गइ काढी ।
'कउनु' बनिजु 'मोहि' 'आगे' आवा । लाभ न बिसवा मूरु गंवावा ।
'हउं तुम्हं कहउं बोलु' पतियाहू । 'जेइ मारिउं तेहि कहउ(उ)' न काहू ।
पूछि देखि 'तेहि घायल' 'राति' पीर जो जाग ।
'कइसो (कइ सो)' जान जेहि 'मेला' 'कइ सो' जान 'जेहि' लाग ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३७, बी० १८१-१८३ ।

शीर्षक—मै० : इस्तकहाम नमूदन बाजिर पेश खलके शहर गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ मार्‌या इहि गाव । २ बी० काढि बसारै । (२) १. बी० आव दीस नहि । २ बी० मोरौ उठै । (३) १. बी० मैं देष धौरहर । २. बी० पैसि । ३ बी० लै । (४) १. बी० कौन । २. मै० मौरे । ३. बी० आगै । (५) १. बी० हौ तुम्ह बोलु कहौ । २. बी० जिहिं मार्‌यो तिहि कहैं । (६) १ बी० तेहि घावलहि । २. बी० रत । (७) १. बी० कै सु । २. बी० जिहि मेलिहै । ३ बी० कैसि । ४. बी० जिहि ।

अर्थ—(१) [उसने कहा,] "मैं तुम्हारे इसी गाँव मे मारा गया हूँ, वह [वधिक स्त्री] मुझे अपने विषाक्त नेत्र-बाण मार गई है। (२) किन्तु न रक्त आया और न घाव ही दिखाई पडा, [क्योंकि] वह शल्य हृदय मे है, जिसके कारण मेरे पांव नही उठ रहे है। (३) धवल-गृह पर खडी हुई वह स्त्री मैने देखी ही क्यो, कि वह [मेरे] हृदय मे प्रविष्ट हो कर [मेरे] जीव को निकाल ले गई ? (४) यह कौन-सा वाणिज्य मेरे आगे आया कि मैंने लाभ तो नही क्रय किया और मूल गवा बैठा ? (५) मैं तुम से कह रहा हूँ और तुम मेरे वचनो की प्रतीति करो कि जिसके द्वारा मे मारा गया हूँ, उसे मै किसी को न बतलाऊँगा। (६) उस घायल [की व्यथा] को पूछ देखो जो रात भर पीड़ा के कारण जागता रहा है। (७) उसे या तो वह जानता है जिसने वह पीड़ा डाली (दी) है, अथवा वह जानता है जिसे वह पीड़ा लगी है।"

(५६)

बाजुर 'कहा' 'मीन्चु' मोरि आई । गोवर तजि 'सै (सइं)' जाउ पराई ।
कहा 'दीख' मोहि नीद न 'आवइ' । 'भूख गई अन पानि' न भावइ ।
'जउ सो तिरी' बहुरि 'दिखरावइ' । 'ओहट' मीन्चु 'नियर' होइ'आवइ' ।

महर 'पास जउ कह को जाई' । खिन 'एक' भीतरि 'घाल मराई' ।
'बड़न्ह क कहा बिसेखइं कीजा' । 'अतियं बांचि' बरिसा 'सउ जीजा' ।

चला छाड़ि कइ बाजुर बसा 'अउर तह (हं)' जाइ ।
चांद रही मन 'भींतर' संवरि संवरि पछिताइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३८, बी० १८४-१८६ ।

शीर्षक—मै० : गुरीख़्तने बाजिर अज़ शहर गोवर बतरसे राय महर ।

बी० के ऊपरी हाशिए में इस कडवक के पृष्ठ पर प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में यह दोहा है :

नींद न घटी तिह जिनी कह संमन कौ ना(?)ह ।
अधक सनेही त्यौ (?) हरिणी बैर षटकै ताह ॥

पृष्ठ पर आए हुए समस्त कडवकों के दोहे दिए हुए हैं, अतः यह दोहा इस कडवक की अर्द्धाली २ के उदाहरण के रूप में अन्यत्र कहीं से दिया हुआ लगता है ।

पाठान्तर—(१) १. मै० देख । २. बी० मींच । ३. मै० हउं । (२) १. बी० देषि । २. मै० आवा । ३. बी० भूष गइ अनपांन । (३) १. बी० जइ तु स धनी । २. बी० दिखरावा । ३. बी० उहिट । ४. बी० नियरै । ५. बी० आवा । (४) १. बी० घरंहि को कहिहैं जाइ । २. बी० यक । ३. बी० घालि मराइ । (५) १. बी० गुर कर कहा विसेष जु कीया । २. बी० अनी बाचि । ३. बी० सौ जीया । (६) १. बी० और ठौ । (७) १. मै० भीतर ।

अर्थ—(१) बाजिर ने [मन में] कहा, "मेरी मृत्यु आ गई है, [इसलिए] मैं स्वयं गोवर छोड़ कर कहीं [अन्यत्र] भाग जाऊं । (२) मुझे ऐसा क्या दीखा कि नींद नहीं आती है, भूख चली गई है और अन्न-जल नहीं भाता है ? (३) यदि वह स्त्री पुनः दिखाई पड़ी, तो दूर पर पड़ी हुई मृत्यु निकट हो आएगी । (४) और, यदि किसी ने महर के पास जाकर [यह बात] उससे कह दी, तो वह एक क्षण के भीतर मुझे मरवा डालेगा । (५) बड़ों का यह कहना विशेष रूप से करना चाहिए कि यदि अतियों से बचा जाए तो सौ वर्षों तक जीवित रहा जा सकता है ।" (६) [गोवर को] छोड़ कर बाजिर चल पड़ा, और अन्य स्थान पर जा कर उसने वास किया । (७) चांदा उसके मन में बनी रही, जिसे स्मरण कर-कर वह पछताया करता ।
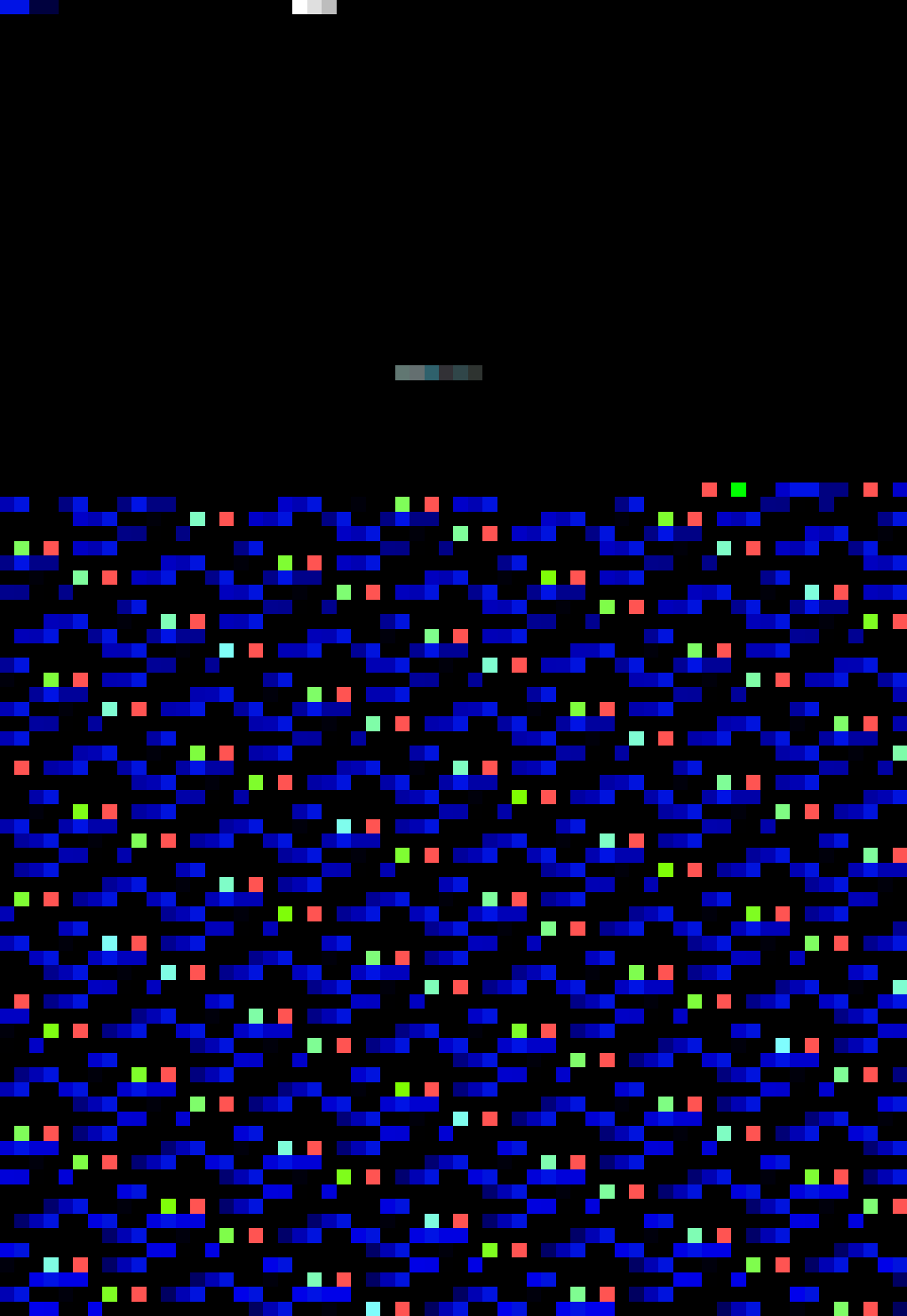
६. चांदा-शृङ्गार-वर्णन खण्ड

(६०)

इक 'खंड' छाडि 'आन' खंडि जाई। 'मास एक' बाजुरु बाट खुटाई।
फुनि 'जउ' जाइ 'भएउ' पइसारा। 'बइठ पवंरिया नगर' दुवारा।
बात पूछि 'सब' 'लीतेसि' नाऊं। 'भीखि मांगि खाएउं यहिं गाऊं'।
राइ रूपचंद बांठ सरेखा। नगरु 'राजपुरु' बाजुर देखा।
दिवसु 'गएउ' निसि 'परी' अबेरा। 'बाजुर फिरि करि' लीत बसेरा।
'निसु हीं राति सोहावनि' बाजुर 'ठोंका' तार।
'गाई गीत चंदरावलि' नगर 'भएउ' 'चमकार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३६, बी० १८७-१८६।

शीर्षक—मै०: रसीदन बाजिर दर शहरी व सुरूद करदने अन्दर शब व शुनीदन राय अज बाम।

बी० में बाएं हाशिए मे है: बाजुर रूपचंद के राजपुरी वाला (?), किंतु यह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० षंडि। २. बी० अवर। ३. बी० मासकु। (२) १. बी० जौ। २. बी० भयो। ३. बी० बैठि पौरिया पैरि। (३) १. बी० तस। २. बी० लीनसु। ३. बी० भीष मागि षौहो यत गाउ। (४) १. मै० राज फिरि। (५) १. बी० गयो। २. मै० भएउ। ३. बी० बाजुरि फिरि कै। (६) १. बी० निसह रात सहावनी। २. बी० ठोके। (७) १. बी० गावहि गीत चंरावरि। २. बी० भयो। ३. मै० झनकार।

अर्थ—(१) एक खंड छोड़ कर वह अन्य खंड में जाता था और [इस प्रकार] एक मास में बाजिर ने बाट समाप्त की। (२) [तदनंतर] जब वह और गया और [एक नगर में] उसका प्रवेश हुआ, [उसने देखा कि] नगर के द्वार पर एक पौरिया बैठा हुआ था। (३) उससे सारी बातें पूछ कर उसने अपना नाम लिया (बताया) [और कहा], "मैं भीख माँग कर इस गाँव (नगर) में खाता हूँ।" (४) [इस का] राजा रूपचंद था, जिसका मंत्री एक बांठ था, जो सूझ-बूझ का था। इस राजपुर नगर को बाजिर ने देखा। (५) जब चला गया और रात्रि में [भी] देरी हो गई, बाजिर ने लौटकर [नगर-द्वार पर ?] बसेरा लिया। (६) निसु (बिल्कुल) सुहानी रात में ही बाजिर ने ताल

ठोकी (दी)। (७) जब उसने चंद्रावली का गीत गाया, नगर भर में इसका चमत्कार हो गया (इसकी ख्याति हो गई)।

(६१)

दिन भा 'राजइं बांठु बोलावा'। आजु राति 'निसु हीं केइं' गावा।
बाठ 'कहा इहु आंक न होई'। होइ रजाइसु 'आनउं सोई'।
'चहुं दिसि बांठइं' जन 'दौराए'। बाजुर 'हेरि तउहि लइ आए'।
'पूछा राउ कवन तोर' ठाऊं। 'सुसुर कंठ तोहि' दीन्ह गोसाऊं।
आजु राति 'निसु' ही 'तइं' गावा। 'चंदरावलि' मनु 'रहरां' लावा।
गीत नाद 'रस' कबित् कहानी 'कथा कहि गावनिहार'।
'मोर मन रइनि दिवस सुखि राखहि' 'भूंजसि गांउं कोठार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४०, बी० १९०-१९२।

शीर्षक—मैं०: दर रोज़ तलबीदन राव बाजिर रा व पुरसीदन कैफ़ियत सुरूदे शब।

पाठान्तर—(१) १. बी० राजे बांठु बुलावा। २. बी० निसि हीं को। (२) १. बी० कहै यह बाक न हौइ। २. बी० आनौं सोइ। (३) १. बी० बाठ चहूं दिस। २. बी० दौरावा। ३. बी० हेरक ले तोहि आवा। (४) १. बी० राजा पूछै कोन तोरौं। २. बी० सुसर कंठ तुहि। (५) १. बी० निसि। २. बी० तू। ३. बी० चांदरवरि। ४. बी० रूहरे। (६) १. मैं० सुर। २. बी० किसा गावन हार। (७) १. बी० मनु मोरा सुषु राषसि। २ बी० भूचसि गांव कुठार।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो राजा ने बांठ को बुलवाया [और पूछा,] 'आज निसु (बिल्कुल) रात में ही किसने गाया?' (२) बांठ ने कहा, "इस प्रकार से पहचान न हो सकेगी; राजादेश हो तो उसे ले आऊं।" (३) [राजादेश पा कर] बांठ ने चारों ओर जनों (सेवकों) को दौड़ाया, [तो] वे ढूंढ कर तभी (तत्काल) बाजिर को ले आए। (४) [बाजिर से] राजा ने पूछा, "तेरा कौन-सा स्थान है? तुझे गुसाईं (ईश्वर) ने सुस्वर कंठ दिया है। (५) तूने आज निसु (बिल्कुल) रात में गाया, तो [तेरे] चंद्रावली [के गीत] ने मेरे मन को सुख-लिप्त कर दिया। (६) गीत-नाद-रसपूर्ण कवित्व, कहानी तथा कथाएं, ऐ गायक, तू [मेरे यहां रहता हुआ] कहे; (७) [उनके द्वारा] तू मेरा मन रात-दिन सुख में रक्खे और तू [मेरे दिए हुए ग्राम तथा कोठार भोगे

(६२)

'स्रवन कसुनां कहउं हउं काहा' । 'बोली (लि)उं' सोइ 'जो देखिउं आहा' ।
'नगरु' 'उजी(जइ)नी' मोर अस्थानू । 'बिकराजीत' राजा धरमानूं ।
'चारिउं भुवन फिरत हउं' आवा । 'गोवरु देखेउं' नगरु 'सोहावा' ।
'तहवां' चांद तिरी 'मइं' देखी । 'पाथर कीरि जइसि चित' लेखी ।
'मन हुत कैसेहुं मेंटि' न जाई । दिनु दिनु 'होई' अधिक सेवाई ।
'सहदेव' महर 'के (कइ)' 'धिय' चांदा चहूं भुवन 'उजियारि' ।
मानिक जोति 'जानु' 'परजरहिं (ही)' नागरि चतुरि 'अपारि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४१, बी० १९३-१९५ ।

शीर्षक—मैं० : हिकायते दीदने चांदा बयान करदन बाजिर पेश राव रूपचंद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० श्रवनक सुन कहौं है कहा । २ बी० बोल्यो । ३. बी० जु देखें अहा । (२) १. मैं० में 'नगरु' का 'नग' त्रुटित है । २. मैं० उजैन । ३. बी० बिक्रम राजा राव । (३) १. बी० चारि भुवन भीतरि जौं । २. बी० देष्या गोवरु । ३. बी० सुहावा । (४) १. बी० तिहि मैं । २. बी० मै । ३. बी० पाथर की जस चित्तर । (५) १. बी० मन हुते कैसैं मेंट । २. बी देषौं । (६) १. बी० सहदे । २. मैं० कर । ३. बी० धी । ४. बी० उजियार । (७) १. बी० में नहीं है । २. बी० परजरिहै (परजरिही—फ़ा०) । ३. बी० अपार ।

अर्थ—(१) [बाजिर ने कहा,] "कानों का सुना मैं क्या कहूं ? मैं वह कह रहा हूं जो मैं देख चुका हूं । (२) उज्जैन नगर मेरा स्थान है, विक्रमादित्य वहां के धर्मात्मा राजा हैं । (३) चारों भुवनों में चक्कर लगाता मैं [जब] आया, मैंने गोवर का सुहावना नगर देखा । (४) वहां पर मैंने चांद (चांदा) स्त्री को देखा, जो पत्थर में गड़ी हुई कील जैसी [होकर] मेरे चित्त में जान पड़ी । (५) [अब] वह [प्रतिमा] मन से किसी प्रकार मिटाई नहीं जा रही है, दिन-दिन वह अधिक और अधिक ही होगी । (६) वह चांदा सहदेव महर की कन्या है और चारों भुवनों में प्रकाशित है; (७) [वह ऐसी लगती है] मानो माणिक्य की ज्योति प्रज्वलित हो रही हो; वह अपार [रूप से] नागरी तथा चतुरा है "

(६३)

सुनि कइ चांदु राउ 'अंगिरानां'। बाजुर 'ओहट नियर धरि' आना।
जस 'कोइसूत' 'बइस' उठि 'जागइ'। राजा हियें चटपटी 'लागइ'।
तुरी 'देइ' बाजुर 'कहुं' आनी। पीठि घालि पाखर 'सोनवानी'।
'बाजुर' कवन 'देस' सो नारी। 'गाउं कहउ अरु ठाउं' बिचारी।
'लषन कहउ अउ करन' बिसेखी। 'कवन' रूप सो तिरिया देखी।

मारग 'कवन' 'कइस बेवहारा' 'लांबि छोटि कसि आहि'।
सहज सिंगारु 'रूप रस' 'बिदक'' पराकिरति कैं (केइं) चाह(हि)'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४२, भो० पत्र ६० (नवीन), बी० १९६-१९८। भो० मे इस कडवक की पुरानी संख्या भी प्राप्त है, जो ६२ है।

शीर्षक—मैं० : आशिक़ शुदने राव बर नाम चांदा व अस्प दिहानीदन बाजुर रा।

भो० : शुनीदने राव रूपचंद नामे चांदा व पुरसीदने बाजुर रा सूरतो जेवाइए ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० अगरांना। २. बी० अहुट नीर हुइ। (२) १. मैं० को सूत, बी० कसीत। २. मैं० बइठ, बी० बैठि। ३. बी० जागैं। ४ बी० लागैं। (३) १. मैं० देहि, बी० देहु। २. बी० कौहु। ३. बी० सुनवानी। (४) १. भो० बाचिर। २. बी० दीय। ३. मैं० ठउर कहउ बरु तुमह, बी० ठाव कहसि औ लषिन। (५) १. बी० लषिन कहौं परत। २ मैं० आछरि, बी० कौन। (६) १. बी० कौन। २. बी० कैस ब्योहारू। ३ बी० लाब छोट केस आह। (७) १. मैं० भोग। २. बी० चांद कैं। ३ मैं० पराकीरति (पराकिरति) कइ चाहि, भो० पराकिरति कसि ताहि।

अर्थ—(१) चांद [नाम] सुनकर राजा ने अंगड़ाई ली और बाजिर को जो ओहट (दूर पर) था, पकड़ कर अपने निकट ले गया। (२) जिस प्रकार कोई प्रसुप्त उठ कर बैठ जाए और जाग पड़े, इस प्रकार की चटपटी (उतावली) राजा के हृदय में लगने लगी। (३) सोने के वर्ण की पाखर जिसकी पीठ पर डाली हुई थी, ऐसा एक घोड़ा उसने ला कर (मंगा कर) बाजिर को दिया। (४) [उसने पूछा,] "बाजिर, वह नारी किस देश में है? तुम उसका ग्राम तथा स्थान विचार कर कहो (बताओ)। (५) उसके लक्षण तथा विशेषता के साथ उसके करण (शरीर के अवयव) कहो तुमने किस

रूप की वह स्त्री देखी है ? (६) [उसके देश का] मार्ग कौन-सा है और उसका व्यवहार कैसा है ? वह नारी लंबी है या छोटी—कैसी है ? (७) हे सहज श्रृंगार, रूप तथा रस के जानकार, उसकी आकृति तूने कैसी देखी है ?"

(६४)

'पहिलें मांग क कहउं सोहागू'। 'जेंहि' राता जगु 'खेलइ फागू'।
मांग 'चीरि सिर' सेंदुर पूरा। 'रेंगि चला जनु कानकेजूरा'।
'दीया' जोति 'रइनि जसि' बारी। कारें सीस दीस रतनारी।
'मइं वह मांगि' चीर तर दीठी। उवत सूरु 'जनु' किरनि पइठी।
मोंति 'पुरोइ जउ हि बइसारा'। 'सगरें देस' होइ उजियारा।

राउ रूपचंद बोला बहुरि 'इहइ खंड' गाउ।
मांग सुनत मनु राता वाजुर 'करबि' 'बिपाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४३, बी० १९९-२०१।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते फ़रके चांदा गुफ्तन बाजिर बर राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहलि मांग का कहैं सुहागू। २. बी० जिहि। ३. बी० षलै पागू। (२) १. बी० चीर कै। २. बी० रींगि चिला जानौ कान षिजूरा। (३) १. मैं० दिया। २. बी० रैनि जैसी। (४) १. बी० जो सिर माड। २. बी० जानौं। (५) १. बी० परोइ जहाँ बैसारी। २. बी० सगरै द्योस। (६) १. बी० यही षंडि। (७) १. बी० करौंहु। २. बी० पसाउ।

अर्थ—(१) [बाजिर ने कहा,] "पहले मैं [उसकी] मांग की सुभगता का वर्णन कर रहा हूं, जिस [की रक्तिमा] से रक्त हो कर जग फाग खेलता है। (२) मांग चीर (निकाल) कर उसने सिर में सिंदूर पूर रक्खा है, [जो ऐसा लगता है] मानो कानकेजूरा रेंग रहा हो। (३) जैसे रजनी में दीपक की ज्योति प्रज्वलित हुई हो, इस प्रकार काले सिर [के बालों] में वह रतनारी (ललछौंहीं) मांग दीखती है। (४) मैंने वह मांग [उसके] चीर के नीचे देखी, [तो वह मुझे ऐसी लगी] मानो सूर्य के उदय होते समय की किरण [अन्धकार में] प्रविष्ट हुई हो। (५) जब उस [मांग] पर मोती पूर कर बिठाए जाते हैं, तब समस्त देश में प्रकाश हो जाता है।" (६) राजा रूपचंद [इस वर्णन को सुनकर] बोला, "फिर तो [श्रृंगार-वर्णन का ? -] यही खंड तुम गाओ (७) उसकी मांग के वर्णन को सुनकर मेरा

मन उस पर अनुरक्त हो गया है और, ऐ बाजिर, ऐसा लगता है कि तुम [यह सुना कर] मुझे बेपाय कर दोगे।"

(६५)

भवर बरन भइं देखे बारा। 'जनु बिसहर लुरि परे भंडारा'।
लाब केस सिर पा 'धुरि' आए। जानु 'सेंदूरे' नाग सोहाए।
बेनी गूंदि 'जउहि ओरमावइ'। लहरि 'चढ़हि' बिसु 'मसतगि धावइ'।
'देखत' बिसु 'चढ़' 'मंत्रु न मानइ'। गारुरि 'तासु उतारु न' 'जानइ'।
'जूरा छोरि झार सो' नारी। 'दिवसेहिं राति' होइ 'अंधियारी'।
डंकु 'चढा' 'बिसु' 'राजा' 'परा लहरि मुरुझाइ'।
बात 'सुनत' 'जेहि बिसु चढ़' गारुरि 'का सु' कराइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४४, बी० २०२-२०४।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते मुएहा चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैसैं बिरहर लहरि परैं भडारा। (२) १. बी० धरि। २. बी० सिदूरै। (३) १. बी० जबहि उरिबावै। २. बी० चरै। ३. बी० मस्तकि धावै। (४) १. बी० देषित। २. बी० चरि। ३. बी० मतरु न मानैं। ४. मैं० काह अनारी। ५. बी० जानौं। (५) १. बी० जूर छोडि कैं झारि सु। २. बी० द्यौसे हि रात। ३. बी० उजियारी। (६) १. बी० चरा। २. मैं० सुनि। ३. बी० राजहि। ४. बी० औ जु लहरि मुरझाय। (७) १. मैं० कहत। २. बी० जिहि बिसु चरगा। ३. मैं० काह।

अर्थ—(१) "उसके भ्रमरों के वर्ण के बालों को मैंने देखा [जो ऐसे लगते हैं] मानो [अमृत के] भांडार पर विषधर लोटने लग गए हो। (२) उसके लम्बे केश सिर से धुर पैरों तक आए हुए हैं, [और सिंदूरित होने के कारण ऐसे लगते हैं] मानो सुहावने नाग हों जो सिंदूरित किए गए हों। (३) अपनी [सर्पिणी जैसी] वेणी को गूँथ कर वह जभी लटकाती है, [दर्शक पर विष की] एक लहर चढ़ जाती है, और विष [उसके] मस्तक तक दौड़ जाता है। (४) उसे देखते ही विष ऐसा चढ़ता है कि वह कोई मंत्र नहीं मानता है, उस विष का उतार (उतारने का उपचार) [कोई] गारुडी (मन्त्रादि से सर्पविष दूर करने वाला) नहीं जानता है। (५) [जब] वह नारी अपने जूड़े को खोल कर बालों को झाड़ती है, तब दिन में ही अंधेरी रात हो जाती है।" (६) [यह सुनकर] राजा को सर्प-दंश का विष चढ़ गया और वह उसकी लहरों से मूर्छित होकर गिर पड़ा ७ जिसकी वार्ता

सुनते ही विष चढ़ता है, [उस सर्प के दंश के लिए] गारुड़ी [भला] क्या कर सकता है ?"

(६६)

देखि लिलार बिमोहे देवा । 'लोक' कुटुंब 'तजि' 'कीतिहि' सेवा ।
'दूजि क' चांदु 'जानु परगसा' । 'कइ खर सोवन कसौटी कसा' ।
बदनु 'पसेज बुंद जो' आवहिं । चांद 'मांझ जनु नखत दिखावहिं' ।
'मनहुं दिब सउंह न देखी' जाई । सरग सूरु 'जनु' उदिनल आई ।
ससिहर रूप 'भई' अतिरेखा । 'मइं न अकेलें' सब 'जगु' देखा ।
सूरु 'चढ़ा' बिसु उतरा 'राजइं' करवट लीत ।
सुनि लिलारु उठि 'बैठा (बइठा)' 'बाजुर कंचन' दीत ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४५।१, बी० २०५-२०७ ।

शीर्षक—मैं : सिफ़ते पेशानी चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोग । २. बी० जु । ३. बी० कीन्ही । (२) १. बी० दूज का । २. बी० जानौं परगासा । ३. बी० कैं षर सौन कसौटी कासा । (३) १. बी० पसीज बूद चुय । २. बी० मझ जस नषत दिषावैहि । (४) १. बी० मुंह दिप देखैं सो भन (?) । २. बी० जानैं । (५) १. बी० भयो । २. बी० मैं न अकेलैं । ३. बी० जगि । (६) १. बी० चरा । २. बी० राजा । (७) १. मैं० बइठेउ । २. बी० बाजरि कनजप ।

अर्थ—(१) "उसका ललाट देखकर देवता विमोहित हो गए, और लोक तथा कुटुम्ब को छोड़कर उन्होंने उसकी सेवा की । (२) [वह ऐसा लगता है] मानो द्वितीया का चन्द्र प्रकाशित हुआ हो, अथवा कोई खरा सोना कसौटी पर कसा गया हो । (३) उसके मुख पर जो प्रस्वेद-बिन्दु आते हैं, वे चन्द्र में मानो नक्षत्र दिखते हैं । (४) वह [ललाट] ऐसा लगता है मानो दिव्य (तप्त लौह) हो, [इसलिए] सामने से वह देखा नहीं जाता है; अथवा वह [ऐसा लगता है] मानो आकाश में उदीयमान होकर आया हुआ सूर्य हो, (५) [अथवा] वह ललाट अतिरेक के साथ शशधर (चन्द्र) के रूप का हो गया है और ऐसा अकेले मैंने नहीं, समस्त जगत् ने देखा है ।" (६) सूर्य जब [आकाश में] चढ़ा, तब राजा पर चढ़ा हुआ [चांदा के केश-सर्पों का] विष उतरा और राजा ने करवट ली । (७) ललाट [का वर्णन] सुन कर वह उठ बैठा और उसने बाजिर को [पुरस्कार में] खरा सोना दिया ।

(६७)

'भउंह धनुक जनु दुइ कर' ताने। पनच 'बान बिष घैंचि संधाने'।
बान बिसार सान 'दइ लावइ'। पारधि 'जइस अहेरइ आवइ'।
'अरजुन धनुक सरग मइं' देखे। चांद 'भउंह' गुन सोइ बिसेखे।
सर तीखे 'जेंहि मारि फिरावइ'। 'ठउर परइ सो पैग न जावइ'।
'भौंह बांन धन (नि) अस गुन' अहा। मूंठि न डोल 'चुकाइहि' कहा।
बंसकार 'छंडि बाजिर' 'धानुक' भई 'सो' नारि।
सहजि मिरिगु 'भा' 'राजा' भया मोहि 'गिय सारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४५।२, बी० २०८-२१०।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते अज़ रूए चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० भौह धनष जानौ देषि के। २. मै० नाहि गुन खीच सयाने। (२) १. बी० दे लावै। २. बी० जैसैं अहेरै धावैं। (३) १. बी० अरजन धुनष सरजि मैं। २. बी० भौह। (४) १. बी० जिह मा[र] फिरावै। २. बी० ठांव परै तिहि देष नं आवै। (५) १. मै० चाद भउह गुन अइसइं। २. बी० चुकाउं। (६) १. बी० छिंद बाजर। २. बी० धान[क]। ३. बी० सु। (७) १. बी० भया। २. मै० राजा राजा ३. बी० गई मारि।

अर्थ—(१) "उसकी भौंहें [ऐसी लगती हैं] मानो [उसके] दोनों हाथों ने धनुष ताना हो, और उन्होंने पनच (प्रत्यंचा) पर विष-बाण खींच कर सधाने हों। (२) वह शान पर चढ़ाकर [अपने] विषाक्त बाण [उन धनुषों पर] लगाती है, और पापर्धिक (बहेलिए) की भाँति आखेट करने के लिए आती है। (३) आकाश में मैंने अर्जुन (?) के धनुष को [निकला हुआ] देखा है, वे ही (उसी के) गुण चांदा की भौंहों में विशेषता के साथ [पाए जाते] है। (४) जिसे वह तीक्ष्ण [दृष्टि-] बाणों से मार कर गिराती हैं, वह उसी स्थान पर गिर पड़ता है, और एक पैग (पग) भी [आगे] नहीं जा पाता है। (५) उस कन्या (चांदा) की भौंहों का गुण इस प्रकार का है कि उसकी मूठ नहीं हिलती है, इसलिए वह [लक्ष्य-वेध] में क्या (क्यों) चूके? (६) बाजिर कहता है, वह [वधिक] नारी बंसकार (बांसरी) [का बजाना] छोड कर धानुष्क हो गई है।" (७) [यह सुनकर] उसके माया-मोह [के पाश] में गला डाल कर राजा सहज ही [वधिक का] मृग हो रहा।

(६८)

नैन सुरूप सेत 'मकरारे' । खिन खिन बरन होहि रतनारे ।
अव फार 'जनु मोतिन्ह' भरे । ते 'लइ भउंहन्ह' के तरि धरे ।
'डोलहि सहजि' 'जानु' मद पिया । 'कइ' निसि पवनि झकोरा दिया ।
उलटि 'समुंद' 'जनौ मानिक' रहे । 'राइ' थाक कर 'गांहि' न गहे ।
नैन 'समुंद' हैं (हइं) 'अति' अवगाहा । 'बोहिथ बूडि' न पावहिं थाहा ।
'बहुतई नैन चांद बस' 'औ (अउ) देखहु धौं (दहुं) आइ' ।
सरगि जाइ 'चढि' 'चांदा' बइसी 'राजा पूछौ (छउ) काइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।१, बी० २११-२१३ ।

शीर्षक—सिफ़ते चश्म: हाए चांदा गोयद ।

मैं० में (३) के 'मद' को 'मधु' किया गया है ।

पाठान्तर—(१) मैं० महं कारे । (२) १. बी० जानै मोत्यों । २. बी० लै भौहनि । (३) १. मैं० सहजहि डोलहिं । २. बी० जानौ । ३. बी० कै । (४) १. बी० समदि । २. मैं० मानिक भरि । ३. बी० राय । ४. मैं० गांठि । (५) १. बी० समंद । २. मैं० अती । ३. मैं० बूडहि राइ । (६) १. बी० भीतरि चांद नैन बीसये । २. मैं० आइ देखु धौ आहि । (७) १. बी० चगि । २ मैं० में नहीं है । ३. मैं० राजा पूछहु काहि ।

अर्थ—(१) "उसके सुरूप नेत्र जो श्वेत और मकरारे (कलछौंहें) हैं, क्षणानुक्षण रतनारे (ललछौंहें) होते रहते हैं । (२) [वे ऐसे लगते हैं] मानो आम की फांकें हों जो मोतियों से भरी गई हों, तथा [तदनंतर] ले कर भौहों के नीचे रख दी गई हों । (३) वे सहज ही डोलते रहते हैं, मानो उन्होंने मद-पान किया हो, अथवा [मानो वे जलते हुए दीपक हों जो] रात्रि मे पवन द्वारा झकोरे गए हों; (४) [अथवा मानो] वे समुद्र से उलटे [बाहर फेंके] हुए माणिक्य हों, [उन्हें देख कर] राजा भी थक जाते है [क्योंकि] वे हाथों से उन्हें पकड़ने का प्रयास करके भी पकड़ नहीं पाते है । (५) वे नेत्र अत्यधिक गहरे समुद्र हैं, जिनमें बोहित्थ डूब जाते हैं, और फिर भी [जिन का] थाह नहीं पाते हैं । (६) चांदा के उन नेत्रों में बहुतेरे [राजे] निवास करते हैं, और तुम इसे आ (जा) कर देख सकते हो । (७) आकाश में जा कर वह चांदा बैठी हुई है, ऐ राजा, उसे तुम क्या पूछते हो ?

(६९)

मुह 'मह' नांक देस 'क' सिंगारू । 'जनु' अभरन 'ऊपर गियं हारू' ।
'सहज ऊंचि' पिरथमी जानां । 'अउ' सभ ताकर 'करहिं' बखाना ।
सुवा 'नांक जो लोकि' सराहा । 'तेहू' चाहि अधिकु पै (पइ) आहा ।
तिल क फूल 'जस' फूल सुहावा । 'पदुमिनि' नांक 'भाउ तस' पावा ।
नाक सरूप अइस मइं कहा । 'जानहु' खरगु सोवन कर 'अहा' ।
'बेनां परिमल' 'फूल कसतूरी' सभै (भइ) बास रसु लेइ ।
खिन मर खिन 'जिय' 'राउ' रूपचंद अरथु दरबु 'सभु' देइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४६।२, बी० २१४-२१६ ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते बीनीए चांदा गोयद ।

मै० के (२) । १ के पाठ में 'पिरथमी' के आगे 'सब' बाद में बढ़ाया हुआ है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैं० । २. बी० कौ । ३. बी० जिहि । ४ बी० उपैं गैहारू । (२) १. बी० साजैं उचकुच । २. बी० औ । ३. बी० करत । (३) १. बी० नांक जानु लोगि । २. मै० तेइ । (४) १. बी० अति । २ बी० पदमनि । ३. बी० भाव तसैं । (५) १. बी० जानौं । २. बी० गहा । (६) १. बी० बीना परमल । २. मै० सबइ । (७) १. बी० जिव । २. बी० राज । ३. मै० सब ।

अर्थ—(१) "उसके मुख [मंडल] में नासिका-देश का शृङ्गार (सौन्दर्य) ऐसा है कि मानो आभरणों के ऊपर ग्रीवा का हार हो । (२) पृथ्वी मे सब नासिका को [शरीर में] सहज ही ऊँची जानते हैं, और [इसलिए] सभी उसका बखान करते हैं । (३) लोक में शुक-नासिका की जो सराहना की जाती है, हो न हो [उसकी नाक] उससे भी अधिक (बढ़ कर) है । (४) तिल का फूल जैसा सुंदर फूल होता है, उस पद्मिनी की नासिका ने भी वैसा ही भाव (रूप-सौन्दर्य) पाया है । (५) उस नासिका के स्वरूप को मैं इस प्रकार कह सकता हूँ कि मानो वह सोने का खड्ग हो । (६) वीरण (खस) परिमल, फूल, कस्तूरी—सभी वासनाओं का रस वह ग्रहण करती है ।" (७) [यह वर्णन सुनने पर] राव रूपचंद किसी क्षण मरता तो किसी क्षण जीता और वह [बाजिर को] अर्थ, द्रव्य तथा सभी कुछ देता ।

(७०)

राजा 'अवर त' अधर 'तरासे'। 'जनु मनुसइं के' रगत पियासे।
'ईंगुर घोरि' 'दरेरइं' लिखे। रगत 'पियइ मनुसइं कर सिखे'।
सहज रात जनु सुरंग पंवारी। 'औ (अउ)' रंगि राते पांन सुपारी।
'हार डोर बहु तिन्ह' रंग राता। 'तिन्ह रंगि' बाजुरि कही 'सो' बाता।
'जानु तरासा' कुसु 'लइ' चीरा। खांड आनि 'तेहि' ऊपर बीरा।
अस 'कइ' अधर 'बरनि गए (?)' 'राजा भा' मन भोरु।
रगत धार दुहुं 'नैनन्हि' रस 'धरि' मारा चोरु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४७।१, बी० [२१७]–२२१; दो संख्याएं बी० मे बीच में छूट गई हैं।

शीर्षक—सिफ़ते लबहाए चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० और ति। २. बी० निरासे। ३. बी० जनै मनस कर। (२) १. मैं० लखे दरेरइं (देखिए बाद की शब्दावली)। २ बी० दरेरे। ३. बी० पिये मानस कर सेषे। (३) १. मैं० अउर। (४) १. बी० हाथ दोर तिह ही। २. बी० तेहि रंग बाजुरि कही। ३. बी० मे नहीं है। (५) १. बी० जानै निरासे। २. बी० लै। ३. बी० तिहि। (६) १. बी० कै। २. बी० बरंगे। ३. बी० राज भया मनु। (७) १. बी० दौहु नैनांह। २. बी० धर।

अर्थ—(१) "और, हे राजा, उसके अधर ऐसे त्रास देने वाले हैं, मानो वे मनुष्य के रक्त के प्यासे हों। (२) [वे ऐसे रक्त वर्ण के हैं मानो] हिंगुल घोल कर [उसकी] धारियां लिखी (बनाई) गई हों; उन्होंने मनुष्यों का रक्त पीना [ही] सीख रक्खा है। (३) वे सहज ही रक्त हैं, जैसे सुरंग प्रवाल हो और पान-सुपारी [के रंग] से [और भी अधिक] रक्त [वर्ण के] हो गए है, हारों की डोरी भी उनके रंग से बहुत रक्त हो गई है और उन्हीं के रंग मे रंग कर बाजिर यह वार्ता कह रहा है। (५) मानो वे त्रस्त करने वाले कुश को लेकर चीरे हुए हैं [इसलिए रक्तवर्ण के हैं] और उन पर खांड लाकर डाली (?) हुई है।" (६) वे अधर जब इस प्रकार वर्णित किए गए, तो राजा मन में भूला (भ्रमित) हो गया। (७) उसके दोनों नेत्रों में रक्त की धारा उमड पड़ी और वह ऐसा हो गया मानो अपने रस अनुराग

(७१)

चौक भींनु 'पानन्ह' रंगि राता। 'अंतरिन्ह' लागि रहे 'जनु' चांटा।
अधर 'बिहरि' 'जउ हंसइ' गुवारी। बिजुरी लौकि 'रइनि' अंधियारी।
'मुख' भीतरि 'दीसइ' उजियारा। हीरा डसन 'करहिं' चमकारा।
सोवन 'खा(खां)ब जानु गढ़ि धरे'। जानु 'सिगरि करि कोइला' 'भरे'।
'दारिउं' दांत देखि रस आसा। भंवर 'पंखि' लागे चहुं पासा।
'मूछा' राउ रूपचंदु सुनि कइ बचन 'सुहाउ'।
भोजन 'जेंवत राजहि लाग दांत कर घाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४७।२, बी० २२२-२२४।

शीर्षक—सिफ़ते दंदान चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० पानि। २. बी० अतर। ३. बी० जानौ। (२) १. बी० विहसि। २. बी० ज्यों हसैं। ३. बी० रैंनि। (३) १. बी० मुहु। २. बी० देषौ। ३. बी० करैं। (४) १. बी० काप जैसि घरि धरी। २ बी० कुईरि कुईला। ३. बी० भरी (?)। (५) १. बी० दार्‌यो। २ बी० पंक। (६) १. बी० समझा। २. बी० सुहाई। (७) १. बी० जीवन मोर दिन बरौ चांद कैं षाई।

अर्थ—(१) "उसके चौक (सामने के चार दांत) भीने और पानों के रंग से रंगकर लाल हैं; वे [ऐसे लगते हैं] मानो अंतड़ियों में चींटे लग (चिपक) रहे हों। (२) वह ग्वालिन अधरों को एक-दूसरे से अलग कर जब हँसती है, तब [मानो] अंधेरी रात में बिजली कौंध जाती है। (३) उसके मुख के भीतर प्रकाश दिखाई पड़ता है, [क्योंकि] हीरे [सदृश] दांत [उसमें] चमत्कार करते [रहते] हैं (४) [वे दांत ऐसे हैं] मानो सोने के खंभे (?) गढ़ कर रक्खे हुए हों, [अथवा] मानो सिगड़ी [जला] कर [उसमें] कोयले रक्खे हुए हों [जो जल रहे हों]। (५) उसके दाडिम [जैसे] दांतों को देखकर रस की आशा से भ्रमर तथा पक्षी उसके चारों ओर लगे [रहते] हैं।" (६) राजा रूपचंद्र इन सुहावने वचनों को सुनकर मूर्च्छित हो गया, (७) [जिसके कारण] भोजन करते समय राजा को दांतों का घाव लग गया।

(७२)

चाद 'जीभि मुख' 'अंबिरित' बानी। पान फूल रस 'पिरम' कहानी।
पदुमिनि बचन नीद सुनि आवइ' दुख बिसरइ सुख रइनि बिहावइ

'अबिरित' कुंड 'भएउ' मुख नारी । सहज बात रस 'बहइ सु नारी' ।
'कवल' क फूल जीभि तेहि माहां । अधर पान 'करि आछइ' छाहा ।
पान 'कैधें (कइ दहुं)' मुख 'जीभि' अमोला ।
फूल झरहिं 'जउ हंसि हंसि' बोला ।
'छरंगा' राउ रूपचंद 'धरहु धरहु' चिललाइ ।
पान फूल 'अंबिरित जसि' चांदा अब ही गइ 'दिखराइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४८।१, बी० २२५-२२७ ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते जुबान चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बचन सुनि (तुल० पंक्ति २) । २. बी० अबृ० (अबिरित), मैं० अमिरित । ३. बी० पेम । (२) १. बी० आवै । २. बी० बिसरहि सुष रैंनि बिहावै । (३) १. बी० अंब्रित (अबिरित), मैं० अमिरित । २ बी० भई । ३. बी० भइ पियारी । (४) १. बी० कंवर । २. बी० कें आछौं । (५) १. मैं० जैस । २. बी० जीभ । ३. बी० जौ हसि कैं । (६) १. बी० छिरगा । २. बी० धरहर औ । (७) १. बी० अंब्रित रस । २ बी० दिखाइ ।

अर्थ—(१) "चांद (चांदा) के मुख में [उसकी] जिह्वा पत्रों-पुष्पों के रसों तथा प्रेम-कथनों के कारण अमृत-वर्ण की हो रही है । (२) उस पद्मिनी के वचन [ऐसे होते हैं कि उन्हें] सुन कर नींद आती है, दुःख विस्मृत हो जाता है और रात सुख से व्यतीत होती है । (३) उस नारी का मुख अमृत का कुंड [बना] हुआ है, जिससे सहज वार्ता-रस की अच्छी नाली बहती रहती है । (४) उसमें जो जिह्वा है, वह [मानो] कमल का पुष्प है; वह जिह्वा अधरों का पान कर उनकी छाया मे रहती है; (५) अथवा उसके मुख की जिह्वा [उस नारी-लता का] पर्ण है, और जब वह हँस कर बोलती है, [उस लता के] फूल झड़ते हैं ।" (६) [इस वर्णन को सुनकर] राजा रूपचंद [जैसे किसी छलना द्वारा] छला गया, और वह चिल्लाने लगा, "पकडो, पकड़ो; (७) पान-फूल और अमृत जैसी चांदा अभी-अभी दिखाई पड़ कर [यहाँ से] गई है ।"

(७३)

'सवन' सीप 'चंदन घसि' भरे । कूंकूं बरन 'अतिय' 'कोंवरे' ।
लाब न छोट थूल नहि तिए कान कनक जनु झरकहि दिए'

कंवर 'क फूल बीरिय' अति 'लोने'। कौंधा सरगि 'लवहिं दुहुं कोने'।
'दुहुं गालन्हि घिय कै' चिकनाई। 'जानिय अरसी दुहुं दिसि' लाई।
'अंबिरित' कुंड झवकि 'करि' भरा। 'अइस न जानउं काहि कहं' धरा।

अमर सबदु 'भय (भये)' चांदा मुख 'अंबिरित' धनि 'नारि'।
एत बोलु सुनि राजा फुनि उठ बइठ 'खंखारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४८।२, बी० २२८-२३०।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते गोशहाए चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० सोन। २. बी० जनौ चंदन। ३. बी० अते। ४. बी० कूवरे। (२) १. बी० में अर्द्धाली के लिए स्थान छोड़ा हुआ था, बाद में संभवतः प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा वह इस प्रकार दी गई :

लांब न छोट थुल नहि तेइ : कान कनक जानै झरकै देई।

(३) १. मैं० कपोल रूप। २. बी० लूनें। ३. बी० लुबाहि जानौ कूनें। (४) १. मैं० गालह की अैसी। २. बी० कै अरसी लहि दहु दिस। (५) १. बी० अंब्रित, मैं० अमिरित। २. बी० कर। ३. बी० औस। अैसि (?) न जानौं काकौं। (६) १. मैं० सो। २. बी० अंब्रित, मैं० अमिरित। ३. बी० धन। (७) १. बी० षघारि।

अर्थ—(१) "उसके कान उन सीपों के जैसे हैं जो घिसे हुए चंदन से भरे हुए हों; वे कुंकुम के वर्ण के और अत्यधिक कोमल हैं। (२) वे न लम्बे है न छोटे, न स्थूल हैं, और न पतले; वे कान कनक-दीपों के समान झलकते है। (३) उसके बीलक (कान के बीरे) अत्यधिक लावण्यपूर्ण कमल के पुष्प है; [वे ऐसे चमकते हैं मानो] आकाश के दोनों कोनों (छोरों) पर बिजली लपलपा रही हों। (४) उसके दोनों गालों पर घृत की चिकनाहट है, मानो दोनों ओर [दो] आरसियां (आदर्शिकाएँ) लगाई हुई हों। (५) वे झवक कर (मुहांमुह ?) भरे हुए अमृत-कुंड हैं, और ऐसा मुझे ज्ञात नहीं है कि वे किसके लिए [अछूते] रक्खे हुए हैं। (६) उस के मुख में अमृत है इसलिए उस चांदा के शब्द अमर है, और वह नारी धन्य है।" (७) [अमृत की चर्चा से पूर्ण] इतने वचनों को सुन कर राजा पुनः खंखार कर [और चेत में आकर] उठ बैठा।

(७४)

नैन 'स्रवन' बिच तिलु इकु परा। 'जानु' बिरह मसि बिंदुका धरा।
मुख के 'सोहागु भएउ' तिल संगू। 'पदुम' पुहुप 'सिर' बइठ 'भुजंगू'।

वास 'लुबुध' बइठेउ भल आई। 'काढि' रहा हरि 'जानु' उड़ाई।
तिल बिरहें 'बन' 'घुंघुची' जरी। 'आधी' 'कारि' 'आधी रतफरी'।
'बिरह दगध हौ (हउं)' मरन स (सं)नेहा।
रगत 'हीन' 'कोइला' भइ देहा।
तिल 'संजोग बाजुर सिर कीन्हेउ' ओहट भा 'परु' जाइ।
राजा 'हिएं' आगि परजारी तिल तिल 'जरि न' बुझाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४६।१, भो० पत्र ३ (नवीन), बी० २३१-२३३।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते खाले चांदा गोयद।

भो० : सिफ़ते खाले बेमिसाल मह पैकरे चांदा मयानः जिस्म व गोश नुकतः स्याह् उफ़तादन।

पाठान्तर—(१) बी० श्रवन। २. बी० जानौ। (२) १. बी० कौ। २ बी० सुहाग भयो। ३. बी० पिरम। ४. बी० जानौ। ५. बी० भुवगू। (३) १. मै० लुबुध तेहि बइठेउ आई, बी० लुबध बैठो फिहिराई। २. बी० मगडि। ३. बी० जैन। (४) १. बी० बिनु (बनु—फ़ारसी)। २. बी० घुघुच, भो० घुंगची। ३. भो० आधि। ४. बी० करि। ५. बी० अंधी रातुरी। (५) १. मै० तेहिं बिरहें तहं। २ बी० नही। ३. बी० कुईला। (६) १. बी० संजोगि बाजुरि सिरु कीन्हा। २. बी० परि। (७) १. बी० हिये, मै० हिए। २. भो० जरइ न, मै० जरइ।

अर्थ—(१) "उसके [एक ओर के] नेत्र और श्रवण (कान) के बीच एक तिल पड़ा हुआ है, [जो ऐसा लगता है] मानो विरह का मसि-विंदु रक्खा हुआ हो। (२) यह उसके मुख का सौभाग्य था कि उसको उस तिल का संग प्राप्त हो गया; [यह ऐसा हुआ मानो] पद्म-पुष्प के ऊपर भुजंग (भ्रमर) बैठ गया हो, (३) और वह वास-लुब्ध होकर आकर भले ही बैठ गया हो किन्तु अब वह उड़ेगा, इसलिए अपनी बेड़ी (अपना बंधन) निकाल फेंक रहा हो। (४) उस तिल के विरह में बन की घुंघुची जल गई, [इसीलिए] वह आधी काली और आधी रक्त-फला [हो गई] है। (५) उसके विरह के दग्ध (दाह) के कारण मुझे भी मरने का सन्देह हो रहा है, और मेरा शरीर [भी] रक्तहीन होकर कोयला [जैसा] हो रहा है।" (६) [जब उस धानुष्का ने] बाजिर के सिर पर इस तिल के संयोग (शस्त्रास्त्र) का प्रयोग किया था, वह दूर जा पड़ा था। (७) [अब उस तिल ने] राजा के हृदय में वही अग्नि प्रज्वलित कर दी थी जिससे वह भी तिल तिल जल कर बुझ नही रहा था

(७५)

राजा 'गियं कइ' सुनहु निकाई। 'जनु' कुंभार धरि 'चाक' फिराई।
'फूकति नारि' 'कचोरा' लावा। पियत 'निरांतर गह' दिखरावा।
देव सराहहिं 'तेतीसउ' कोरी। 'गिय उंचारि गहिलिहेसि' अजोरी।
'असि गियं' मनुसहिं 'आथि' न काहू। ठासि 'धरा' 'जनु' 'चलइ' कियाहू।
का 'कहुं' असि 'गियं' दई संवारी। 'को तेहि लागि' देय अंकवारी।
हिय सिरान राजा कर 'सुनेसि कंठ अंकवारि'।
गोवरु मारि 'बिधांसउं' 'आनउं' चांदा नारि।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ४६।२, भो० पत्र ४ (नवीन), बी० २३४-२३७। बी० में बीच मे एक संख्या छूटी हुई है।

भो० में इस कडवक के पत्र पर पुरानी पत्र-संख्या ७५ पड़ी हुई है।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते गुलूए चांदा गोयद।

भो० : सिफ़ते मेहरहे मह पैकरे चांदा मिस्ले औंद कुलाल गुज़ाश्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० गै की। २. बी० जानौ। ३. बी० चाकु। (२) १. बी० फुवकत नीर। २. भो० कचेरइं। ३. बी० ल्यावा। ४. भो० निरांतर नहि, बी० नीर अन्तर। (३) १. मै० तहतीसउ, भो० तेतीस्यो। २ भो० केउं अपछरा कै लीन्हि, बी० गैं विचारि फुनि कहसि। (४) १. भो० असि गिय, बी० अैसग। २. मै० मनुसहि दीखि, बी० मनसह आथि। ३. मै० धरे। ४. भो० में नहीं है। ५. भो० चलत, बी० चलैं। (५) १. बी० कौ। २ भो० गिय, बी० गैं। ३. बी० कतिहि लाइ। (६) १. बी० सुनि कैं कठ कीयाहि। (७) १. बी० बिधंसौं। २. बी० आनौं।

अर्थ—(१) "हे राजा, उसकी ग्रीवा की सुन्दरता सुनो; [वह ऐसी लगती है] मानो किसी कुम्हार के द्वारा चाक पर रख कर फिराई गई हो। (२) वह नारी [अधरों से] कच्चोल को लगा कर [पेय को] फूंकती है, और तब जब वह उसे पीती है, वह ग्रहणीय (पेय) निरंतर दिखलाई पड़ता है। (३) उसे तैंतीसों कोटि देवता सराहते हैं [और कहते हैं,] 'किससे उखाड कर उसने यह ग्रीवा जोड ली है?' ऐसी ग्रीवा मनुष्य में कभी नहीं थी। [इस ग्रीवा के साथ वह ऐसी लगती है] मानो कोई चल रहा हुआ कयाह [हो, जिसका गला] ठास (कस) कर पकड़ा गया हो। (५) ऐसी ग्रीवा विधि ने किसके लिए निर्मित की है और कौन इससे लग कर अंकपाली देगा? (६) राजा का हृदय शीतल हो गया, जब उसने कंठ को अंकपाली देने की

बात सुनी। (७) [उसने कहा,] 'मैं गोवर [के जन-समुदाय को मार कर विध्वस्त कर दूंगा और चांदा नारी को लाऊंगा'।"

(७६)

'सुनहु' भुवा 'डंड' 'केहि लइ लावउं'।
'एहि जग जउ तस किछुव न पाएउं (पावउं)'।
'कारि का गभ (केरिक गाभ)' 'देखउं' तस नाहीं।
'जनु पउंनारि बिसेखइ बाहीं'।
'ईगुर जइस सिलौटै(टइ) पीसा'।
'रगत अरगत' 'हथोरिन्ह' दीसा।
कर 'पालउ जनु' धरि धरि 'सारे'।
पेड़ 'सहित पालउ' सटकारे।
'जउ रे' भुआ बर 'कर' 'वउसाऊ'।
'एकउ' 'बीरु' न 'जीतइ' काऊ।
'नखन्ह भालि रावत केइं' 'धरे फेरि 'खर' सान।
'बड़' छरि 'लागि' अनियारे राजा 'दीत' परान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५०।१, बी० २३८-२४१; बी० में बीच में एक संख्या छूटी हुई है।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते दो दस्त चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुनौहु। २. बी० डंडु। ३. बी० कहि लै लाऊं। ४. बी० यह जग जो तिस कछू न पाउ। (२) १. मैं० गहर खंभ। २. बी० देष। ३. बी० जानैं पाउनारि विसेषैं ताही। (३) १. बी० ईगरु जैस सिलौटै। २. मैं० अरकत बिरकत। ३. बी० हथोरी। (४) १. बी० पलव जानैं। २. बी० सारे। ३. बी० सहत पलव। (५) १. बी० जौ रु। २. बी० करि बैसाऊ। ३. बी० येकौ। ४. मैं० नियर। ५. बी० जीतैं। (६) १. बी० नष भाल रावत कर। २. बी० बर। (७) १. बी० वरि। २. बी० लागहिगे। ३. मैं० दीन्ह।

अर्थ—"(१) अब उसके भुजदंडों को सुनो; किस पदार्थ को लेकर [उनकी तुलना के लिए] लाऊं? इस जगत में वैसा कुछ नहीं पाता हूं। (२) कदली के गर्भ को देखता हूं तो वह वैसा नहीं है; वे बाहें मानो पद्म-नालों से

विशिष्ट ही हैं। (३) [उसकी हथेलियां ऐसी रक्ताभ हैं कि] जैसे हिंगुल को सिलौटे पर पीसा गया हो, (बल्कि) उसकी हथेलियों से (के समक्ष) वह आरक्त [हिंगुल] भी अरक्त (लालिमाहीन) दीख पड़ता है। (४) उसके कर [ऐसे हैं] मानो ले-ले कर सारे हुए पल्लव हों और [मानो] वे पल्लव पेड़ (शरीर) के साथ सटकारे (कोमल या सचिक्कण किए) हुए हों। (५) यदि वह [अपनी] श्रेष्ठ भुजाओं का व्यवसाय (प्रयोग) करे, तो एक भी वीर [उससे] कदापि नहीं जीत सकता है। (६) उसके नखों के भालों पर ऐ रावत (राजपुत्र), किसने फिरा कर खर शाण रक्खी है? (७) उनके बड़े और अनियारे छल से लग कर (छले जाकर), ऐ राजा, मैंने प्राण दे दिये।"

(७७)

'सोवन थार' हिएं 'जनु धरे'। 'रतन पदारथ मानिक भरे'।
'सहज सेंद(ध)उरा' सेंदुर 'भरे'। थनहर फेरि 'कुंदेरइं धरे'।
नारिंग थनहर उठे अमोला। 'सूर न देखइ' पवनु न डोला।
समुंद भरा जनु लहरइं देई। पोइनि क रस जस भंवरइं लेई।
अम्रित 'हिरदेउं बेल उपाए'। 'साजि कचोरा हिरदेउं लाए'।
'कुसुम (कुसुंभ ?) चीर' तरि 'देखेउं' 'फरे बेल' बहु भांति।
'राजहि घाय बिसरि गए' सुनि 'अस्थन' भइ सांति॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५०।१, बी० २४२-२४४।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते पिस्तान चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुवन थारु। २. बी० भर धरा। ३. बी० मानिक हीर पंवारी जरा। (२) १. बी० सहजि सिधौरा। २. बी० भरा। ३ बी० कंडेरा धरा। (३) १. बी० सुर नर देष न। (४) १. बी० मे भिन्न पाठ की पंक्ति है—

सोवन करस जानौ दोउ गढे : सीसु दीत पय हाथि न चढे।

(५) १. बी० हिरदै बेलि उपाई। २. बी० सजि कचोराह हिरदै लाइ। (६) १. बी० कस्यौ चोरि। २. बी देष्यौं। ३. बी० फरी बेलि। (७) १. बी० हिय र सिरान राजा कर।। २. बी० अस्तन।

अर्थ—(१) "[उसके उरोज ऐसे हैं] मानो रत्नों, पदार्थों (बहुमूल्य पत्थरों) और माणिक्यों से भरे हुए सोने के थाल [उसके] हृदय पर रक्खे हुए हों। (२) वे सहज ही सिंदूर भरे हुए सिंदूर-पात्र [जैसे] हैं, [और वे चिकने ऐसे हैं मानो] उन भारी स्तनों को कुँदेरे ने [खराद पर] फेर कर

रक्खा हो। (३) वे भारी स्तन उठे (उभड़े) हुए अमूल्य नारंगे हैं, जिन्हे [वस्त्रों के आच्छादन के कारण] न सूर्य देख पाता है और न [जिनके निकट] पवन डोल पाता है। (४) [वे अपनी उठान में ऐसे लगते हैं] मानो भरा हुआ समुद्र लहरें दे रहा हो, और [उन पर का काला भाग ऐसा लगता है] जैसे कोई भौंरा पद्मिनी का रस ले (पी) रहा हो। (५) [पुन: वे ऐसे लगते हैं मानो] उसके हृदय ने अमृत के बेल उत्पन्न किए हों, अथवा उसने कच्चोल सजा कर रक्खे हों। (६) उसके कुसुंभी चीर के तले मैंने देखा कि वे बेल बहुत भांति से फले हुए थे। (७) [अमृत-युक्त] स्तनों [के इस वर्णन] को सुन कर राजा को [विरह के] घाव विस्मृत हो गए और उस को शांति मिली।

(७८)

पेटु 'कहउं सुनु तू जग' राजा। 'आपुइं बान कवन पर' साजा।
पूरन 'खांड' सपूरन 'पूरे'। 'जहवां दीसिहिं तहवां कूरे'।
'जानु' सोहारी 'घिरित' पकाई। देखत पान फूल पतराई।
नाभी कुंड 'जउ देखइ' 'बीरू'। 'देखतहिं बूड न पावइ' तीरु।
जानौ आंत पेट महिं नाहीं। 'अंतरिक(ख)' चांद 'दीस' परछाहीं।
अति 'अवगाह' 'पेट' अस बाजुर ता महिं सूझ न नीरु।
सुनि 'कइ' 'राउ' दौरि 'धसि लीते' 'बूडि न पावइ' तीरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५१।१, बी० २४५-२४७।

शीर्षक—सिफ़ते शिकम चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहौं सुनु भोकर। २. बी० औपन मजि कैन पै साजा। (२) १. बी० खड। २. बी० पूरी। ३. बी० जुहुवां देषौ तहुवा कूरी। (३) १. बी० जानौ। २. बी० घीरत। (४) १. बी० देषि जउ। २ बी० चीरु। ३. बी० देषत बूड न पावहिं। (५) १. बी० अंतरकि। २. बी० दीठ। (६) १. बी० औगाह। २. मै० बोल। (७) १. बी० कैं। २. बी० राइ। ३. बी० धस लीन्ही। ४. बी० बूड न पायो।

अर्थ—"(१) [अब मैं उसके] पेट का कथन कर रहा हूं; ऐ जगत् के राजा, तू उसे सुन। उसने किसको लक्ष्य करके अपने-आप बाण-सज्जा की है? (२) उसका पेट सम्पूर्णत: खांड से भरा हुआ पूर (पुंज या ढेर) है, जो जहां पर भी दिखाई देता है वहां पर वही कूट ही दिखाई देता है (३) वह

मानो घी में पकाई हुई सौहारी (पूड़ी) है और देखने में पान-फूल का (जैसा) उसका पतलापन है। (४) यदि कोई वीर [भी] उसके नाभि-कुंड को देखे, तो वह उसे देखते मात्र में उसमें डूब जाए, और तट (किनारा) न पाए। (५) [उसका पेट इतना पतला है कि] मानो उसमें आँतें नहीं हैं, [इसीलिए] अंतरिक्ष के चंद्र की उसमें से प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है। (६) और, वह पेट इतना अधिक गहरा है, बाजिर कह रहा है, कि उसमें [का] जल नहीं सूझता है।" (७) यह सुन कर राजा ने दौड़ कर उसमें धंस लिया (उसमें डुबकी लगाई) और वह उसमें ऐसा डूब गया कि वह तट नहीं पा रहा था।

(७६)

'घोटिहि घोटि' पीठि 'बइसारी'। 'कइ रे' बिनानी 'सांचइं' ढारी।
करि 'जनु हीन पाट कर' डोरा। 'पेट' ठाउं सहस 'इक' मोरा।
लंक बार 'जसि दीठि न आवइ'। चांद चीर महिं भरम 'दिखावइ'।
'वररइं' लंक 'बिसेषइ' धनां। 'अउरु लंक पातरि को' गुनां।
फूंकत टूटि 'होत दुइ' आधा। नैनि देखि मनि 'उपजइ' साधा।
मूरिखु होइ जो 'तिरइ न जानइ' 'छीलरि बोडै(डइ)' पाउ।
करि गुन 'गहे' 'बइठ भा' बूडत 'काढा' राउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५१।२, बी० २४८-२५१; बी० में एक संख्या बीच में छूट गई है।

शीर्षक—सिफ़ते पुश्त चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० घूटि न घूटि। २. बी० बैसारी। ३. बी० कैरि। ४. बी० साचै। (२) १. बी० जनु हीन पाट के, मै० जु रे हीर पाट कर। २. बी० हसत हसत। ३. मै० दुइ। (३) १. बी० जस दीठ ना आवै। २. बी० दिखावै। (४) १. बी० बररी। २. बी० बिसेषे। ३. बी० औरु लंक पातु कैं। (५) १. बी० होय दोय। २. बी० उपजै। (६) १. बी० तिरि ना जानै। २. मै० चाहइ पौरइ। (७) १. मै० भए। २. बी० बिधाता। ३. बी० काढै।

अर्थ—"(१) उसकी पीठ या तो घोंट-घोंट कर बिठाई हुई है, और या तो किसी बिज्ञानी (कुशल कारीगर) द्वारा सांचे में ढाल कर निर्मित की हुई है। (२) उसकी कटि मानो हलके पाट (रेशम) का डोरा (धागा) हो; पेट के स्थान पर उसमें एक सहस्र मोड़ हैं। (३) बाल के जैसी उसकी

लक ऐसी पतली है कि वह दृष्टि में नहीं आती है, वह उसके चंद्र चीर में भ्रम [जैसी] दिखाई पड़ती है। (४) उस स्त्री की लंक (कटि) वर्रे की लंक से भी अधिक वैशिष्ट्य-युक्त है; [उसकी तुलना में] दूसरी [लंकों] को कौन पतली गुन सकता है? (५) फूंक [लगने] से ही वह टूट कर दो आधों मे [विभक्त] हो जाएगी; नेत्रों से देखने पर मन में [उसे प्राप्त करने की] आकांक्षा [अनायास] उत्पन्न होती है। (६) वह मूर्ख होगा जो तिरना (तैरना) न जानता हो और [फिर भी] झील के जल में अपने पैर डाले।" (७) [इस वर्णन को सुन कर] राजा [उस स्त्री-नौका की] कटि-करिया का आसरा लेकर बैठ रहा, [इसीलिए] वह राजा [उस सौन्दर्य-सरोवर में से] डूबते-डूबते निकाला जा सका।

(८०)

'गरुर खंभ' 'दुइ' चीरि फिराए। चांद 'चलन' अपुरब 'घडि' लाए।
'अउ' समतूल 'दीखि असि' धारा। 'देखि' बिमोहे सुरंग पंवारा।
'देखत मोर मनु तस कइ' लागा। सिर भुइं 'धरेउं' घालि 'गियं' पागा।
'जउ ओहि चलन' देखि 'पां लागहिं'।
पाप 'केत पुरुसन्ह कर भा(भां?)गहिं'।
रूप 'पुतरि घडि' दस नख लावा। 'तरुवन्ह' रगत फूटि 'चलि' आवा।
पाइ 'परउं' मुख 'जोवउं' 'सो धनि' उतरु न देइ।
'सुनत' राउ 'बिसंभरि' गा मरि मरि 'सांसड' लेइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५२।१, बी० २५२-२५४।

शीर्षक—सिफते रानहा व रफ़तार चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० केरि का गभ। २. बी० दोय। ३. बी० चरन। ४ बी० गढि। (२) १. बी० अैं। २. बी० हेंम अस। ३. बी० नैन। (३) १. मैं० देखि खंभ मोर मन तस। २. बी० धरौं। ३. बी० गैं। (४) १. बी० जैं वह चपित (?)। २. बी० पर लागैं। ३. बी० कीन्ह बरसह (केत पुरुसन्ह—फ़ारसी) कर भागै। (५) १. बी० पतरि घरि। २. बी० तरुवा। ३. बी० बहि। (६) १. बी० परैं। २. बी० जोवैं। ३. बी० सा धन। (७) १. बी० सुनि कै। २. बी० बिसिभरि। ३. बी० सासैं।

अर्थ—"(१) जैसे किसी गरुड-स्तंभ को दो में चीर कर उसे उलट दिया गया हो, चांदा के चरण इस प्रकार अपूर्व रीति से गढ़ कर लगाए हुए हैं। (२) [उन चरणों की] धारा (वर्ण-आकृति आदि) समतुल्यता में ऐसी

दीखी कि उन्हें देख कर सुन्दर रंगों वाले प्रवाल विमोहित हो गए। (३) उन खंभों (चरणों) को देख कर मेरा मन [उनमें] ऐसा लग गया कि मैंने गले मे पाग डाल कर सिर [उनके समक्ष] भूमि पर रख दिया। (४) यदि उन चरणों को देख कर लोग उसके पैरों से लगें, तो उनके कितने ही पूर्व-पुरुषों के पाप भंग (नष्ट) हो जाएं (५) [उसके चरणों के नख ऐसे सुन्दर हैं मानो] उस रूप की पुतली को गढ़ने के अनंतर उन दस [सुंदर] नखों को [विधाता ने] लगाया हो, और उसके तलवे ऐसे [कोमल] हैं कि [मानो] रक्त उनसे फूट कर चला (निकला) आ रहा हो। (६) मैं उसके पैरों में पड़ता और उसके मुख को देखता रह गया, किन्तु वह स्त्री उत्तर नहीं दे रही थी।" (७) यह सुनते ही राजा बेसंभाल हो गया, और [मानो] मर-मर कर साँसे लेने लगा।

(८१)

हंस गवनि ठम ठमकति 'आवइ'। 'झमक झमक' धनि 'पाउ उचावइ'।
'जमक जमक पउ' धरती धरा। छनक छनक 'जनु पंगति' भरा।
'मेलि मेल्हाति' 'सो' चांदा'आवै (वइ)'। 'जानउं गयंबरु पैग' 'उचावइ'।
सिर भुइं 'धरउं' चांद 'धर' पाऊ। 'पा तर हुतें' न 'काढउं रे' काऊ।
'पा कइ' धूरि नैन भरि 'आंजउं'। जीभ काढि 'दोइ' तरुवा 'मांजउं'।
'चलत(न) चांद चितु' लागा 'मन हुत' उतर न काउ।
पा लहुं हाथु न 'संचरै(रइ)' 'परिहसि' 'रोवइ' राउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५२।२, बी० २५५-२५७।

शीर्षक—मै० सिफ़ते पाय व रफ़्तार चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० आवै। २. मै० जमकि जमकि। ३. बी० पौरु उचावैं। (२) १. बी० छिमक छिमक पाउ। २. बी० पाउ कत। (३) १. बी० माल्हि मल्हिति। २. बी० सु। ३. मै० आई। ४. बी० जानौं गैवरु पाउ। ५ बी० उचावै। (४) बी० धरौं। २. बी० धरि। ३. बी० पा हुति तरे। ४ बी० काढैं। (५) १. बी० पाव की। २. बी० आंजौं। ३. बी० दोय। ४ बी० मांजौं। (६) १. बी० चांद चरन मनु। २. बी० चित हुतेंहि। (७) १. मै० पहुंचइ। २. मै० हंसि हसि। ३. बी० रोवै।

अर्थ—"(१) वह हंस-गमनी ठुमठुम करती हुई (ठुमकती हुई) आती है, और वह स्त्री झमक-झमक कर पैर उठाती है। (२) जमक-जमक कर वह धरती पर पैर रखती है, और छनक-छनक कर मानो [पग-] पंक्ति भरती है।

(३) मेल्हती-मेल्हाती (झूमती हुई) वह चांदा [इस प्रकार] आती है, मानो कोई श्रेष्ठ गज पैग उठा रहा हो। (४) [मैंने संकल्प किया कि] जहाँ पर चादा पैर रक्खेगी, मैं भूमि पर सिर रखूंगा, और उसे उसके चरणों के नीचे से [उसे] कभी न निकालूंगा; (५) मैं उसके पैरों की धूल नेत्रों में भर कर उसका अंजन करूंगा और [अपनी] जिह्वा को निकाल कर उसके दोनों तलवो को मार्जित (साफ़) करूंगा। (६) चांदा के चरणों में मै [मेरा] चित्त ऐसा लगा कि वे कभी भी मन से न उतरे।" (७) [यह सुनने के अनंतर] उसके पैरों तक राजा के हाथ नहीं संचर सकते थे, इसी परिहस (परिहासपूर्ण स्थिति) के कारण वह रो रहा था।

(८२)

लग 'जैसे लहरि लहरि' सटकारी। चंदन 'जइफर मेरइ संवारी'।
सरग 'पवान' लागि 'जनु' आई। 'चाहति अइसइं' जाइ उड़ाई॥
बास 'पोर हुत जनु धरि' काढ़ी। 'आछरि' जइसि देखि 'मइं' ठाढ़ी।
'करी पुहुप तस अंग गंधाई'। रितु बसंत चहुं दिसि फिर आई।
अग वासु नौ खंड 'गंधाने'। 'कुस(सु)म' केलकी भंवर 'लुभाने'।
'यदु (इंदु) गोयंदु (गोइंदु)' 'चंदु अरु दिनियरु' 'बरंभा बिमुन' मुरारि।
गन 'गध्रप' रिखि देवता 'देखि' बिमोहे नारि॥

सन्दर्भ—मै० ५३।१, बी० २५८-२६०।

शीर्षक—सिफ़ते क़दो क़ामदे चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैसी लहलह। २. बी० चिरिया गढी सुनारी। (२) १. बी० विवानि। २. बी० भुइं। ३. बी० चाहत अैसी। (३) १. बी० परि जांनौ धर हते। २. बी० अछरि। ३. बी० हम। (४) १. बी० नहु नहु करी किरलि फुलि छाई। (५) १. बी० गंधाये। २. मै० बास। ३. बी० लुभाए। (६) १. मै० इन्द्र गोइंद्र। २. मै० चंदरावलि। ३. बी० ब्रह्मा बिश्नु। (७) १. बी० गंधर्व। २. मै० रूप।

अर्थ—"(१) उसका शरीर ऐसा है, जैसे सटकारी (चिकनी या कोमल) लहर ही लहर हो, जो चंदन तथा जायफल मिला (लगा) कर संवारी गई हो। (२) वह मानो स्वर्ग (आकाश) तक आ लगती थी, और [लगता था कि] इसी प्रकार वह उड़ जाएगी। (३) वह ऐसे छरहरे बदन की थी, [मानो] बांस की पोर में से पकड़ कर निकाली गई हो और मैंने उसको

अप्सरा की जैसी खड़ी देखा। (४) पुष्प-कलिका के सदृश उसका शरीर महक रहा था, [और उससे ऐसा लगता था कि जैसे] चारों ओर बसन्त ऋतु लौट आई हो। (५) उसके अंग की सुवास से नौ खंड महक उठे थे, और उस केतकी कुसुम पर भौंरे लुब्ध थे। (६) इन्द्र, गोपेन्द्र (गोविन्द), चंद्र, दिनकर (सूर्य), ब्रह्मा, विष्णु, मुरारि, (७) गण, गंधर्व, ऋषि और देवता—[सभी] उस नारी को देख कर विमोहित हो गए हैं।"

(८३)

'सुनहु चीरु कस पहिर गोवारी। फुंदिया 'राधि सेंदुरिया' सारी।
'पहिर मेघवना' अउ 'कुसियारा'। 'जुगिया' चीर 'चौकड़िया' सारा।
मुंगिया 'पत्तलि अंग चढ़ाई'। 'मंडिला छुंदरी फिरि पहिराई।
'सांवन' चांद 'कसुंभी' राती। इक खंड छाप सो 'सोह' गुजराती।
'डोरिया' 'चंदरौटा' 'औ अबजारू'। 'साज' 'पटोरइं बहुल' सिंगारू।
'चोला चीर पहिरि जउ चाली' 'जानउं जाइ उड़ाइ'।
'देखत रूप देवता बिमोहे' कत हुतें आछरि आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५३।२, शि०, बी० २६१-२६३।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते किसवत चांदा गोयद।

शि० में शीर्षक तथा (३) तथा (६) भी (७) अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुनँहु चीरु कसि पहरि गुवारी। २. बी० राति सिदुरिया। (२) १. बी० पहरि मघौना। २. बी० कसियारा। ३. मै० चिकवा। ४. शि० चौकड़ी, बी० जुगौटी। (३) १. बी० पहरँ अगि फिराई। २. बी० सब लावनि कँ अते सुहाई। (४) १. शि० सावन। २. बी० कसूभँ। ३. बी० सोहै। (५) १. बी० डुरिया। २. शि० चंदौटा, बी० चीरु। ३. मै० औ बन जारू, बी० अते अबिचारू। ४. शि० सांच, बी० सांझ। ५. बी० पटोरैं सभैं। (६) १. बी० चोरा चूनरि पहरि जु चांदा। २. बी० जानौ जाय उडाय। (७) १. बी० देषि देवता सभ ही मोहे।

अर्थ—"(१) वह ग्वालिन कैसा चीर पहनती है, [अब] यह सुनो। फुंदिया से मिली हुई उसकी सिंदूरी साड़ी होती है। (२) वह मेघवना और कुसियारा पहनती है तथा जोगिया और चौकड़िया चीर सारती (पहनती ?) है। (३) पतली (झीनी) मुंगिया वह अपने सिर पर चढ़ाती है, पुनः वह मंडिला तथा छुंदरी (चूंदरी) पहनती है। (४) सावन में चांदा कुसुंभी चीर

से रक्त (सुंदर) बनी रहती है। [उसके शरीर पर] एकखंडे छापे की गुजराती साड़ी शोभा देती है। (५) डोरिया, चंद्र-पट्टक, अवजारे तथा पट्टकूल से [उसका] शृंगार बहुत होता है। (६) चोला (चोली) और चीर धारण कर जब वह चलती है, तो लगता है कि वह उड़ जाएगी। (७) उसके रूप को देख कर देवता विमोहित हो उठे, [और सोचने लगे] 'कहां से यह अप्सरा आई हुई है' ?"

(८४)

कुंडर सुवन जरे 'लइ' हीरा। चहुं 'दिसि बइठ' पदारथ बीरा।
अरु दुइ खूंटि सरग जनु तारा। टूटि 'परहिं तस होइ' उजियारा।
'उवइ' अगस्ति नाक 'कइ' फूली। नखत 'बारि सूरिजु गा भूली'।
हार डोर 'अउ संकरी' पूरी। अभरन भार 'परइ जनु' चूरी।
दस 'अंगुरिन्ह' अंगूठी 'पगबाई'। कर 'कंगन' 'भर पहिर कलाई'।
चूरा 'नेवरु' 'पायर' 'पैंजनि' गोवर 'होइ' झनकार।
नखत चांद कर अभरन अभरन चांद सिंगार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५४, बी० २६४-२६७; बी० में बीच में एक संख्या छूट गई है।

शीर्षक—सिफ़ते जरीनहा चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लैं। २. बी० दिस रतन। (२) १. बी० परत जस होइ। (३) १. बी० उया। २. बी० की। ३. बी० सुरिजु दोय देखें। (४) १. बी० असै कर। २. बी० परै जैसे। (५) १. बी० अंगुरी। २. बी० बकबाई (पगबाई—फ़ा०)। ३. बी० कंकन। ४. बी० भल पहरि कराई। (६) १. मै० में नहीं है। २. मै० पायल। ३. बी० पैंजन। ४. बी० होय।

अर्थ—"(१) उसके जो सुंदर वर्ण के कुंडल हैं, वे हीरे लेकर जड़े हुए हैं तथा उसके बीरों (कर्णाभरण-विशेष) में चारों ओर पदार्थ (बहुमूल्य पत्थर) बैठे हुए है। (२) [उसके कानों में] दो खूंट [भी] हैं, जो ऐसे हैं मानो आकाश के तारे हों; उनका प्रकाश ऐसा होता है मानो वे टूटे पड़ रहे हों। (३) उसकी नाक की फुल्ली उदित होता हुआ अगस्त है; नक्षत्रों को [उस पर] वार कर सूर्य [अपने को] भूला रहता है। (४) उसने [गले में] हार-डोरें और संकरियां पहन रक्खी हैं और [उन] आभरणों का भार ऐसा है

मानो उससे वह टूटी पड़ रही हो। (५) दसों उंगलियों में उसने अंगूठियां डलवा (?) रक्खी हैं, और अपने करों मे वह भारी कंगन तथा कलाइयां पहन रही (पहने हुए) है। (६) [उसके पैरों में] जो चूड़े, नूपुर, पायल तथा पैंजनियाँ हैं, उनकी झंकार गोवर भर में होती [रहती] है। (७) [ऐसा लगता है मानो] जो नक्षत्र [आकाश में] चांद के आभरण थे, वे [अब] चांदा के शृंगार के आभरण [हो रहे] हैं।"

(८५)

चांद चलन जौ पयकु (पैगु) उचावै।
पाई चमाउ(ऊ) लटकतु आवै।
जिउ अस कहै क (कि) देषत रहिये।
लागैं पाउ सीस धौं छुहिये।
काहु करौ मोहि हाथु न देई।
पाउ ठेलि अ···टी करि लेई।
अइसै कहौं कि कबही पाउं।
तेहि चरण (चलन) लै हिरदै लाउं।
देखत चरण (चलन) परै जौ पाई।
तब मो अंग·····························ई।
दाउद अभरन सभ पहराइसि छाडिसि पाव उघारि।
महमद घाइ (पाइ ?) चमऔ (चमाऊ) दीती रहसि बाहुरि तब नारि॥

सन्दर्भ—बी० २६८-२६६। बी० में चौथी तथा पांचवीं पंक्तियां बाएं हाशिए में लिखी गई है और उक्त हाशिए का ऊपर का कोना चूहे के द्वारा काटा हुआ है इसलिए दोनों के कुछ अक्षर अब निकल गए हैं। मै० यहाँ पर त्रुटित है अथवा नहीं, यह उसमें उसके ५५वें पत्र पर दिए हुए चित्र से स्पष्ट नहीं है।

अर्थ—"(१) चाँदा पैग [भरने] के लिए जब चरण उठाती है, तब उसके [पैरों में पड़ी हुई] चमाऊ (चमड़े की) पाई (पादत्री) उनसे लटकती आती है। (२) जी ऐसा कहता है कि उन्हें देखते ही रहिए, और उसके पैरों में लग कर सिर उन्हें छूए। (३) मैं [उसके हाथों को लेकर] क्या करता ? भले ही वह [अपने] हाथ मुझे न देती; [केवल] मुझे वह पैरों से

ठेल कर अ······टी कर लेती। (४) मैं [मन में] ऐसा कह रहा था कि कब मैं पा जाऊं, और उसके चरणों को लेकर हृदय से लगा लूं। (५) उसके चरण देखते समय यदि उसकी पादत्री पड़ जाती, तब मेरे अंग············ जाते। (६) दाऊद कहते है, उसने समस्त आभरण [अपने विभिन्न अंगों को] पिन्हाए थे, [केवल] पैरों को उसने खुला रक्खा था। (७) उसने, ऐ मुहम्मद, चमड़े की पाई (पादत्री) मात्र [उनमें] दे रक्खी थी और तब वह नारी हर्षपूर्वक लौट गई।"

७. गोवर-चढ़ाई खण्ड

(८६)

'सभ' सिंगारु 'बाजुर जउ' कहा। राजा नैन नीर नै (नइ) बहा।
राइ कहा 'सुनु बांठा' आई। राज कुरी फिरि देहु दुहाई।
'राउत' पाइक साहन बारी। छत्तिस 'कुरि' लइ आउ हंकारी।
जांवंत देस 'फिरइ' मोरि आनां। तांवंत 'जाइ पठउ' परधानां।
'जहं लगि बांधइ जानइ' काछा। मारि 'पबारउ' 'जउ' घरि आछा।
'राजा चरै(ड़ै ?) गोवर कहु(हुं)' 'सांभर लेइ' संजोइ।
आगें 'दइ' 'लै(लइ) चालहु' 'पाछें रहइ' न कोइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५५, बी० २७०-२७२।

शीर्षक—मै० : तमाम करदने सिफ़ते चांदा व इस्तअ़दाद कूच करदने।

पाठान्तर—(१) १. बी० सो (सब—नागरी)। २. बी० बाजुरि जौ। (२) १. बी० बांठ सुनु। (३) १. बी० रावत। २. मै० कुरि। (४) १. बी० फिरै। २. बी० जयहु पठवोहु। (५) १. बी० जा लगु जानौ बाधै। २. बी० बिपारौ (पबारौं—फ़ारसी)। ३. बी० जौ। (६) १. मै० चला बरइ कहं। २. बी० सापरि लेहु। (७) १. बी० दे। २. मै० कइ चलावहि। ३. बी० पाछै रहै।

अर्थ—(१) बाजिर ने जब सारा शृंगार [चांदा का] कह डाला, राजा [रूपचंद] के नेत्रों से आंसुओं की नदी बह चली। (२) राजा ने कहा, "बांठा, आकर सुन, राज-कुलियों में फिर कर दुहाई दे। (३) जो रावत (राजपुत्र), पदाति, साधन (सैन्य) और बारी (सेवक) है, छत्तीसों कुल वालों को बुला। (४) जितनी दूर तक देश में मेरी आन फिरती है, उतनी

दूर तक तू जा कर प्रधान को भेज। (५) जहाँ तक भी (जितनी आयु तक के भी) कच्छा बाँधना (धोती पहनना) जानते हैं, यदि वे घर रह जाते हैं तो मैं उन्हें मार कर फेंक दूंगा। (६) [कहना कि] राजा गोवर के लिए चढ़ाई कर रहा है, इसलिए वे शंबल और संयोग (शस्त्रास्त्र) ले लें [और उसके साथ हो जाए]। (७) [इस प्रकार] उनको आगे दे (रख) कर तू चले, जिससे कोई पीछे न रह जाए।"

(८७)

ठोके तबल मेघ 'जनु' गाजे। घर घर सब ही 'राउत' साजे।
'अगनित बीर' 'बहुल धनुकारा'। 'सत्तरि' 'सहस चले' कुतकारा॥
'नव्वे सहस घोर' पाखरे। 'तारू' तरुवां 'लोहइ' जरे।
'चढ़े आएंनि' लाखु असवारा। लाखु 'कुवान अउर बड़वारा'।
एक सहस 'भेरिकार' चलावा। 'तूरां' सींगां अंतु न पावा।
राहु केतु घरि 'आठए' 'दिसा' सूरु 'भा' आइ।
सूक 'सउंह उतरापंथि' जोगिनि 'बाहेर मेलइ जाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५६, बी० २७३-२७५।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते दर इस्तअदाद गोयद।

बी० : रूपचंद बाठा आया; किन्तु यह संकेत उसमें ऊपर के हाशिए में कदाचित् अन्य व्यक्ति द्वारा दिया हुआ है।

पाठान्तर—१. बी० जानौ। २. बी० रावत। (२) १. बी० अगिनत फरी। २. बी० बहुत धनकारा। ३. मै० सात। ४. बी० संहस संबहें। (३) १. बी० नवै सहस यक हय। २. बी० तार्‌यो तरवा लोहे। (४) १. बी० भरे उवीने (आवइं—फ़ारसी)। २. बी० गवाने औ बरवारा। (५) १. बी० भरि कहार। २. बी० तुरिया। (६) १. बी० आठवैं। २. बी० दसा। ३. बी० भया। (७) १. बी० सनीसरु उतर पंथी। २. बी० दाहिनि दिसाई।

अर्थ—(१) तबल (बड़े ढोल) ठोके गए, जो इस प्रकार गर्ज उठे मानो मेघ हों। सभी रावतों (राजपुत्रों) ने घर-घर में सज्जा की। (२) अगणित वीर, बहुतेरे धानुष्क, तथा सत्तर सहस्र कुंतकार (भाले वाले सैनिक) चले। (३) नव्वे सहस्र घोड़े पाखरित हुए, जो तालु से लेकर तलवे तक लौह से मढ़े हुए थे। (४) एक लाख सवार चढ़े हुए आ पहुंचे, एक लाख कुवान

(हीन वर्ण के) और एक लाख बड़वार (ऊंचे वर्ण के) सैनिक भी थे। (५) एक सहस्र भेरीकार चलाए गए; तूर्य और सिंगे वालों का [तो] अन्त नहीं मिलता था। (६) [उस समय] राहु तथा केतु आठवें 'घर' में थे और दिशा-शूल आया हुआ था, (७) शुक्र सामने था और योगिनी उत्तरापथ मे थी, इसी समय [रूपचंद और उसकी सेना रण-यात्रा पर] बाहर निकले।

(८८)

'अनवन' भांति दीख केकानां। 'अंगुरा दुइ दुइ तिन्ह के' काना।
सेत कियाह कार 'जनु' रीठा। 'हरीयांत' मुख 'झमकत' दीठा।
'गाल्ह संकोचे' लोह चबांहीं। 'समुंद लांघि जनु' 'लंका' जाहीं।
नैन 'मिरिघ जिन्ह पाय' पखारे। पवन पंख देखत 'हरियारे'।
'घात चढ़िय' मुख धाठी दीजा। 'तुंग बिसार पेट' धरि लीजा।
'कइ रे' 'समुंद हुत' काढे 'कइ यह बाइ बियाने'।
'सोवन पाखर धालि कइ' आनें 'सबइ पलाने'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५७, बी० २७६-२७८।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते असबाव अ़रवी, ताज़ी राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० अन अन। २. बी० आगुर दोइ दोइ तिन्ह। (२) १. बी० जिन्हि। २. बी० हरे पाट। ३. बी० चमकत। (३) १. मै० गाढ संकोचे, बी० गाल्ह सकोचै। २. बी० समदु लंघि जानौ। ३. मै० लंकहन। (४) १. बी० मिरचहु पाव। २. बी० हतियारे। (५) १. बी० षाट चरे। २ बी० टंका लाषु लाषु। (६) १. बी० कै रु। २. बी० समदतहि। ३. बी० कै यह माइ बियान। (७) १. बी० घालि पीठी सोवन पाखर। २. बी० सभै पलान।

अर्थ—(१) [उसकी सेना के] कैकान (घोड़े) अद्‌भुत भांतियों के दीखते थे, उनके कान दो-दो अंगुलों [तक] के थे। (२) श्वेत घोड़े थे, कयाह थे, जो रीठे के समान काले (कलछौंहे) थे, हरिए (सब्ज़े) थे, जिनके मुख झमकते हुए (अस्थिर) दिखाई पड़ते थे, (३) वे गालों को सिकोड़े हुए [मुह मे दिए हुए] लौह को चबाते रहते थे और लगता था मानो समुद्र को लांघ कर लका जाना चाहते हों, (४) जिनके नेत्र मृगों के [जैसे] और पैर प्रक्षालित [जैसे] थे, और जिन्होंने [जैसे] हवा के पंखे लगा रक्खे थे, ऐसे वे हरिए (सब्ज़े) दीखते थे, (५) घात से ही उन पर चढा जाता था, और उनके

मुखों में ढाठी (मुहबंद) देनी पड़ती थी, तथा वे इतने ऊंचे तथा विशाल (बडे) थे कि पेट के सहारे ही उन्हें लिया (उन पर चढ़ा) जा सकता था। (६) [ऐसा लगता था कि] या तो वे समुद्र से निकाले हुए थे, अथवा यह हो कि वे वायु की संतान थे। (७) सोने की पाखरें डाल कर सब [अश्व] पर्याणित करके लाए गए थे।

(८९)

'पखरे' हस्ति दांत 'बहिराए'। धानुक 'लइ ऊपर बइसाए'।
बनखंड 'जइस चले अति कारे'। उनए 'जानु मेघ अंधकारे'।
चलन 'लाग जनु चलहिं पहारा'। छांह 'परइ' जग 'भा' अंधियारा।
'झुकरहिं जउ तिन्ह' अंकुसु 'लागइ'। 'पर दरि कोस सहस इक भागइ'।
'जउ कोपहिं' तउ राइ संघारहिं'। बन 'तरुवर जरि मूरि उपारहिं'।
मैंगर 'पाइ पानि उठ' 'डरइ [कि ?] कांदव होइ।
राउ रूपचंदु कोपा 'टेकि न पारइ कोइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५८, बी० २७९-२८१।

शीर्षक—सिफ़ते पीलाने राव रूपचन्द गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० पाखर। २. बी० पहराये (बहिराए—फ़ारसी)। ३. बी० गुनी आनि बैसाये। (२) १. बी० जैस चरे अति कारा। २. बी० मेघ जानौ अधियारे। (३) १. बी० लगि जानौ चलैहि। २. बी० परैहि। ३ बी० भया। (४) १. बी० चिघरै जो तिसु। २. बी० लागै। ३. बी० परदर कोस सहंस यक भागैं। (५) १. बी० जा कौपै तौ राय सघारैहि। २ बी० तरवर जर मूल उपारैहि। (६) १. बी० पाय तपत यत। २. बी० दरमहि कादौं होय। (७) १. बी० टेक न पावै कोय।

अर्थ—(१) पाखरे हुए हाथी दाँत बाहर किए हुए थे, उन पर धानुष्को को ले कर बिठाया गया था। (२) वे अत्यधिक काले वर्ण के [हाथी] बनखंड की भाँति चल पड़े थे; [अथवा वे ऐसे लगते थे] मानो अंधकारपूर्ण मेघ अवनमित हुए हों। (३) [उनका] चलना [ऐसा लगता था] मानो पहाड़ चल रहे हों। उनकी जो छाया पड़ती थी, उससे जगत् में अन्धकार हो जाता था। (४) उन पर जब अंकुश लगता था, तब वे झुंकरते (चीत्कार करते) थे, और पर (शत्रु) के दल में वे एक सहस्र कोस पर्यन्त भाग जाते थे। (५) वे जब कुपित होते थे, तब राजाओं का संहार करते थे, और बनों के बड़े-बडे

तरुवरों को जड़-मूल से उखाड़ देते थे। (६) इन मदगलितों के चरणो से पानी डर कर उठ पड़ता था कि वह कर्दम हो जाएगा। (७) राजा रूपचन्द्र [इस प्रकार] कुपित हुआ था कि उसे कोई टेक नहीं सकता था (उसके आक्रमण का सामना नहीं कर सकता था)।

(९०)

'सबही गज दल (द) भएउ' पयानां। ठोके तबल 'दइउ अंगिराना'।
'एक छिति' फौज चले असवारा। 'कोस बीस लगि भएउ' पसारा।
'आगें परइ' नीरु 'खरु पावइ'। 'पाछें रहइ सो' धूरि 'बुकावइ'।
'सगरइं देस अइस डर' छावा। 'सभइ तुराइं' राउ चलि आवा।
'उठइ खेह' दर सूझ न 'बागा'। 'जानु' मुरग धरती होइ लागा।
महते साथि बांठु 'लइ' राजा 'दीत' पयान।
'तुरिय टाप बासुगि खरभरई' 'अंबरि सूरु' लुकान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५९, बी० २८२-२८४।

शीर्षक—सिफ़ते कूच कर्दने राव बा लश्करे क़ाहिरह।

पाठान्तर—(१) १. बी० सबहे (ही—फ़ा०) गजदर भयो। २. बी० राउ अगरांना। (२) १. बी० येकहि। २. बी० तीस कोस लहि भयो। (३) १. बी० आगै परिहि सु। २. मैं० खीरु पावइ, बी० खरु पावहि। ३ बी० पाछै रहहिं। ४. बी० बुकावैहि। (४) १. बी० सगरे छात अनदरि। २ बी० भइ बडाइ। (५) १. बी० ऊठि देष। २. बी० पागा (बागा—फारसी)। ३. बी० जानै। (६) १. बी० ले। २. मैं० दीन्ह। (७) १. बी० धरती बासिगु षरहर्यो। २. मैं० सूरुज गएउ।

अर्थ—(१) समस्त गज-दल का प्रयाण हुआ; तबल (बड़े ढोल) पीटे गए तो [ऐसा लगा मानो] दैव (इन्द्र) ने अंगड़ाई ली है। (२) फौज (सेना) एक क्षिति में (एकट्ठी?) हुई और सवार चल पड़े, तो बीस कोस तक [उनका] प्रसार हो गया। (३) आगे (पहले) जो पड़ता, वह तो खरा जल पाता था, [किन्तु जो] पीछे पड़ता था, वह धूल चाबता था। (४) सारे देश में ऐसा भय छा गया कि सभी शीघ्रता करने लगे, क्योंकि राजा [रूपचन्द] चलकर आ रहा था। (५) [ऐसी] धूल उठने लगी कि दल मे [घोड़ों की] लगामें नहीं सूझती थीं, [ऐसा लगता था कि] मानो आकाश धरती से मिल रहा हो। (६) महता (महामात्य ?) बांठ को साथ लेकर

राजा [रूपचंद्र] ने प्रयाण दिया (किया)। (७) घोड़ों की टापों से वासुकी खलबला उठा और आकाश में सूर्य छिप गया।

(६१)

'सूके' रूख काग 'रिरियाए'। जोगी 'आवा' भसभ 'चढ़ाए'।
'दहिनी दिसि हुत' भररा आवा। 'डंवरू बाएं हाथ बजावा'।
उवत 'सूर दिसि फेकर' सियारी। 'दर' भुइं रगत 'दीस' रतनारी।
'कुसगुन 'होहिं नजु (निजु) न चलै(लइ)' राऊ।
'नहि बहुरइ' 'न(नहि) देखेउं' काऊ।
'महतइ' जाइ राउ 'समुझावा'। कुसगुन 'भएउ कत आगें जावा'।
चांद सनेह काम 'रस बेधा' राजा 'गा बउराइ'।
'एकउ सगुन' न 'मानइ' गोवर 'छेकेसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६०, बी० २८५-२८७।

शीर्षक—मैं० : दर राह फ़ाल नजिस आमदन पेशे राव रूपचंद व मनअ करदन महतः।

पाठान्तर—(१) १. बी० सूकै। २. बी० कुरराये। ३. बी० आया। ४ बी० चराये। (२) १. बी० दाहिनि दिस तेहि। २. बी० मंत्रु बोलि औ डाक वजावा (बिसहर खंड में यही शब्दावली गारुडी के विषय में प्रयुक्त है)। (३) १. बी० सूरु दिस फिरक। २. बी० डर। ३. मैं० दीख। (४) १. मैं० भए न बहुरहि। २. बी० षाडै जैति। ३. बी० न देषों। (५) १. बी० महतें। २. बी० समुझाये। ३. बी० होहिं न आगे जाये। (६) १. बी० गुन बीधा। २. बी० गौ बौराई। (७) १. बी० येको सुगनु। २. मैं० माइन राजा। ३. बी० छेकिस।

अर्थ—(१) [इसी समय] सूखे वृक्षों पर काग रिरियाने (शब्द करने) लगे, एक योगी भस्म लगाए हुए आ उपस्थित हुआ। (२) दाहिनी दिशा से एक भरड़ा (शैव साधु-विशेष) आया, जो बाएं हाथ में [लेकर] एक डमरू बजा रहा था। (३) उदय के समय सूर्य की ओर मुख कर एक शृगाली फिकर (चिल्ला) रही थी, दल (सेना) की भूमि रक्त से लाल दिख रही थी। (४) "इन अपशकुनों के होने पर हे राजा, नहीं चला जाता है" [लोगों ने कहा,] "और कोई न लौटता हो, ऐसा हमने कभी नहीं देखा है। (५) महता (महामात्य ?) ने जा कर राजा को समझाया, "जब [अप-]

शकुन हुआ है, तो क्यों आगे जाया जाए ?" (६) [किन्तु] चांदा के स्नेह में काम-रस से विद्ध राजा बावला हो गया था। (७) एक भी [अप-] शकुन वह नहीं मान रहा था, और जाकर उसने गोवर को छेंक (घेर) लिया।

(९२)

चहुं दिसि छेंका 'गाढ' फिरावा। 'खूंटहि खूंटहि' जोरि 'गर लावा'।
'तोरियहिं' पान बेलि पनवारीं। 'कटियहिं खेत रूंख फुलवारी'।
'ढहियहिं' मढ देवर अंबराई। 'पटियहि' तारा पोखर बाई।
काटे चहूं पास 'अंबराऊ'। तार खिजूरि 'जामु लखराऊ'।
काटी बारी 'महर कइ' लाई। 'नरियर' गूवा अउ फुलवाई।
'महर' मंदिर 'चढ़ि' देखा बहुल हस्ति असवार।
'ओडन' फरी न 'सूझइ' 'खांडहिं' होइ चमकार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६१, बी० २८८-२९०।

शीर्षक—मै० : गिर्द करदन राव रूपचंद शहर गोवर रा व दर हिसार मानदन महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० करा। २. बी० षूटैं षूटा। ३. बी० गमावा। (२) १. बी० तोरियेहि। २. बी० काटियेहि उष षेत कसियागी। (३) १. बी० ढहियेंहि। २. बी० पटियेंहि। (४) १. बी० अंबराई। २ बी० जामनि लघवाई। (५) १. बी० रायकी। २. बी० नारिग। (६) १. बी० महरि। २. बी० चरि। (७) १. बी० वोडन। २. बी० सूझै। ३ बी० खाडे।

अर्थ—गोवर के चारों ओर [राजा रूपचंद्र ने] प्रगाढ़ छेका (घेरा) फिराया (डाल दिया) और खूंट से खूंट (एक छोर से दूसरे छोर) को जोड़कर उसने गरगच (?) लगाया। (२) [सैनिक] पनवारियों में पानों की बेलों को तोड़ने लगे, तथा खेतों और फुलवाड़ियों के वृक्षों को काटने लगे। (३) उन्होंने मठों, देवालयों और अमराइयों को ढहाना और तडागों, पुष्करो और वापियों को पाटना शुरू किया। (४) उन्होंने चारों ओर के आम्राराम काट डाले और ताड़, खजूर, तथा जामुन के लक्षाराम [काट डाले]। (५) उन्होंने उस बाटिका को काट डाला जो महर की लगाई हुई थी, और उन्होंने [उसमें लगे हुए] नारियल, गूवा और पुष्पों के वृक्षों को काट डाला। (६) महर ने मंदिर (धवलगृह) पर चढ़कर देखा कि बहुतेरे हाथी-सवार थे।

(७) ओडनों और फरियों की संख्या सूझ न पड़ती थी और खड्गों की चमक हो रही थी ।

(६३)

बाधी 'पंवरि' भई हटतारा । 'बापहि' पूत न 'कोउ' संभारा ।
'महर' लोगु सबु झारि 'हंकारे' । 'मांझे जेत' मतें 'बइसारे' ।
'गाइ भंइसि' बांधी 'रिरियाई' । रांधा भातु न 'कोऊ' खाई ।
'रोवन' 'होहि' करि[अ]'अब' 'काहा' । गब्भ निगाभु 'सरापत आहा' ।
'छेकि गांउं अंबराउं कटावहिं' । 'पठइ बसीठ' उतरु 'कस' पावहि ।
'पठइ' 'बसीठु' तुरी 'दइ' 'राजा कह दहुं' काह ।
'केहि औगुन' हम छेंके 'कवनु रजाएसु आहि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६२, बी० २९१-२९३ ।

शीर्षक—मै० हैबत उफ्तादन दर शहर व फ़िरिस्तादने महर रसूलान रा बर राइ रूपचंद ।

पाठान्तर—(१) बी० पौरि । २. बी० मायेंहि । ३. बी० कोइ । (२) १ बी० महरि । २. बी० हकारा । ३. बी० माझी जैत । ४. बी० बैसारा । (३) १. बी० म्हैसि । २. बी० डिडियाई । ३. बी० कोइ । (४) १. बी० रोवना । २. मै० होहि । ३. मै० व । ४. बी० कहा । ५. बी० सखती अहा । (५) १. बी० छोकि राय अवराय कटावैहि । २. मै० पठइ बसीट, बी० पठवो बसीठ । ३. बी० कहा । (६) १. बी० पठय । २. मै० बसीट । ३ बी० दे । ३. बी० उतरु कह धौं । (७) १. बी० किहि औगन । २. बी० कौनु राजयसु आह ।

अर्थ—(१) नगर की पौरी बांध दी गई (बंद कर दी गई) और हड़ताल हो गई (काम-काज बंद हो गया), कोई पिता-पुत्र [एक-दूसरे को] नहीं संभाल रहे थे । (२) महर ने समस्त लोक को सम्पूर्ण रूप से बुलाया और जो भी मांझे (मध्य वयस्क ?) थे, उन्हें उसने मंत्रणा करने के लिए बिठाया । (३) [उन्होंने कहा,] "गाएं-भैसें बंधी हुई रें-रें कर रही है, पकाया हुआ भात (भोजन) कोई नहीं खा रहा है । (४) लोग रो रहे हैं और कहते हैं, अब क्या किया जाए; गब्भ-निगब्भ (?) शाप दे रहे हैं (कोस रहे है) । (५) [शत्रु के सैनिक] गांव को घेर कर आम्रारामों को कटा रहे है, [अतः] बसीठ भेजिए और देखिए कि कैसा उत्तर पाते हैं । (६) घोड़े देकर

बसीठों को भेजिए; पता नहीं कि राजा क्या कहता है, (७) कि किस अवगुण (अपराध) के कारण उसने हमें छेंका (घेरा) है और उसका कौन-सा राजादेश है ।

(९४)

'वसीठ' 'जाइ' कटक 'नियरावा' । 'रां कर' वांठा 'आगें' आवा ।
राइ 'कें' पायं 'बसीठ' लइ लाए । तुरी भेंट 'आगें लइ आए' ।
फुनि 'बसिठेहिं' सिरु भुइं 'लइ' लावा । 'कउनि रीसि' राजा चलि आवा ।
जो मनि होइ सो ऊतरु 'दीजा' । 'जो तुम्हं चहियइ अब हीं लीजा' ।
दरब 'कहउ' तउ भैंस भरावहि । घोर 'कहहु' अब ही 'लइ आवहिं' ।

राजा 'देहु रजाएसु' माथे 'परि हम' लेहिं ।
'इन्ह महं जो तुम्हं चाहिय' आजु 'कालि कइ' देहिं ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ६३, बी० २९४-२९६ ।

शीर्षक—रफ़्तन रसूलान पेश राव रूपचंद ब बाज नमूदन सुख़नी राव महर ।

पाठान्तर—(१) १. मै० बशिट । २. बी० जाय । ३. बी० नेरावा । ४. राइ कर । ५. बी० आगैं । (२) १. बी० के । २. मै० बशिट । ३. बी० लैं आगैं जाये । (३) १. मै० बशिटहि । २. बी० ले । ३. बी० कौन रीस । (४) १. बी० दीजैं । २. बी० जो रु वस्तु चहिये सो लीजैं । (५) १. बी० कहौ । २ बी० कहौ । ३. बी० लैं आवहु । (६) १. बी० देहु रजाइसि । २. मै० चर चढि । (७) १. बी० यह मह जो कछु चाहौहु । २. बी० काल्हि करि ।

अर्थ—(१) बसीठ जाकर कटक के निकट पहुँचे, तो राजा का वांठा आगे आया । (२) राजा [रूपचंद] के पैरों को लेकर बसीठों ने [सिर से ?] लगा लिया और घोड़ों की भेंट उन्होंने आगे ला कर प्रस्तुत की । (३) बसीठों ने पुनः अपने सिर भूमि से लगाए, [और कहा,] "किस रोष के कारण, हे राजा, तुम चलकर यहाँ आए हो ? (४) जो मन में हो, वह उत्तर दो और जो तुम्हें चाहिए हो, वह [हम से] अभी लो । (५) यदि द्रव्य कहो तो भैंसे भरा दें, घोड़े कहो तो उन्हें अभी ले आएं । (६) हे राजा, राजादेश दो और हमारे मस्तक पर चढ़ कर [उसे करा] लो । (७) इनमें से जो भी तुम्हें चाहिए आज अथवा कल हम उसे कर के दें ।"

(९५)

सुनु परधान बोलु तूं मोरा । 'कहसि तउ छाड़ि जाउं' गढु तोरा ।
डडु तोर 'हउं लइहउं' नाहीं । घोर लाख 'दुइ' 'मोहि' तुलाही ।
'जाइ कहहु तुम्हं अरथ' दिवाऊं । 'नौ कइ' गोवरु आजु बसाऊं ।
हम 'तुम जरम करहिं' 'हो' राजू । चांद 'बियाहि' देहु मोहिं आजू ।
जउ' सुखु देहु 'तउ' पाटु 'बइठाऊं'। 'वरु कइ' लेउं 'तउ' पानी भराऊं ।
'जउ' तुम्हं 'दुइ दर' राखहु चांद वियाहें देहु ।
जो 'रुचि राही' मांगौ(ग)हु, 'सो' 'तुम्हं' अब हीं लेहु ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६४, बी० २९७-२९९ ।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादन गव बर रसूलान रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कह त जाउ छडि । (२) १. बी० मैं लेउ न । २ वी० दोय । ३. बी० मोरि । (३) १. बी० कहसि त तोकहु दरबु । २ बी० नव करि । (४) १. बी० तुम्ह जरमि करी । २. मैं० जग । ३. बी० विवाहि । (५) १. बी० जौ । २. बी० तौ । ३. बी० बंधाऊं । ४. वी० बैरु के । ५. बी० तौ । (६) १. बी० जो । २. बी० दोय कुर । (७) १. बी० रुच रांये । २. मैं० मांग । ३. बी० तुम ।

अर्थ—(१) [राजा रूपचंद ने उत्तर दिया,] "ऐ प्रधान, तू मेरा बोल (वचन) सुन; यदि तू कहे तो तेरा गढ़ छोड़ कर मैं चला जाऊं । (२) तेरे [बताए हुए] दंड मैं नहीं लूंगा; दो लाख घोडे मेरे [आदेश पर] तैयार हो जाते है । (३) [महर से] जा कर [मेरी ओर से] कहो, 'तुम्हें अर्थ-द्रव्य दिला दूं, गोवर को नया (नवनिर्मित) कर आज ही बसा दू, (४) हम और तुम जीवन भर राज्य करें, [केवल] तुम मुझे चांदा को आज व्याह दो । (५) यदि तुम [यह वचन] सुखपूर्वक दे दो, तो मैं तुम्हें सिंहासन पर बिठा दू, [किन्तु] यदि मैं बलपूर्वक उसे लूंगा तो तुम से पानी भराऊंगा । (६) यदि तुम दोनों (अपने और मेरे) दलों को [सुरक्षित] रक्खो (रखना चाहो), तो चादा को विवाह में दे दो, (७) और जो कुछ तुम्हें [अपनी] रुचि से अभीप्सित हो, वह तुम [मुझसे] अभी मांग लो ।"

(९६)

तू नरिंद देस 'कर' राजा । 'अइस' बोल तोहि 'कहत' न 'छाजा' ।
'जेहि धिय होइ सो नाउं न लेई । पर पुत्रिहि अस गारि न देई' ।

'जो पर पुत्रिहि' माइ 'बोलावा'। सो राजा 'गारी कस पावा'।
'जउ रे' महरु गारी सुनि 'पावइ'। आगि लाइ पानीं कहुं 'धावइ'।
चांद 'अउर कहुं दीत' बियाही। 'कवन' उतरु अब 'दीजइ' ताही।
'बरु' हम मारि 'पबारहु' पुनि उठि 'जारहु गाउं'।
चांदहि धूरि न 'सपरै(रइ)' लेइ पार 'को' नाउं॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६५, बी० ३००-३०२।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादन रसूलान बर राव रूपचंद रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौ। २. बी० अैसे। ३. बी० कहि। ४. बी० साजा। (२) १. बी० जो धीय होय सु गारि न देई : पर पुत्री कर नाउ न लेई। (३) १. बी० जौ पुत्रीयहि। २. बी० बुलावै। ३. बी० कैसे गागी पावै। (४) १. बी० जो रु। २. बी० पावै। ३. बी० धावै। (५) १. बी० औ कहू दीन्ह। २. बी० कौन। ३. बी० दीजै। (६) १. बी० बरि। २. बी० पियारौहु (पबारहु—फ़ारसी)। ३. बी० जारौहु गांव। (७) १. मैं० लागइ। २. बी० कौ।

अर्थ—(१) [वसीठों ने कहा,] "तू, हे नरेन्द्र, देश का राजा है, [इसलिए] ऐसा वचन कहते हुए तुझे शोभा नहीं देता है। (२) जिसके [घर में] कन्या होती है, वह [ऐसी बातों का] नाम नहीं लेता है और दूसरे की पुत्री को ऐसी गाली नहीं देता है। (३) जो पराई पुत्रियों को माता कह कर बुलाता है, वह, हे राजा, ऐसी गाली कैसे (क्यों) पा रहा है? (४) यदि महर [यह] गाली सुन पाए, तो वह आग लगा कर पानी के लिए दौड़ने लगे (तहस-नहस करने लगे)। (५) चांदा को अन्य-कहीं ब्याह दिया गया है, अब (ऐसा कार्य करने पर) उस व्यक्ति को कौन-सा उत्तर दिया जाएगा? (६) भले ही हमें मार कर फेंक दो, और तदनन्तर उठ कर गांव (नगर) को जला दो, (७) चांदा को धूल नहीं लगेगी। कौन उसका नाम ले सकता है?"

(९७)

अबहिं धीठ तोहि मारि 'पबारउं'। खिन 'इक' भीतरि गोबरु 'जारउं'।
मूड काटि 'कइ' कुवइ भरांवउं। खाल काढि 'कइ' रूखि 'टंगांवउं'।
'चील्हनि कहउं मांस 'लइ' जांहीं। 'कुकुरन्ह कहउं रगतु सबु खांही।
'तोहि का जोगित' करसि धिठाई। जस 'हउं कहउं तइस कहु' जाई।
जाइ बेगि चांदा 'लइ आवहु'। मोखु दुवारु 'तउहि पै पावहु'।

'करिबउं' तस 'जस बोलेउं' नाउं 'बसीठ' 'कर आहु' ।
बेगि चांद 'लइ' आवहु 'तउ इहवां हुत' जाहु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६६, बी० ३०३-३०५ ।

शीर्षक—मै० : बर गुस्सह शुदन राव रूपचंद वर रसूलान व खामोश मानदने ईशा ।

मै० में पत्र-संख्या ६७ नहीं है, पुनः ६८ से लेकर ८७ तक के उसके पन्ने बहुत अस्त-व्यस्त हैं, बहुत कम कडवकों के सामने मिलने वाले चित्र उनके अपने हैं । इससे ज्ञात होता है कि मै० में वर्तमान पत्र-संख्या उस समय डाली गई जब वह त्रुटित हो गई थी और उसके इस अंश के पन्ने अस्त-व्यस्त हो गए थे ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिपारौ (पबागैं—फ़ारसी) । २. बी० यक । ३ बी० जारौ । (२) १. बी० कै । २. बी० कुवा भराऊ । ३. बी० कै । बी० टंगाऊ । (३) १. बी० चील्हह कहौ । २. बी० लै । ३. बी० कुकरह कहौ । (४) १. बी० तुम्ह का जिगति । २. बी० हौ कहौ करौहु तैसै । (५) १. बी० लै आवोहु । २. बी० तबैहि तुम [पा] वौहु । (६) १. बी० करत्यें । २. बी० ज्यों बोल्यों पर । ३. मै० बशिट । ४. बी० कौ आहु । (७) १. बी० लै । २. बी० तौ इयहां तेंहि ।

अर्थ—(१) [रूपचन्द ने कहा,] "ऐ धृष्ठ [बसीठ], तुझे मैं अभी मार कर फेंक देता हूं और एक क्षण के भीतर गोबर को जला देता हूँ। (२) तेरा सिर काट कर मैं कुएं में भरा (डलवा) देता हूँ और तेरी खाल निकलवा कर वृक्ष में लटकवा देता हूँ । (३) चील्हों को कह देता हूँ कि वे तेरा मास ले जाएं और कुत्तों से कह देता हूँ कि वे तेरा समस्त रक्त खा (पी) जाए । (४) तुझमें इस प्रकार की कौन-सी योग्यता है कि तू धृष्ठता करता है ? जैसा मैं तुझसे कह रहा हूँ, वैसा ही तू जाकर [वहाँ] कहे । (५) तू जाकर शीघ्र ही चांदा को ले आ, तभी तू मुक्ति का द्वार पाएगा । (६) जैसा मैंने कहा है, तुझे वैसा ही करना चाहिए, क्योंकि तेरा नाम ही 'बसीठ' का है । (७) चांदा को शीघ्र ले आ और तब तू यहाँ से जा ।"

(६८)

राजा 'पुलकि करि' देहु 'रजाएसु' । सुनि 'कइ' 'मारिसु कइ रे छंडाइसु' ।
'अस तूं राजा केउं बउराएहु' । चांद सबदु सुनि गोवर 'धाएहु' ।
गोवरु 'समुंद अतिय अवगाहा' । बूडहि 'राइ' न पावहिं थाहा ।

राजा 'जउ र(रे) सरग चढ़ि' धावहु । तउ न धूरि चांदा 'कइ' पावहु ।
राजा नखत 'जो' सरगि भवांहीं । चांद 'निहारइ सभ निसि' जांहीं ।
गगन 'चढे' 'जउ देखिय' 'जानिय इहवां' आहि ।
थाह न 'पइयहुं' राजा बूडि 'मरहु औ(अव)गाहि' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७५, बी० ३०६-३०८ ।

शीर्षक—मैं० : रजा तलबीदंने रसूलयान बराए वाज़ गुज़श्तन खुद अज़ गाय ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बोलकी । २. बी० रजाईसि । ३. बी० कै । ४. बी० मारसि कौंन छुडायसि । (२) १. बी० असकैं राकैं राह बोरायहु । २. बी० धायहु । (३) १. बी० समदु अते औगाहा । २. बी० राव । (४) १. बी० जौ रु सरगेहि चरि धावौहु । २. बी० की । ३. बी० पावौहु । (५) १. बी० जु । २. बी० पहर निसि जागत । (६) १. बी० चरें । २. बी० जौ देषौ । ३. बी० जाने अहन । (७) १. बी० पावहु । २. मैं० मरियहु काहि (गाहि) ।

अर्थ—(१) [बसीठों ने कहा,] "ऐ राजा [रूपचंद], तू पुलकित होकर राजाज्ञा दे, हमारी बातें सुन कर हमको [चाहे] मारे (मरवाए) या छुड़ाए (छुड़वाए) । (२) तुझे, ऐ राजा, इस प्रकार किसने बावला किया कि 'चांद' का शब्द (नाम) सुन कर तू गोवर के लिए दौड़ पड़ा ? (३) गोवर एक अत्यधिक गहरा समुद्र है, इसमें राजे डूब जाते हैं और इसकी थाह नहीं पाते हैं । (४) हे राजा, यदि तू आकाश पर चढ़ कर दौड़े, तो भी चांदा की धूल नहीं पाएगा । (५) हे राजा, जो नक्षत्र आकाश में चक्कर लगाते रहते हैं, वे सारी रात चांद को निहारते रहते हैं जब वे जाते (चक्कर लगाते) हैं । (६) आकाश पर चढ़ कर यदि तुम देखो और यह जानो (समझो) कि [वह] यहाँ है, (७) तो भी, हे राजा, तुम्हें थाह न मिलेगी, भले ही तुम [चांदा की] थाह लेते हुए डूब मरो ।"

(९९)

बात संजोगु 'बसीठें (ठइं)' कहा । 'नाइ मूंड मुनि' राजा रहा ।
'बसीठ' बचन बिस भरे 'सुनाए' । 'राजइं' ठग के 'लाडू' 'खाए' ।
गा 'असरौ मन हुत जो संजोवा' । भा निरासु चित भीतरि रोवा ।
सरगि चांद 'मकु पाइय' नांही । 'बसिठन्हि' उतरु 'देउं' 'उठि' जाहीं' ।
आजु सांझ 'जउ' चांद न 'पावउं' । पहर राति तुम्हं सरगि 'चलावउं' ।

जीउदानु 'जउ चाहहु' 'पठवहु' चांद दिवाइ ।
'नत' सूर उवत गढ़ु 'तोरउं' 'कहहु' महर 'सेउं जाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७६, का० बी० ३०९-३११ ।

शीर्षक—मैं० : नाउम्मीद शुदन राव अज़ सुख़ने रसूलान व गदानीदने ईशा रा ।

का० : जवाब दादन राव रूपचंद भोलान रा ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० वशिट (बसिट) जउ, का० बसीठ जउ । २ बी० नैन मूंदि सो । (२) १. मैं० बशिट (बसिट) । २. का० सुनावा । ३ बी० राजा । ४. का० जनु ठग लाडू । ५. का० खावा । (३) १. बी० असूरु मनौ हुति जु सोवा । (४) १. मैं० मइं पाइय, बी० मोकौ पइये । २ मैं० बसिटउं, बी० बसीठा । ३. बी० दै । ४. का० चलि । (५) १. बी० जौ । २. बी० पाऊ । ३. बी० चलाऊ । (६) १. बी० जौ चाहौहु । २. मैं० पठवउ, बी० पठवोहु । (७) १. मैं० नतरु, बी० में नहीं है । २. बी० तोरा । ३ मैं० कहु, बी० कहौहु । ४. मैं० सों जाइ, बी० स्यौ जाय ।

अर्थ—(१) जब संयोग (रण-सज्जा) की ये बातें बसीठ ने कहीं, तो सिर नमित कर राजा ने इन्हें सुन लिया । (२) बसीठों ने जब ये विषपूरित वचन [राजा को] सुनाए, तो [ऐसा लगा कि] मानो राजा ने किसी ठग के [दिए हुए] लड्डू खा लिए हों । (३) मन में जो आसरा संजोया रक्खा था, वह चला गया, वह निराश हो गया और चित्त के भीतर रोने लगा । (४) [उसने मन में कहा,] "चन्द्रमा आकाश में है, संभव है उसे मैं प्राप्त न कर पाऊँ, बसीठों को उत्तर दे दूं कि वे उठ कर जाएं ।" (५) [उसने प्रकट कहा,] "यदि आज संध्या को चांद को न पाऊंगा तो एक पहर रात गए ही तुम्हारे स्वर्ग [तुल्य राज-प्रासाद] पर सेना को चला दूंगा । (६) यदि तुम जीवन-दान चाहते हो, तो चांदा को [अपने स्वामी से] दिला कर भेजो । (७) नहीं तो, सूर्य के उदय होते-होते गढ़ को तोड़ दूंगा, ऐसा महर से जा कर कह दो ।"

(१००)

'बसीठ' 'बहुरि' गोवर महिं आए । महर देखि 'जनु' आगे धाए ।
'पूछा' महर 'कुसर सों आएहु' । 'काह कहिहु' कस ऊतरु पाएहु ।
जस 'पूछा तस' 'बसीठें(ठइं)' कहा । सुनइ न राजा 'कोह' कइ रहा ।

हस्ति घोर धनु दरबु न' मानइ' । चांद मांग 'जिहि' सूरु न 'जानइ' ।
'जउ जउ' चांदा बीचहि दीन्हा । 'तउ तउ राउ' चाह जिउ लीन्हा ।
'कइ मंति जसि तुम्हं उपजइ' राजा 'कीजइ' सोइ ।
उवत सूर 'गढु तोरें' फुनि 'पछितावा' होइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७७, बी० ३१२-३१४ ।

शीर्षक—मै० : बाज़ आमदन रसूलान बर महर व बाज़ नमूदने अरजे राव रूपचंद ।

पाठान्तर—(१) १. मै० वशिट (बसिट) । २. बी० फिरे । ३. बी० जनौ आगैं । (२) १. बी० पूछहि । २. बी० सकोसर (सकूसर—फ़ारसी) आयहु । ३. बी० कहहु कहा । (३) १. बी० पूछै तसैं । २. मै० बशिटउ । ३. बी० गहु । (४) १. बी० मानै । २. मै० जनु । ३. बी० जानैं । (५) १. बी० ज्यों ज्यों चाद नई छांह । २. बी० त्यों त्यों राइ । (६) १. बी० कै जस मति तुम्ह अनतें (उपनइ ?—फ़ारसी) । २. बी० कीजै । (७) १. बी० गरु तोरिबि । २. बी० पछितावो ।

अर्थ—बसीठ लौट कर गोवर में आ गए तो महर उन जनों को देख कर आगे दौड़ कर गया । (२) महर ने पूछा, "कुशलपूर्वक तो आ रहे हो ? तुमने क्या कहा और कैसा उत्तर पाया ?" (३) राजा ने जैसा कुछ पूछा, बसीठों ने वैसा बताया; [उन्होंने कहा,] "राजा [रूपचन्द] सुन नहीं रहा है, उसने क्रोध कर रक्खा है । (४) वह हाथी-घोड़ा, धन-द्रव्य नहीं मान (स्वीकार कर) रहा है, वह तो चांद ही को मांग रहा है, जिसको सूर्य [तक] नहीं जानता है (जो असूर्यम्पश्या है) । (५) जब-जब भी हमने चांदा [की प्राप्ति] में अंतर किया (बाधा बताई), तब तब ही उस राजा ने [हमारे] जीवों (प्राणों) को लेना चाहा । (६) अथवा जैसी मति तुम्हें उत्पन्न हो, हे राजा, वही (वैसा ही) तुम करो; (७) [अन्यथा] सूर्य के उदित होते-होते उसके गढ़ तोड़ने पर तुम्हें पछतावा हो ।"

(१०१)

'महरइं मुख कुंवरन्ह कर चाहा' । 'छतिस कुरी दहुं बोलिय काहा' ।
'बहुतन्ह' कहा चांद 'जउ' दीजइ । 'इक मुखु' होइ राज फुनि 'कीजइ' ।
'अउर कहा बरु निकरि पराइय' । 'दिवस' चारि 'बाहेर गै आइय' ।
'कुंवरू धंवरू दीते' गारी । 'जेइं जरमेन्हिं' सो 'माइ' सियारी ।
'भूंजहि' 'सासन' 'पाटन' गाऊं । अब जिउ देहिं चांद 'के' ठाऊं ।

'जउ' लहि सांस पेट महिं 'तउ' लहि 'करिहइं मारि'।
पुनि 'सर रचि सभ बरिहहिं' 'जइस' होइ 'उजियारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७०, बी० ३१५-३१७।

शीर्षक—मैं० : मशावरत करदने महर बा लश्कर मान मक़रब खुद।

पाठान्तर—(१) बी० महरि मुषक अवरा का चहा। २. बी० छतीसौ कुरिधौं कौं कहा।। (२) १. बी० बहुते। २. बी० जै। ३. बी० इकु मुखु। ४ बी० कीजै। (३) १. बी० और करहि बर नगर पराये। २. बी० धोस। ३. बी० बाहरि गै आये। (४) १. बी० कवरू घंवरू दी उठि। २. बी० जे जनमे। ३. बी० मा माय। (५) १. बी० भूचहि। २. मैं० बइठे। ३. बी० पटियहि। ४. बी० कर। (६) १. बी० जब। २. बी० तौ। ३. बी० करिस्योंह मार। (७) १. बी० ह उठि जौहरि जरहि। २. बी० जैस। ३ बी० उजियार।

अर्थ—महर ने कुमारों (कुमारभुक्तों—गुजारेदारों) का मुख देखा—[और पूछा,] "छत्तीस-कुली [सामंत गण], आप क्या कहते हैं?" (२) बहुतों ने कहा, "यदि चांदा को दे दीजिए, तो एक मुख होकर राज्य कीजिए।" (३) औरों ने कहा, "इससे अच्छा यह होगा कि निकल भागिए, और चार दिन बाहर हो आइए।" (४) कुँवरू और धँवरू ने [यह सब कहने वालों को] गाली दी। [उन्होंने कहा,]" [इन में से] जिन्होंने भी जन्म लिया है, [वस्तुतः] स्यारनी के पेट से जन्म लिया है—इनकी माता स्यारनी होगी। (५) हम शासनादेश से प्राप्त पत्तन (महानगर) और ग्रामों का भोग कर रहे है, तो अब चांदा के स्थान पर अपने प्राण [भी] देंगे। (६) जब तक हमारे पेट में श्वास है, तब तक हम मार (युद्ध) करेंगे। (७) तदनंतर हम सभी शर (चिता) रच कर जलेंगे, जिससे [हमारी कीर्त्ति में] उज्वलता हो।

८. गोवर-युद्ध खण्ड

(१०२)

'राइ' रूपचंदु 'गढ़ होइ' 'बाजा'। 'राउ' 'महर दर आपन' साजा।
'पहिरि संजोइ' बांठु हथवासा। कुंवरू 'आगे' 'पाउ हुलासा'।
'बांठ कहा अरे तूं' को आही। बिथा 'मरेसि उट्ठि' घर जाही।
'कुवरू तरपि' खांड 'लइ' 'काढे'। छतीस कुरी 'सभ' 'देखइ ठाढ़े'।
बांठइं ताकि' 'खरग गै' 'मारा'। फरी 'लागि' धर 'किएउ अपारा'।

'दीठि भुलानि खरगु जउ' 'चमका' 'फरि लै(गै) हाथ हुत' छूटि।
लाग 'खांड' 'बांठा' कर 'कुंवरू गा' भुइं 'टूटि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७१, भो० पत्र ६३ (नवीन), बी० ३१८-३२०।

शीर्षक—मै० : नमूदार शुदने हर दू फ़ौज हा व जंग करदन कुंवरू बा बांठा व गुश्तः शुदने ऊ।

भो० : रोज़ दुवम राव रूपचंद क़स्दे हिसार करदन व वेरूं आमदने महरा जंग करदन उफ़्तादन।

मै० में इस कडवक के सामने जो चित्र है, वह इसका नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि इस स्थल पर उसमें पत्रे अस्त-व्यस्त हैं। यह बी० से उसकी कडवकों की क्रम-भिन्नता से भी प्रकट है।

भो० में इस कडवक के पत्र पर जो संख्या है वह फिर से बनाई हुई है, एक १०२ है, दूसरी ११२; कहा नहीं जा सकता है कि पहले कौन-सी है।

पाठान्तर—(१) १. भो राव, बी० राय। २. बी० गिग्वै। ३. मै० में शब्द नहीं है। ४. भो०, बी० राइ। ५. बी० महरि घरि आपनु। (२) १. बी० पहरि सजोउ। २. बी० कंवरू, भो० धंवरू। ३ बी० आइ तुलासा। (३) १. बी० बांठा कहै अरत। २. बी० मैरे सो उठि। (४) १. बी० कंवरू तरप। २. बी० लैं, भो० गै। ३. बी० काढी। ४. बी० सभि, मै० सब। ५. बी० देखैं ठाढ़ी। (५) १. बी० खांड उभारैं, भो० बाठइं हियै। २. बी० मारै। ३. बी० पारी। ४. भो० मांदि, बी० काट। ५. बी० आपु उबारी। (६) १. बी० दिठि भुलान परगु जौ। २. भो० चमंका। ३. भो० हाथहि बहुरइ, बी० हाहू तेहिं। (७) १. मै० खांड गै रे। २. बी० बाड। ३. बी० कंवरु गया। ४. भो० लूटि।

अर्थ—(१) राजा रूपचंद गढ़ पर हो पड़ा, तो राजमहर ने अपना दल सज्जित किया। (२) [कवच] पहन कर हाथों में बांठ ने संयोग (शस्त्रास्त्र) लिए और उसने कुंवरू को [अपने] आगे उल्लसित पाया। (३) बांठ ने कहा, "अरे, तू कौन है ? व्यर्थ ही मरेगा, उठ कर घर जा।" (४) कुंवरू ने [यह सुनकर] तड़प कर खड्ग निकाल लिया, समस्त छत्तीस कुली खड़े हुए देख रहे थे। (५) बांठा ने लक्ष्य कर और जा कर उस पर खड्ग चलाया, तो उसने फरी लेकर अपार धरा की (युद्ध किया)। (६) किन्तु उसकी दृष्टि भ्रमित हो गई जब [बांठा का] खड्ग चमका और फरी उसके हाथ से छूट पड़ी। (७) बांठा का खड्ग लगा और कुंवरू भूमि पर टूट पड़ा

(१०३)

धवरू 'देखा' 'कुंवरू' परा । रोहितासु 'जैसें' परजरा ।
हाथि सांगि 'मारेसि तस' आई । फरी लागि धर 'गएउ' चुकाई ।
फुनि काढिसि 'बिजुली' 'करवारा' । डाक 'देइ गै हनेसि' कटारा ।
टूटि खांड टाटर महिं आवा । बांठ कहा 'हउं एहिं पइ' खावा ।
फुनि 'लीन्हति' काढिसि 'तरुवाई' । 'तउ हति' बांठा चला पराई ।
'खेदत अढुका धंवरू' परा 'दाबि' संहराइ ।
'पलटि' बांठ 'जउ देखा' 'तउ' फिर 'मारेसि' आइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८०, बी० ३२१-३२३ ।

शीर्षक—मैं० जंग करदने धंवरू व बांठा गुश्तः शुदने धंवरू ।

पाठान्तर—(१) १. बी० देष्या । २. बी० कंवरू । ३. बी० अैसे । (२) १. बी० ले मारिसि । २. बी० गयो । (३) १. बी० बिजुरी । २. मैं० तरवारा । ३. बी० देयकैं हनसि । (४) १. बी० हैं इहै पै । (५) १. बी० लीन्हसि । २. बी० ताराई । ३. बी० तौ लहि । (६) १. बी० देषत देषत अधिका (अढुका—फ़ारसी) । २. बी० दाउ । (७) १. बी० लवटि । २. बी० जो देषौ । ३. बी० तौ । ४. बी० मारसि ।

अर्थ—(१)—धंवरू ने देखा कि कुंवरू [रण-क्षेत्र में] गिर गया, तो वह [इस प्रकार क्रुद्ध हुआ] जैसे रोहिताश्व (अग्नि) प्रज्वलित हुआ हो । (२) उसी समय उसने हाथ में सांग [लिए हुए आकर बांठ पर] चलाया, किन्तु वह उसकी फरी पर पड़ी और चूक कर धरा में जा लगी । (३) तब उसने बिजली तलवार निकाली, और डाक (डंका) देकर और जाकर वह कटार [बांठ पर] चलाई । (४) वह खड्ग टूट गया जब वह टाटर मे आया, और बांठ ने कहा, "मैं, हो न हो, इसके द्वारा [अब] खाया गया । (५) धंवरू ने तदनंतर ले कर तरुवाई निकाली, तो बांठ उसे मार कर (आहत कर) भाग चला । (६) उसका पीछा करते हुए धंवरू अढुका और [विपक्षियों को नीचे] दबाते हुए तथा [उनका] संहार करते हुए गिर पड़ा । (७) बांठ ने लौट कर यह देखा, तो उसने आकर उसे मार दिया ।

(१०४)

'बाजे तार' दुवउ जन मारे । 'अउर कुंवर' 'महरइं' के हारे ।
'दूवउ आने पाधर घिसियाई' । पायक 'बइठे करहिं बड़ाई' ।

रगत दुहूं 'के' सरवरु भरा। 'एकउ कुंवर' न 'आगें' सरा।
'जिन्ह देखा' 'तिन्ह गएउ परानां'। दर महिं 'कोउ न करइ पयानां'।
जे 'महरइं' 'जेवनारि' जिवाए। संकरी बार 'निकाजइ' आए।

'भाट कहा महर सेउं' 'तउ पैं पावहिं' तीरु।
बेगि हंकारि 'पठावहिं' लोरिकु बावनु बीरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८१, बी० ३२४-३२६।

शीर्षक—मै०: शादमान ज़दन दर लश्करे राव रूपचंद अज़ हिरवते फ़ौज।

पाठान्तर—(१) १. बी० बीजे (बाजे—नागरी) तार दोऊ। २. बी० और कवर। ३. बी० महरन्हि। (२) १. बी० दोउ अनी (आने—फ़ा०) पाधरि षिसिआई (घिसिआई—फ़ा०)। २. बी० बैठे घरह पराइ। (३) १. बी० कै। २. बी० येको बीरु। ३. बी० आगै। (४) १. बी० जिहि देषे। २. बी० तिह गये पराना। ३. बी० रहै न कोय न जाना। (५) १. बी० महरें जिवनार। २. मै० बीर। ३. बी० काजि नहि। (६) १. बी० भाटि कहा तब राइ स्यो। २. बी० तो पहि पांउ। (७) १. बी० पठावहु।

अर्थ—(१) [शत्रु-दल में] ताली बज गई जब [महर के] वे दोनों ही जन (कुंवरू और धंवरू) मारे गए, तथा [महर के] अन्य कुमार (कुमार-भुक्त, गुज़ारेदार) भी हार गए। (२) वे दोनों पाधरों (रण में अप्रवृत्त लोगों) द्वारा घसीटते हुए लाए गए; [महर के] पदाति बैठे हुए उनकी बड़ाई कर रहे थे। (३) दोनों के रक्त से सरोवर भर गया और एक भी कुमार (कुमारभुक्त) [तदनंतर] आगे न बढ़ा। (४) जिन्होंने भी यह देखा, उनके प्राण निकल गए और [महर के] दल में कोई भी [आगे] प्रयाण नहीं कर रहा था। (५) जिन्हें महर [अपनी] रसोई में जिमाया करता था, [इस] संकट के समय में वे भी काम न आए। (६) भाट ने महर से कहा, "[संकट-सरिता से] तू तब तीर (तट) पाएगा (७) [जब] तू तुरत लोरिक तथा बावन वीरों को बुला कर [रण में] भेजेगा।"

(१०५)

भाट गोसाई 'तुम ही धावहु'। आगें 'दइ' लोरिक 'लइ' 'आवो(व)हु'।
'चढ़ि' तुरंग भाटु 'दउरावा'। लोरिक जाइ जुवा 'फर' पावा।
'कहवां भाट घोर दउराएहु। काकर पठए कहा तुम्हं आएहु'।

ओर 'महर' तुम्हं बेगि 'हंकारे'। 'कुंवरू धवरू बांठइ मारे'।
जा 'रबि' गोवरु लागि गुहारी। 'लइ (लेइ) अब' चांद 'होइ' अंधियारी।
उठा लोरु सुनि 'नांखा परलै' 'महर' भया अवसान।
आजु बांठु 'रन' 'मारउं' 'देखउं राइ' परान॥

सन्दर्भ—मै० ८२, बी० ३२७-३२९।

शीर्षक—मै० : आमदन भट बर लोरिक अज़ फ़िरिस्तादन महर।

पाठान्तर—(१) १. मै० तुम्हं गढ़ धावसि। २. बी० दै। ३. बी० लै। ४ मै० आवसि। (२) १. बी० चरि। २. बी० दौरावा। ३. बी० महि। (३) १. बी० में यह पंक्ति छूटी हुई है। (४) १. बी० जाहु। २. बी० हकारै। ३ बी० कवरू धवरू बाठैंहि मारैं। (५) १. बी० रिबि। २. बी० ली (लइ—फ़ारसी) ब। ३. बी० होयहैं। (६) १. बी० पायक मारे। २. बी० महरि। (७) १. बी० सिर। २. बी० मारे। ३. बी० देषौ राषि।

अर्थ—(१) [महर ने कहा,] "ऐ भाट गुसाईं, तुम (तुम्हीं) गढ़ मे जाओ, और आगे [स्थान] देकर लोरिक को ले आओ।" (२) भाट ने घोड़े पर चढ़ कर उसे दौड़ाया, और उसने जाकर लोरिक को जुए के फड़ पर [जुआ खेलते हुए] पाया। (३) [लोरिक ने पूछा,] "ऐ भाट, तुमने कहाँ (किसलिए) घोड़ा दौड़ाया है? तुम किसके भेजे हुए हो और क्या (क्यो) आए हो?" (४) [उसने उत्तर दिया,] "हे लोर, महर ने तुम्हें वेगपूर्वक (शीघ्र) बुलाया है, [क्योंकि] कुंवरू और धंवरू बांठ द्वारा मारे जा चुके है। (५) ऐ सूर्य, जा और गोवर की गुहार लग; [शत्रु] अब चाँद को लेने ही वाला है, [जिससे] अंधियारी (अंधेरी रात) होने [ही] वाली है।" (६) लोर यह सुनकर उठ खड़ा हुआ कि [वैरी ने] प्रलय नांख (डाल) दिया है और महर अवसन्न (अवसाद-ग्रस्त) हो गया है। (७) [उसने कहा,] "आज ही मैं रण में बांठ को मारूंगा और राजा [रूपचंद] को पलायित देखूंगा।"

(१०६)

घर गा लोरिक डांग संभारी। 'ओडन खांड लीन्ह' पटतारी।
बाधि 'रगाउलि' 'कसि' सिरि 'पागा'। 'पहिरेसि' सार तार का आंगा।
'घन सहरी' करि खैंचि बंधावा। 'पेट रु' 'गात' सनाहु मढ़ावा।
टाटर चहुं 'जन' लीन्ह उचाई। लोरिक मूंड दीन्ह औंधाई।
सारंग एकु 'जुगुति' कर चढ़ा। 'जनु 'अरजुन कहं रावनु गढ़ा'।

'फरसा कुंत' 'कटारी लीतेहिं' बांधि चला तरवारि ।
रगत 'पिपासु' खांड 'लोर' कर दौरा जीभ पसारि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६८, भो० पत्र १३ (नवीन), बी० ३३०-३३२ ।

मैं० मे इस कडवक के साथ का चित्र 'खोलिन और लोर के संवाद का' है, जो बाद में आता है, अतः प्रति यहाँ पर अस्त-व्यस्त है ।

शीर्षक—मैं० : दुरूने खानः रफ़तने लोरिक व मुस्तइद शुदन बर जंग ।

भो० : आमदने लोरिक दर ख़ानः व साख्तः शुदन बराय जंग व बोसीदन अस्लहा व बस्तने अस्लहा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० वोडन षाड लीन । (२) १. बी० रगावरि । २ मैं० किहेसि, बी० औ । ३. भो० बांगा, बी० षागा (पागा-नागरी) । ४ बी० पहरि । (३) १. बी० षाड फरी । २. मैं० पेट, बी० पीतरि (पेट रु—फ़ारसी) । ३. बी० काटि (गात—फ़ारसी) । (४) १. बी० जनि । (५) १. बी० जुगति । २. बी० जानौ । ३. भो० अरजुन कौरौ कहं कढा, बी० रांवनु अरजन हुते गढा । (६) १. भो० फरसा कूंडि, मैं० फिरि सजोइ । २. मैं० कटार लीन्ह, बी० कटारी लीन्ही । (७) १. बी० पियास । २ बी० लोरिक ।

अर्थ—(१) लोरिक घर गया, उसने डांग (यष्टि) संभाली और पड़ताल कर (देख-भाल कर) उसने ओडन और खांडा (खड्ग) लिया । (२) [पैरो में] रगाउली बांध कर और सिर पर पाग कस कर उसने सार (लौह) के तारों का आगा (अंगरखा) पहना । (३) उसने घनसहरी हाथों में खींच कर बधाई तथा पेट और गात्र को सन्नाह से मढ़ाया । (४) टाटर को चार जनो ने उठा लिया और लोरिक के सिर पर उसे औंधा करके रख दिया । (५) एक शार्ङ्ग (सींगों का धनुष) युक्तिपूर्वक उसके हाथों मे चढ़ गया, [वह ऐसा लगा] मानो जैसे अर्जुन के लिए उसका रावन (प्रिय) [धनुष—गाडीव] गढ़ा हुआ हो । (६) फरसा, कुंत तथा कटारी लेकर और तलवार बाध कर वह चल पड़ा । (७) [अब] लोरिक का रक्त-पिपासु खांडा (खड्ग) जिह्वा पसार (फैला या निकाल) कर दौड़ पड़ा ।

(१०७)

षौलनि लोरहि चलन न देई ।
अबहि राउ किन चांदा लेई ।

मैं (मइं) का उ(ओ)कर जीव रषावा।
जूझे(झइ) कौ (कहं ?) कस महरि बुलावा।
गा(गां)व जि बाटैहि (बांटहिं) जीव रषाहीं।
ते कस आजु न जुझें(जूझइं) जाही(हीं)।
जिव घरबात जीव धन मोरा।
बारु न देषें(षइ) देहौ(हउं) तोरा।
तुझ कछु होई तौ हौ(हौं) कौं(केउं) जीवौ(वौं)।
काहु(उ) षाइ (उं?) कैं पानी पीवौ(वौं)।
गाढ काजु मरें (मरइ) कर कैसैं जीउ लुकाऊ (ऊं)।
माता देहु असीस मुझु मारि बांठु घरि आऊ (ऊं)॥

सन्दर्भ—बी० ३३३-३३५। मैं० का वह पत्र, जिस पर यह कडवक रहा होगा, अब नही है, किन्तु उसके वर्तमान पत्र ६८ पर जो चित्र है, वह इसी कडवक का है, क्योंकि उसमें संवाद करते हुए खोलिनि और लोरिक अंकित है। आगे के कडवक में मैना को संबोधित करते हुए लोरिक कहता भी है देहु असीस दोउ जनि (१०८.६), जिससे यह स्पष्ट है कि माता से भी वह विदा लेने गया था।

अर्थ—(१) [लोरिक की माता] खोलिन लोर को चलने नहीं दे रही थी और कह रही थी, "क्यो न राजा [रूपचंद] अभी चाँदा को ले ले ? (२) मैंने क्या उसके जीव की रखवाली [अपने ज़िम्मे] ली है ? फिर [तुम्हें] महर [उसकी रक्षा के लिए] युद्ध करने को क्यों बुला रहा है ? (३) जो गांव बाँटते हैं (राजा से शासन-ग्राम लेते हैं), वे ही [उसके तथा उसके परिवार के लोगों के] जीव की रक्षा करते है; वे आज क्यों नहीं युद्ध करने जा रहे है ? (४) [अपना] जीव ही मेरे घर की संपत्ति है, वही मेरा धन है, मैं तेरा बाल [भी] किसी को न देखने दूंगी। (५) कहीं तुझे कुछ हो गया तो मैं कैसे जीऊंगी ? मैं क्या खाऊंगी अथवा पानी पीऊंगी ?" (६) [लोरिक ने कहा,] "[इस समय] मरने (प्राण देने) का कठिन कार्य (प्रयोजन) है, फिर मैं कैसे उससे अपना जीव (अपने प्राण) छिपाऊ ? (७) हे माता, [इस समय] मुझे आशीर्वाद दो कि मैं बांठ को मार कर घर आऊं।"

(१०८)

'आगें' आइ 'ठाढ़ि धनि' मैनां। नीर 'समुंद जस उलथइ' नैना।
चुइ चुइ बुंद 'परहिं' थनहारा। 'जनु टूटहिं गज मोतिन्ह' हारा।
'जउ तुम्हं हइ झूझइ कइ' साधा। मोहिं 'तउ' मारि करहु 'दुइ' आधा।
'तउ पीछें उठि झूझइ जाएहु'। 'मोरि' असीस जीति घर 'आएहु'।
जाकरि नारि 'सो झूझ' न जाई। बावनु बनखंडि 'रहा' लुकाई।
देहु असीस दोउ जनि मारि बांठ घरि 'आवउं'।
'सोनहि पइरि' 'कराउ(उं) मैना(नां)' 'मोतिन्ह मांग भरावउं'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६६, बी० ३३६-३३८।

मैं० में इस कडवक के साथ जो चित्र अब है वह कदाचित् महर की सेवा में बसीठों के लौट कर जाने का है, इसलिए इस अंश में प्रति अस्त-व्यस्त है।

शीर्षक—आमदने मैनां पेश लोरिक व गिरियः आग़ाज़ करदन ऊ।

पाठान्तर—(१) बी० आगे। २. बी० ठाढ धन। ३. बी० समद जानौ उझले। (२) १. बी० परैहि। २. बी० जानु टुटैहि गजमोती। (३) १. बी० जौ तुम्ह जूझे की है। २. बी० तुह्म। ३. बी० दोइ। (४) १. बी० तौ पीछै उठि जूझें जइहौहु। २. बी० मोर। ३. बी० अईहौहु। (५) १. बी० सु जूझ। २. बी० रह्यो। (६) १. बी० आऊ। (७) १. बी० सोनैं पीर (पइरि—फ़ारसी)। २. मैं० कराइ। ३. बी० मोत्यों मांग भराऊ।

अर्थ—(१) [उसकी] स्त्री मैनां [उसके] आगे आकर खड़ी हो गई, जैसे समुद्र का जल [उल्लस्त होता है], वैसे ही उसके नेत्र उल्लस्त हो रहे थे। (२) जब उसके बूंद चू-चूकर उसके भारी स्तनों पर पड़ते थे, [तो ऐसा लगता था] मानो गज-मुक्ताओं के हार टूट रहे हों। (३) [उसने कहा,] "यदि तुम्हें युद्ध करने की साध (आकाङ्क्षा) है, तो मुझे मार कर तुम दो आधे (टुकड़े) कर दो, (४) तब उसके बाद उठ कर युद्ध करने जाना और मेरा आशीर्वाद है (होगा) कि [शत्रु को] जीत कर घर लौटो। (५) [चांदा] जिसकी नारी है, वह [तो] युद्ध में जा नहीं रहा है; वह बावन बनखंड में छिप रहा है!" (६) [लोरिक ने कहा,] "तुम दोनों जनी (मैनां और खोइलिन) मुझे आशीर्वाद दो कि बांठा को मार कर घर लौटूं, (७) और [तदनन्तर], हे मैनां, मैं [तुम्हारे लिए] सोने के पायल [निर्मित] कराऊं और मोतियों से [तुम्हारी] मांग भराऊं।"

(१०९)

माता बहुरि दीन असीसा ।
जीवहु लोरिक वरि कोटि बरीसा ।
करता दोउ (दहुं ?) अैस परवाना ।
अरज (जु ?) न भीव भोज बरि जाना ।
षांड जैत (जेति?)सतराह(सतुरह)सिरि सालू ।
तुह्य(म्ह) समरे त होइ धर पालू ।
जस रामहिं बांध्यो सर सेतू ।
सतुराह (सतुरह) मरि (मारि) किया कुरषेतू ।
नैन नीर भरि अंचरु पसारा ।
बोल्या(ला) बचनु जननि धन बारा ।
अमरु सबदु के रापा तुह्यरै (तुम्हरे) सिरजनु हारु ।
जस बरु दीन्ह भीम अरज(जु ?)न कौहु(कहुं)तस तुह्य(म्ह)धौ करतारु ॥

सन्दर्भ—बी० ३३९-३४१ ।

मैं० यहां त्रुटित है (दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी) । किंतु पिछले कडवक में लोरिक मैंना के साथ माता को भी संबोधित करता है, जब वह कहता है "देहु असीस दोउ जनि" (१०८.६), इससे इस कडवक की प्रामाणिकता निश्चित है ।

अर्थ—(१) तदनन्तर माता ने आशीर्वाद दिया, "ऐ लोरिक, अच्छा यह हो (यह मेरी शुभ कामना है) कि तुम कोटि वर्षों तक जीवो । (२) कर्त्तार (सृष्टिकर्ता) तुम्हें ऐसा प्रमाणे कि वह तुम्हें अर्जुन, भीम, भोज की भाति जाने (जैसे उसने उन पर कृपा की, तुम पर भी करे) ! (३) तुम्हारा षाडा जितने भी शुत्र हों उनके सिर के लिए शल्य (प्रमाणित) हो, और तुम्हारे स्मरण से धरा का पालन हो (उसकी रक्षा हो) ! (४) जैसे राम ने सर (समुद्र ?) पर सेतु बांधा था, और शत्रुओं को मार कर कुरुक्षेत्र (युद्ध) किया था [वैसे ही तुम भी करो !]" (५) नेत्रों में अश्रु भर कर उसने अचल पसारा और जननी ने कहा, "ऐ [मेरे] बालक, तुम धन्य हो । (६) सृष्टिकर्त्ता तुम्हारा शब्द (वचन) अमर कर रक्खे ! (७) जैसे उसने भीम और अर्जुन को बल दिया, वैसे ही वह तुम्हें भी दे !"

(११०)

'जइस असीस दीत तस पाएहु'। लोरिक 'राइ' जीति घरि 'आएहु'।
लोरिकु गा अजई के बारा। भीतर 'हुतें' 'जो' 'आइ' हंकारा।
'पहिलेहि अजई दोख' 'उपावा'। मिसु 'कइ' परि गा दात कंपावा।
'घात' काटि 'घसि' गेरू भरी। खपरी लइ 'पूंदी' तर धरी।
आग 'मूंदि' 'असि करइ' पुकारा। 'कवनि' मीचु 'दीन्हीं' करतारा।
लाज 'लागि' 'महरइ मुंह' 'अबहीं' 'राउ कह आउ'।
'खांडइ' मींचु न 'पाइउं' दई 'बहुल' पछिताउ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८६, भो० पत्र ७ (नवीन), बी० ३४२-३४४।

शीर्षक—मै० : रफ़्तन लोरिक दर खानः अजई व बहाना ए मर्ज़ करदन ऊ।
भो : राज़ी शुदन खेलन व इजाजत दादन मैनां विदाअ् करदन लोरिक जानिब खानः राव रफ़्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० जस असीस देह तसै पायुहु। २. मै० राउ। ३ बी० आयुहु। (२) १. भो० हिएं। २. बी० में नहीं है। ३. बी० आय। (३) १. बी० पहिलें अजई देप। २. मै० अनावा। ३. बी० कै। (४) १. बी० घाट। २. बी० कैं। ३. भो० यूंदी, बी० पूंदह। (५) १. बी० मूंड (मूदि—फारसी)। २. बी० अस करहि। ३. बी० कौनु। ४. बी० दीनी। (६) १. बी० जाइ। २. भो० महरइ मुह, बी० महर महि। ३. भो० इहवइ, बी० औ अब। ४. बी० होइ कुराव। (७) १. मै० खांडइ, बी० पाडै। २ बी० पायो। ३. बी० बहुत भएउ।

अर्थ—(१) [मैंनां ने कहा,] "जैसा [मैंने] आशीर्वाद दिया, [समझो कि] वैसा तुम ने पाया; ऐ लोरिक, तुम राजा [रूपचन्द] को जीत कर घर आना।" (२) लोरिक अजई के द्वार पर गया, तो भीतर से हँकारी आई। (३) पहले ही [से] अजई ने दोष (दुःख) उत्पन्न कर रक्खा था, बहाना करके वह पड़ गया था तथा दांत कंपाने लगा था। (४) [स्वयं] घात (घाव) काट कर उसमें उसने घिसे हुए गेरू को भर रक्खा था और एक खपड़ी लेकर पूंदी (?) के नीचे रख लिया था। (५) अंग (शरीर) को मूंद कर वह पुकार लगा रहा था, "हे सृष्टिकर्ता, तूने मुझे कौन-सी मृत्यु दी? (६) महर के मुह में लज्जा लग रही है, इसलिए अभी राव [महर] कहेगा कि 'आओ [तथा युद्ध करो]।' (७) खांडे से मैंने मृत्यु न पाई, इसका, हे दैव, बड़ा पछतावा हुआ।"

(१११)

अजई 'गुरु परि कइ' 'बतलावउं'।
'इहइ बहुत' तुम्हं 'सेउं' सिधि 'पावउं'।
'मई लोरिक' 'तहिया' सिधि 'दीती'।
हाथि फरी 'तुम्हं' 'जहियां' 'लीती'।
अब बुधि 'देउं' 'सुनसि तूं' मोरी। ओडन देह न 'देखइ' तोरी।
'वा(पा)ट जोरि धरि' 'पाउ उचाएहु'। बांह लुकाइ 'खरग चमकाएहु'।
'पाट गहत' 'जनि भूलइ दीठी'। 'पाव न देखइ उघरिहि पीठी'।
घालि 'अखारें' 'खेदसि' 'सांस' भरे 'जउ' जाइ।
'देय(इ) फरहरा' 'मारसु' जइसें 'पर अरराइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८७, भो० पत्र ८ (नवीन), बी० ३४५-३४७।

शीर्षक—मैं० : नमूदने लोरिक रा अजई तरीकः-ए-जंग।

भो० : विदाअ् करदन लोर वर रजई रा व हुनरहा जंग आमोख्तन अजई बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० बरु गुरु कौनु, भो० गुरु पकरहिं। २. बी० बुलाऊ। ३. बी० यहै बचन। ४. बी० पै, मैं० हुत। ५. बी० मे नहीं है। (२) १. बी० मै लोकसि। २. मैं० तहां, बी० तिहुवा। ३. मैं० दीतिहुं, बी० दीन्ही। ४. बी० तुह्म। ५. बी० जहिवा। ६. मैं० लीतिहुं, बी० लीन्हा। (३) १. बी० देहू। २ भो० सुनहु तुम, बी० सुनहु धौं। ३. बी० देषौ। (४) १. मैं० फरी टेकि भुइं, भो० पाट धरइ भुइ। २. बी० वाह उचावोहु ३. बी० पगु चमकावहु। (५) १. बी० बात कहत (पाट गहत—फ़ारसी) २. बी० मत भूलहु दीठें। ३. बी० पावा देषि उषरि न वैठें। (६) १. भो० उखारत, बी० उपारै। २. भो० खेदसि, बी० तस विधि षेदहु। ३. बी० मैं० सास। ४. बी० जस। (७) १. भो० देइ फराहर, मैं० खरग फरहरा, बी० देय फरहारा। २. बी० मारहु। ३. भो० जइसें बन अरराइ, बी० जइस परैं खहराइ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "हे अजई गुरु, तुम पड़कर (पड़े ही पड़े) बताओ ; यही बहुत है कि तुमसे मैं सिद्धि पाऊं।" (२) [उसने उत्तर दिया,] "मैंने, ऐ लोरिक, उसी समय [तुम्हें] सिद्ध दे दी थी जब तुमने हाथ में फरी ग्रहण की थी। (३) अब मैं तुम्हे बुद्धि (युक्ति) दे रहा हूँ; और उस

बुद्धि (युक्ति) को सुनो। ओडन [इस प्रकार लिया हुआ] हो कि [उसकी ओट मे से] तुम्हारी देह न दिखे। (४) पाट (?) जोड़ कर तुम भूमि पर पाव उठाना और अपनी बाहों को छिपा कर खड्ग को चमकाना। (५) पाट (?) पकड़ते समय दृष्टि न भूले (भ्रमित हो) और उघडी हुई पीठ के साथ तुम्हे [शत्रु] न देख सके। (६) तुम यदि भरी हुई श्वास के साथ जा कर और अखाडे (युद्ध-भूमि) में डालकर [शत्रु को] खेदोगे (उसका पीछा करोगे), (७) और फरहरा (लंबी उछाल ?) देकर तुम खड्ग मारोगे, [शत्रु] जैसे अररा कर पडेगा (गिरेगा)।"

(११२)

'पहिले' जाइ महर 'उ(ओ)रिगायुहु। तउ 'पाछें तुम्हं' झूझइं जाएहु'।
लोरिक जाइ महर 'ओरगावा'। 'पैग' बीस चलि 'आगे' आवा।
अबलहि 'लोरहिं भए बर जाई'। 'सगरइं' होइ 'मइं देखेउं आई'।
'लोरिक सूरु भइसि' तू मोरा। 'मारु बांठ' मुखु 'देखउं' तोरा।
हउ तुम्हें हुतें तीर जउ 'पांवउं'। आधे गोवरि राजु 'करांवउ'।
तीस पान कर बीरा 'महरइ' लोरहि दीन्ह हंकारि।
घोर 'देउं' 'स्यौं (सेउं)' 'आखर' पाखर 'जौआवो(व)हु' 'रन' मारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७२, बी० ३४८-३५०।

शीर्षक—मैं०: रफ़्तन लोरिक बर महर व वर्ग दिहानीदने महर लोरिक रा।

बी०: बाएं हाशिए में संकेत है 'लोरिक महर की भीर लडन आया'। किंतु यह अन्य हाथ की लिखावट में लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहलैं। २. मैं० ओरगावा। ३. बी० पीछै उठि। (४). बी० जूझन आयुहु। (२) १. बी० उरिगावा। २. बी० पईक (पैग—फ़ारसी) ३. बी० आगै। (३) १. बी० लोरन भई पछांनीं। २. बी० सफरी। ३. बी० मै देष्यैं आंनी। (४) १. बी० लोर सूरु भाई। २. बी० छेकि बांठु। ३. बी० देषौ। (५) १. बी० पाऊ। २. बी० कराऊ। (६) १. बी० महरैं। (७) १. बी० दीन्ह। २. मैं० सउ (उं)। ३. बी० अषर। ४. मैं० जउ आइहु। ५. बी० रिन।

अर्थ—(१) [अजई ने फिर कहा,] "तुम पहले जाकर महर की सेवा [में निवेदन] करना तब पीछे तुम युद्ध करने जाना (२) [तदनुसार]

लोरिक ने जाकर महर की सेवा [में प्रार्थना] की, तो महर बीस पग आगे चल कर आया। (३) [महर ने कहा,] "अबलों के लिए, हे लोरिक, तुम्हीं जाकर बल हुए (होते रहे) हो, मैंने यह [बात] सर्वत्र हो कर देखी है। (४) ऐ लोरिक, तुम मेरे शूर हुए हो, तुम बांठ को मारो, मैं तुम्हारा मुख (आसरा) देख रहा हूं। (५) यदि, हे वीर, मैं तुम्हारे द्वारा [संकट-सरिता से] तीर (किनारा) पा जाऊंगा, तो आधे गोबर पर [तुम्हारा] राज करा दूंगा।" (६) [यह कह कर] तीस पानों का बीड़ा महर ने लोरिक को बुला कर दिया, (७) [और कहा,] "मैं तुम्हें आखर-पाखर के साथ घोड़ा दे रहा हूँ कि तुम [शत्रु को] रण में मार कर आओ।"

(११३)

चला लोरु 'लइ' आपन साथी। 'जहवां पखरे' मैमंत हाथी।
लोह 'नदी' 'जनु दइ बुडकाए'। 'तारूं' तरवां 'कइ' अन्हवाए।
झरक लोहु 'जनु' उदिनिल भांनू। दर महिं दूसर सूझ न आंनू।
देखि बांठु राजा पहिं धावा। चांद 'गोहारि' 'सुरुज चलि' आवा।
उठा झार दरि 'रही' न जाई। हाथि घोर सब 'चले' पराई।
'झूझु' बांठ तइं 'जीतब' 'अब कोई' छंदु लाइ।
सूर बीर तइं 'मारब' तोहिं पहिं एकु न जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७३, बी० ३५१-३५३।

शीर्षक—मै० : रवां करदने लोरिक बायाराने खुद दर मैदाने जंग।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै। २. बी० जहाँ पखरिया। (२) १. बी० दीन। २. बी० जानौ लै डुबकाई। ३. बी० तार्यौं। ४. बी० कैं। (३) १. बी० जानौ। (४) १. बी० गुहरि। २. बी० लोरु चरि। (५) १. बी० रह्या। २. मै० चला। (६) १. बी० जूझु। २. बी० जीता। ३. मै० आइ लोर। (७) १. बी० मारे।

अर्थ—(१) लोर अपने साथियों को लेकर [वहाँ के लिए] चल पड़ा जहाँ पर मदमत्त हाथी पाखरे हुए [तैयार] थे। (२) [वे ऐसे लगते थे] मानो लौह की नदी में बुड़की (डुबकी) दिए हुए हों और तालु से लेकर तलवे तक [उसमें] नहलाए हुए हों। (३) उनके लौह ऐसे झलकते थे मानो उदय होते हुए सूर्य हों, दल में दूसरा (अन्य कुछ) नहीं सूझ रहा था। (४) [लोर को आता] देख कर बांठ राजा [रूपचंद] के पास दौड़ता-दौड़ता

गया। [उसने कहा,] "[अब तो] चांदा की गुहार (पुकार पर—उसको बचाने के लिए) सूर्य (लोर) चला आया है। (५) [युद्ध की] ज्वाला उठ पडी है और दल में रहा (रुका) नही जा रहा है, हाथी-घोड़े सभी भाग चले है।" (६) [रूपचंद ने कहा,] "ऐ बांठा, तू युद्ध कर, तू ही जीतेगा, [भले ही] अब कोई छद्म (युक्ति) लगा, (७) उस सूर्य को, ऐ वीर, तू मारेगा, तुझसे [बच कर] एक भी नहीं जा सकता है।"

(११४)

'निसरत' लोर 'सबइं' नीसरे। 'एक एक जनु परखहिं' आगरे।
लौकहिं खरग 'दानहिं लइ फिरे'। 'बांधे पाट जउ रे धर धरे'।
'झलकहिं ओडन' तांबे 'तुरी'। बांधे 'पवंरी लोहें जरी'।
पटवर 'सार तार' 'कइ' भई। 'भई अतिय बज्जर कइ मई'।
'सबहि सिंदूर' 'दरेरइं' धरे। 'भांगहिं' देखि 'घोर' पाखरे।
'नियरे नियरा' 'पाइक' 'चढा सहस बर' राउ।
अचल 'चलाएं न बिचलइं' 'रहे' रोपि धर पाउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७४, बी० ३५४-३५६।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते मुस्तअ़दीए फ़ौज लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० नीरत। २ बी० सभहि। ३. बी० येक जानी बुधि औ। (२) १. बी० दांत की फरी। २. बी० बाटह बाट जोरि भरि धरी। (३) १ बी० चमकहिं वोडन। २. बी० तरे। ३. बी० पैरहि लोहहि जरे। (४) १. मैं० तार सार। २. बी० की। ३. बी० भइ पअरिनि बंजर की भई। (५) १. बी० सीह उरेरहि। २. बी० दरेरैं। ३. मैं० भाजहि। ४ बी० हस्ति। (६) १. बी० नेराह नेराह। २. बी० पाइक बैठे। ३. बी० चरा सीस परि। (७) १. बी० चलायो ना चलैंहि। २. बी० बैठ।

अर्थ—(१) [युद्ध के लिए] लोरिक के निकलते ही सब [सैनिक] निकल पडे, मानो एक-एक [सैनिक] पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। (२) खड्ग लौकने (लपलपाने) लगे, [क्योंकि] योद्धा उनका दान देने के लिए उनको लेकर लौट पड़े थे, जब पाट (पटका) बांधे हुए उन्होंने [रण-] धरा को धारण किया था। (३) घोड़ों पर उनके ओडनों का तांबा झलक रहा था, वे पांवरियों को बांधे हुए थे जो लोहे से जटित थी। (४) उनकी पटवरें फौलाद के तारो की बनी हुई थी [इसलिए वे अत्यधिक वज्रमयी हो गई

थी। (५) सभी [योद्धा] सिंदूर की दरेरें (धारियां) धारण किए हुए (लगाए हुए) थे [जिसके कारण] उन्हें देख कर पाखरित घोड़े भाग रहे थे। (६) पदाति निकट ही निकट थे, [इस प्रकार] सहस्र [-गुणित] दल के साथ राजा [महर] ने चढ़ाई की। (७) [अब सैनिक] अचल थे, चलाने पर वे विचलित नहीं हो रहे थे, और उन्होंने पैरों को रण-धरा में आरोपित कर दिया था।

(११५)

'तहं तुरि' बैसि 'गए' धनुकारा। 'जेहिं पंथ पउलत' नहीं उबारा।
'साजि बडवा तस कइ कढ़े'। दीत 'टकोरा' 'घूरहिं चढ़े'।
'अपरइं नर तहं संकरी मूठिहिं। पनच धरे सर तुरियन पूठिहिं।'
बान 'सारि कइ' 'आंग' उचाए। पांखहिं 'गरुर' काटि रचि लाए।
'दीते फुंक (पुंख)' सर 'मूंठि संभारहिं'। 'बोलत' बोलु मांझ' 'मुषि' मारहिं।
जन्त्र लखउरीं 'काढ़े' [ब]हुत 'दाप भनकार'।
भरि भरि भाथा बांधे तिन्ह 'पहिं' कहां 'उबार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८३। बी० ३५७-३५६।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते तीरंदाज़ान गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० तिह तौ। २. बी० गहे। ३. बी० जिहि बिनु बोलत। (२) १. बी० सजि बिनानी की अस गढ़ी (गढे—फ़ारसी)। २. बी० टकौरा। ३. बी० धूमर चढ़ी (चढ़े—फ़ारसी)। (३) १. बी० बिसरी परतेहि सकरी मूठी : पेटते दूसरी खुरी पूठी। (४) १. बी० सान दे। २. बी० आन। ३. बी० गुबर। (५) १. बी० दे भुवंग (फुंक—फ़ारसी)। २. बी० सभारैहि। ३. बी० बोलित। ४. मै० मुंह। (६) १. बी० काढ़ी। २. बी० हस्ति दोत (दांत ?) फुनकार। (७) १. बी० महि। २. मै० उपार।

अर्थ—(१) वहाँ (रणक्षेत्र में) घोड़ों पर धनुकार (धानुष्क) बैठ गए। जिस पथ से भी वे पैर रखते थे, उस पथ पर उनसे बचना असंभव था। (२) घोड़ियां सजा कर वे इसी प्रकार निकल पड़े थे और वे उन्हें टकोर देकर चढ़े हुए घूम रहे थे। (३) घोड़ों की पीठ पर अपर नर (योद्धा) वहाँ पर अपनी मुट्ठियों में, जो संकीर्ण की हुई (सिकोड़ी हुई—बाँधी हुई) थी, प्रत्यंचा पर शरों को रक्खे हुए थे। (४) वे बाने धारण कर अंग उठाए हुए ऐसे लगते थे मानो गरुड़ के दोनों पंखों को काट कर युक्ति-पूर्वक उन्हें लगा

दिया गया हो। (५) पुंखों (बाण के अग्रभाग) में शर (सरकंडा) दिए (लगाए) हुए वे अपनी मुट्ठियों को संभाल रहे थे और [विपक्ष के योद्धाओं के] बोल उठते ही उनके मुख में [बाण] मारते थे। (६) जो लखौरी यंत्रों को निकाले हुए थे और बहुत दर्प के साथ उनकी ध्वनि कर रहे थे, (७) तरकशों को [शरों से] भर कर जिन्होंने बांध रक्खा था, उनसे बचना कहां [संभव] था ?

(११६)

साजे सुरथ 'बिनानिहि गढे'। 'सउ सउ धानुक एक एक चढ़े'।
ढूके 'आए आनें तेहि खिनइं'। तीनि चारि सै ऊभे 'कनइं'।
जोयन बीस करि लाइ चलावहिं'। खिन 'इक' मांझ बहुरि 'तहं' आवहिं।
'ठौर ठौर कइ' 'रन' महि धरे। जनु 'बोहिथ' सायर महिं परे।
'रथ केहि अरथ झूझ कहं' कीन्हां। पर दर 'मुख लइ' खूंटा दीन्हां।
देखि 'झुझार राइ के' 'कुरधर' रहे तंवाइ।
'फूटि चले राइ अउ राउत बूड लौकि सो आइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८४। बी० ३६०-३६२।

शीर्षक—मैं० सिफ़ते रथ जंगी गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिनांनहू घरे। २. बी० सै सै धानुक यक यक चरे। (२) १. बी० आइ अनी महि घने। २. बी० गने (कने—फ़ारसी)। (३) १. बी० कर राय चलावैहि। २. बी० यक। ३. बी० तहां। (४) १. बी० ठाव ठाव के। २. बी० रिण। ३. मैं० बोहित। (५) १. बी० अरथ रथै जूझ कौं। २. बी० लौ औ। (६) १. बी० जूझार राय के। २. बी० कर धरि। (७) १. बी० फूट चले जस बनियो बूडि बूडि लोगु मराइ।

अर्थ—(१) विज्ञानियों (कुशल कारीगरो) के द्वारा गढ़े हुए सुन्दर रथ सजाए गए और सौ-सौ धानुष्क एक-एक पर सवार हुए। (२) उसी क्षण ले आए गए वे आ ढुके, और पास-पास ही तीन-चार सौ खड़े हो गए। (३) बीस बीस योजनों तक हाथियों को लगा कर उन्हें चलाया जाता था और वे क्षण भर में ही वहाँ पुनः आ जाते थे। (४) वे रण-क्षेत्र में स्थान-स्थान पर लाकर इस प्रकार रक्खे गए थे मानो सागर में बोहित्य [रख] पड़े हों। (५) युद्ध के लिए इन रथों को किस अर्थ (प्रयोजन) से किया (बनाया) गया था ? इसलिए कि इनके द्वारा [जैसे] पर दल [शत्रु-दल] के मुख को लेकर उसमे खूंटा दे

दिया जाए। (६) राजा के इन योद्धा सैनिकों को देखकर [विपक्ष के] कुलधर [योद्धा] तप्त हो रहे। (७) और उसके बहुतेरे राव और रावत फूट चले (तितर-बितर हो गए) और जो [अब तक रण सरिता मे] डूब रहे थे, वे ऊपर आते [और भागते] दिखाई पड़े।

(११७)

गज गवनें 'दरि सांसौ भएऊ'। बासुगि 'नासि पतारहिं गएऊ'।
'झुकरत इंद्रासन डर' होई। 'कांपहिं पाउ' न अंगवइ कोई।
'चढे महाउत कसें' अंबारी। दांत पितरि मढ़ि सूंडि सिंगारी।
'जोतहिं महाउत' अंकुस 'गहइं'। 'बिनु गज रैन' दर राखि न 'रहइं'।
सावनि मेघ 'ओनइ जनु रहे'। पखरे गैंवर 'परखहिं चढे'।
'बज्र मांथ' घन पसरे परी छांह 'रनि' आइ।
उठी खेह दर 'पउदरि' 'सूरिजु गएउ' लुकाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८५, बी० ३६३-३६५।

मैं० में इस छंद के सामने चित्र मैंना से लोरिक के बिदा लेने के प्रसंग का है, जो कि बहुत बाद में आता है। इससे ज्ञात होता है कि इस स्थान पर मैं० के पत्र अस्त-व्यस्त हैं।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते फ़ीलाने महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० दरि सौ सौ भेये। २. बी० कैंपि पतारैंहि गये। (२) १. बी० छिघरति यंद्र सरौ वड। २. बी० कंपैहि राइ। (३) १. बी० चढै छतनिया करसि। (४) १. बी० जैन महावतु। २. बी० षुहाई। ३. बी० बन कजी (बिन गज—फ़ारसी)। ४. बी० रहाही। (५) १. बी० उनये जानौ अहे। २. बी० राषे न रहे। (६) १. बी० मैं जु मात। २. बी० रिनि। (७) १. बी० पयाह दर। २. बी० सूरज गयो।

अर्थ—(१) गजों के गमन करने से [शत्रु-] दल में संशय (डर) हुआ, और बासुकि भाग कर पाताल को चला गया। (२) [हाथियों के] चीखने से इंद्रलोक में डर होने लगा, [देवताओं के] पैर काँपने लगे, क्योंकि [इनका भार] कोई अंगों पर नहीं ले सकता था। (३) अंबारी कसकर [हाथियों पर] महावत चढ़ गए, उनके दांतों को उन्होंने पीतल से मढ़ कर उनके सूँड़ों को शृंगारित किया था। (४) जब महावत उन्हें जोतते थे, वे अंकुश ग्रहण करते थे, क्योंकि बिना गजरैन (अंकुश ?) के वे [हाथी] दल (सेना) में रोकने से रुकते नहीं थे (५) श्रावण मे मेघ मानो अवनमित हो गए हों इस प्रकार

वे पाखरित गजेन्द्र [युद्ध में प्रवृत्त होने की] प्रतीक्षा कर रहे थे। (६) जिनके मस्तकों पर वज्र (फौलाद) [के तवे] थे, ऐसे वे घन [सदृश हाथी] जब वहा पर फैल गए, रण-क्षेत्र में छाया आ पड़ी। (७) दल तथा पद-दल में धूल उठी और सूर्य छिप गया।

(११८)

'महरइं' काढि 'केकान' पलानें। दहुं 'दिसि' धरे लोर पहं आने।
'हस हांसुले' भंवर सुहाए। 'जनु' बग घन 'कारी' महिं आए।
उद(दि)र समंद भुइं पाउ न धरहीं'। 'सावकरन जस' नाचत 'रहई(हीं)'।
'महू तुरंग' तीनि पा ठाढ़े। 'टेइं हराह' 'पक्खरन्हि गाढे'।
बोर कररिया 'अउ सुरराहा'। 'दहुं दस रूप जोति ते आहा'।
पवन पाइ परबत सम 'देहीं' देखि तरास उडाहि।
बहुल 'धाप धर धावहिं थामे हिरि' न रहाहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७८, बी० ३६६-३६८।

शीर्षक—मैं० : सिफ़त असपान राब महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० महरि। २. मैं० तोखार। ३. बी० दिस। (२) १. बी० हांस हंसौला। २. बी० जानौ। ३. बी० कार। (३) १. बी० पाव धराहीं। २. मैं० भाउ गरब ते। ३. बी० नचत रहाहीं। (४) बी० मुहये तुरंज। २. बी० तीनि हजार। ३. बी० पखरिया काढ़े। (५) १. बी० औ सुरवाहा। २. बी० जिहि की घाप सराहौं काहा। (६) १. बी० में नही है। (७) १. बी० धांघर थोरे ठोक हरि न।

अर्थ—(१) महर ने निकाल (निकलवा) कर केकानों (घोड़ों) को पर्याण से सज्जित किया (कराया) और उन्हें लोरिक के पास ला कर दस ओर रख दिया। (१) हंस जैसे हांसुले थे ओर सुहावने भंवर थे, जो ऐसे लगते थे मानो किसी बादल की कालिमा में बकुले आए हुए हों। (३) उदिर और समंद भूमि पर पैर नहीं रख रहे थे, और श्यामकर्ण जैसे नाचते ही रहते थे। (४) महुए घोड़े ऐसे थे जो तीन पैरों पर खड़े होते थे [चौथा पैर रखते ही दौड़ने लगते थे ?]। टेई और हराह गाढ़े पाखरों मे [सन्नद्ध] थे। (५) [इनके अतिरिक्त] बोर, कररिया (गुर्रः ?) और सरराह (सेराह) थे, ये [दस जातियों के घोड़े] मानो दस रूपों और ज्योतियों के थे। ६ वायु मे ये पैर इस प्रकार देते चलाते ये मानो पवतों पर चढ़ रहे

हो और चाबुक देख कर ही ये उड़ने लगते थे। (७) वहुतेरे धाप (=½ कोस) तो ये धरा पर [थामते-थामते] दौड़ जाते थे और थामने पर लज्जित होकर रुकते नहीं थे।

(११९)

कसि कसि चढे 'सबहिं' असवारा। 'जियत न देखउं जिन्हकर' मारा।
बिसहिं बुझाए 'सानइं' धरे। 'बेलक' सौ सौ तरकस भरे।
'खरगन्हि बसइ' 'बीजु कइ कया'। रगत 'पियासी कर नहि मया'।
बीर 'अस्सुरन' 'पखरी(रि)न्ह चढे'। 'तारूं तरवां लोहइं जरे'।
टाटर पहुंचिउ 'रागइं' कसें। 'झरकहिं लवकइं सोनइं रसें'।
'जिन्ह कें' हाक 'परहिं' नर औ गज लेहिं तरास।
'मरहिं' सींह 'हिए डरि' सुनि 'कइ' रहे 'निवास'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७९। बी० ३६९-३७१।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते सवाराने जंगी।

पाठांतर—(१) १. बी० सभै। २. बी० जैति (जियत—फारसी) न देषों जिह कर। (२) १. बी० सानहि। २. बी० बोलक। (३) १. बी० खरगैंहि। २ बी० बीज की काया। ३ बी० पियासे (पियासी—फ़ारसी) करहि न दया। (४) १. मैं० आरनर। २. बी० रखरहू चरे। ३. बी० तारौ (तारू—फ़ारसी) तरवा लोहहि जरे। (५) १ बी० बहुजू रागैं। २. बी० झरकैहि लवकैहि सोनैं कसे। (६) १. बी० जिह्की। २. बी० परैहिं। (७) १. बी० मरौह। २. बी० हिय डरि कै। ३. बी० कै। ४. मैं० न पास।

अर्थ—(१) [घोड़ों पर ज़ीनें] कस-कस कर सभी सवार चढ़े, जिनके मारे हुओं को मैंने जीते हुए नहीं देखा। (२) विष मे बुझाए हुए और शान पर रक्खे हुए बेलक (बाण) तरकशों में सौ-सौ रक्खे हुए थे। (३) [उनके] खड्गों में विद्युत् की काया निवास करती थी, जो रक्त से प्यासी थी और [किसी पर] मया (ममता) नहीं करती थी। (४) [ऐसे] वीर अश्वों पर रण में पाखरित होकर चढ़े थे और तालु से तलवे तक वे लौह से जड़े (मढ़े) हुए थे। (५) वे टाटर, पहुंची तथा रागों (क्रमशः भुजाओं तथा पैरों के कवच) कसे हुए थे, जो सोने से रसे हुए [होने के कारण] झलक और लपलपा रहे थे। (६) [वे ऐसे थे] जिनकी हांक पर मनुष्य गिर पड़ते थे, हाथी त्रास करते थे, (७) तथा सिंह हृदय में डर कर मर जाते थे, और इसलिए अपने निवासों में ही बने रहते थे।

(१२०)

'गीधन्ह नेउता कुटुंब हंकारा' । 'आनि' रसोइ 'आगि' 'परजारा' ।
आजु बांठ सेतीं खंड तारा । 'लोरिक' 'पसाएं' 'करउं जेवनारा' ।
'नौता काल देस कर' आवा । 'चील्हन गै दर मांडव' छावा ।
सरगि 'ऊड़ तेहि फरहरि खीनी' । 'गारि' 'करोर' भांति 'रस भीनीं' ।
सुनां 'सियार' पितर 'पख' आवा । 'रइनि' पासि 'सब जाति बोलावा' ।

'गूद मांसु धरि तोरबि' रगत भरबि 'नइ' कुंड ।
आठ मांस धर 'जेवहिं' सात मांस लहि मुंड ॥

संदर्भ—मै० पत्र ८८, शि०, बी० ३७२-३७४ ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ले जानवरां मुरदार ख्वार ।

शि० : आमदन जमअ्दारान मुरदार ख्वारान हुम: अज़······ ।

शि० में अर्द्धालियों के प्रथम चरण तथा दोहे के दोनों चरण अपाठ्य हैं ।

पाठान्तर—(१) १. बी० गिदुव निवता कुटबा हुकारी । २. मै० कीत । ३. मै० अगिनि । ४. बी० परजारी । (२) १. मै० लोर । २. बी० साय । ३. बी० करहि जिवनारा । (३) १. बी० निवता फाग देस कैं । २. बी० चीलहह कौ घरि मंडपु । (४) १. बी० गुवरि फरहरहि घनी । २. मै० गालि, बी० कारि (गारि—फ़ारसी) । ३. मै० गरोहि । ४. मै० रस कीनी, बी० दस तनी । (५) १: बी० सियारि । २. मै० मख (पख—नागरी) । ३. बी० रैंनि । ४. बी० सभ जाति बुलावा । (६) १. बी० गोड (गूद—फ़ारसी) मास घर जीवन । २. बी० नैं । (७) १. बी० पूरब ।

अर्थ—(१) गिद्धों ने निमंत्रण भेजा और कुटुंबियों को बुला भेजा, [उन्होंने कहलवाया,] "हमने आ कर रसोई की है और [उसके लिए] अग्नि प्रज्वलित की है । (२) आज बांठ से [लोरिक ने] इस [भू-] खंड को [समझना चाहिए कि] तार दिया, अतः लोर के प्रसाद से हम यह ज्यौनार कर रहे हैं ।" (३) जब स्वदेश का यह निमंत्रण-काल आया, चीलों ने जाकर दल में मंडप छाया । (४) वे आकाश में इसीलिए क्षीण पताकाओं जैसी उड़ने लगीं, [उनकी] बातें करोड़ों भांति की और रस-सिक्त थीं । (५) स्यारों ने सुना कि पितृ-पक्ष आया हुआ है, इसलिए उन्होंने [उस संहार-क्षेत्र में] रात्रि के समय समस्त जाति को पास बुला लिया । (६) [उन्होंने कहा,] "गूद

और मांस हम पकड़ कर तोड़ेंगे और रक्त से कुंड भरेंगे। (७) आठ मास तक हम धड़ों का भोजन करेंगे, और सात मास तक मुंडों का।"

(१२१)

चहु दिसि 'देख राउ' दरु आवा। रहा अचलु होइ चल न चलावा।
'जउ रे' 'चलावहिं' 'जाइय' कहां। कवनु उतरु अब 'दीजइ' तहां।
'ओछे दर हम बाजे आई'। 'आएं पवरि अब जाइ न जाई'।
देस मंडर महिं लागी लाजा। 'बूडि सिराउ' 'ओछहिं सहुं' भाजा।
काहू सों मंतु 'करइ न पारे'। 'जेइं रे सुना सो आगें हारे'।
राइ भाट कहिं 'पठए' 'महर करहु अब' काउ।
एक एक 'सहुं झूझइं' दूसर 'नियर' न आउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८९, बी० ३७५-३७७।

शीर्षक—मैं : हैबत खुरदन रूपचंद व फ़रिस्तादने भट।

पाठान्तर—(१) १. बी० देषि राय। (२) १. बी० जौ रु। २. बी० चलावैहि। ३. बी० जाहिहैं। ४. बी० दीजै। (३) १. बी० वोछै दर महि पाछै आये। २. बी० पूर अनी यहि जान न जाये। (४) १. बी० पूर (बूड़ि—फ़ा०)। २. बी० वोछै सौ। (५) १. बी० परै न पारै। २. बी० जिहि सुना सु येको नहि हारै। (६) १. बी० पठवा। २. बी० कहहु महर अस। (७) १. बी० सौं जूझै। २. बी० नेर।

अर्थ—(१) राजा [रूपचन्द] ने देखा कि चारों ओर से [महर का] दल आ रहा था, वह दल अचल हो रहा था तथा चलाने (हटाने) से चलता (हटता) [भी] नहीं था। (२) [वह सोचने लगा,] यदि वे चलाए गए तो हम [भाग कर] कहा जाएँगे और अब वहां (अपने यहां) क्या उत्तर देंगे? (३) [अपने से] तुच्छ दल से आकर हम भिड़ गए और [उसकी] पौरी पर आकर अब [वापस] जाया नही जा रहा है। (४) देश और मंडल में हमें लज्जा लग गई; जो ओछे से [परास्त होकर] भाग निकलता है, वह डूब कर ही शीतल होता है (शांति लाभ करता है)। (५) किसी से हम मत न कर सके, और जिन्हें भी मैंने सुना है, वे आगे हार [ही] चुके है।" (६) राजा [रूपचन्द] ने [अपने] भाट को यह [कहने को] कह कर भेजा, "हे महर, अब क्या करोगे? (७) [यदि स्वीकार हो तो] एक-एक योद्धा एक-से ही झूझे और दूसरा नर (योद्धा) उनके निकट न आए (जाए)।"

(१२२)

बहुरे भाट दिवाए पानां। महर बोलु राजा 'कर' मानां।
'बांठु' झुझारु फेरी(रि) 'लइ' आवा। 'पाछे परे तिन्ह झगर बसावा'।
सींह 'सिंगार' बीर 'दुइ' आए। राय मया करि पान दिवाए।
ओडन सींह 'झकोरि ऊतरा'। 'हिलतहिं' खरगु खिसि धरती परा।
'चढ़त अनीं कुसगुन' अस 'भए'। 'सींह सिंगार लौटि रन' 'गए'।

सीह लाग 'रन बरिसइ' 'कांपि त' 'उठइ पतार'।
सुनहां 'भयो चेर कं(कुं)वरू कर' 'काटेसि खेदि' सियार॥

सन्दर्भ—मैं० ६०, बी० ३७८-३८०।

शीर्षक—मैं० : बाज़ गश्तने भट व जंग करदने सींह व गुश्तः शुदन ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० का। (२) बी० बीरु। २. बी० लै। ३. बी० पाछे सरहि न जिन्ह का पावा। (३) १. बी० सिगा। २. बी दोइ। (४) १. बी० झकोरा तरा (झकोरि उतरा—फ़ा०)। २. बी० हाथि। (५) १. बी० चरत अनी कुसुगुन। २. मैं० भएऊ। ३. बी० सीगार रूपि रिन। ४. बी० गये। (६) १. बी० रिन रासै। २. बी० कांपत (कांपि त—फ़ा०)। ३. बी० उठै न पार (पतार—फ़ा०)। (७) १. मैं० भएउ चर कुवरू। २. बी० काटसि देखि।

अर्थ—(१) पान दिलाए जाने पर भाट वापस गए, क्योंकि महर ने राजा [रूपचंद] के वचनों को मान लिया था। (२) [अब] योद्धाओं को बांठ फिरा कर ले आया और जो [सैनिक] पीछे जा पड़े थे, उन्हें उसने झगड़े (युद्ध) में ला बसाया (स्थित किया)। (३) सींह और सिंगार [नाम के] दो बीर आए और राजा [रूपचंद] ने उन्हें मया (ममता) कर पान के बीड़े दिलाए। (४) ओडन को झकोले देकर सींह [युद्ध में] उतरा किन्तु उसका खड्ग [युद्ध में] हिलते ही (प्रविष्ट होते ही) धरती पर गिर पड़ा। (५) सेना के चढ़ाई करते ही ऐसा अपशकुन हुआ, इसलिए सींह और सिगार [एक बार] लौट कर युद्ध में गए। (६) रण-क्षेत्र में जब सींह बरसने (शस्त्रास्त्र चलाने) लगा तब पाताल भी कांप उठा। (७) किन्तु वहां [उसके लिए] कुंवरू का चेर (पुत्र) श्वान हुआ, जिसने उस स्यार को खदेड़ कर काटा।

(१२३)

देखि 'सिंगार' कोह 'परजरा'। बांधि फरहरा 'आगें' सरा।
दौरि 'किहेसि' सिर 'खांडइ' घाऊ। टाटर टूटि 'काढ़ि' गा पाऊ।
दूसर खांड 'लिहेसि' पटतारी। फरी फाट धर 'गएउ' उबारी।
'दापि' सिंगार चेर तस मारा। 'बिचला' खांड टूटि गइ धारा।
पुनि 'जमदाढ़' 'पानि' कर गही। बजर चोट सिर 'चेरइं' सही।
'बिनु' हथियार भा 'राउत' परि गा 'थाकि' सिंगार।
एक चोट 'दुइ कीतिसि' धर 'सेउं' फाट कपार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६१ बी० ३८१-३८३।

शीर्षक—मै० जंग करदन सिंगार बा बांठा व गुश्तः शुदने सिंगार।

पाठान्तर—(१) १. बी० सिगा। २. मै० परचरा। ३. बी० आगै। (२) १. बी० दिहेसि। २. बी० षाडै। ३. बी० गाडि। (३) १. बी० लिहसि। २. बी० गयो। (४) १. बी० दाबि। २. बी० बिचरा। (५) १. मै० जमधर। २. बी० सपानि। ३. बी० चेरें। (६) १. बी० बिन। २. बी० रावत। ३ बी० थाक (थाकि—फ़ा०)। (७) १. बी० दोइ कीन्हसि। २. बी० स्यौ।

अर्थ—(१) यह देखकर सिंगार क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और फरहरा (पताका) बांध कर आगे बढ़ा। (२) उसने दौड़ कर [कुंवरू के चेर—पुत्र के] सिर पर खांडे का घाव किया, जिससे [उसका] टाटर टूट गया और वह [घाव] उस का पाउअ (वस्त्र) निकाल गया। (३) दूसरा खड्ग उसने जाच-भाल कर लिया; [इस बार के आधात से कुंवरू के चेर—पुत्र की] फरी फट गई यद्यपि धड़ उबर (बच) गया। (४) अब सिंगार ने दर्प में आकर [कुवरू के] चेर (पुत्र) पर [पुनः] आघात किया, किन्तु उसका खाडा विचलित हो गया और उसकी धार टूट गई। (५) तदनंतर उसने हाथ मे जमदाढ़ (यमदंष्ट्रा) ग्रहण की और [उस की] बज्र (फौलाद) की चोट [कुवरू के] चेर (पुत्र) ने सहन की। (६) किन्तु जब वह बिना हथियारो का हो गया, वह राजपुत्र सिंगार थक कर गिर पड़ा। (७) [विपक्षी की] एक चोट ने उसके दो [टुकड़े] कर डाले और धड़ के साथ उसका कपाल फट गया।

(१२४)

'बरम' दास धरमूं 'दुइ' आए। राइ 'मया करि' पान दिवाए।
आजु 'सो' दिनु 'जा कहं पतिपारे'। 'गाउं ठाउं' कापर 'मइं' सारे।

ओडन चंवर लाग घूघरा। बरमदास 'पउ' 'आगें' धरा।
छाडि फरी धन(नु)हर कर गहा। बान 'फुंक (पुंख)' धरि 'चेरइ' रहा।।
बरमदास तुम्ह 'नियर न आवहु'। कौने लाभ कहुं जीउ 'गंवावहु'।
बरमदास मन कोपा काटि 'मूंड' 'लइ' जाउं।
'बिछुटा पान निकरि गा बरमदास पर ठाउं'।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६२, बी० ३८४-३८६।

शीर्षक—मैं० : आमदने बरमदास व धरमूं अज़ तरफ़े राव रूपचंद व गुश्त: शुदने बरमदास।

पाठान्तर—(१) १. मैं० ब्रह्म। २. बी० दोइ। ३. बी० बिचारे। (२) १. बी० सु। २. बी० जाकौ प्रतिपारे। ३. बी० गाव ठाव। ४. बी० मैं। (३) १. बी० पगु। २. बी० आगैं। (४) १. मैं० धानुक। २. बी० भुवंग। ३. बी० चेरैं। (५) १. बी० नेर न आयुहु। २. बी० गवायहु। (६) १. बी० माथ। २. बी० लै। (७) १. बी० निछुटा बान बिरथ गा परा न छडिसि ठाऊ।

अर्थ—(१) [तदनंतर] ब्रह्मदास और धरमूं—ये दो [योद्धा] आए, राय [रूपचंद] ने इन्हें मया (ममता) करके पान [के बीड़े] दिलाए। (२) [राजा ने कहा,] "आज वह दिन है जिसके लिए तुम प्रतिपाले गए थे, जिसके लिए तुम्हें गाव, स्थान और कपड़े मैंने दिए थे।" (३) [यह कहकर] घूंघर लगे हुए ओडन और चामर उसने ब्रह्मदास के पैरों के आगे रख दिए। (४) [ब्रह्मदास ने] फरी छोड़ कर हाथ में धनुष पकड़ा तो [कुवरू के] चेर (पुत्र) ने बाण (शर) पर पुंख (अग्रभाग) रक्खा। [उसने कहा,] "ब्रह्मदास, तुम निकट न आओ। किस लाभ के लिए तुम अपने प्राण गवां रहे हो ?" (६) ब्रह्मदास [यह सुनकर] मन में कुपित हुआ [और उसने कहा,] "मैं [तुम्हारा] सिर काट कर ले जाऊंगा।" (७) [तब तक उस चेर (पुत्र) बाण] छूट पड़ा, उसके प्राण निकल गए और ब्रह्मदास उसी स्थान पर गिर पड़ा।

(१२५)

फुनि धरमूं 'गुन' मेलिसि तानी। 'नांध टूट अउ' पनच गंवानी।
'जौ ले(ल)हि चेर संभरे भाली। 'तौ लहि' धरमूं 'चांपइ' 'घाली'।
'धरमूं कोपि पीठि लइ फिरइ'। 'चेरइ कर धरमूं के घरइ'।

'गा' परान धरमूं घर 'पार(रे)सि' । काढि कटार 'हिएं' महिं मारेसि ।
'देइ पाउ तोरेसि भुअडंडा' । 'काटेसि' 'चेरु' 'सुनेसि' नव खंडा ।
'रनमल पइठ खरग लइ' मारेसि कुंवरू क पूत ।
'रहइ' न टेका 'नर पइ' 'जूझ राइ' जम जूत ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९३, बी० ३८७-३८९ ।

शीर्षक—मै० : जंग करदन धरमूं व गुश्तः शुदन धरमूं ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौ (गुन—फ़ा०) । २. बी० नाह टूटि औ । (२) १. मै० चला बजाइ भेरि औ तूरा (तुल०—अगले कडवक के (२)।१ से) । २. बी० तौ लेहि । ३. बी० चांपा । ४. मै० वाला । (३) १. बी० कवरू क पूत बैठि (पीठि—फ़ा०) लै फरी । २. बी० मिलताह करि धरमू की धरी । (४) १. बी० गए । २. मै० मारेसि (पारेसि—नागरी) । ३. बी० कठ । (५) १. बी० दोउ पाव तोरसि भुव दंडा । २. बी० कांटा । ३. बी० किया । (६) १. बी० रणमल हाथि फरी लै । २. बी० मारसि कंवरू का । (७) १. बी० रहे । २. बी० मरिये । ३. बी० ज्यो रु आये ।

अर्थ—(१) पुनः (तदनंतर) धरमूं ने [धनुष की] डोरी तान (खींच) कर लगाई, किंतु उसका नांध (बंद) टूट गया और उसकी प्रत्यंचा जाती रही । (२) किन्तु जब तक [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने भाला संभाला, तब तक धरमूं ने धनुष में [प्रत्यंचा को] डाल लिया । (३) जब धरमूं कुपित होकर उसकी पीठ पर घूम पड़ा, तो [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने धरमूं के हाथ पकड लिए । (४) जब उसने धरमूं को धरा पर गिरा दिया, उसके प्राण निकल गए, तदनंतर उसने कटार निकाल कर उसके हृदय में घुसा दी । (५) पैरों को देकर [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने उसके भुजदंडों को तोड़ डाला, और [फिर] उन्हें काट डाला । इसे नवखंड [पृथ्वी] ने सुना । (६) तब रणमल खड्ग ले कर रण में प्रविष्ट हुआ, और उसने कुंवरू के पुत्र (चेर) को मारा । (७) किन्तु वह योद्धा [युद्ध करने से] रोका न जा सका, और वह यमराज का युक्त (जोड़) जूझ गया ।

(१२६)

'रनपति' 'महर' दीन्ह 'अगुसारी' । 'चाह वियाहि आनइं' कुंवारी ।
चला बजाइ भेरि अउ 'तूरा' । खरग मूंठि 'भरि लिहेसि सेंधउरा' ।
दौरि खांड 'रनमल' सिर दीन्हां । रकत धार 'सभ' सेंदुर कीन्हा ।

'रनमल' परत सिरीचंदु 'आवा' । 'रनपति' पाखर घालि गंजावा ।
अजैराज 'सींगिनि' कर गही । 'मारेसि बेलकु' पाखर रही ।
छाड़ि सिरीचंदु पाखर भागा जिउ 'लइ गएउ' पराइ ।
राइ देखि बांठा 'कहु (कह)' तुम्हं 'किन जूझौ (झूझउ?)' जाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९४, बी० ३९०-३९२ ।

शीर्षक—मै० : ऐज़न कैफ़ियत जंग रनपति गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० रेवत । २. बी० महरि । ३. बी० यकतारी । ४ बी० जाइ बिवाहौ थैनि । (२) १. मै० तुरा (तूरा—नागरी) । २. बी० घसि जरे सिदूरा । (३) १. बी० रणमल । २. बी० सव । (४) १. बी० रणमल । २. बी० धावा । ३. बी० रैपति । (५) १. बी० सांगनि । २. बी० मारसि बेलुक । (६) १ बी० ले गया । (७) १. मै० में नहीं है, २. मै० कस झूझि न ।

अर्थ—(१) [यह देख कर] महर ने रणपति को आगे बढ़ाया, जो चाहता था कि व्याह कर [चांदा ?] कुमारी को ले जाए । (२) वह भेरी और तूर्य बजाकर चला, उसने खड्ग को मुट्ठी में कस कर पकड़ा [जैसे उसने हाथ में] सिन्दूर-पात्र लिया [हो] । (३) उसने दौड़ कर रणमल के सिर पर खड्ग का आघात किया और रक्त की धारा से उसके सब (कवच-वस्त्रादि) को सिन्दूर [-पूरित जैसा] कर दिया । (४) रणमल के गिरते ही श्रीचंद आया, तो रणपति ने [उसके] पाखर पर आघात कर उस गंजित किया । (५) [तब] अभयराज ने हाथ में सिंगिनी पकड़ी. और उससे उसने मारा (आघात किया), किन्तु उसकी वेलक पाखर में ही [लग कर] रह गई । (६) श्रीचंद पाखर को छोड़ कर भाग निकला और अपना जीव लेकर पलायित हो गया । (७) राजा [रूपचंद] ने यह देख कर बांठ से कहा, ["ऐ बांठ,] तुम क्यों नहीं जाकर युद्ध करते हो ?"

(१२७)

बीरपालु गिरपति 'लइ आवउं' । 'भुजबीर हमीर सींगन बुलावउ' ।
करमदास 'सतराज' दिवानंद । 'बिजैसेन' महिराज बिजैचंद ।
गनपति द्यौसू (दिवसू)' निकरू नागू । 'हिरदैं घबरू सरदेव जागू' ।
देवराज 'हरराज' सरूपा । अजै सिंघु हरिपार 'निरूपा' ।
'धीरधर' हरखू गनपति 'आनउं' । 'सीउराज मदनू भल जानउ' ।

तीस पखरिया 'आनउं' 'सभु' दरु 'मारउं' आजु।
'हाथि घोर' धन चांदा 'लीजइ' गोबर 'कीजइ' राजु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६५, बी० ३६३-३६५।

शीर्षक—मैं० आमदने बांठा बा फ़ौज ख़ुद दर मैदाने जंग।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै आऊ। २. बी० भोजर सुगनु हमीर बुलाऊ। (२) १. बी० दिवराज। २. बी० विजय सेन। ३. मैं० अउ महिराज। (३) १. मैं० देसू। २. बी० सहदे परगू औ फुनि गाजू। (४) १. बी० महिराज। २. बी० नरूपा। (५) १. बी० धीरू। २. बी० आनू। ३. बी० स्योराज मनू औवलू सुजानू। (६) १. बी० आने। २. बी० सबु। ३. बी० मारौं। (७) १. बी० हस्ती घर। २. बी० लीजै। ३. बी० कीजै।

अर्थ—(१) [बांठा ने कहा,] "मैं बीरपाल और गिरपति को ला रहा हूं, भुजवीर, हमीर तथा सींगन को बुला रहा हूं; (२) करमदास, सतराज, देवानंद, विजयसेन, महिराज, विजयचंद, (३) गनपति, निकरू, देवसेन, नागू, हिरदै, घवरू, सरदेव, जागू, (४) देवराज, हरराज, सरूपा, अजयसिंह, हरपाल, निरूपा, (५) धीरधर, हरखू और गनपति को ला रहा हूं, मै शिवराज और मदन को भी भली भांति जानता हूं। (६) [इन] तीस पाखरित योद्धाओं को लाऊंगा, और समस्त [शत्रु-] दल को मार गिराऊंगा। (७) हाथी, घोड़े, धन तथा चांदा को आप लीजिए और गोबर पर राज्य कीजिए।

(१२८)

अनीं पूरि बांठा 'लइ' आवा। 'महर दीख अउ' लोरु बुलावा।
लोरिक बीर पखरिया 'पारहु'। 'भींव' 'डांगवइ तइस' 'हुंकारहु'।
पाच 'बैस पांच' चौहाना। खत्री पांच देस 'चहुं' जाना।
नाउ एक तीनइं 'सहनांनी'। पाखर 'नेक' रूड 'की बानी'।
'गहरवारा अउ रोड दसाने'। पाखर 'कूंडि तुला सेउं जाने'।
अनीं आइ 'दुइ' 'ओनई' 'जैसें अखाड के' मेह।
'लोह पहिरि' 'सभ' ठाढे तिल 'इक' सूझ न देह ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६६, बी० ३६६-३६८।

शीर्षक—फ़िरिस्तादने महर लोरिक बा मुक़ाबले बांठा।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै। २. बी० महरि देषि। (२) १. बी० पारौहु। २ मैं० भीय। ३ बी० डागव तीस (तइस—फ़ारसी)। ४. बी०

हकारहु। (३) १. बी० बैसि माझी। २. बी० वहु (चहुं—नागरी)। (४) १. मै० साहीने। २. बी० जैंऔ। ३. मै० केकीने। (५) १ बी० अगरवार औरा दरसाई। २. बी० लूड (कूंडि—फ़ारसी) तुलाने आई। (६) १. बी० दोय। २. बी० उनई। ३. बी० जस उघारि (असाढ़—फ़ारसी) गह। (७) १. बी० लो पर। २. मै० सब। ३. बी० यक।

अर्थ—(१) सेना पूरी कर बांठा लाया है, महर ने यह देखा और लोरिक को बुलाया। (२) [उससे कहा,] "ऐ पाखरिया लोरिक वीर, तुम्हीं [हमें बचा] सकते हो; भीम ने डंगवै के लिए [जैसे हुंकार (गर्जना) की थी], वैसे ही तुम भी मेरे लिए हुंकार (गर्जना) कर उठो। (३) पांच बैस हैं, पांच चौहान हैं, और खत्री पांच है, यह चारों [ओर] जगत् जानता है। (४) नाम एक है, केवल साभिज्ञान (रूप-रंग आदि) तीन हैं, [जैसे] एक ही रूड (?) की वर्णिका के अनेक पाखर किए हुए हों। (५) गहरवार, रोड तथा दसाने पाखर, कूंडि और तुला के साथ तुम्हारे जाने हुए हैं। (६) दोनों सेनाएं आ कर अवनमित हो गई हैं, जैसे आषाढ़ के मेघ होते हैं। (७) [सैनिक] इस प्रकार लौह-मंडित खड़े हैं कि तिल भर भी [किसी का] शरीर नहीं दिखाई पड़ रहा है।"

(१२९)

उभरे खरग 'कुंत तरवारी'। 'घरी एक लहि होइ रन मारी'।
'टूटहिं' रुंड मुंड धर 'परहीं'। जिय 'कर' लोभु न चित महिं 'धरहीं'।
'खरग' 'डंडाहर बाजहिं' तारा। 'भई' फाग दर 'भा' रतनारा।
'जस फागुन' 'फूलहि बन' टेसू। 'तस रन रगत' 'रात भए भेसू'।
बाजहिं भेरि 'सींग अउ' तूरा। दर भा चाचर रगत सिंदूरा।
'परे पखरिया चहुं दिसि' कंठ राज सरु लाग।
महर बीर कछु उबरे बांठा जिउ 'लइ' भाग॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९७, बी० ३९९-४०१।

शीर्षक—मै०: सिफ़ते जंग करदने बांठा बा लोरिक व हज़ीमते खुरदने ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कंठ (कुंत—फ़ारसी) तरवारि। २. बी० खतरी येकि कुरैहि रिन मारि। (२) १. बी० टूटेहि। २. बी० परैहि। ३. बी० का। ४. बी० घरैहि। (३) १. मै० खरल। २. बी० डंडाहर बाजैहि ३ बी० मये ४ मै० रन (४) १ बी० जैसे वसत २ बी

वन फूलैह । ३. बी० तैसे रिनगर । ४. बी० रावैं भैंसू । (५) १. बी० सख अव । (६) १. बी० दोइ दर जूझत रावतह । (७) १. बी० लैं ।

अर्थ—(१) खड्ग, कुंत (बर्छे) और तलवारें उभड़ (उठ) पड़े और एक घड़ी तक रण-क्षेत्र में मार होती रही। (२) रुंड (धड़) टूटने तथा मुड धरा पर गिरने लगे, [सैनिक] जीव का मोह चित्त में नहीं रख रहे थे। (३) खड्गों के भारी दंड तथा ताल वज रहे थे, [दोनों] दलों में फाग [सी] हुई थी और रण [-क्षेत्र] लाल हो रहा था। (४) जैसे फाल्गुन में वन मे किशुक फूलते हैं, वैसे ही रण [-क्षेत्र] मे [योद्धाओं के] वेष रक्त से लाल हो रहे थे। (५) भेरियां, सिंगे और तूर्य वज रहे थे, दोनो दलों में [जैसे] चाचर हुई थी और वे रक्त से सिन्दूरित हो रहे थे। (६) पाखरे हुए सैनिक चारो ओर पड़े हुए थे [जब] राजा [रूपचंद] के कंठ में [लोरिक का ?] शर लगा। (७) महर के ही कुछ वीर बच रहे थे, और बांठा जीव लेकर रण-क्षेत्र से भाग गया था।

(१३०)

'राइ' कहा बांठा कस 'कीजइ'। सभ दरु चांपि नगर 'किन' लीजइ।
'जउ तहं राइ आपुन पंछवाइय'। चांद 'सईहि झूझेहि' बिन 'पाइय'।
'भर लइ खांड आए तस जोरी। देखहि देव तैंतिसउ कोरी'।
'पैकहि पैकहि भएउ' अभेरा। चला भाजि राजा' कर 'खेरा'।
'चादा कारन झूझ बनि आई (आवा)'। रावतहं रगत 'भएउ पैरावा'।
'लेइ' पखरिया 'राजा' 'सिमटा' 'सुनहु बांठ' कस कीज।
'कइ चांदा लइ' 'जाइय राजा' 'कै(कइ) गोवरि' 'सिरु' दीज ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६८, बी० ४०२-४०४।

शीर्षक—मैं०: मशावरत करदने राव रूपचंद बा बांठा।

पाठान्तर—(१) १. बी० राय। २ बी० कीजै। ३. बी० को। (२) १. बी० जै न राय आपुन मंडि आये। २. बी० कमी तु जूझ। ३. बी० पाये। (३) १. बी० में पंक्ति छूटी हुई है। (४) १. बी० बीखन बीखन (पैकहि पैकहि—फ़ारसी) भयो। २. बी० गढु केरा। (५) १. बी० अरथाह जैति लई चलि आवा। २. बी० भयो परावा। (६) १. मैं० लेइ जउ। २ मैं० में नहीं है। ३. बी० समटौ। ४. बी० सुनु बाठा। (७) १. बी० कै रु चाद लै। २ बी० जाइये ३ मैं० कै गोवरा। ४ मैं० जिउ।

अर्थ—(१) राजा [रूपचंद] ने कहा, "बांठा [अब] कैसे किया जाए। [एकौझा युद्ध त्याग कर और] समस्त सेना को [युद्ध में] धकेल कर नगर को क्यों न ले लिया जाए ?" (२) [बांठा ने कहा,] "यदि हे राजा, आप [अपने को सेना के] पीछे रखिए, तो आप चांदा को अपने-आप बिना युद्ध किए पा जाइएगा।" (३) भट खड्ग लेकर इस प्रकार जुड़ आए कि तैंतीसों कोटि देवता [उन्हें] देखने लगे। (४) पायक (पदाति) से पायक (पदाति) की भिडंत हुई और राजा [रूपचंद] का खेड़ा (दल) भाग चला। (५) [राजा ने कहा,] "चांदा के लिए ऐसा युद्ध बन आया है कि वहाँ पर रावतों के रक्त का तैराव हो गया है। (६) जो पाखरित योद्धा थे, वे जीव (प्राण) लेकर सिमट आए हैं; हे बांठ, [अब] कैसे किया जाए ?" (७) [बांठ ने उत्तर दिया,] "अब, ऐ राजा, या तो चांदा को ले जाइएगा और या तो गोबर में प्राण दीजिएगा।"

(१३१)

राइ पखरिया 'सौ' मोहि देहू। औ सै तीनि चारि तुम्हं लेहू।
'लइ अभिरउं हउ राउत' जहां। 'पाछें मोरि न छाडहुं तहां।
चला महरु 'गहें रई' मथानी। 'बांठइं पटुवइं तोहि केइं' आनी।
दरु 'लइ' बांठा तेहिं 'भुइं गएऊ'। जहां 'अभेरु' महर 'सेउं अहेऊ'।
दूध पियावत 'भरहिं' न कोई। 'अस कै' मंथे 'गाल कित' होई।
परे पखरिया 'नौ दस' बहुल पाइं होइ भाग।
महर सनाहु टूटिगा 'अउ(उं)छि' खांड बर लाग॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६६, बी० ४०५-४०७।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादन बांठा बर राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० सो। (२) १. बी० उभरौ हौं रावत। २. बी० पाछौ। भोर न छाडौं। (३) १. बी० कै परी। २. बी० बाठै नबी कौन कौहु (४) १. बी० लै। २. बी० तहा भी गयो। ३. बी० अभीरु (अभेरु—फारसी)। ४. बी० स्यौं भयो। (५) १. बी० बहु। २. बी० अति कै मथै। ३. बी० काकतू। (६) १. बी० नव दसैं। (७) १. बी० बोछ।

अर्थ—[बांठ ने कहा,] "हे राजा, मुझे सौ पाखरित योद्धा दो, और तीन-चार सौ तुम [साथ रख] लो; (२) उन्हें लेकर मैं वहाँ भिड़ रहा हूँ जहाँ पर [शत्रु-पक्ष के] रावत हैं उन्हें मैं पीछे मोड़ कर भी छोड़ूँगा नहीं।

(३) [तदनंतर बांठा ने महर के पास पहुँच कर कहा,] "ऐ महर, तू [भी] रई-मथानी लेकर चल पड़ा है!" [उसने उत्तर दिया,] "ऐ बांठ बुनकर, तुझे कौन [नासमझ] ले आया ?" (४) दल लेकर [तदनंतर] बांठ उस भूमि मे गया जहाँ महर से भिड़ंत [होनी] थी। (५) उसने [महर से] कहा, "भटो को कोई दूध नहीं पिलाता है; इस प्रकार के मथने से कहाँ तक बात होगी (बनेगी) ?" (६) नौ-दस पाखरित योद्धा वहाँ धराशायी हुए, और बहुतेरे पैदल हो कर भाग निकले। (७) महर का सन्नाह टूट गया [जब बांठ ने प्रहार किया], किन्तु [बांठ की] तलवार सिमट कर धरा से जा लगी।

(१३२)

पलटा लोरु 'सिघ' 'जस' गाजा। 'पहिल खांड राजा' सिरि बाजा।
खरग 'तारि लोरिक कइ बाजी'। पाखर काटि राउ 'गा भाजी'।
बिजली अनी 'धरेसि' महिराजू। 'मारेसि' सिरीचंद अउ 'भुइंराजू'।
बीरराज 'मारेसि ऊभरी'। बजर आगि 'खांडइ' परजरी।
मारि सींगनि 'नइ' रगत बहाई। खरग झार 'लोहुइं' न बुझाई।
'आगे' देइ 'लिहेसि' दरु आपनु हाकि चलाए 'तस टांड'।
'लौटा' बांठु लोर 'सों [सोउ ?]' 'उभारेसि' खांड॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १००, बी० ४०८-४१०।

शीर्षक—मैं० : जंग करदने लोरिक बा राव व हज़ीमत ख़ुरदने राव।

पाठान्तर—(१) १. मैं० सिग। २. बी० कैसैं। ३. बी० पहली षांड राउ। (२) १. बी० तार लोरिक के बाजे (तारि लोरिक कै बाजी—फ़ा०)। २ बी० गया भाजे (भाजी—फ़ा०)। (३) १. बी० धरसि। २. बी० मरि। ३ बी० भौराजू। (४) १. बी० मारसि औ फरी। २. बी० षा। (५) १. बी० नैं। २ बी० लोहू। (६) १. बी० आगैं। २. बी० लहसि। ३. बी० जैसैं डांड। (७) १. बी० लवटा। २. बी० सोन, मैं० में शब्द नही है। ३. बी० उभारसि।

अर्थ—(१) [तब तक] लोरिक लौट पड़ा और उसने सिंह के समान गर्जन किया और राजा [रूपचंद] के सिर पर [उसका] पहला खड्ग बजा। (२) लोरिक का तीक्ष्ण खड्ग जब इस प्रकार बजा, उसने [रूपचंद] का पाखर काट दिया और राजा भाग गया। (३) [राजा की] सेना विचलित हो गई, [तब] उसने महाराज को पकड़ा और श्रीचद तथा भुइंराज को

मारा। (४) [पुन: जब] उसने उभड़ कर वीरराज को मारा, खड्ग से वज्र (फौलाद) की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। (५) उसने सिंगिनी मार-मार (चला-चला) कर रक्त की नदी बहा दी; [उसके] खड्ग की ज्वाला लहू से नहीं बुझ रही थी। (६) आगे करने के लिए उसने अपने दल को लिया और उसे टांडे (सार्थ) के समान हांक कर [युद्ध के लिए] चलाया। (७) [यह देख कर] बांठा लौट पड़ा और लोर से [लड़ने के लिए] उसने भी खाडा उठा लिया।

(१३३)

'उभरा' बांठु 'लोरिक तस' मारा। 'राघव सुर नर दिए' उबारा।
दूसर खांड 'जउ बइठ' 'सनाहां'। 'पहुंचिउ टूटि उतरि' गई बाहां।
उठा लोर सींगिनि कर गही। 'मारेसि' 'बेलक' पाखर रही।
'अभिरे' बीर 'दुवउ' बरिवंडा। 'अगिनि बरी' बरु बाजत खंडा।
'करह संजोइ' बांठु खिसि परा। हिएं पाउ 'दइ' लोरिक धरा।
'धरेसि तारि' तरवारि कंठ 'महि' काटि चला 'लइ' मुड।
भाजि चला 'दर' राउ रूपचंदु देखि परा धर 'रुंड'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०१, बी० ४११-४१३।

शीर्षक—मैं० : उफ़्तादने बांठा दर मैदान व हज़ीमत ख़ुरदने राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. मैं० उभर। २. बी० लोरु तसैं। ३. बी० परा घोर नरु दई। (२) १. बी० जौ वैठ। २. बी० बहजू टूटि उवरि। (३) १. बी० मारसि। २. बी० बेलुक (४) १. बी० उभरे। २. बी० दोऊ। ३. बी० आगि परी। (५) १. बी० करि संजोउ। २. बी० लोरिक दे। (६) १. बी० देहिसि ता। २. मैं० हति। ३. बी० ये। (७) १. बी० तव। २. बी० मुंड (प्रथम चरण में भी तुक यही है)।

अर्थ—(१) जैसे ही बांठ उभड़ा (उठा), लोरिक ने उसे वैसे ही मार दिया, मानो राघव ने [रावण को मार कर] सुर-नर को उससे बचाया हो (त्राण दिया हो)। (२) उसका दूसरा खड्ग जब [उसके] सन्नाह पर बैठा, उसकी पहुँची टूट गई और उसकी [एक] बाँह उतर गई (जाती रही)। (३) लोरिक उठा और उसने हाथ में सिंगिनी पकड़ी; किन्तु उसने जो बेलक मारी, वह उसके पार में ही रह गई। (४) दोनों बलवान् वीर परस्पर भिड़ गए और [दोनों के] खड्गों के बजने से आग जल उठी। (५) [इस

प्रकार] युद्ध का संयोजन कर बांठ गिर पड़ा तो उसके हृदय पर पैर रखकर लोरिक ने उसे धर दबाया। (६) उसने तीक्ष्ण तलवार उसके कंठ में (पर) रक्खी और उसका मुंड काट कर वह ले चला। (७) राजा रूपचंद का दल भाग निकला जब उसने धरा पर [बांठ का] रुंड (धड़) पड़ा हुआ देखा।

(१३४)

लोरिक कहा जान जिनि 'पावहिं'। 'तस मारउं जस बहुरि न आवहिं'।
मारियंहि पाइक 'लीजहिं' फरी। रावतहं रगत पूरि नइ भरी।
मारि महावत हाथी धरे। 'धरियहिं' ठाढ घोर पाखरे।
बहुतें बीर जियत धरि आनें। बहुते 'जिउ लइ' निसरि पराने।
मारत खरग मूंठि 'असि' लागी। परी सांझ राजा 'गा' भागी।
'मरेंहि' न 'सूझइ' धरती रगत 'भएउ' पैराउ।
चला गंवाइ राउ दरु 'आपनु' बहुरि न 'आवइ' काउ॥

सन्दर्भ—मै० १०२, बी० ४१४-४१६।

शीर्षक—मै : दुम्बाल करदने लोरिक अज़ लश्करे राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० पावसि। २. बी० तैंसै मरौहु जैसैं बहुरि न आयसि। (२) १. बी० लीजैहि। (३) १. बी० धरियेहि। (४) १. बी० जिय ले। (५) १. बी० कैं। २. बी० गया। (६) १. बी० महरि। २. बी० सूझै। ३. बी० भयो। (७) १. बी० आपुनु। २. बी० आवै।

अर्थ—(१) लोरिक ने कहा, "ये जाने न पाएँ, मैं इन्हें ऐसा मारूंगा कि ये पुनः न आएंगे।" (२) [विपक्ष के योद्धाओं को महर-पक्ष के] पदाति फरी लेकर मारने लगे, तो रावतों के रक्त से पूरित हो कर नदी भर गई। (३) उन्होंने महावतों को मार कर हाथियों को पकड़ लिया और पाखरित घोड़ों को खड़े हुए पकड लिया। (४) बहुत से वीरों को वे जीवित ही पकड लाए, [किन्तु] बहुतेरे प्राण लेकर भाग निकले। (५) खड्ग मारते समय [लोरिक की] तलवार [राजा की] मूंठ पर लगी क्योंकि संध्या आ पड़ी थी [और इसलिए सूझ कम रहा था], राजा रूपचंद भाग निकला। (६) मृतों से [ढकने के कारण] धरती नहीं सूझ रही थी और रक्त [इतना इकट्ठा हो गया था कि उस] में तैराव हो गया था। (७) राजा [रूपचंद] अपना दल [इस प्रकार] गंवा चला, [और उसने सोच लिया कि] वह पुनः कभी न आता।

९. चांदा-लोर प्रथम दर्शन खण्ड

(१३५)

'रनु' 'जिनि' 'गोवर' महरु सिधारा। लोरिकु खतरी बीरु हंकारा।
'दइ कइ' पान महर 'गियं' लावा। 'अउ' गज मैंमति आनि 'चढावा'।
'चंवर धारि' 'दुइ चंवर डुलावहिं'। 'अउ राउत आगें भए' आवहि।
'ऊपरि राति पिछउरी' तानी। 'चढ़ी (ढ़ि)' धौराहरि 'देखहिं' रानी।
चलि गोवरु 'सभु' 'देखइ' आवा। 'रन' लोरिक 'खांडइं' जसु पावा।
मुनिवर देहिं 'असीसा' 'गोवर होइ' बधाउ।
धनु 'धनु' बीर 'भुवाह' बर पूजा लोगु 'चढ़ाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०३, बी० ४१७-४१६।

शीर्षक—मै० : बाज़ गश्तन महर बा फ़तह् व नवाख़्तने लोरिक राव बर फ़ील सवार करदन व दीदने खल्क़हा।

पाठान्तर—(१) १. बी० रिनु। २. मै० जीति। ३. बी० गोवरु। (२) १. बी० दे कैं। २. बी० गैं (गियं—फ़ा०) ३. बी० औ। ४. बी० चरावा। (३) १. बी० चौर ढार। २. बी० दोइ चौर ढुरावहि। ३. बी० औ रावत सभि आगै। (४) १. बी० उपर रात पछौरी। २. बी० चरि। ३. मै० देखइ। (५) १. मै० सव। २. बी० देषन। ३. बी० रिन। ४. बी० षांडै। (६) १. बी० असीस। २. बी० गोवर होउ, मै० गोवरा होइ। (७) १. बी० धन। २. मै० भुवा। ३. बी० चराउ।

अर्थ—(१) युद्ध जीतकर महर गोवर गया, और क्षत्रिय (योद्धा) वीर लोरिक को उसने बुलाया। (२) पान देकर उसे महर ने गले लगाया, और मदमत्त गज लाकर [उस पर] चढ़ाया। (३) दो चामर-धारी चामर डुला रहे थे, और रावत आगे-आगे [चलते] हुए आ रहे थे। (४) ऊपर लाल चादर (चांदनी) तनी हुई थी। रानियाँ धवल-गृहों (प्रासादों) पर चढी हुई [उसे] देख रही थी। (५) गोवर का समस्त जन-समुदाय चल कर उसे देखने आया था, [क्योंकि] रण में लोरिक के खांडे ने यश प्राप्त किया था। (६) मुनिवर आशीर्वाद दे रहे थे और गोवर में बधावा हो रहा था। (७) "लोरिक वीर की भुजाओं का बल धन्य है, धन्य है," कह कर लोग उन पर पूजा (चढावा) चढ़ा रहे थे।

(१३६)

चाद 'धौराहर ऊपरि' गई। चेरि बिरसपति 'गोहनि' लई।
परी सांझ जगि भा अंधियारा। चांद मंदिर 'चढ़ि किय' उजियारा।
सो कस आहि 'जेइं' गोवरु उबारा। 'कवनु बीरु जेंहि कटकु 'संघारा'।
'कवनु सिंघु जेंहि' गैंवरु हनां। धनु 'सो जननि अइस जेइं' जनां।
'पूछे(छ)उं' धाइ बचनु सुनि मोरा। एहिं दरि 'कवनु सो' कूंकूं लोरा।
'कवनु' रूपु 'कहं' मंदिर 'आछै (छइ)' 'आखउं' बिरसपति तोहि।
'साधि मरति हउं बीरनि' लोरु 'दिखावहि' मोहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०४, बी० ४२०-४२२।

शीर्षक—मैं० : आमदने चांदा बर बालाए क़स्र व दीदन तमाशा लोरिक व बुरदने बिरस्पति रा बा खुद।

बी० में हाशिए में किसी अन्य हाथ का लिखा हुआ है : चांदा लेरीक दीठ······(अपाठ्य)।

पाठान्तर—(१) बी० धौरहर उपर। २. बी० गौहनि। (२) १. बी० चिर कैं। (३) १. बी० जु। २. बी० कौनु वीरु जैं। ३. बी० फु (?) सधारा। (४) १. बी० कौनु सिघु जैं। २. बी० सु जननी जिनि वोहु। (५) १. बी० पूछै। २. बी० कौनु सु। (६) १. बी० कौनु। २. बी० किह। ३ मैं० में नहीं है। ४. बी० कहौ। (७) १. बी० साध मरत हौ बैरनि (बीरनि—फ़ा०)। २. बी० दिखावहु।

अर्थ—(१) चांदा [इस समय] धवल-गृह (प्रासाद) के ऊपर गई; साथ में उसने बृहस्पति [नाम की] दासी को ले लिया। (२) संध्या हुई और जगत् में अंधेरा हुआ, उस समय चांद (चांदा) ने उस मंदिर पर चढ़कर प्रकाश किया। (३) [बृहस्पति से उसने कहा,] "वह कैसा है जिसने गोवर को बचाया है और वह कौन-सा वीर है जिसने [शत्रु के] कटक का संहार किया है? (४) वह कौन-सा [पुरुष-] सिंह है जिसने उस गजेन्द्र को मारा है? वह जननी धन्य है जिसने ऐसा [पुरुष-सिंह] उत्पन्न किया है। (५) ऐ धाय, मेरी वात सुन, मैं [एक वात] पूछ रही हूं; इस दल में कूंकूं (कुंकुम) लोरिक कौन है? (६) वह किस रूप का है और कहां उसका मंदिर (भवन) है? तुझसे, ऐ बृहस्पति, मैं यह कह (पूछ) रही हूं। (७) मैं लोरिक की साध मे, ऐ बहिन मर रही हूं तू मुझे लोरिक को दिखा।"

(१३७)

'लोरहि' चांद 'सुरुज' कइ जोती। कुंडल सोवन 'दिपहिं' गजमोती।
'चंद्रु' 'लिलार' धरा 'जनु' लाई। चमंक 'बतीसी' अतिइ सोहाई।
'खोंपा' केस 'पीठि' 'लहराए'। लंक 'झीनि' 'हरि गही न जाए'।
नैन कचोरा 'दूधइं' भरे। जनु 'छपया तिन्ह' भीतरि 'धरे'।
कनक बरन झरकति 'हइ' देहा। मदन मुरति उडि 'लागि न' खेहा।
तानी 'राति पिछउरी' हस्ति 'चढा' दिखराउ।
करि सिर 'पाग' 'सलोनी' 'तिरिछ कटार सोहाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०५, का०, बी० ४२३-४२५।

शीर्षक—मै० : निशानी नमूदने बिरस्पति चांदा रा अज़ जमाल सूरते लोरिक।

का० : नमूदने बिरस्पति लोरिक रा वा चांद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिक। २. बी० सुरिज। ३. बी० दिपति। (२) १. बी० चंद्रु। २. का० लिलाट। ३. बी० जानौं। ४. का० बतीसिउ। (३) १. बी० खूंप। २. मै० लटकि। ३. बी० करि आये। ४. बी० झीन। ५. मै० कौनउ पचि माए, बी० हरि कहे (गही—फ़ा०) न जाये। (४) १. का० रूपइं, बी० मोत्योंहु। २. मैं० छतया तिन्ह, बी० सींप दोइ। ३. मैं० परे। (५) १. बी० है। २. बी० लागैं। (६) १. बी० राल पिछौरी। २. बी० चरा। (७) १. मै० मांग। २. बी० सलूनी। ३. बी० करेहि कटार सुहाव।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ चांदा, लोरिक की ज्योति सूर्य की है। [उसके कानों में] जो स्वर्ण-कुंडल हैं, उनमें गजमुक्ता चमकते हैं। (२) [उसके] ललाट पर मानो चंद्रमा लगा कर रक्खा हुआ है, और [उसकी] बत्तीसी (दंत-पंक्ति) भी चमक कर अत्यधिक शोभित होती है। (३) उसके खोंपे के केश पीठ पर लहराते रहते हैं, केसरी के सदृश उसकी कटि क्षीण है, जो पकड़ी नहीं जा सकती है। (४) उसके नेत्र दूध से भरे कच्चोलों के सदृश हैं, [जिनमें उसकी कनीनिकाएं ऐसी हैं] मानो उनके भीतर षट्पद (भ्रमर) रक्खे हुए हों। (५) [उसका] कंचन वर्ण का शरीर झलक रहा है, उसकी मदन मूर्ति को धूल उड़ कर नहीं लगी है। (६) [उसके आसन के ऊपर] लाल पिछौरी (चांदनी) तनी हुई है, और वह हाथी पर

चढ़ा हुआ दिखाई पड़ रहा है। (७) वह सिर पर सलोनी पाग करता है और उसकी तिर्यक् कटार शोभा दे रही है।

(१३८)

'चांदहि' लोरिकु निरखि निहारा। देखि बिमोही गई 'बेकरारा'।
नैन झुरहिं मुखु गा कुंबिलाई। अन न 'रूच' 'पानी न' सुहाई।
सुरिज सनेह चांद 'कुंबिलानी'। 'आइ बिरसपति छिरका' पानी।
घरु आंगनु सुखसेज न 'भावइ'। चांद उमाही सुरिजु 'बोलावइ'।
'पूनिउं चंद्र जइस' मुखु अहा। गई 'सो' जोति गहन 'होइ' रहा।
सहस करा 'सुरिज कइ' रही चांद 'चित' छाइ।
'सोरह' करा चांद 'कइ' 'भई अमावसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०६, बी० ४२६-४२८।

का० के प्राप्त अंशों में यह कड़वक नहीं है किन्तु पिछले छंद के नीचे उसमें इस छंद का तर्क 'चांदई' दिया हुआ है।

शीर्षक—मैं० : दीदने चांदा जमाल व कमाल लोरिक व बेहोश शुदने ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदेहि। २. बी० बिकारा। (२) १. बी० रूचै। २. मैं० अउ पानि। (३) १. मैं० कुंमिलानी। २. बी० बदनु चेरि छिरकहि लै पानी। (४) १. बी० भावै। २. बी० बुलावै। (५) १. बी० पून्यो चंद जैस। २. बी० स। ३. बी० खीन होय। (६) १. बी० सूरज की। २. बी० चितु। (७) १. बी० सोराह। २. बी० की। ३. बी० रही अमावस।

अर्थ—(१) चांदा ने लोरिक को निरीक्षण करके देखा, तो उसको देख कर वह विमुग्ध हो गई और बेचैन [हो] गई। (२) उसके नेत्र संतप्त हो रहे थे, उसका मुख कुंमला गया था, उसे अन्न नहीं रुच रहा था और [न] पानी अच्छा लग रहा था। (३) सूर्य (लोरिक) के स्नेह में चांद (चांदा) कुंमला गई; बृहस्पति ने [उसकी ऐसी दशा देखी तो] आ कर [उस पर] पानी छिड़का। (४) घर, आंगन तथा सुख-शैया उसे नहीं भा रहे थे, उमंग में आई हुई (अचेत) चाद (चांदा) सूर्य (लोरिक) को बुला रही थी। (५) उसका पूनों के चन्द्र जैसा मुख था, [किन्तु इस समय] उसकी वह ज्योति चली गई थी, और उसे ग्रहण [जैसा] हो रहा था। (६) सूर्य (लोरिक) की सहस्र कलाएं चांद (चांदा) के चित्त पर छा गई थीं, (७) [इसलिए]

चाद (चांदा) की षोडस कलाएं जा कर (परिवर्तित होकर) अमावास्या की हो गई थीं ।

(१३९)

'कहइ' बिरस्पति चांद संभारू । सुरिज लागि कस करसि 'खभारू' ।
हाथ 'पाउ' 'संभरसि' न बारी । 'बांधि केस ओढि लइ' सारी ।
'जउ' तोहि लागि सुरिज 'कै' झारा । 'कइ खंडवानि पियावउं' बारा ।
राज कुंवरि तूं कानि न करई । 'हउं सो धाइ' 'मोरि' लाज न 'धरई' ।
'आनउं पानि बइसि' मुख 'धोवहि' । 'उल्हरि' सेज सुख निंद्रा 'सोवहि' ।
'जो' चिति 'हइ' तुम्हं मनसा भोर 'कहउ' सो मोहि ।
'रइनि जाइ दिन उगवइ' 'उतर देब' मइं तोहि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०७, बी० ४२९-४३१ ।

शीर्षक—मै० तफ़हीम करदने बिरस्पति चांदा रा कि होशियार बाश ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहै । २. मै० खभा । (२) १. बी० पाव । २ मै० समरसि । ३. बी० बाधिक कटि समिलै उठि । (३) १. बी० जौ । २. की । ३. बी० कै षडवानि पिलाऊं । (४) १. बी० हौं धाई । २. बी० मोरी । ३. बी० धरसी । (५) १. बी० आनौ पांनी बैसि । २. बी० धोवहु । ३ बी० उलरि । ४. बी० सोवहु । (६) १. बी० जै । २. बी० है । ३. बी० कहौ । (७) १. बी० रैनि जाइ रबि उवत । २. बी० चांद दीब (देव—फा०) ।

अर्थ—(१) बृहस्पति कह रही थी, "ऐ चांद (चांदा), तू [अपने को] सभाल; सूर्य (लोरिक) के लिए तू क्या (क्यों) खंभार (अशांति, बेचैनी) कर रही है ? (२) हाथों और पैरों को तू, ऐ बालिका, नहीं संभाल रही है, केशों को बांध और साड़ी लेकर ओढ़ । (३) यदि तुझे सूर्य की झार (ज्वाला) लग गई है, तो मैं, हे बाला, खंडवानी करके तुझे पिलाऊं । (४) ऐ राज-कुमारी, तू कानि (लज्जा) न कर; मैं तो [तेरी] धाय हूं; मेरी लाज न धर । (५) मैं पानी ला रही हूं, तू बैठ कर मुख धो, और शैया पर लेट कर ऐ सुदरी, तू सुख की निद्रा सो । (६) तैंने चित्त में जो कुछ चाहा है, तू यदि मुझ से सबेरे कहेगी, (७) तो रात्रि [व्यतीत हो] जाएगी और दिन उग आएगा [तब] मैं [दौड़-धूप करके] तुझे उत्तर दूंगी ।

(१४०)

गई 'सो' खेलि 'रइनि' अंधियारी। उठा 'सुरिजु' जगि किरनि पसारी।
दिन 'गएं' घरीं बिरसपति आई। चांद करां 'बिनु' जाइ 'जगाई'।
कहु 'सो' बात जिहि तूं 'असि' भई। काहि लागि भरि 'आंकुर' गई।
चांद बिरसपति कें पां परी। कालि्ह सुरिजु 'देखिउं एक' घरी।
'कइ ओहि मोरें घरें बोलावहि'। 'कइ' मोहि 'लइ ओकें डंड लावहि'।

चांद 'कंत सइं देखिय' सुरिजु मंदिर 'जहिं' आउ।
'करहि महर सेउं बिनती' गोवरु 'नौति जेंवाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०८, बी० ४३२-४३५—आने वाले कडवक की प्रथम दो पंक्तियों के इस कडवक में भी भूल से आ जाने के कारण एक संख्या बढ़ गई है।

शीर्षक—मैं० : पंद दादन बिरस्पति चांदा रा अज़ आमदन लोरिक दर खान: ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सु। २. बी० रैनि। ३. बी० सूर। (२) १. बी० की (गए—फ़ा०)। २ मैं० में नहीं है। ३. बी० उचाई। (३) १. बी० सु। २. बी० अस। ३. बी० आकुरि। (४) १. बी० देष्यै इक। (५) १. बी० कै वोहु मेरे घरहि बुलावोहु। २. बी० कै। ३. बी० लै ओहि डीलि लगावोहु। (६) १. बी० गिनत (कंत—फ़ा०), मैं० (सइं—फ़ा०) देषा। २. बी० जिहि। (७) १. बी० कहौ महर स्यों बीनती। २. बी० न्यौति जिमाउ।

अर्थ—(१) वह अंधेरी रात खेल कर चली गई, सूर्य उठा और उसने जगत् में [अपनी] किरणें प्रसारित कीं। (२) एक घड़ी दिन जाने पर बृहस्पति आई और उसने उस कला-विहीन चंद्र (चांदा) को जगाया। (३) [उसने कहा,] "वह बात तू बता जिससे तू ऐसी हो गई है। किसके लिए तू अंकुर (रोमांच) से भर गई है?" (४) चांदा बृहस्पति के पैरों में गिर पड़ी [और उसने कहा,] "कल मैंने सूर्य (लोरिक) को एक घड़ी भर [ही] देखा है। (५) या तो उसे मेरे घर पर बुलाओ, और या तो मुझे ले [चल] कर उसके दण्ड (मार्ग) पर लगा दो।" (६) [बृहस्पति ने कहा] "ऐ चांदा, [अपने] कान्त को तब तुम स्वयं देखोगी जब वह सूर्य (लोरिक) [तुम्हारे] मंदिर (भवन) में आएगा। (७) किन्तु [इसके लिए] महर से तुम विनती

करो कि वह गोवर [के जन-समुदाय] को नियन्त्रण देकर जिमाए (भोजन कराए) ।"

(१४१)

बिरसपति बचन चांद चित धरा । 'हियंउर पूरि' खांड 'घिउ' भरा ।
सुनतइं बचनु 'महर' पहिं गई । जाइ 'ठाढ़ि आगें' होइ भई ।
एक ईछ ईछीं 'मइं' पिता । 'तउ तुम्ह' राउ रूपचंदु जिता ।
देवहिं 'पूजा फूलु चढाएउं' । 'पायं' लागि कर जोरि 'मनाएउं' ।
पिता मोर 'जउ रन जीति आइहि' । 'देस लोकु सभु नौति जेंवाइहि' ।

'पुरवहु' बाच जो 'कीन्हेउं' 'अरघ' होइ 'सो' नारि ।
'राइ' 'रूपचंदु' 'रन' जीति 'आएहु' कटकु संघारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०६, बी० ४३६-४३८ ।

शीर्षक—मै० : रफ़्तने चांदा बर महर व अरज़ दाश्तन महमानिए ख़लक करदन ।

पाठान्तर—बी० में इस कडवक की प्रथम दो पंक्तियां पिछले कडवक के दोहे के पूर्व भी आई हुई हैं । (१) १. बी० हैवर पुरषु । २. बी० घीव । (२) १. बी० पिता । २. बी० ठाढ आगै । (३) १. बी० मै० । २. बी० तौ तै । (४) १. बी० पूज्यैं फूरु चरांयौं । २. बी० पाइ । ३. बी० मनायो । (५) १. बी० रिनु जीतैं आवैं । २. बी० देव लोगु सबु न्योंति जिमावै । (६) १. बी० पुरवोहु । २. बी० कीन्ही । ३. बी० अरकहु (अरघो—फा०) । ४. बी० सु । (७) १. बी० राव । २. मै० खरग । ३. बी० में नहीं है । ४. बी० आयो ।

अर्थ—(१) बृहस्पति के [इस] वचन को चांदा ने चित्त में धारण किया, और अपने हृदय (उर) को उसने [इस मधुर परामर्श के] खाड तथा घी से भरपूर भरा । (२) [बृहस्पति का] वचन सुनते ही चांदा महर के पास गई, और [उसके] आगे (सामने) जाकर खड़ी हो रही । (३) [उसने कहा,] "हे पिता, मैंने एक इच्छा इच्छी (मानी) थी, तब तुमने राव रूपचंद को जीता है । (४) देवता पर मैंने पूजा का फूल चढ़ाया था, और [उसके] पैरो से लग कर तथा [उससे] हाथ जोड़ कर मनाया था कि (५) 'मेरा पिता जब रण जीत कर आएगा, वह समस्त देश तथा लोक (जन-समुदाय) को न्योता देकर जिमाएगा (भोजन कराएगा) ।' (६) [अब] वह वाच (संकल्प), जो मैंने किया था, पूरा करो: नारी का वह अर्घ्य (पूजा का आयोजन) पूरा होना

चाहिए; (७) [क्योंकि,] ऐ राजा, तुम खड्ग से रण जीत कर और [शत्रु के] कटक का संहार कर आ गए हो।"

(१४२)

चाद बचन 'हउं कहवां बांवउं'। 'सब गोवरु अउ देस जिवावउ'।
'महरई नाउंन्ह कहा बोलाई'। घर घर गोवरु 'नौतहु' जाई।
'कालिह' महर 'घरइं' 'हइ' 'जेंवनारा'। बार 'बूढ' सब झारि हंकारा।
सुनि 'कइ' नाऊ दहां 'दिसि गए'। 'तइतीसउ बार(न)सब नौता लिए'।
खूट खूंट सभ 'नौता' झारी। 'अथवा' सुरिजु परी अंधियारी।
पारधि 'पठए अहेरइं' 'अउ' बारी पनवारि।
'पछिली राति आए फिरि नाऊ सहदेव महर' 'दुवारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११०, बी० ४३९-४४१।

शीर्षक—मैं० : क़ुबूल करदन महर सुख़ुने चांदा व इश्तअंदाद दादने हुम खल्क रा।

बी० में बाएं हाशिए में अन्य व्यक्ति द्वारा संकेत दिया गया है: जै (ज्यौ ?) नार।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ कांहौ पाऊ। २. बी० का गोवरु सबु न्योति जिमांऊ। (२) १. बी० महरे नावा कहा बुलाई। २. बी० न्योंतौ। (३) १ बी० कालि। २. बी० कैं। मैं० में नहीं है। ४. बी० जिवनारा। ५. मैं० बूड। (४) १. बी० कैं। २. बी० दिस गयो। ३. बी० छतीसौ बरन न्यौतिवै लये। (५) १. बी० न्योंते। २. बी० अथव। (६) १. बी० बैठि अहेरिया। २ बी० औ। (७) १. बी० पिछली ओ नाऊ आयियोहु महरि। २. मैं० मे नही है।

अर्थ—(१) [महर ने कहा,] "चांद (चांदा) के वचन को मैं कैसे बाधा दे सकता हूँ (कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता हूँ)? समस्त गोवर तथा देश को मैं भोजन कराऊँगा।" (२) महर ने [तदनंतर] नाइयों को बुला कर कहा, "तुम सब जाकर गोवर में घर-घर को निमंत्रण दे आओ, (३) (कहना,) "कल महर के यहाँ ज्यौनार है, बालक और वृद्ध निरपवाद सब को बुलाया है।" (४) यह सुन कर नाई दसों दिशाओं में गए, तो समस्त तैंतीसो वर्णो ने निमंत्रण लिया। (५) खूंट-खूंट (खंड-खंड) में सब को निरपवाद निमत्रण दिया गया। सूर्य अस्त हुआ और अन्धकार पड़ गया। (६) [तब]

बहेलिए आखेट के लिए भेजे गए और [पत्तों के लिए] बारी पनवारियों मे। (७) [न्यौतने वाले] नाई पिछली रात (रात्रि के पिछले प्रहर) में लौट कर सहदेव महर के द्वार पर आए।

(१४३)

दिन भा पारधि आइ तुलाने। अगनित 'मिरिघ जियत' धरि आने।
'बहुते रोझ गयंड अति घने'। चीतर 'झांख' जाहिं नहिं गने।
'गौन मंझारे अउ' लोखरा। ससा 'लेंगुना' घर इकु 'भरा'।
'मेढा' सहस मारि कइ टांगे। 'तीनि चारि सै' बकरा मांगे।
'अउ साउज बहु' 'बनइल' मारे। 'सिंधुरवार को गनइ बिरारे'।

'साउज' देस न उबरा आनें 'सबइ धराइ'।
जांवत 'पंखि' 'संगौने' 'कहइ सरस सबु गाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १११-११२ (दो संख्याएँ पड़ी हुई है), बी० ४४२-४४४।

शीर्षक—आवर्दने सैयादाने हैवानाते हर जिन्सी।

पाठान्तर—(१) १. बी० मिरग जिवत। (२) १. बी० बहुत रोझ औ गाइर घने। २. बी० झाषि। (३) १. बी० गोवन मझरी औ। २. बी० लवकना। ३. मै० में नहीं है। (४) १. बी० मीढा (मेढा—फ़ा०)। २ मै० चारि पांच सै। (५) १. बी० औ स्यावज सभ। २. बी० पनियल (बनइल—फ़ा०)। ३. बी० स्यंघ अरीयर को गम जारे। (६) १. बी० सावज। २. बी० समै धराय। (७) १. बी० पंष। २. बी० सगौतै (सगौनें—फ़ा०)। ३. बी० कह्यौ सरस सभु गाय।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो बहेलिए आ पहुँचे, वे अगणित मृग जीवित पकड़ लाए थे। (२) बहुतेरे नीलगाय थे और गैंडे [भी] अत्यधिक थे, चीतल और झांख गिने नहीं जा रहे थे। (३) गौनों, मंझारों, लोखड़ो (लोमड़ो), शशकों तथा लेंगुनों से एक घर भर गया था। (४) एक सहस्र मेंढे मार कर टांगे हुए थे, तीन चार सै बकरे मांगे (मंगाए) हुए थे। (५) और भी बनैले श्वापदों (जंतुओं) को मारा गया था, सिंधुरवार और [जंगली] विडालो को कौन गिन सकता था? (६) देश का कोई श्वापद (जंतु) न बचा था, सभी पकड़वा कर लाए गए थे। (७) जितने पक्षी वहाँ गए (?), [अब] उन सबको सरस रूप में गाकर [कवि] कह रहा है।

(१४४)

'बटई' तीतर 'लावा' धरे। गुडरूं कनवां(केंवां)'खंचियन' भरे।
'बहुल बगेरिया अउ' चरियारा। 'उसर तिलौरा अउ भुनजारा'।
'बरुवा' सीतल कार तिलोरा। 'रयन टिटिहरे धरे टिटोरा'।
'बन कुकुरा' 'खर मोरउ घनें'। 'कूंज महोक' जाहिं नहि गिने।
'धरें को बरनइं उनके बनां। पंखि(खी) बहुल नांउं को सुना।'
जे 'कबि आइ समानें' सरसि 'बरनि गए तेहिं'।
'अउर' पंखि जे मारे 'तिन्हकर' नांउं को लेहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११३, बी० ४४५-४४७।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते जानवरा दर जियाफते महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० बडटई। २. बी० लवटी। ३. बी० कुंजिहि(?)। (२) १. बी० भरी बकेरी औ। २. बी० औसर तलवा और भूजारा। (३) १. बी० बरवा। २ बी० रैनि टटीहरि करहि टटेरा। (४) १. बी० चौकदरु। (२) बी० पर मोरा। ३. बी० कुंज महौक। (५) १. बी० धकूर औ कहु वापाना : मछरी बहुत नाव को जाना। (६) १. बी० के आइ तुलाने। २. बी० बरंगे (बरनि गए—फ़ा०) तेई। (७) १. बी० और। २. मैं० ता कर, बी० तिन्ह कौ।

अर्थ—(१) बटई, तीतर और लावे रक्खे हुए थे, गुडरूं और कनवा (केवां) खांचियों (टोकरियों) में भरे हुए थे, (२) बहुतेरे बगरिए तथा चरियारे थे, उसर-तिलौरे और भुनजारे (?) भी थे, (३) बरुवे, सीतल, और काले तलोर थे, रत्न-टिट्टिभ रक्खे हुए टटोर (टें-टें कर) रहे थे, वन-कुक्कुट और खर-मोर भी घने थे, क्रौंच तथा महोख गिने नहीं जा रहे थे। (५) जो [पक्षी] पकड़ कर लाए गए थे, कौन उनके वर्णों को गिन सकता है? बहुतेरे पक्षी थे, उनके नाम किसने सुने होंगे? (६) जो काव्यों में आ समाए हैं, वे ही सरस पक्षी [ऊपर] वर्णित हुए हैं। (७) और (अन्य) पक्षी जो मारे गए थे, उनके नाम कौन ले?

(१४५)

तीनि चारि सै बइठ 'सुवारा'। 'बइसंदरु' आनि 'रसोइ परजारा'।
'मास मसउरा कटवां' कीन्हां। 'लइ धुंगार बटियां करि' दीन्हा।
बेगर बेगर पंखि पकाए। 'घिरित' बघारे 'मिरिच भराए'।

बिरचन 'अंविरचन बटवा' परा। 'रस रतनाकर सेंधव गरा'।
कूंकूं 'मेलि किएउ' बिसवारू। 'दारयों' 'करवद' अंबिली चारू।
'कटुक तराकत लखवर लोन तेल बिसवार'।
'खटरस होइ महारस' 'तिलकुट किएउ' अहारु॥

सन्दर्भ—मै० ११४, बी० ४४८-४५०।

शीर्षक—मै० : सिफ़ले पुजानीदने ता आम दर मतबख़।

पाठान्तर—(१) १. बी० सिवारा (सुवारा—फ़ा०)। २. बी० बैसांदरु। ३. बी० रसोइ जारा। (२) १. बी० मास मसौरा कुटवा। २. बी० ले जुगारु पानि कर। (३) १. बी० घृत। २. बी० मिरच फिराये (भराए—फ़ा०)। (४) १. बी० ईचनवा। २. बी० सरसत नागर सीधै करा। (५) १. बी० पीसि कियो। २. मै० दरवंद। ३. बी० करौंदा। (६) १. बी० कटु करकर मिठें रे लूनु आहि औ षार। (७) १. बी० चिरत भिरी अस मिरई। २. बी० तिलक महि कियो।

अर्थ—(१) तीन-चार सै रसोइए बैठे, और आग ला कर उन्होंने उसे रसोइयों में जलाया। (२) मांस, मंसौरे, और कटवां [तैयार] किए गए, तथा धुंगार लगा कर बटवां [तैयार] कर दिए गए। (३) अलग-अलग पक्षी पकाए गए और घी में बघारे हुए मिर्च से भराए गए। (४) बिरचन (?) तथा अबिरचन (?) बटवा (पीस कर) रक्खे हुए थे, रत्नाकर (?) का रस तथा सेंधा लवण गल रहा था। (५) कुकुम (केसर) डाल कर मसाला [तैयार] किया गया था, जिसमें दाडिम (अनार के दाने), करौंदें और चारु (अच्छी) इमली भी [पड़े] थे। (६) कटुक (?), तराकत (?), लखवर (?), लवण, तेल तथा मसाले थे। (७) षट् रसों [के रूप] में महारस [तैयार] हो रहा था, और तिलकुट [के रूप] में आहार [तैयार] किया गया [था]।

(१४६)

'जाजर पापर भूंजि उचाए'। 'भांटा' टींडस 'सोंधि तराए'।
'कहएं' तेल करैला तरे। 'कुम्हड़ा भूंजि' साठि 'इक' धरे।
'खिखसा परवर' 'कुंदुरीं अहीं'। 'घिए तरोई अरुई गहीं'।
'बोटी बोटिहि धोइ' पकाए। चूका 'पालक अउ चौलाए'।
'लौआ चिचिंडा बहु' तोरई। 'सीता संब भार दस' भई।

'कंकोल जीवंती' 'सौंफ औ' 'सोई मेथि पकानि'।
'रांधी कुसुंभ कुंदुरियां' काढ़े बहुल संधान' ॥

सन्दर्भ—मैं० ११५, बी० ४५१-४५३।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते ख़ज़रियात हर जिन्सी गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० काचर पापर भूंजि उचाई। २. बी० बाटा। ३. बी० सुध तराई। (२) १. बी० करये। २. बी० कुमछा मूठ। ३. बी० यक। (३) १. बी० पूबस बरवर (परवर—फ़ा०)। २. बी० कंदुरी आही। ३. बी० घने बास तेहि उपर काही। (४) १. बी० पुई सपूवल धोय। २. बी० पालिक आ चालाइ। (५) १. बी० कंदू चचीड औ। २. बी० सीवा सीव भारद। (६) १. बी० गुगल चौटि। २. बी० सौप लौ। ३. बी० सोवा मेथी पान्ह। (७) १. बी० राध कसूभ कडूरिया। २. बी० काढि भरै सँधान।

अर्थ—(१) जर्जर (खस्त:) पापड़ भूंज कर उठाए गए थे, भांटे और टींडसे सोंधे करके तलाए गए थे। (२) कड़ुए तेल (सरसौं के तेल) में करैले तले गए थे, और साठ-एक कुम्हड़े भून कर रक्खे हुए थे। (३) खिखसे, परवल, कुंदुरियां थीं, घिए (नैनुए), तरोइयां तथा अरवियों को लिया गया था। (४) चूक (खट्टा) पालक तथा चौलाई बोटी-बोटी (टुकड़े-टुकड़े) धो कर पकाए गए थे। (५) लौकी, चिचिंडा, बहुतेरी तरोई, सीता (?) सेम की दस भारें हुई थीं। (६) कंकोल, जीवंती, सौंफ, सोया और मेंथी पके थे, (७) कुसंभी रंग की कुंदुरियां रांधी गई थीं और बहुतेरे संधान (चटनी-अचार) निकाले गए थे।

(१४७)

बरा मुंगौरा 'बरियइं' कीन्ही। 'खंडुई काटि घिरित' महिं दीन्हीं।
बनी 'मेथौरी छिरकुलि' वारी। 'अउ डुबुकी जेहि मिरचइं' पारी।
'भूंजी' कीन्ह 'गुरेठ' पकावा। 'पान अडाकर गुंझियइं' लावा।
'रौता (?) कसबंद' 'किई मिर्चवानी'। अउर 'उभारि राई कर पानी'।
तुरसी घालि कढी 'अउटाई'। लपसी 'सोंठि' बहुत 'कइ' लाई।
दूधु फारि 'कइ' खिरसा 'बांधा' 'राषा' दही 'संजाउ'।
अवर 'कठहंडी' को 'कह' जाकर नांउं न 'आउ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११६, बी० ४५४-४५६।

शीर्षक—मैं० : सिफते पकवान दर हर जिन्सी गोयद।

पाठान्तर—(१) बी० वरई। २. बी० खडई काटि घिरत। (२) १. बी० बई मठौरी छिलकल। २. बी० औ डभकी जैहि मिरचै। (३) १. बी० भूज। २. बी० करठ (गुरेठ—फ़ा०)। ३. बी० डागा पालु रंग जिहि। (४) १. बी० रीठ कसौडी। २. बी० की मिरचानी। ३. बी० भांति राई की बांनी। (५) १. बी० औटाई। २. बी० सूठि। ३. बी० कैं। (६) १. बी० कैं। २. बी० षरस। ३. मैं० में नहीं है। ४. बी० सजाई। (७) १. बी० षटहरी। २. बी० कहै। ३. बी० आई।

अर्थ—(१) बड़े, मुगौड़े, और बरियां [तैयार] किए गए थे, खंडुई को काट कर घी में दिया गया था। (१) छिलकुल वाली मेथौरी बनी थी, और डुबुकी [बनी] थी जिसमें मिर्च पड़ी थीं। (३) भूंजी की गई थी और गुरेठा पकाया गया था, गुझियों में समूचे पर्ण (पत्ते) लगाए गए थे। (४) रौते तथा कसौंदे का मिर्चवानी (मिर्च का पानी) किया गया था और उभाड़ कर राई का पानी किया (बनाया) गया था। (५) खटाई डाल कर कढ़ी औटाई गई थी तथा लपसी में सोंठ आधिक्य के साथ लगाई (डाली) गई थी। (६) दूध फाड़ कर खिरसा बांधा गया था, और संजाया हुआ दही रक्खा गया था। (७) अन्य कठहंडियों (व्यंजनों) को कौन बखाने जिनके नाम [मुझे] नहीं आते हैं?

(१४८)

'कपुर सारि' 'रतसारि' 'विकोई'। 'करत धनिया' मधुकर तोई।
'सिगना झाली अउ चौधरा'। 'कक्कर खंडर कांडर' भरा।
'अगर सारि रतनां मुतिसिरी'। 'राजनेत मूढी सौखिरी'।
'करंगी करंगा' साठी 'किए'। 'सुरमा बिहंसा' महसर लिए।
'गजधर कुंडर आगर 'धनी'। रूप 'पसाढी सोंधी' 'तनी'।
'कइ दोझा' अति धोए काढे 'सबइ पसाइ'।
जस बसंत बन 'फूलन्ह' चहुं 'दिसि' बासु 'खंधाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११७, बी० ४५७-४५९।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते बिरंजहाए हर जिन्सी गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० कपूर सार। २. बी० रतसर। ३. बी० बरकोइं। ४. बी० गरुरा दभिया। (२) १. बी० स्यंगना झारी औ जोधरा। ३ बी० कलिक षेहची महकर। (३) १ बी० अगरवास राता मुनसरी।

२. बी० राज नीति मूढी सूकरी। (४) १. बी० करकी करका। २. बी० कये (किये—फ़ा०), मैं० लिए (दूसरा तुक भी यही है)। ३. बी० सर बाभनि। (५) १. बी० बकीसीर कडियाकर। २. मै० धेनी। ३. बी० सरूपैं सूधै। ४. मैं० में नहीं है। (६) १. बी० कें दूझारि। २. बी० सभै पकाई। (७) १. बी० फूलौ। २. बी० गति। ३. बी० गंधाई।

अर्थ—(१) कर्पूरशालि, रक्त शालि, बिकोई, करारा, धनियां, मधुकर तथा तोई [चावल] थे। (२) सिगना, झाली, चौधरा, कक्कर, खंडर और कांडर भरे गए थे। (३) अगुरु शालि, रतनां, मौक्तिकश्री, राजनेत्र, मूढी, सौखिरी, (४) करंगी, करंगा तथा साठी [तैयार] किए गए थे, तथा सुरमा, बिहंसा और महसर लिए गए थे। (५) गजधर, कुंडर, आगर, धेनी थे तथा रूप, पसाढी, सोंधी तथा तनी थे। (६) दोझा (दो बार बीन) करके वे अत्यधिक बोए गए थे और सभी [मांड] पसा कर काढ़े (निकाले) गए थे। (७) जैसे वसंत में वन में फूलों से [उसी प्रकार इन चावलों से] चारों दिशाओं में सुवासों की गन्ध खंधा (महक) रही थी।

(१४९)

'हांसा गोहूं' 'धोइ' पिसाए। 'कपर छान कइ' 'झार' 'बनवाए'।
अति 'बडवड ते' 'बड़ भर तोला'। सेतु 'सुहाव' 'कूंज जनु भोला'।
टूट न 'तानां' दुहुं कर तोरा। नैनूं मांझ हाथ 'जनु' बोरा।
'जउ रे' साठि 'एक गासु' तुलाई। मुख मेलत 'खिन जाहि' 'बिलाई'।
'सगर देस (दिवस) 'जेवंहि' 'चित' लाई। 'भरइ' न पेटु न भूखि 'बुताई'।
'केवर' बास परि 'महकहिं' फूंकत जाहिं उडाइ।
भार सहंस 'दुइ' 'तिलकुट' 'महरइं धरे बनवाइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११८, भो० पत्र १४ (नवीन), शि०, बी० ४६०-४६२।

शीर्षक—मैं : सिफ़ते गंदुम व नाने मैदा खालिस।

भो० : सिफ़ते गंदुम व नान तुनक।

शि० में शीर्षक, (३)।१ तथा (७)।२ अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. शि० हंसा गोहूं, मै० बी० हांसा गेहूं (गहूं—मै०)। २ बी० धोय। ३. बी० कापर छानि कै। ४. भो० झाल, बी० झारि। ५ बी० पुवाये। (२) १. भो० बडवर ते, शि० बडवद सम, बी० बड। २. बी० बदिरवर कूली। ३. भो० सुहाए। ४. भो० खूज जनु भोला, बी केतु

जानै फूली। (३) १. भो० तानें। २. बी० महि हाथु जानौ। (४) १. बी० जूरी (जो रे—फ़ा०)। २. मैं० करि गास, बी० क गासु, भो० एक काटि। २ बी० षिन जाइ, भो० जनु जाइ। ३. शि० अपाठ्य है। (५) १. भो० सब दिन जेंव जउ, बी० सभ दिन जीयेहि जौ, शि० हर दीन (दिन) जेइहि। २ बी० भरैं। ३. बी० भूप। ४. भो० बी० बुझाई। (६) १. भो० कर, मैं० केर, बी० कपूर। २. बी० महकै। (७) १. बी० इक, शि० दस (?)। २ बी० तिलि यक। ३. बी० महरी धरे पकाइ।

अर्थ—(१) हंसा गेहूं को [उन्होंने] धो कर पिसाया था और उसे कपडे से छान कर उसके झाल बनवाए थे। (२) वे [झाल] अत्यधिक बड़े-बड़े थे, तो भी [वज़न में] वे एक-एक तोला भर के थे, और [श्वेत ऐसे थे] मानो वे भोले-भाले श्वेत क्रौंच हों। (३) वे ऐसे [लसदार] थे कि दोनों हाथो से [पकड़ कर] तानने पर भी वे टूटते नहीं थे, और [उनको हाथों में लेने पर ऐसा लगता था] मानो हाथ नवनीत में डुबाए गए हों। (४) यदि साठ-एक भी ग्रास उनके उठाइए, तो मुख में डालते ही वे क्षण मात्र में विलीन हो जाते थे। (५) सारे दिन उन्हें चित लगा कर भी खाया जाता, तो भी न पेट भरता और न भूख बुझती। (६) वे केवड़े की सुवास जैसे महक रहे थे और [हल्के इतने थे कि] फूंकते ही उड़ जाते थे। (७) [इस प्रकार के झालो के] दो सहस्र भार तिलकुट महर ने बनवा कर रख छोड़े थे।

(१५०)

'पतरिन्ह कहं' तोरियहि बन पाता। 'झारि' न उबरा 'कीत निखाता'।
महुवा आंब 'लीन्ह' घरि 'बारी'। बर पीपर 'कइ' 'बांधी' खारी।
कटहर बडहर 'औंलउ' लिए। 'जामुनि करहार' नांग 'सभ' भए।
'कठ ऊंबरि' 'पाकरि बहु' तोरी। 'मुहली' 'करवंद' दाख कंकोरी।
तेदू 'बुगुची' रीठा घनां। 'पुरइनि' पात 'कर रे' को गना।
'बिनवइ' आइ बनासपति पाइं लागि कर जोरि।
नांग कीन्ह 'हम' 'बारिन्ह' पात लीन्ह 'सभ' तोरि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११६, भो० पत्र १७ (नवीन), बी० ४६३-४६५।

शीर्षक—मैं० : सिफ़त आवरदने बर्गहाय दरख़्तान।

भो० : आवरदन बर्गहाय दरख़्तान रा बराय दोंद रह।

पाठान्तर—(१) १ बी० पातरि कौह। २ मैं० झूरि। ३ मैं० कीह

निखाता, बी० कोई छाता। (२) १. बी० बेलि। २. भो० बी० वारी। ३. बी० की। ४. भो० बांधहि। (३) १. मैं० औलउ कर, बी० उबरे। २. भो० जाम गंभार, बी० जाम मषार। ३. मैं० सब। (४) १. बी० केतिन उबरे। २. भो० बर पाकरि, बी० पाकुरि। ३. भो० महुव [किन्तु 'महुवा' (२) में आ चुका है]। ४ बी० करमजु। (५) १. बी० इंगज। २. बी० परिय। ३. भो० करि रहि, बी० करर। (६) १. बी० बिनइ। (७) १. मैं० हुउं। २. बी० बारि जेहि। ३. मैं० सब।

अर्थ—(१) पत्तलों को बनाने के लिए वन के [वृक्षों के] पत्तों को तोड़ा गया था। निरपवाद [कोई भी] न बचे, ऐसा निहत उन्हें कर दिया गया। (२) बाटिकाओं से महुए और आम [की पत्तियां] रख ली गई थीं, वट और पीपल [की पत्तियों] की खारियां (जालियों की बनाई हुई झालें) बांध ली गई थीं। (३) कटहल, बड़हल, और आंवलों [की पत्तियों] को भी हाथ में कर लिया गया था, जामुन और करहार सभी नग्न (पत्र-हीन) हो गए थे। (४) कठ-ऊंबर और पाकर (की पत्तियों) को बहुतायत से तोड़ा गया था, मुहली (?), करौंदा, द्राक्षा (अंगूर की बेल) और कंकोली [की पत्तियों] को भी [तोड़ा गया था]। (५) लेंदू, बुगुची तथा रीठा [के पत्ते] भी बहुत से लिए गए थे, पुटकिनी (कमलिनी लता) के पत्तों की गणना कौन करे? (६) पैरों से लग कर और हाथ जोड़ कर वनस्पतियां आकर बिनती कर रही थीं, (७) "हमें बारियों ने नग्न कर दिया है, क्योंकि हमारे सभी पत्ते उन्होंने तोड़ लिए हैं।"

(१५१)

'महर' मंदिर 'सभ' नेत बिछाए। कइ 'खंड बानी' कुंड भराए।
गोवरु 'नौता' 'हुत' 'सो' बुलावा। 'तइंतीसउ' 'बान' 'सभइ चलि' आवा।
'कतहुं' न 'सूझइ' 'सरहि जनु' चली। 'उपटा देस मंदिर गा भरी'।
'बइसि कुंवर गए पांतिहि' पांती। 'परजा पवनि सो भांतिहि' भांती।
लोरिकु 'महरइं' पाटि 'बइसारा'। गहनु मारि 'जेइं' चांदु उबारा।

'बरन चारि भरि बइठे' 'अगनित कहि नहि जाइ'।
खेत साठि 'लहि' आंगनु तउ 'हु' लोग न समाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२०, भो० पत्र ११ (नवीन), बी० ४६६-४६८।
शीर्षक—मैं०: आमदने खल्क़ गोवर दर खानः महर व नशिस्तने ईशां। भो०: फ़राज करदन कंदूरी दर खानः राव महर।

पाठान्तर—(१) १. भो० महरहं, बी० महरि। २ मैं० सब, बी० बहु। ३ मैं० भो० खंड वानि (वानी—ना०)। (२) १. बी० न्यौंतौ। २. भो० हुत, बी० हुता। ३. मैं० सोइ, बी० सु। ४. मैं० तहतीसउ, बी० छ तीसे। ५ भो० पान, बी० बरन। ६. बी० सभै को। (३) १. बी० कहति। २ भो० सूझहि, बी० सूझ न। ३. बी० सब जन। ४. बी० इक इक चाहि स ईक भिले। (४) १. बी० बैसि कवर गए पातोहु। २. बी० परज पौनि सु भातेहि। (५) १. बी० महरि। २. बी० बैसारा। ३. बी० जैं। (६) १. बी० बार बार चरि फिरि बैठे। २. बी० अगिनत गने न जाहि। (७) १. बी० लौहु। २. बी० में नहीं है।

अर्थ—(१) महर के समस्त मंदिर (भवन) मे नेत्र बिछाए गए थे, और खडवानी करके कुंड भराए गए थे। (२) गोवर [नगर] को जो निमत्रण दिया गया था, उसका बुलावा कराया गया। तैंतीसों बानों के समस्त लोग चल कर आए। (३) कहीं [कुछ] सूझ नहीं रहा था, मानो शरह (सेना की पंक्ति) चल पड़ी हो; देश ही उमड़ आया था [जिससे] मंदिर भर गया था। (४) कुमार (कुमारभुक्त—गुज़ारेदार) पंक्तियों-पंक्तियों में बैठ गए, प्रजा और पावने (हर्षोत्साह के अवसर पर पुरस्कारादि पाने वाले) [अपनी-अपनी] भांति के अनुसार बैठे थे। (५) लोरिक को महर ने पाट (पीढ़े) पर बिठाया, जिसने ग्रहण को मार कर चांदा को बचाया था। (६) [भोजन के लिए] चारों वर्णों के लोग [ऐसी] अगणित संख्या में भर बैठे थे कि वह [बात] कही नहीं जा रही है। (७) साठ खेतों [के क्षेत्रफल] का [महर का] आंगन था, तब भी लोग उसमें नहीं समा (अट) रहे थे।

(१५२)

'बइठइ बार पसरे' पनवारा। भातु परोसहि 'झारि सुवारा'।
पतरी भरहिं 'पहूंचहिं खाना'। 'बतीसउ' 'भांति लोर पहं आना'।
मास मसौरां 'कटवां भरे'। 'दोना' सौ सौ 'जनइत' धरे।
'लइ' मुतिसारु तुलानें नाऊ। घिरित खांड 'कीन्ह' पैराऊ।
'धरे' पकवान 'जेत' 'हुत' कहे। 'भल संधान' लाख इक अहे।
'गनि चौरासी' हांडी 'नाऊं' 'परस संभारि'।
'परे' 'खजहजा बहत्तर' होइ 'लागि जेवनारि'॥

सम्पर्क—मैं० पत्र १२१ भो० पत्र १२ (नवीन) बी० ४६६ ४७१

शीर्षक—मै० : तआम खुरानीदने महर बर खल्क़ रा अज़ अलवाने नेअमतहा।

भो० : आवरदने तआम दर मजलिस हर जिन्स।

पाठान्तर—(१) १. मै० बइठ बारी पसर, बी० बैठ बार पसरी (पसरे—फ़ा०)। २. मै० होइ जेवनारा, बी० झारि सवारा। (२) १. भो० पहुचहिं बरुतानां, बी० पूछ परवाना। २. भो० भांतिहि, बी० बहुती वनु। ३ बी० बहु भातेंहि जाना। (३) १. भो० खरवां भर बरे, बी० कुटवा भरे। २ बी० दूना (दोना—फ़ा०) ३. भो० चंपत, बी० जनयति। (४) बी० ले। २. बी० कैन्ह (कीन्ह—फ़ा०)। (५) १. बी० धरि। २. बी० जियत (जेत—फ़ा०)। ३. भो० हुंत। ४. बी० फुनि संधियान। (६) १. भो० गनि चौरासी सैं, बी० गिन चौरासी। २. भो० में नहीं है, बी० बायन (नाऊं—फ़ा०) ३. बी० पुर सैंभारा। (७) १. बी० मधुर। २. मो० बहुल खजहजा, बी० खजहजा भीतरि (बहत्तर—फ़ा०)। ३. बी० लाग ज्योंनार।

अर्थ—(१) लोगों के बैठने की वेला में पनवारे (पत्तल) फैलाए गए। समस्त को सूपकार (रसोइए) भात (उबाला चावल) परस रहे थे। (२) [व्यंजनों से] पत्तलें भर रही थीं और खाद्य पहुंच रहे थे। लोर के पास बत्तीसों [प्रकार के व्यंजन] लाए गए थे। (३) मांस के मसौरे और कटवा भरे हुए सौ-सौ दोने जनइतों (भृत्यों) ने [लाकर] रक्खे। (४) मोतीसार (?) लेकर नाई आ पहुंचे थे, उसमें घी तथा खांड (व्यंजनों में) पैराऊ (तैरने के योग्य) किए (डले) हुए थे। (५) जितने कहे गए थे वे सभी पकवान [लाकर] रक्खे गए, अच्छे संधान (अंचार) तो लाख-एक (?) थे। (६) गिन-गिन कर चौरासी हांडियां (पात्र) संभाल-संभाल कर नाई परस रहे थे। (७) बहत्तर प्रकार के खाद्य और भज्य रक्खे गए और ज्यौंनार होने लगी।

(१५३)

'पहिरि' चांद खीरोदक सारी। 'सोरह करां' सिंगार सिंगारी।
'चढ़ि धौराहरि किहेसि' परगासू। 'देखि लोरिकहिं बिसर गरासू'।
लोरु 'जान' 'आछरि' दिखरावा। इहिं कबिलासि 'अउर' को आवा।
'अमिरितु जेंवंन तेहि' 'माहुर भएऊ'। जीउ 'काढि' हरि 'चांदइं लएऊ'।
मुक्ख न जोति कया अति रूखी। 'चांद सनेह' सुरिजु गा सूखी।
'जेइं भूंजि अमिरित गइ' झारि उठी 'जेंवनार'।
लोरु लीन्ह कइ डाढी बिसमर' कछु न सभार

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२२, बी० ४७२-४७४।

शीर्षक—मैं० आमदने चांदा बर क़स्र व दीदने लोरिक व बेहोश शुदन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहरि। २. बी० सोराह् करा। (२) १. बी० चरि धौरहरि कियसि। २. बी० देषहि लोग बिसरि गयो गासू। (३) १. बी० जानै। २. मैं० अछरिहि। ३. बी० और। (४) १. बी० अंबृतु जीवनु। २ बी० माहुरु भयो। ३. मैं० सो। ४. बी० चांदा लये। (५) १. बी० चदु न आहि। (६) १. बी० जिय भूंचि अंबृत रस। २. बी० ज्योनार। (७) १. बी० कै। २. बी० बेसंभर।

अर्थ—(१) चांदा खीरोदक की साड़ी पहन कर शृंगार की सोलह कलाओं से शृंगारित हुई। (२) [तदनंतर] उसने धवल-गृह (प्रासाद) पर चढ कर प्रकाश किया तो उसको देखकर लोरिक को [भोजन का] ग्रास विस्मृत हो गया। (३) लोर ने जाना कि किसी अप्सरा ने दर्शन दिए, [उसने कहा,] "इस कैलास (धवल-गृह) में और कौन आ सकता है?" (४) [जीमते ही] अमृत [जैसा] भोजन उसके लिए विष हो गया, [क्योंकि] उसका जीव जो था, उसे चांदा ने निकाल कर हर लिया था। (५) मुख पर ज्योति [शेष] न रही, काया अत्यधिक रुक्ष हो गई, और चांद (चांदा) के स्नेह में सूर्य (लोरिक) सूख गया। (६) अमृत [की वह ज्यौनार जब] जीमी और भूंजी गई, और पूरी ज्यौनार (भोजन करने वालों की पंक्ति) उठ गई, (७) लोरिक को लोगों ने डांडी पर चढ़ा लिया, [क्योंकि] वह बेसभाल था, और [तन-बदन का] कुछ भी संभाल उसे न था।

१०. चांदा-लोर पुनर्दर्शन खण्ड

(१५४)

'लइ लोरिक घर सेजि' 'ओल्लारा'। बहहि 'नैन गांगही(हि)'असरारा।
'खोलिनि रोवइ काह' यहु भया। मोरु बारु 'केइं हुंडा दिया'।
लोगु 'कुटुंबु बंधू' जन 'आए'। पंडित 'बैद सयान 'बोलाए'।
'धरि' नाटिका बैद अस कहहीं। चांद सुरिज 'दुइ' निरमल 'अहहीं'।
बात न पित 'रगत' 'नहि सीऊ'। 'ताप' न जूडी 'चित्त संजीऊ'।
देव न दानव' छरगा होय ह न सीयार' बिरार'

सन्दर्भ—मै० पत्र १२३, बी० ४७५-४७७।

शीर्षक—मै० : दर खानः आवरदने लोरिक राव गिरियः करदने खोलिन।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै लोरिक औ सेज। २. बी० उलारा। ३ बी० नीर गंगा। (२) १. बी० खोलनि रोवै का। २. बी० कौं छिरगै दया (दिया—फ़ा०)। (३) १. मै० कुटुंब बंदू, बी० कुटंबु बंधू। २. बी० आवा। ३. बी० बैदु। ४. बी० बुलावा। (४) १. मै० धनि (धरि—ना०)। २ बी० दोय। ३. मै० अ…। (५) १. बी० रग। २. बी० नाही सूती। ३ बी० ताव। ४. बी० चितह संजूती। (६) १. बी० दानौ। २. मै० नहि यह सीयर ('सीऊ' पूर्ववर्ती पंक्ति में आ चुका है)। ३. बी० बरारा। (७) १. बी० मदन (मलिन—फ़ा०)। २. मै० कर। ३. बी० तौ। ४ बी० ररै।

अर्थ—(१) लोरिक को [उसके] घर ले जाकर शैया पर लिटा दिया गया। [उसके] नेत्र गंगा [के समान] लगातार बह रहे थे। (२) खोलिन रो रही थी, "यह क्या हुआ ? मेरे बालक को किसने हंडा (भाण्डों द्वारा किया जाने वाला एक प्रकार का टोटका) [कर] दिया ?" (३) लोक, कुटुंबी और बांधव जन आए, पंडित, वैद्य और सयाने बुलाए गए। (४) नाड़ी पकड़ कर वैद्य ऐसा कह रहे थे, "चांद और सूर्य (दक्षिण और वाम नाड़िया) निर्मल हैं। (५) न वात है, न पित है, न रक्त है और न शीत है, न ताप है, न जूड़ी है; चित्त संजीव (सचेत) है। (६) न किसी देव ने और न किसी दानव ने इसे छला है, न स्यार या बिडाल [ने इसे कुछ कर दिया] है। (७) यह मलिन काम-रस द्वारा विद्ध है, इसीलिए यह मराल रर (रट) रहा है।

(१५५)

सुरिजु 'रइनि' महिं 'गएउ' लुकाई। 'चंद्र' जोति निसि आगें आई।
खोलिनि नीरु बारि 'सिर पिया'। 'मकु मोहीं महं' लोरिकु 'जिया'।
'हउं आपन' जिउ 'चिहुं दह' देऊं। लोरिक केर मांगि 'कइ' लेऊं।
'बरु मोंहि बूड़ी(ढ़ी) दुख लइ' जाई। 'जिनि बूड़ी(ढ़ी)कर दिया' बुझाई।
'बहु' संताप 'कइ कहइ' कहानी। 'कारि' राति दुख रोइ बिहानी।
भोर 'सूरु' परगासा दिनकर भएउ अजोर।
खोलिनि रोइ' इफारा बारु जियावहु मोर

सन्दर्भ—मै० पत्र १२४, बी० ४७८-४८० ।

शीर्षक—मै० : अँ ज़न लहू दर गिरियः खोलिन गोयद ।

पाठांतर—(१) १. बी० रैनि । २. बी० गयो । ३. बी० चंद । (२) १. बी० सिरु पीया । २. बी० मोकौ मारि जीय । ३. बी० जीया । (३) १. बी० हौं अपना जिउ । २. बी० जोरहि (चौदह—फ़ा०) । ३. बी० कै । (४) १. बी० बरि मरि बूड रोगु लै । २. बी० जिन बारिक । (५) १. बी० यह । २. बी० दुष कथा । ३. बी० कारी । (६) १. बी० सुरिजु । (७) १. बी० षौलनि नगरु । २. बी० डभारा (डफारा—फ़ा०) । ३. बी० जिवावहु ।

अर्थ—सूर्य रजनी में छिप गया और रात्रि में चंद्रमा की ज्योति आगे आई, (२) तो खोलिन ने [लोरिक के] सिर पर पानी वार कर [इस अभिप्राय से] पिया कि लोरिक उसके जीवन में जीता (उसका जीवन लेकर जीता)। (३) [उसने कहा,] "मैं अपने चौदह जीवन (जन्म) दे दूगी और [उसके बदले में] लोरिक का [यह एक] मांग कर लूंगी। (४) भले ही मुझ बूढ़ी को दुख ले जाए, किन्तु मुझ बूढ़ी का [यह] दीपक न बुझे ।" (५) वह बहुतेरा सताप कर [ऐसा] कथन कर रही थी, और काली रात [उसे] दुःख मे रोते-रोते बीती । (६) पुनः (तदनंतर) सूर्य प्रकाशित हुआ (लोरिक उठा) दिन का उजाला हुआ । (७) खोलिन ने रोकर डकारा (चिल्लाया), "मेरे बालक को [ऐ लोगो,] जिलाओ ।"

(१५६)

'राजि' बिरसपति 'हाटहि' गई । 'कींन बान' कछु 'बेसहन' लई ।
'कारुन' सबद 'सवन' 'दहुं' परा । मुख 'फिराइ' 'पउ भीतरि' धरा ।
'तिरियहि कर हिय होइ' मयारू । जाइ बिरसपति 'झांखा' बारू ।
'खोलिनि' देखी महर भडारी । कर गहि 'पाट' आनि 'बइसारी' ।
'काहे तुम्हं रोवहु परधानां' । 'हियं उर' मोर सुनत चरराना ।
मोर बार 'जस भुलवा' घरीं 'घरीं' बिहसात ।
अब 'न खाइ अन' पानीं 'दिनहि' जाइ 'कुबिलात' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२५, भो० पत्र १५ (नवीन), बी० ४८१-४८३ ।

शीर्षक—मै० : रफ़तने बिरस्पति बे बहानःकारी दर खानः लोरिक व दीदने खोलिन

भो० : रप्तन बिरस्पति दर खानः लोरिक।

पाठान्तर—(१) भो० धाइ, बी० राय (रायि:राजि—ना०)। २. बी० हाटा। ३. भो० कीन बार, बी० पाट पटोर। ४. बी० बिसहन। (२) १ मैं० करुना। २. भो० सुवन, बी० श्रवन। ३. बी० घन। ४. बी० फिराय। ५ भो० पउ आगें, बी० पगु भींतरि। (३) १. भो० तिरियहिं कर हिय काह (?), बी० तिरिया कर जिउ होय। २. बी० झाकसि। (४) १. बी० खौलनि। २. बी० बांह। ३. बी० बैसारी। (५) १. बी० काहे कै पररोहु बधाना। २. मैं० हिरदैं, बी० हियरा। (६) १. बी० अस फुलवा (भुलवा—फा०), मैं० भुलवा परि। (७) १. बी० खाइ सो अनु न। २. भो० दिन दिन, बी० खिनरितन। ३. मैं० कुमिलात।

अर्थ—(१) बृहस्पति सज्जा कर हाट को गई, क्योंकि उसे कुछ कीनबाने (क्रयार्थ पदार्थ) खरीदने थे। (२) उसे ऐसा लगा कि उसके कानों मे कोई कारुण्य का शब्द पड़ा था, [इसलिए] उसने मुख को घुमा कर पग भीतर रक्खे। (३) स्त्री का हृदय मयालु (ममतालु) होता है, इसलिए बृहस्पति ने जा कर द्वार झांका। (४) खोलिन ने महर की उस भंडारी को देखा, तो उस का हाथ पकड़ कर उसे वह ले आई और उसने फलक (पीढ़े) पर उसे बिठाया। (५) [वह खोलिन से पूछने लगी,] "ऐ प्रधान, तुम क्यों रो रही हो? मेरा हृदय-उर [तुम्हारे रुदन को] सुन कर फटने लगा है।" (६) [खोलिन ने उत्तर दिया,] "मेरा बालक [किसी के द्वारा] भुलाया-जैसा हो रहा है, घड़ी-घड़ी वह बिहँसता है। (७) अब वह अन्न-पानी नहीं खा रहा है और अनुदिन कुम्हलाता जा रहा है।"

(१५७)

चलु 'खोलिनि तोर कहां रोगी। 'मकु ओखदु जानउं ओहि' जोगी।
'लइ गइ खोलिनि' लोरिकठाऊ(ऊ)। देखिसिकयासीस 'धर'पाऊ(ऊं)।
सूरिज 'घरहिं' बिरसपति आई। नैन उघारि चंद्र बिहसाई।
'गनि गुनि देख' 'आंकि कइ' पीरा। कवन गरह'की(कइ)आहि अभीरा'।
बहु गुन 'गुनी' तिरी 'परधानां'। बहु बियाधि बहु 'ओखद' जाना।
महर भडार 'भंडारी' 'अउ चांदा कइ धाइ'।
नैन 'उघारि' बात कहु 'लोरिक' 'आइउं आहि बुलाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२४. बी० ४८४-४८६।

शीर्षक—मै० : बुरदने खोलिन बिरस्पति रा दर महल व दीदने बिरस्पति लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० खौलनि तौरी कहां सु। २. बी० मुकु औषधु जानौ उहि। (२) १ बी० ले गइ घौलनि। २. बी० घरि। (३) १. बी० घराह। (४) १. बी० गिगुन देखि। २. बी० दुपा की। ३. मै० करि हइ तुम्हं पीरा। (५) १. बी० गनै (गुनी—फ़ा०)। २. मै० बरहानां। ३. बी० औषधु। (६) १. बी० भंडारनि। २. बी० अै चांदा की धाय। (७) १. बी० पसारि। २. मै० में नहीं है। ३. बी० मैं आनी अबहि बुलाई।

अर्थ—(१) "ऐ खोलिन, चल" [बृहस्पति ने कहा,] "[देखूं] तेरा रोगी कहां है? संभव है उसके योग्य ओषधि मैं जानती होऊं।" (२) खोलिन उसे लोरिक के स्थान पर ले गई और [बृहस्पति ने] उसकी काया, उसके सिर, धड़ और पाव देखे। (३) [खोलिन ने कहा,] "ऐ सूर्य (लोरिक), तेरे घर में बृहस्पति आई हुई है, तू नेत्र खोल, चांद विहस रही है। (४) हे वीर, यह आंक कर और बिचार कर देखे तो कि किस ग्रह की तुझे पीड़ा है। (५) यह बहुत से गुणों में गुणी और स्त्रियों में प्रधान है। यह बहुतेरी व्याधियां और [उनकी] बहुतेरी ओषधियां जानती है। (६) यह महर के भांडार की भांडारी है और चांदा की धाय है। (७) ऐ लोरिक, नेत्र खोल कर बातें कह, मैं इसे बुला कर लाई हूं।"

(१५८)

'जननि जउ चांद कहि' बोलु' 'उभासा'। सहस करां सूरिजु परगासा।
'कहेसि' जननि यहु बेदन 'कहउं'। 'तोरीं' लाज 'लजात सु अहउ'।
'खोलिनि' जाइ 'अवर तह (हं)' ठाढ़ी। लोरिक पीर 'हियइं कइ' काढी।
'जेहि दिन हउं जेवनारि' बुलावा। महर मंदिर काहू दिखरावा।
सो जिउ 'लइ गइ' 'कहीं' न जाई। बिनु 'जिउ भएउं परेउं' घहराई।

सोरह 'करां' सपूरन चांद जोति परगास।
बीजु चमक परि 'चमकी' 'ओहिं' धौराहर पास॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२७, बी० ४८७-४८९।

शीर्षक—मै० : दूर शुदन खोलिन व गुफ़्तन लोरिक हिक़ायत दीदन चादा बा बिरस्पति।

पाठान्तर (१) बी० ज्यौं ज्यौं चांद २ मै० उभा (२) १ बी०

कहसि। २. बी० कहौं। ३. बी० तेरी। ४. बी० लजावत अहौं। (३) १. बी० धौलनि। २. बी० और तहा। ३. बी० हिये की। (४) १. बी० जिह दिन जीवन हुतें। (५) १. बी० ले गई। २. बी० कह्यौ। ३. बी० जिय भयो पर्‌यो। (६) १. बी० करा। (७) १. बी० चमकै। २ बी० उहि।

अर्थ—(१) जननी ने जब 'चांद' कह कर बोल उद्‌भासित किया, तब सूर्य (लोरिक) ने [अपनी] सहस्र कलाओं के साथ प्रकाश किया। (२) उसने कहा, "जननी, मैं इससे [अपनी] वेदना तो कहूंगा, [किन्तु] तेरी लाज से मै लजा रहा हूं।" (३) [यह सुन कर] खोलिन अन्यत्र कहीं जाकर खड़ी हो गई, और लोरिक वीर ने हृदय की पीड़ा निकाली (व्यक्त करनी प्रारंभ की)। (४) [उसने कहा,] "जिस दिन मैं ज्यौनार में बुलाया गया था, महर के मंदिर (भवन) में कोई दिखाई पड़ी थी। (५) वही मेरे जीव को लेकर चली गई और वह कही नहीं जा रही है। मैं बिना जीव का हो गया और घहरा कर [भूमि] पर गिर पड़ा। (६) सोलह कलाओं से वह सपूर्ण थी और चन्द्र की ज्योति से प्रकाशित थी। (७) उस धवलगृह (प्रासाद) के पास (पार्श्व में) वह बिजली की चमक की भांति चमक गई।"

(१५६)

'सुनि लोरिक असि' बात न 'कहियइ'। 'जउ कहियइ एहि' 'देसि न' रहियइ'।
'वह तउ' आहि महर 'कइ धिया'। 'सरगि चांद' 'धौराहर दिया'।
'तरइन्ह जा करि सेज बिछावहिं'। 'नवइ' नखत 'निसि पहरे' आवहिं।
सो तइं देखि बीजु परबारी। 'गहन होति जिय' गई 'न' मारी।
'मन कइ सोग हिएं हुत धोवहु'। 'जेइं' भूंजि सुख निंद्रा 'सोवहु'।

अत राजा 'के दुअरि[आ]' 'अउ निसु' सरग 'बसेरु'।
'जेहिं का' राजु पिरिथिमी 'तेंहि तूं गरब न हेरु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२८, बी० ४६०-४६२।

शीर्षक—मैं०: मना करदने बिरस्पति लोरिक रा कि ईं हिक़ायत न गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिक हौ यह। २. बी० कहिये। ३. बी० जै कहिये इहि ४ बी० रहिये (२) १ बी० याह तौ। २ बी० की घीया ३ म० चाद नाठ ४ बी० धौराहरि दीया (३ १ बी०

तारायनु जाकै सेज बिछावैहि । २. बी० नौव नषित । ३. बी० पहरै । (४) १ बी० लह तोर जिउ । २. बी० जु । (५) १. बी० मन की सूग (सोग—फा०) हियेहि तैं जोवहु । २. बी० जीय (जेंइ—फ़ा०) । ३. बी० सोवोहु । (६) १. बी० की दुलहिनि । २. बी० औनि । ३. बी० बसेर । (७) १. बी० जिहि कर । २. बी० तिह कर करिब (गरब—फ़ा०) न हेर ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ लोरिक सुनो, ऐसी बात न कही जानी चाहिए, क्योंकि यदि कही जाए तो इस देश में न रहा जाए । (२) वह तो महर की कन्या है; वह आकाश का चांद (चंद्र) है, और धवलगृह (प्रासाद) का दीपक है । (३) [वह ऐसी है कि] जिसकी शैया तारिकाए बिछाती हैं और जिसके पहरे के लिए नवो नक्षत्र आते हैं । (४) उसी ने तुझे देख कर बिजली फेंकी (गिराई), और वही तेरे लिए ग्रहण होती हुई [बस] तेरे जीव को मार न गई । (५) अपने मन का शोक हृदय से धो डाल, भोजन जीम कर और सुखों का भोग कर सुख की नींद सो । (६) जिस राजा के इतने [अधिक] दौवारिक हैं और बिलकुल आकाश में (अत्यधिक ऊचाई पर) जिसका बसेरा (निवास) है, (७) और जिसका राज्य पृथ्वी पर है, उसको (उसकी ओर) तू गर्व से न देख ।"

(१६०)

'चांद क' उतरु बिरसपति कहा । सूरिजु दूहूं 'पायं परि' रहा ।
आजु बिरसपति सुदिनु 'हमारा' । मुखा कंवलु 'जो दीख' तुम्हारा ।
कहु 'सो बात' जिहि 'होइ मेरावा' । भल 'जो करइ' सो भलाई पावा ।
'कइ बिसु मोहिलइआनिखियावहि' । 'कइसोमंत्र बिधि आजु जियावहि' ।
कर पालउ 'दस नख मुंह मेलइ' । पायंन 'परइ' बिरसपति 'ठेलइ' ।
'पाय' न ठेलि बिरसपति 'हउं तउ' चेर तुम्हार ।
बचन तोर 'मोहि ओखद' 'कहसि' न जीवनु 'जिवनु' हमार ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १२६, भो० पत्र १६ (नवीन), बी० ४६३-४६५ ।

शीर्षक—मै० : पाए बिरस्पति उफ़्तादने लोरिक व अलहाज बिसियार नमूदने ऊ ।

भो० : मिन्नत करदन लोरिख पेश बिरस्पति ।

पाठान्तर—(१) १ बी० चांदा का । २ बी० पाव ले । (२) १ मै०

अम्हारा। २. भो० जेहिं दीख, बी० जौ देष। (३) १. बी० सु मोहि। २ बी० होय मिलावा। ३. बी० जु करैं। (४) १. बी० कै मोहि बिसु लै अबहि षवावोहु। २. बी० कैरु मतरु पढि आजु जिवावोहु। (५) १. भो० दस नख मुख मेला, बी० दस मुहि नष मेलै। २. भो० पायन परत, बी० पाव परत। ३. भो० ठेला, बी० ठेलै। (६) १. बी० पाव। २. बी० औ है (हौ—ना०)। (७) १. बी० औषध पर। २. बी० कहस। ३. मै० जीवनु।

अर्थ—(१) जब चांद [के संबंध] का यह उत्तर बृहस्पति ने कहा, सूर्य (लोरिक) उसके दोनों पैरों पर गिर रहा। (२) उसने कहा, "ऐ बृहस्पति, आज मेरा शुभ दिन है कि तुम्हारा मुख-कमल दीख पड़ा है। (३) तुम मुझसे वह बात कहो जिससे मिलाप हो, क्योंकि जो भला (भलाई) करे, उसे भलाई मिलनी [भी] चाहिए। (४) या तो ला कर मुझे विष खिलाओ अथवा वह मंत्र [दो] कि विधाता आज जिला दे।" (५) [यह कहकर लोरिक] कर-पल्लव के दस नख मुख मे डालने लगा* और जब वह उसके पैरों पर पड़ने लगा, बृहस्पति उसे पैरों से ठेलने (हटाने) लगी। (६) [लोरिक ने कहा,] "बृहस्पति, तू पैरों से मुझे न ठेल (हटा), मैं तो तेरा चेर (पुत्र ?) हूं। (७) तेरा वचन मेरे लिए ओषधि है, मेरे जीवन [का वह वचन] तू कह न !"

(१६१)

बिरखपति देख 'लोरिक कइ कया'। 'मरन सनेह' 'उठी मन मया'।
पाइ छाडि 'लोरिक पिइ' पानी। 'ओषद करउ' पीर तोरि जानी।
लोरिक तोर कहा 'मइं' माना। 'कइ हउं कइ' तूं 'अउर' न जाना।
'जउ लोरिक इहिं' बात 'उभारा'। 'मोहिं क्रिपिना धरि छौंकइ पारा'।
सुनि 'बुधि' 'देउं' जाइ मढु 'सेवहि'। 'मइं लइ जाबि पुजावइ' '[देवहि?]'।
तपा रूप होइ 'बइठउ' 'कया' बिभूति 'चढ़ाइ'।
'दरसन निकट जउ' 'बिगतहि' देखहु नैन 'अघाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३०, बी० ४६६-४६८।

शीर्षक—मै० : हील: आमोख्तने बिरस्पति बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिका कीया। २. बी० मेरे मनेह (सनेह—ना०)। ३. बी० उठि मनु दीया (दया—फ़ा०)। (२) १. बी० लोरि

*लोरिक से जीव-दान की याचना करते हुए आगे के एक प्रसंग में बुदिया दानी ने भी इसी प्रकार मुख में उंगलियां डाली हैं।

पिउ। २. बी० औषधु करौ। (३) १. बी० मै। २. बी० कै हौं कै। ३ बी० और। (४) १. बी० जौ लौरिक यह। २. बी० उभारी। ३. बी० स्यौं कुनुबा धरि येहि सब सारी। (५) १. बी० बु। २. मैं० मोरी (मोरि—ना०)। ३ बी० सेऊ। ४. बी० मिलै चांद पूजायसि। ५. बी० देऊ, मैं० त्रुटित है। (६) १. बी० बैसहु। २. बी० कियइ। ३. बी० चराई। (७) १. बी० बिसन बगते जि। २. बी० बगतौहू। ३. बी० अघाई।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने लोरिक की काया देखी तो [उसके] मरण का सन्देह (भय) होने के कारण उसके मन में ममता उठ (जाग) पड़ी। (२) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, तू मेरे पैर छोड़ और पानी पी; मैं औषधि कर रही हूँ, तेरी पीड़ा मेरी जानी हुई है। (३) ऐ लोरिक, मैंने तेरा कथन मान लिया, किन्तु उसे या तो मैं जानूँ और या तो तू जाने, उसे और कोई न जाने। (४) यदि, ऐ लोरिक तूने इस बात को उभाड़ा (प्रकट किया), तो तू मुझ कृपिणा (दीना) को पकड़ (पकड़वा) कर [तप्त कड़ाह मे] छौकवा सकता है। (५) तू सुने, मैं तुझे बुद्धि (युक्ति) दे रही हूँ, तू जाकर मठ (मंदिर) को सेए, मैं [उसे] देवता की पूजा कराने ले जाऊंगी। (६) तपस्वी के रूप में होकर तू वहाँ पर काया पर विभूति (राख) चढ़ाकर बैठ, (७) और उसका दर्शन (रूप) जब निकट से व्यक्त हो, तू उसे नेत्रों से तृप्त होकर देख।"

(१६२)

कहि 'जु(जो)' बिरसपति 'बाहेर' भई। 'खोलिनि' खेह पाय 'कइ' लई।
सीस 'चढ़ाइसि पा कइ' घूरी। आस मोरि 'जनि लीजिय चूरी'।
खोलिनि 'चंद्रु' मेष घरि आवा। सूरिजु गहनु 'हुत सोइ' छुडावा।
भा सुखु 'भरम जियहि जनि' धरहू। न्हाइ धोइ कुछु 'औषध' करहू।
'लोरहिं' घरी 'जियइ कहं' पाई। 'जागा' सुरिजु 'चंदु' बिहसाई।
'भरम न करहू खोलिनि जिय महं लोरिक लइ अन्हवावहु'।
'अरु किछु अरथ दरब वारहु बा(बां)भन देइ पठावहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३१, बी० ४९९-५०१।

शीर्षक—मैं० बेरून आमदने बिरसपति अज़ महल लोरिक व पाय उफ्तादने खोलिन।

पाठान्तर (१) १ मैं० में नहीं है। २ बी० बाहरि। ३ बी०

पौलनि। ४. बी० क। (२) १. बी० चराइसि पाव कि। २. बी० तैं अब ही पूरी। (३) १. मै० चंद्र। २. बी० होय तस। (४) १. बी० चितह भरम जिन। २. मै० अरध। (५) १. बी० लोरिक। २. बी० जियन की। ३ बी० जाग। ४. मै० चंद्र। (६) १. बी० पिरम हंस जौ कुररहि कुरहि नवासु सुहाई। (७) १. बी० में इस चरण के स्थान पर अगले कडवक की प्रथम पंक्ति है (पाठ वहाँ पर देखिए)।

अर्थ—(१) बृहस्पति [यह] कह कर जो बाहर हुई, [तो] खोलिन ने उसके पैरों की धूल ली। (२) [बृहस्पति के] पैरों की धूल को उसने सिर पर चढ़ाया [और कहा,] "तुम मेरी आशा को तोड़ मत लेना।" (३) [उसने उत्तर दिया,] "खोलिन, चंद्र मेष के घर में आएगा तभी वह सूर्य को [इस] ग्रहण से छुड़ाएगा। (४) सुख हो गया, अब जी में भ्रम (भय) न धारण करो, नहा धोकर कुछ ओषध (उपाय) करो। (५) लोरिक ने जीने की घड़ी प्राप्त कर ली है, सूर्य जाग गया है और चन्द्र विहसित हो रहा है। (६) ऐ खोलिन, जी में भ्रम (भय) न करो, लोरिक को ले [जा] कर स्नान कराओ, (७) और कुछ अर्थ-द्रव्य [उस पर] वारो तथा उसे किसी ब्राह्मण को देने के लिए भेज दो।"

(१६३)

'जेहि दिन लोरिक उठइ नहाई। लोक कुटुंब मइं करबि बधाई।
तोहि पहिरावउं 'चीरु अमोला'। 'जउ मुख आइ लोर' कहुं बोला।
गई बिरसपति 'जहं सब' तारा। अउ निसि चांद 'करइ' उजियारा।
गई 'सो' मेटि सुरिज 'कइ' 'पीरा'। चांद 'तराइनि सेउ किइं भीरा।
'अरघ' 'बइस' निसि चांदा रानी। नखत 'तराइनि कहहिं' कहानी।

चांद नखत 'लइ' तारा 'बइठ' धौराहर जाइ।
लोर लागि 'मोहि' चिंता कहि 'जउ' बिरसपति आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३२, बी० ५०२-५०४।

शीर्षक—मै०: ······(अपाठ्य) क़बूल करदने खोलिन बिरस्पति रा अज सेहते लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० में यह पंक्ति पिछले कडवक के दोहे की दूसरी पंक्ति के रूप में इस प्रकार है:

"जिहि दिन लोरिकु उठि बैठै : लोगु न्यौति मैं करों बधाई।

२ १ बी० तुहि पहिराऊ २ बी० जिहि सुषु आइ लोरिक।

(३) १. बी० जहा सबि। २. बी० करै। (४) १. बी० सु। २. बी० की। ३ मैं० में नहीं है। ४. बी० तरायनि स्यौं गै। (५) १. मैं० पाट। २. बी० बैसि। ३. बी० तरायनि कहैं। (६) १. बी० लै०। २. बी० बैठ। (७) १. बी० लोरिक। २. बी० तिहिं। ३. बी० जु।

अर्थ—(१) [खोलिन ने कहा,] "जिस दिन लोरिक उठेगा और स्नान करेगा, लोक (लोगों) और कुटुंबियों में मैं बधावा करूंगी।(२) तुझे अमूल्य चीर पहनाऊंगी, जब लोरिक के मुख में बोल आएगा।" (३) बृहस्पति [अब] वहाँ गई जहाँ समस्त तारिकाएं (दासियां) थीं और रात्रि में [जहाँ पर] वह चाद (चांदा) प्रकाश कर रही थी। (४) वह सूर्य (लोरिक) की पीडा मिटा कर [वहाँ] गई [जहाँ पर] चांद (चांदा) तारिकाओं (दासियों-सखियों) के साथ भीड़ (समाज) किए हुई थी। (५) चांदा रानी रात्रि मे चुप बैठी हुई थी, नक्षत्र और तारिकाएं (दासियां-सखियां) कहानी कह रही थी। (६) चांद (चादा) नक्षत्रों और तारिकाओं (दासियों-सखियों) को लेकर धवलगृह (प्रासाद) में जा बैठी, (७) [और उसने कहा,] "लोर के लिए मुझे चिन्ता है; बता यदि तू बृहस्पति [वहाँ से] आई हो।"

(१६४)

'सवन' फटिक मुंद्रा सिर सेली। कंठ जाप 'रुदराखइं' मेली।
चकरु 'जोगौटा कोथी कंथा'। पाइं पावरी 'गोरख' पंथा।
मुख बिभूति कर गही अधारी। छाला 'बइसि क (कइ)' आसन मारी।
डडा 'खप्पर' सीगी 'पूरइ'। नेंह 'चारचा' गावइ 'झूरइ'।
गुन किंगिरी 'तेहिं' बार 'बजावइ'। 'चितहि चांदा' मुख 'चित्र उपावइ'।
सिद्ध पुरुख मढ 'बइठेउ' 'धरि' तिरसूर दुवारि।
'भुगुति' मोरि बनखंड 'कइ' चांद नाम 'तात (तत ?) सार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३३, बी० ५०५-५०७।

शीर्षक—मैं० : जोगी शुदने लोरिक व नशिस्तने दर बुतखानः बुत।

पाठान्तर—(१) १. बी० सोवन (सवन—फ़ा०)। २. बी० जाप्प रुद्रागैं (रुद्राखैं—फ़ा०)।(२) १. बी० जुगौटा काठी कैंथा। २. मैं० गोरक। (३) १. बी० बैसक। (४) १. बी० खपर जु। २. बी० पूरैं। ३. बी० चारिज। ४. बी० झूरैं। (५) १. बी० तिह। २. बी० बजावैं। ३. बी० चिहि ४ बी० आत्रा पावैं (चित्र उपावैं—फा०)। (६) १ बी० बैठ।

२ बी० घर। (७) १. बी० भुगति। २ बी० की। ३. बी० सँसार (ततसार—फ़ा०)।

अर्थ—(१) कानों में [लोरिक ने] स्फटिक-मुद्राएं, सिर में सेली, कंठ मे जप-रुद्राक्ष की मालाएं डाल लीं। (२) उसने चक्र, योगपट्ट (योगियों का वस्त्र), कोथली (थैली), तथा कंथा (गूदड़ों का वस्त्र) [ले लिया] और पैरों मे पादत्री (खड़ाऊं) डाल कर वह गोरख-पंथ में [हो गया]। (३) उसने मुख मे विभूति (राख) [लगाई], हाथ में अधारी ग्रहण की और छाला (मृगचर्म) पर बैठ कर आसन मार लिया। (४) वह दंड और खप्पर [ले कर] सिंगी पूरता (सिंगी में श्वास भरता), स्नेह-चर्चा के गीत गाता तथा संतप्त होता। (५) उस वेला में वह गुण-किन्नरी (एक प्रकार की सारंगी) बजाता, और चित्त में चांदा के मुख का चित्र उत्पादित करता। (६) मढ़ी में वह सिद्ध पुरुष उसके द्वार पर त्रिशूल रख कर बैठ गया। (७) [वह कहता,] "मेरी भुक्ति वनखंड की है (मेरा भोजन कंद-मूल-फलादि का है) और चांद (चांदा) का नाम ही [मेरे लिए] सार तत्व है।"

(१६५)

एक बरिस लोरिक मढ़ु सेवा। चांद सनेह 'मनाएसि' देवा।
कातिग परब दिवारी आई। डार परी 'रितु खेलिय' गाई।
चांद बिरसपति लीन्ह हंकारी। 'आवइ' खेलन 'जाहि' 'दिवारी'।
सखीं साठि इक गोहनि लागीं। रूप सरूप 'सभागइ भागीं'।
'अक्खत' चांद 'चली लइ' तहां। 'गाइ' दिवारी 'खेलइ' जहां।
'सुन फूल' चांदा 'लइ' 'अक्खत मेला' जाइ।
'बिहरत' हारु टूटि गा 'मोतिहुं' गए 'छिरियाइ'॥

सन्दर्भ—मै० १३४, बी० ५०८-५१०।

शीर्षक—मै० : यक साल परस्तीदने लोरिक बुत रा व आमदने चांदा बा पहेलियान दर आं।

पाठान्तर—(१) १. बी० मनायसि। (२) १. बी० रुति षेलहि। (३) १. बी० आवोहु। २. मै० देखइं। ३. बी० जाहु। (४) १. बी० सभाग नभागीं। (५) १. बी० आखत। २. बी० लिये लैं। ३. बी० गई। ४. बी० खेलहि। (६) १. बी० षेल गउ चांद। २. बी० लैं। ३. बी० अषित मेले। (७) १. बी० फिरताहु। २. बी० मोती। ३. बी० छिराइ।

अर्थ—(१) एक वर्ष तक लोरिक ने मढ़ (मंदिर) का सेवन किया और चांदा के स्नेह में देवता को मनाया। (२) कात्तिक में दीवाली का पर्व आया और यह डार (?) पड़ी कि गाँव में ऋतु के खेल खेले जाएं। (३) चांदा ने बृहस्पति को बुला लिया और कहा, "आओ, दीवाली खेलने के लिए जाएं।" (४) साठ के लगभग सखियां साथ लग गईं, रूप में वे सुरूपा और भाग्य में वे भाग्यशालिनी थीं। (५) चांदा अक्षत लेकर वहाँ के लिए चल पड़ी जहाँ पर गांव में दीवाली खेली जाती थी। (६) प्रसून तथा फूल लेकर चांदा ने [देवता पर] अक्षत जा डाले, (७) [किन्तु वहाँ पर] विहार करते समय उसका हार टूट गया और उसके मोती भी [निकल कर] छिटक गए।

(१६६)

'सही' मोंति 'लइ धोवइ' पानी। चांद 'कानि कइ(?)चितहि' 'सकानी'।
जननि 'जउ पूछिहि तउ' कस 'कहऊं'। 'कवन' उतरु अनु उत्तर 'देऊं'।
'बोला सखिन्ह छाहं मढि लीजइ'। हार 'पिरोइ' चांद 'तुम्ह' दीजइ।
आइ बिरसपति 'बहुरि' हुंकारी। चांद बचन सुनि मढी सिधारी।
मढु सुहाव 'अउ' छांह 'सुहाई'। चांद सखी लइ बइठी जाई।
'मानिक मोंति पिरोवहिं रचि रचि बारी हार'।
'बइठी चांद बिरसपति' सूरिजु मढी दुवारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३५, बी० ५११-५१३।

शीर्षक—मैं० शिकस्तने हार मुरवारीद चांदा दर बुतख़ान: व जमअ़ करदने सहेलियान।

पाठान्तर—(१) १. बी० संवरि। २. बी० धाइ लै। ३. बी० कुमति भइ पिता। ४. मैं० लजानी। (२) १. बी० मदिर पूछै। २. बी० कहौ। ३. बी० कौन। ४. बी० सहौं। (३) १. बी० बोली सपी छाव मठि लीजै। २. बी० परोइ। ३. मैं० कहं। (४) १. बी० भई। (५) १. बी० अति। २. बी० हीं आई। (६) १. बी० रचि रचि बारि परोवहिं मानिक मोती हार। (७) १. बी० चांद बैठ परछाहीं।

अर्थ—(१) सखियां मोतियों को ले-लेकर पानी से धो रही थीं, [इस बीच] चांदा [माता-पिता की] कानि कर चित्त में शंकित हुई। (२) [उसने कहा,] "जननी यदि पूछेगी, तब मैं कैसे कहूंगी और कौन-सा उत्तर तथा अनु-उत्तर दूंगी?" (३) सखियों ने कहा, "मढ़ (मंदिर) में छाया ली जाए

और [वहीं पर] हार को [पुनः] गूंथ कर, ऐ चांद, तुम को दिया जाए।" (४) फिर (तदनंतर) बृहस्पति ने आकर [इस प्रस्ताव का] समर्थन किया और चांदा [उसके] वचन को सुनकर मढ़ी के लिए चल पड़ी। (५) वह मढ सुहावना था, और [उसमें] छाया [भी] सुहावनी थी, चांदा सखियों को ले कर जा बैठी। (६) वे बालिकाएं रच-रच कर [हार के] माणिक्य और मुक्ता पिरोने लगीं, (७) और चांदा तथा बृहस्पति [उस मढ़ी में] बैठ गई, [जबकि] सूर्य (लोरिक) उस मढ़ी के द्वार पर [बैठा हुआ] था।

(१६७)

'झांखि सहेलिन्ह' चांदहि कहा। 'एहिं मढ महं एक आएसु' अहा।
अति रूपवंतु राजपुतु 'आही'। सुरिजु मदन 'कत लाए जाही'।
'कुर क ऊंच' आहि बडवारू। सुंदर खतरी बीर अपारू।
कवनि जननि 'जरमेउ' अस बारा। सहस करां 'भएउ' उजियारा।
नागर 'छइल सभागइ' भरा। करम जोति मनि 'माथें बरा'।
'चांदहि' 'कहा' 'तराइन' सूरिजु 'देखउ' 'आइ'।
अस भगिवंतु 'जउ देखिय' 'दिस्टि पापु' झरि 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३६, बी० ५१४-५१६।

शीर्षक—मै० खबर जोगी करदने सहेलियान वर चांदा रा।

ऊपर निर्धारित (४)।२ मै० में (५)।२ है और (५)।२ मै० में (४)।२ है।

पाठान्तर—(१) १. बी० झारि सहेल्योंहु। २. बी० इसु मढ महि कोउ आसनु। (२) १. बी० अहै। २. बी० गति लाए रहै। (३) १. बी० कुवरु कर उच। (४) १. बी० जनमा (?)। २. बी० होइ। (५) १. बी० चतुर सभागैं। २. बी० माथैं परा। (६) १. मै० चांद। २. बी० कहसि। ३. बी० तरायनि। ४. बी० देखहु। ५. बी० आई। (७) १. बी० जु देखैं। २. बी० द्रिष्टि पापु (पापु—नागरी)। ३. बी० जाई।

अर्थ—(१) [इधर-उधर] झांक कर [चांदा की] सहेलियों ने कहा, "इस मढ़ में एक आदेश (योगी) है। (२) वह अत्यधिक रूपवान् राजपुत्र है, सूर्य तथा मदन जिसके (जिसकी तुलना में) किस योग्य हैं? (३) वह कुल का ऊंचा और बड़ा है, वह सुंदर क्षत्रिय और अपार वीर है। (४) किस जननी ने ऐसी वीर बालक को जन्म दिया है, जिसकी सहस्र कलाओं से वहां प्रकाश हो

रहा है? (५) वह नागर और छैला है, सद् भाग्य से पूरित है, और कर्म की ज्योति-मणि उसके मस्तक पर झलक रही है। (६) चांदा से तारिकाओं (सखियों) ने कहा, "उस सूर्य (पुरुष) को आ कर देखो; (७) ऐसे भाग्यवान् को यदि देखिए तो दृष्टि के [समस्त] पाप झड़ जाएं।"

(१६८)

चांद सीसु 'भगवंतहि' नावा। भा अचेतु 'मन' चेतु गंवावा।
मुनिवर 'मन' देखन 'गुन गएऊ'। पीत बरन मुख 'भेंमरु भएऊ'।
नैन झुरहिं अति कया सुखानी। 'धनि' धानुक चखि हना बिनानी।
नैन दिस्टि चांदा 'मुख' लाइसि। रहा घाइ 'न सो देखइ पाएसि'।
'भउंह फिराइ' चांद गुन तानी। नैन बान मुनि 'हनां सयानी'।
काटि दीन्ह जस 'बकर देवारीं' रगत 'कीन्ह घर बार'।
देखि गई 'धर धरतीं' मुनिवर 'देउ' दुवार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३७, बी० ५१७-५१६।

शीर्षक—मै० : सलाम करदने चांदा व बेहोश शुदने जोगी।

पाठान्तर—(१) १. बी० भगवंत कौ। २. बी० मनि। (२) १. बी० मुषु। २. बी० कौ गयौं। ३. मै० विख। ४. बी० म्यंभरु भयौं। (३) १. बी० धन। (४) १. मै० में नहीं है। २. बी० तहा देषि न आइसि। (५) १. बी० भौह फिराई। २. बी० हन्यों बिनानी। (६) १. बी० बकरा देहुरे। २. बी० षेह पुरमार। (७) १. बी० धन उधोनत। २. बी० मुनियर देव।

अर्थ—(१) चांदा ने उस भाग्यवान् [अथवा भागवत] को सिर नमित किया, [तो] वह अचेत हो गया और उसने मन की चेतना गंवा दी। (२) उस मुनिवर का मन [चांदा को] देखने के लिए चला गया था, [अतः] उसका मुख भेंभर तथा पीत वर्ण का हो गया था। (३) उसके नेत्र अत्यधिक संतप्त हो रहे थे और उसकी काया सूख गई थी; वह धानुष्का धन्य थी जिसने चक्षुओं से उस विज्ञानी को आहत कर दिया था। (४) नेत्रों की दृष्टि उसने चांदा के मुख पर लगाई, [तो] वह ऐसा आहत हो रहा कि उसे देख भी न पाया। (५) भौहों [के धनुष] को घुमा कर चांदा ने प्रत्यंचा तान ली और उस सयानी ने नेत्र-बाणों से मुनि को आहत कर दिया। (६) जैसे दीवाली पर बकरा काट दिया गया हो और घर का द्वार [उसके रक्त से] लाल कर दिया गया हो, (७) [ऐसे] देव-द्वार पर धरती पर मुनिवर का धड़ [पड़ा हुआ] देख कर वह चली गई।

(१६९)

बाहुरि मंडप चांद 'जउ' आई। 'सूरिज' दिस्टि मुख गा 'कुंबिलाई'।
'पूछइ' चांद बिरसपति धाई। काह 'कहउं कछु कही' न जाई।
'जउहि' सीसु 'मइं' सिध कहुं नावा। मुरछि परा मुख 'बकति' आवा।
हाथ 'पाउ सिरु हिर न संभारइ'। 'धरि धरि' सीसु मंडप 'सेउं मारइ'।
हारु 'पिरोइ' 'सहेलिन्हु' दीन्हां। हंसि कइ चांद 'पहिरि गियं' कीन्हा।
'कहा' बिरसपति 'चांदा' चलहु बेगि 'घर' जाहिं।
चांद सूरिज 'हइ अंथवत' महरी खरी डराहिं॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२८, बी० ५२०-५२२।

शीर्षक—मैं० : बाज़ गश्तने चांदा अज़ बुतख़ानः ब आमदन बेख़ानए ख़ुद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जै। २. बी० सुरिजु। ३. मैं० कुंमिलाई। (२) १. बी० पूछै। २. बी० कहौं कुछु कहन। (३) १. बी० जबहि। २. बी० मैं। ३. बी० बगत। (४) १. बी० पाव कछु सिरु न संभारै। २. मैं० धुनि धुनि। ३. बी० स्यौं मारै। (५) १. बी० परोय। २. बी० सहेलेंहु (सहेलींहु—फ़ा०)। ३. बी० बिगसि गै। (६) १. बी० कहसि। २. बी० चांदहि। ३. बी० घरि। (७) १. बी० है अथवा।

अर्थ—(१) जब चांदा मंडप से वापस हुई, सूर्य (लोरिक) की दृष्टि [लगने] से उसका मुख कुंम्हला गया था। (२) चांद धाय बृहस्पति से पूछने (कहने) लगी, "मैं क्या कहूं? कुछ कहा नहीं जा रहा है। (३) जभी मैंने सिद्ध को सिर नवाया, वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा और उसके मुख से वक्ति (वाक्य) न निकला। (४) उसके हाथ-पैर और सिर हिल रहे थे, उन्हें वह संभाल नहीं रहा था और [अपने] सिर को पकड़-पकड़ कर मंडप से मार (टकरा) रहा था।" (५) [उसकी] सहेलियों ने उसे हार [पुनः] पिरो (गूंथ) कर दिया, तो हँस कर उसे चांदा ने ग्रीवा में [धारण] किया। (६) बृहस्पति ने कहा, "चांदा, चलो, हम शीघ्र घर जाएं। (७) ऐ चांदा, सूर्य अस्त हो रहा है, हम महरी को खरी (बहुत) डरती हैं।"

(१७०)

'माता' पिता बंधु नहि 'भाई'। संगु न साथी मीतु न 'धाई'।
'एहिं' बनखंड 'कोइ' पास न 'आवइ'। 'को रे' मरत मुखि नीर 'चुवावइ'।

'को रे' 'उठाइ बइसार संभारी'। 'एहिं' 'कंथा गुन' 'देइ' हंकारी।
दई पेटि जीउ बहुरि संचारा। 'बांधेसि' सीसु झारि 'कइ' बारा।
'सपनें सउतुक मइं' कछु देखा। चित न 'संभारउं' मरन बिसेखा।
'देवहि पूछहु(हुं) तूं जउ आहा 'हउं कस' गा बिसंभार।
कया सूक मुख 'भेंमर' 'मोरें' जियं कछु 'न संभार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३६, भो० पत्र ९ (नवीन), बी० ५२३-५२५।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत दर तनहाइए लोरिक गोयद।

भो० : गुफ्त लोरिक गुरवत खुद व पुरसीदन बुत रा।

पाठान्तर—(१) १. भो० माता। २. बी० धाई। ३. बी० सहाई। (२) १. बी० यह। २. बी० को। ३. भो० आवा। ४. भो० कोइ, बी० कोपि। ५. भो० चुवावा। (३) १. मै० कोइ, बी० को। २. बी० उठारि बैसार न संभारी। ३. बी० नेह, भो० आनि, किंतु बाद में पाठ 'एहिं' दिया गया है। ४. बी० घूटि कोउ। ५. भो० कहइ। गहइ। (४) १. बी० बाधि। २. मै० करि, बी० कैं। (५) १. बी० सपन क सूतकैं मैं। २. भो० संभार, बी० संभारै। (६) १. बी० देवेहि पूछि जीउ अहा। २. बी० हौ किन। (७) १. बी० मनि भींभर। २. बी० मोर।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "माता, पिता, बंधु, भाई, संगी, साथी मित्र तथा धाय नहीं हैं। (२) इस बनखंड में कोई पास नहीं आता है, [अतः] कौन मुझ मरते हुए के मुख में पानी चुवाए? (३) कौन मुझे उठा कर और संभाल कर बिठाए और बुला कर इस कंथे में गुण दे—इस कंथे (चीथड़ों) जैसी काया में सूत्र जैसे प्राण पिरोए?" (४) तब तक दैव ने उसके पेट में जीव का संचार किया तो उसने बालों को झाड़ कर सिर बांधा। (५) [वह कहने लगा,] "स्वप्न में अथवा संप्रत्यक्ष मैंने कुछ देखा, [जिसे] चित्त में स्मरण नहीं कर रहा हूँ, [मानो] मरण का विसेख (वैशिष्ट्य—प्रभाव) था। (६) देवता से पूछूं कि 'तू जब [उपस्थित] था, मैं कैसे बेसंभाल हो गया, (७) [कैसे] मेरी काया में शुष्क गई, मेरा मुख भेंभर हो गया और मेरे जी में कुछ भी संभाल (चेत) न रहा?'"

(१७१)

एकु 'अचंभा' 'सुनहि तूं' लोरा। 'सउतुक सपनइं भएउ जेहिं' तोरा।
'अछरिन्ह केर झुंड' एकु आवा। 'सो' अछरीं 'तइं' 'देखि' न पावा।

तूं तिन्ह देखि परा मुरझाई। 'हौं(हउं) ब' 'लोन परि गएउं' बिलाई।
भा झनकारु 'जउहि तिन्ह गवनां'। 'अउ रितु उठा फूटि कनै सोनां'।
खिन इक 'रहीं कोड' तिन्ह कीन्हां। 'बहुरि' पयानु उतर मुख कीन्हां।
सीसु उचाइ 'जउ देखिउं' मंडपु चहुं 'दिसि' सून।
'लहन मोर जइं उतरइ' लोर 'तुम्हारेइ पून'॥

सन्दर्भ—मैं० १४०, बी० ५२६-५२८।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने बुत बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० अचंभौ। २. बी० सुनसि न। ३. बी० सूतक सुपन भयो जिउ तोर। (२) १. बी० अछिराह केर झूर। २. बी० सा। ३. बी० तैं। ४. बी० देख (देखि), मैं० देखन। (३) १. मैं० हुंउ रे। २. बी० नून पर गयों। (४) १. बी० चहू दिस कूना (गवना—फ़ा०)। २. बी० औहट उठे फटि गयें सौना। (५) १. मैं० हंस गवन। २. बी० फुनि रु। (६) १. बी० नैन जो देखौं। २. बी० दिस। (७) १. बी कया मुरछि जिउ उबरा। २. बी० तुम्हारें पुन।

अर्थ—(१) "ऐ लोरिक", [देवता ने कहा,] "तू एक अचंभा सुन, जिससे तेरा (तुझे) स्वप्न में संप्रत्यक्ष हुआ। (२) अप्सराओं का एक झुंड आया, और उन अप्सराओं को तू देख न पाया। (३) तू उन्हें देख कर मूच्छित हो पड़ा और अब (उसी समय) मैं लवण की रीति से [उनके सौन्दर्य-सागर में] विलीन हो गया। (४) जब उन्होंने गमन किया, एक झंकार हुआ और ऋतु (प्रकृति) में कनक और सोना (स्वर्णिम प्रकाश) फूट उठा। (५) एक क्षण तक वे रहीं और उन्होंने कोड (खेल-खिलवाड़) किया, पुनः उन्होंने उत्तर-मुख प्रयाण किया। (६) मैंने सिर उठा कर जब देखा, चारों ओर मंडप सूना था। (७) मेरा लहना (प्राप्य) जभी उतरेगा (प्राप्त होगा), ऐ लोरिक, वह तुम्हारे पुण्यों से होगा।"

(१७२)

'चांद बिरसपति पास बुलाई। पिरम कहानी 'कहु मोहिं' आई।
'जेहिं' रस मन कर बिरसु बिसारउं। 'रस दिवरा हिरदैं धरि जारउं'।
रस अहारु मोहिं देहि अघाई। बिरह झार बिनु रस न बुझाई।
बहुल 'रसायन' देखेउं चाखी। 'सरस' कहानी कहु मोहिं भाखी।
'रस किएं' राति सपूरनभावै(वइ)। 'अउ' रस सुनि 'सुख' निंद्रा 'आवइ'।

'कहु रस बचन' 'बिरसपति' 'जेहिं चित करुव' मिठाइ ।
रस 'कइ' घरी 'बहुरावहिं' दुख संताप 'षु(षो)भ' जाइ ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १४१, बी० ५२६-५३१ ।

शीर्षक—मैं : तलबीदने चांदा बिरस्पति रा व पुरसीदन हिकायते लोरिक ।

मै० : में निर्धारित (५)।१ का अंतिम शब्द छूटा हुआ है ।

निर्धारित (४), (६) तथा (७) बी० में ऊपरी हाशिए में भिन्न व्यक्ति द्वारा दिए हुए हैं ।

पाठांतर—(१) १. बी० कहौ निसि । (२) १. बी० जिह । २. बी० रस दियरा हिरदै परजारौ । (४) १. बी० रसइन । २. बी० देषौ । ३. बी० प्रिम । (५) १. बी० सरस स । २. मै० में नहीं है । ३. बी० औ । ४. बी० सखि । ५. बी० आवै । (६) १. बी० इहै कह रस बचन बिरसपत । २. बी० जि चित कटु (७) १ । १. बी० की । २. बी० उचावहु । ३. मै० तेहिं ।

अर्थ—(१) चांदा ने बृहस्पति को पास बुलाया [और कहा,] "तू आकर मुझे [कोई] प्रेम-कहानी सुना, (२) जिसके रस से मैं अपने मन की विरसता को विस्मृत कर दूं और हृदय के स्थल में रस का दीपक जलाऊं । (३) रस का आहार मुझे अघा कर (भर-पेट) दे, [क्योंकि] विरह की ज्वाला बिना रस के बुझती नहीं है । (४) बहुतेरे रसायनों को मैंने चख कर देखा, [उनसे कोई लाभ नहीं हुआ,] अतः कोई रस कहानी तू मुझसे भाष कर कह । (५) रस के द्वारा सम्पूर्ण रात्रि भाएगी और रस (रस की वार्त्ता) सुन कर ही सुख-निद्रा आएगी । (६) ऐ बृहस्पति, तू वह रस-वचन कह जिससे चित्त की कड़ुवाहट मीठी हो जाए । (७) तू रस की घड़ी वापस ला, जिससे [मेरे] दुःख, संताप और क्षोभ जाएँ ।"

(१७३)

तू रसु बिरसु चांद का जानसि । 'हउं रस कहउं घिरित जउ' सानसि ।
'घिरित खांड सों करउं मेरावा' । 'चांद जइस' अंबिरितु तुम्हं पावा ।
रस 'बरजहिं कइं बरइ' अहारू । 'रसहिं बूड़ि आछहिं सर्यसारू' ।
रस 'के दाव' अनपानि न 'भावा' । रस 'जउ आन ओखद बरु लावा' ।
रस 'कइ बात चितहिं जउ' धरसी । रस 'कइ घरियबिरसु जिनि' करसी ।
रस 'के' कुंडि परा 'मरहिं' मुनिवरु 'गन(गहन ?)' गहीरु ।
रस क बूड 'धरि बाहइं' चांदा 'लावहिं' तीर ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १४२, बी० ५३१-५३३।

शीर्षक—मै० जबाब दादने बिरस्पति चांदा रा।

पाठांतर—(१) १. बी० हौं रस कहौं घिरत स्यों। (२) १. बी० घिरत षांड सौ होई मिरावा। २. बी० अैसे चांद। २. बी० अमिरतु। (३) १. बी० परिजाव तस वै। २. बी० रसहू अछ बूडै सैंसारू। (४) १. बी० लागें। २. बी० भावै। ३. बी० जु षाइ औषध पै लावैं। (५) १. बी० की बात चितहि जै। २. बी० की घरी विरसु जिन। (६) १. बी० कैं। २. बी० मढि (मरहि—फ़ा०)। ३. बी० अति रति गगन। (७) १. बी० घर बाहां। २. बी० लावोहु।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने उत्तर दिया,] "ऐ चांदा, तू रस और बिरस को क्या जाने ? मैं रस तो तब कहूँ जब तू उसे घृत (स्नेह) से साने। (२) घृत (स्नेह) का खांड (रस) से मिलान करे तो जैसे, ऐ चांद, तूने अमृत पा लिया। (३) रस का चाहे वर्जन कर, चाहे उसके आहार का वरण कर, रस में डूब कर ही संसार स्थित है। (४) [किन्तु] रस से दग्ध होने पर अन्न-पानी नहीं भाता है, [अतः] यदि रस को कोई लाए तो अच्छा यह हो कि [इसके साथ ही] इसकी औषधि भी लाए। (५) रस की बात यदि तू चित्त में धारण करती है तो तू रस की घड़ी को विरस न करे। (६) गहन-गंभीर रस के कुंड में जो मुनिवर गिर कर मर रहा है, (७) उस रस में डूबे हुए को बांह से पकड़ कर, ऐ चांदा, तू तीर पर लगा।

(१७४)

निलज बिरसपति लाज न 'धरसी'।
मोहिं भिखारि 'सेउं' सरभरि करसी।
बिरसपति 'तोरें' मन अस आवा।
'जउ तइ' मढ़ि मुनिवरु दिखरावा।
'जेहिं' खिन चांद सुरिजु दिखरावा।
'तेहिं' 'खिन हुतें' मोहिं 'अउरु' न भावा।
नैन 'पइसि' चित 'कीतेसि' ठाऊं। 'बाजु' कीन्ह 'हउं' अनत न जाऊं।
'तइं जो देखाइ' बिरसपति 'कहा'। सो 'मइं जेउं' लागि 'चित' रहा।
लोरु सुरिजु 'बहु' 'निरमर' चहूं 'भुवन' 'उजियार'।
चांद आहि धनि 'ताकरि' 'सो रबि' नांहु हमार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४३, बी० ५३४-५३६ ।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने चादा बर बिरस्पति रा बा गुस्सः ।

(५)।२ में 'जेउं' मै० में बाद बढ़ाया हुआ है ।

पाठांतर—(१) १. बी० मरसी । २. बी० स्यों । (२) १. बी० तोरै । २. बी० जौ ते । (३) १. बी० जिह् । २. बी० तिह् । ३. मै० दिन हुत । ४. बी० औरु । (४) १. बी० पैसि । २. बी० कीतसि । ३. बी० बाच (बाज—फ़ा०) । ४ बी० मै । (५) १. बी० तै जु दिषाव । २. बी० अहा । ३. बी० तौ हिये लागि । ४. मै० चित (चित्त—ना०) । (६) १. बी० पर । २. मै० निरमल । ३. बी० भवन । (७) १. बी० ताकर । २. मै० सूरिज ।

अर्थ—(१) "ऐ निर्लज्ज बृहस्पति," [चांदा ने कहा,] "तू लाज नहीं धारण करती है, [और] तू एक भिखारी के साथ मेरी बराबरी करती है ! (२) बृहस्पति, तेरे मन में ऐसा आया [होगा], जभी (तभी) तूने मढ़ में [मुझे ले जा कर उस] मुनिवर को दिखाया । (३) जिस क्षण तूने चांद को सूर्य (लोरिक) का दर्शन कराया, उस क्षण से मुझे अपर (अन्य) कोई नहीं भाया है । (४) [मेरे] नेत्रों से प्रविष्ट होकर उसने [मेरे] चित्त में स्थान कर लिया है, और मुझे वर्जित कर दिया है, मैं [इसी कारण] अन्यत्र नहीं जाती हूँ । (५) तूने जब [उसको] दिखा कर, ऐ बृहस्पति, कहा [तभी से] वह जैसे मेरे चित्त में लग रहा है । (६) मेरा लोरिक बहुत निर्मल (निष्कलंक) सूर्य है और वह चारों भुवनों में प्रकाश-पूर्ण है । (७) चांदा उसी की धन्या (स्त्री) है, और वह सूर्य (लोरिक) मेरा नाथ (स्वामी) है ।"

(१७५)

वह 'सो' महर धिय तोर भिखारी । भीखि 'लेसि' जउ 'देसि' हंकारी ।
दरसन 'रात' 'भएउ तेहि' जोगी । भीख न मांग 'पुरुख हइ' भोगी ।
'तेहि' कारनि मुखि भसम 'चढ़ावा' । सुबचनु देहि 'तउहि सिधि पावा' ।
तोरें रस कर 'आहि' पियासा । 'निससत रहै लेय(इ)' मरि सासा ।
चांद बचनु एकु 'सुनसि न' मोरा । तू 'ओखद वहु रोगिया' तोरा ।
　　हस्ति 'चढ़ा दिखराएउं' फुनि 'आएउं जेवनार' ।
　　सोई लोरु 'मढ़ि मुनिवरु' देषत 'गा' बिसंभार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४४, बी० ५३७-५३६ ।

शीर्षक—मै० : बाज़ नमूदने हिकायत लोरिक पेशे चांदा ।

पाठांतर—(१) १. बी० सु। २. मैं० लेइ। ३. बी० देहु। (२) १. मैं० राता। २. बी० भयो तोहि। ३. बी० पुरषु है। (३) १. बी० तुहि। २. बी० चरावै। ३. बी० तबहि सुषु पावै। (४) १. मैं० आस। २. मैं० नित तोहि आछे लइ। (५) १. मैं० सुनहु तुम्हं। २. बी० औषध वोहु रोगी। (६) १. बी० चरा दिखरायो। २. बी० आयो जिवनार। (७) १. मैं० मढ़ महं। २. बी० भयो।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ महर-कन्या, वह तेरा भिक्षुक है, और वह भिक्षा [तभी] लेगा जब तू बुला कर उसे देगी। (२) तेरे दर्शनो पर अनुरक्त हो गया, तभी वह योगी हुआ; वह भीख नहीं माँगता है, वह पुरुष तो भोगी (भोग-प्रिय) है। (३) इसी कारण उसने मुख पर भस्म चढ़ा ली है, तू अपना वचन देगी, तभी वह सिद्धि पाएगा। (४) वह तेरे रस का पिपासु है, वह निःश्वास लेता और मर-मरकर साँसें लेता रहता है। (५) ऐ चांदा, तू मेरा एक वचन सुन, तू औषधि है और वह तेरा रोगी है। (६) वही हाथी पर चढ़ा हुआ दिखाई पड़ा था, और वही पुनः [उस दिन] ज्योनार में आया था, (७) वही लोरिक मढ़ (मंडप) में मुनिवर [के वेष मे] था, जो तुझे देखते-देखते बेसंभाल हो गया था।"

(१७६)

मढ़ि मुनिवरु 'अउ' लोरिकु अहा।
'तइ' न बिरसपति 'मोसिउं' कहा।
भुगुति 'जुगुति तेहि जोग' 'दिवउतिउं'।
'घिरित मेरए' 'रस' बचन 'सुनइतिउं'।
अबहिं जाइ धरि बाह 'उचावहि'।
बिरह 'बिभूत मुनि पानि पियावहि'।
अस जिनि 'कहहि कि' चांद 'पठाइउं'।
पूछत 'कहिसु' 'सही' चलि 'आइउं'।
'गुवा' पान नगरखंड लेहू। 'कइ' खंडवानि बिरसपति देहू।
मुखि बिभूति 'अउ' कंथा अस कहि धरहु उतारि।
'देई भएउ तुम्हं' परसनां 'पूजिहि' आस तुम्हारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४५, बी० ५४०-५४२।

शीर्षक—मैं० : अफ़सोस करदने चांदा अज़ बेहोशी दर बुतख़ानः।

पाठांतर—(१) १. बी० जो। २. बी० तें। ३. बी० मो सौ। (२) १. बी० जोग कछु जुगति। २. बी० दिवौत्यौ, मैं० देतिउं। ३. बी० घिरत भरे। ४. मै० में यह नहीं है। ५. बी० सुन्यैंत्यैं। (३) १. बी० उचावोहु। २. बी० भूंजि मुष पानी प्यावेहु। (४) १. बी० कहहु कि, मैं० कहहि। २. बी० पठायौ। ३. बी० कही। ४. मैं० में नहीं है। ५. बी० आयो। (५) १. बी० गोवा (गूवा—फ़ा०)। २. बी० ले (कै—फ़ा०)। (६) १. बी० औ। (७) १. बी० देउ भया। २. बी० पूजी।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "यदि उस मढ़ में मुनिवर [के वेश में] लोरिक था, तो तूने, ऐ बृहस्पति, मुझसे बताया नहीं। (२) उसके योग्य मैं भुक्ति (भोजन) और युक्ति दिलाती और उसे घृत मिलाए हुए (स्नेह-मिश्रित) वचन सुनाती। (३) तू अभी जाकर और उसकी बाँहें पकड़ कर उसे उठा और उस विरहाभिभूत (?) मुनि को पानी पिला। (४) ऐसा मत कह कि तू चांदा की भेजी हुई है; पूछते समय यही कह, "मैं स्वयं ही चली आई हूँ।" (५) गूवा (सुपारी) पान और नगर-खंड (श्वेत-शर्करा—चीनी) ले ले और, ऐ बृहस्पति, खंडवानी (खांड का रस) बना कर उसको दे। (६) [पुनः] उससे ऐसा कहे, 'मुख की विभूति और कंथा उतार कर रख दो, (७) दैव तुमसे प्रसन्न हुआ है, तुम्हारी आशा पूरी होगी।' "

(१७७)

चांद 'खांडि दिई' पान 'सोपारी'। सरगि बिरसपति मढ़िहं सिधारी।
'गौनि' बिरसपति 'मढ़िह' पईठी। 'जहवां' चांद सुरिजु भई दीठी।
बिरसपति डसन बीजु चमकाए। मुनिवर नैन रगत झरु लाए।
बिरसपति 'पाय' सुरिजु 'लइ' रहा। 'तुम्हं जो' चांद मढ़ि 'आवन' कहा।
जागत 'रहउं' 'जो' नींद गंवानी। अन न रूच 'अउ भाइ' न पानी।
'हउं जउ' चांद 'लइ आइउं' 'कीएउं मढ़' परगास।
सुभर नींद 'बरु सूते' गई ढंढोरि चहुं पास॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४६, बी० ५४४-५४६।

शीर्षक—मैं० : शकर व बरग दादह् फ़िरिस्तादने चांदा बिरस्पति रा बर लोरिक दर बुतखानः।

पाठान्तर—(१) १. बी० षाड दै। २. बी० सुपारी। (२) १. बी० जाइ। २. बी० मढ़ी। ३. बी० जहुवां। ४. मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०)।

५. बी० भा । (४) १. बी० पाव । २. बी० लै । ३. बी० लै जु । ४. बी० आनै । (५) १. बी० रहौं । २. बी० जु । ३. बी० भावै नहि । (६) १. बी० हौ जु । २. बी० लै आयों । ३. बी० कियसि मढी । (७) १. बी० भरि सोवोहु ।

अर्थ—(१) चांदा ने खंड (काट) कर पान-सुपारी दी तो आकाश (धवलगृह) से बृहस्पति मढ़ी गई। (२) जा कर बृहस्पति उस मढ़ी में प्रविष्ट हो गई जहां पर चांद (चांदा) और सूर्य (लोरिक) की [परस्पर] दृष्टि हुई थी। (३) बृहस्पति ने दांतों की बिजली चमकाई, तो मुनिवर के नेत्रों ने रक्त की झड़ी लगा दी। (४) बृहस्पति के पैर सूर्य (लोरिक) ने पकड़ लिए, [और वह बोला,] "तुमने जो चांदा की मढ़ में आने की [बात] कही थी [उसको स्मरण करो]। (५) [उससे] क्योंकि मेरी निद्रा गुम हो गई है, मैं जागता ही रहता हूं, अन्न मुझे नहीं रुचता है और पानी नहीं भाता है।" (६) [बृहस्पति ने कहा,] "मैं जब चांदा को [यहां] लाई और इस मढ़ मैंने [उसका] प्रकाश किया, (७) तुम भरपूर नीद में सो गए और वह [तुम्हारे] चारो ओर ढूंढ़-ढांढ़ कर चली गई।"

(१७८)

'जउ हर सेइ नरायन धा(ध्या)वइ'।
'चांद' सुरिजु 'बिनु और न भावै(वइ)'॥
सुबचन सुनि 'लोरिक' 'गहबरा'।
दोऊ 'पायं (इं) सीस लै(लइ) धरा'॥

अबहिं 'सुरिजु' मन राखि 'रहावहु'। बिहसति चांद सरद 'रितु पावहु'।
'तजहु' 'लोर दरसनु अउ' मढ़ी। 'सरगि चांद बुधि बहु गुन' गढ़ी।
बिरसपति बचन लोर 'जउ' मानें। 'कइ खंडवानि पियाएसि आनें।

परथमि देव 'मनाएउं' फुनि 'रे' बिरसपति तोहि।
पाइ 'परउं लइ तारा' चांद 'मेरावहि' मोहि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४७, बी० ५४७-५४९।

शीर्षक—मै० : पन्द दादने बिरस्पति चांदा लोरिक रा कि दूर कुन लिवासे जोग।

मै० में (७) का प्रथम अक्षर पन्ने के फटने से निकला हुआ है।

पाठान्तर—(१) १. मै० सूरिजु (सुरिजु—सा०)। २. बी० रवावोहु।

३. बी० रति पावोहु। (२) १. मै० तजु। २. बी० सुरिजु दरसनु औ। ३. बी० चांद सुरगि बिधाता कँ। (३) १. बी० जो हरि सबै तरायनु धावै। २. बी० चंद। ३. मै० कहं ओर निभावइ। (४) १. बी० लोर। २. मै० हेरा। ३ मै० पांयनि सीस धरेरा। (५) १. बी० जौ। २. बी० दे घंडवानी पान सुवाने। (६) १. बी० मनायो। २. बी० ह। (७) १. बी० परौं अब तोरो। २. बी० मिरावोहु।

अर्थ—(१) "ऐ सूर्य (लोरिक)," बृहस्पति ने कहा, "अभी मन को रोक कर रहो, तुम चांदा को शरद ऋतु में हंसती हुई पाओगे। (२) ऐ लोरिक, [अब] इस दर्शन (वेष) और मढ़ी को छोड़ो। चांद आकाश में (धवलगृह के ऊपरी खंड में) है और वह बहुतेरी बुद्धि और गुणों से गढ़ी हुई (निर्मित) है। (३) यदि तुम शिव की सेवा और नारायण का ध्यान करोगे, तो चांद (चांदा) को सूर्य (लोरिक) के अतिरिक्त और कोई न भाएगा।" (४) इन सुवचनों को सुन कर लोरिक गद्-गद् हो गया और उसने [उसके] दोनों पैरों पर सिर रख दिया। (५) जब बृहस्पति के वचनों को लोर ने मान लिया, बृहस्पति ने खंडवानी की और उसे लाकर लोरिक को पिलाया। (६) [लोरिक ने कहा,] "पहले मैंने देवता को मनाया और पुनः (तदनंतर) तुझे [मनाया]; (७) ऐ [चांद की] तारिका (दासी), मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ, तू मुझे लेकर चांद से मिला दे।"

(१७९)

मुनिवरु दरसन जोगु उतारा। मढ़ु तजि खतरी 'मंदिर' सिधारा।
चली बिरसपति 'सू(सु)रिजु पठाई'। चांद 'नारि' 'कहं' बात जनाई।
चांद बिरसपति 'सेउं' अस कहा। कहि मढ़ मुनिवरु 'कैसें' अहा।
नैन रगत 'झर दिन' असराऊ। 'भुगुति न जानइ नींद' अहारू।
'मलिन' काम बेधा न 'संभारइ। चांइ चांद निसि ठाढ 'पुकारइ'।
सीसु धुनति तिहि 'देवरइं' 'जनहुं नावित अभुवाइ'।
'कहब तंत अब ही हुत' 'आइउं' मंदिर पठाइ॥

सन्दर्भ—मै० १४८, बी० ५५०-५५२।

शीर्षक—मै०: फ़ुरुद आवरदन लोरिक लिबासे जोग व बखान: खीश रफ़तने लोरिक व बिरस्पति।

पाठान्तर—(१) १. मंडपि। (२) १. बी० सरगेहिं आई। २. बी०

बारि। ३. बी० निसि। (३) १. बी० सौ। २. बी० कैसे। (४) १. बी० दिनु झुरै। २. बी० भुगति न जानै पवनु। (५) १. बी० मदन। २. बी० सभारै। ३ बी० पुकारै। (६) १. बी० देहुरै। २. बी० जानौ नावट उभवाई (नावित अभुवाइ—फ़ा०)। (७) १. बी० बगत सुनाय बहुत कौ। २. बी० आयौ।

अर्थ—(१) उस मुनिवर (लोरिक ने) योग का दर्शन (वेष) उतार डाला और मढ़ को छोड़ कर वह क्षत्रिय [अपने] घर गया। (२) [उधर] सूर्य (लोरिक) को [घर] भेज कर बृहस्पति गई और उसने चांदा नारी को वे बातें बताईं। (३) चांदा ने बृहस्पति से इस प्रकार कहा (पूछा), "बता कि मढ़ में वह मुनिवर कैसा है।" (४) [बृहस्पति ने कहा,] "उसके नेत्रों से दिन भर निरंतर रक्त [के आंसू] झड़ते रहते हैं; न वह भुक्ति (भोजन) जानता है और नींद और आहार जानता है। (५) मलिन [प्रकृति वाले] कामदेव के वेध को वह नहीं संभाल पा रहा है, इसलिए वह रात्रि भर खड़े-खड़े 'चांद' 'चांद' पुकारता रहता है। (६) वह [उस] देवल (देवालय) में सिर पीटता रहता है, मानो कोई नावित (इरसनिया) अभुवाता हो। (७) मैं [उससे] तंत्र (युक्ति) कहूँगी, किन्तु अभी तो मैं उसे वहाँ से मंदिर (घर) भेज कर आई हूँ।"

११. लोर धवलगृह-आरोहण खण्ड

(१८०)

'दिवस दहां दिसि' 'भैइ(भइ) भेइ(भइ?)' 'आवइ'।
चांद लागि निसि रोइ 'बिहावइ'।
'खिन एक' संग साथ 'नहि बइसइ'। कया अमर बिनु मदिरि न 'पइसइ'।
मैनां आइ पाइ 'लइ' परी। लोरिक 'मंदिरि बइसु' इक घरी।
न्हाइ धोइ बस्तर 'पहिरावउं'। 'अउ'घसि'अगरु सीतरु तनिलाऊं(वउं)'।
सेज बिछाइ फूल 'बरु दासउं'। पिरम लागि मनि 'सांति करासउं'।
उतरु न देहि 'पिरम' 'झल फूटा' मुई नारि 'बिललाइ'।
'सवन' 'न' 'सुनइ चंद्र परि' चिंता रहा नैन 'दुइ लाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४६, बी० ५५३-५५५।

शीर्षक—मैं० : अज सहरा बखानए आमदने लोरिक व पाय उफ़्तादने मैंना ।

पाठान्तर—(१) १. बी० चौसदह दिस । २. मैं० फिरि फिरि । ३. बी० आवै । ४. बी० बिहावै । (२) १. बी० कहन (खिन—फ़ारसी) वगत । २. बी० न बैसै । ३. बी० पैसै । (३) १. बी० लै । २. मैं० बइसु कहूं । (४) १. बी० पहिराऊ । २. बी० औ । ३. मैं० चंदन सीप भरावउं । (५) १. बी० भरि बासौ । २. बी० साति करासौ । (६) १. मैं० पेम । २. बी० जानौ भूता । ३. बी० बिललाई । (७) १. बी० श्रवन । २. बी० में नहीं है । ३. बी० सुनै चद । ४. बी० दोइ लाई ।

अर्थ—(१) [लोरिक] दिन में दसों दिशाओं में चक्कर लगा-लगाकर आता और रातें चांद के लिए रो-रो कर बिताता । (२) एक क्षण भी [किसी के] संग-साथ न बैठता और असर (जीव) के बिना [हुई] उसकी काया मंदिर (भवन) में प्रवेश न करती । (३) मैंना आकर और [उसके] पैरों को पकड़ कर गिर पड़ी । [उसने कहा,] "लोरिक, घर में एक घड़ी [भर को] बैठो । (४) नहाओ, धोओ, तुम्हें वस्त्र पिन्हाऊं, और शीतल अगुरु घिस कर तुम्हारे शरीर मे लगाऊं । (५) शैया बिछा कर उस पर भला फूल बिछाऊं तथा तुम्हारे प्रेम में लग कर मन को शांति प्राप्त कराऊं ।" (६) [फिर भी] वह उत्तर न दे रहा था और प्रेम की ज्वाला फूट पड़ी थी, [यह देख कर] नारी (मैंना) बिललाती मर गई (चिल्लाती रह गई) । (७) लोरिक कानों से सुन नहीं रहा था, [क्योंकि] वह, हो न हो, चंद्र (चांदा) का चिन्तन कर रहा था और [उसी के ध्यान में अपने] दोनों नेत्र लगाए हुए था ।

(१८१)

'मरउं मरउं कइ' दिवसु 'तुलांना' । रइनि 'चांद जउ दिएउ पयानां' ।
चला बीरु बनखंड 'हइ' जहां । सिघ 'संदूर' 'चिघारहिं' तहां ।
सगर दिवस 'तिन्ह सेती भवै(वइ)' । 'रइनि' आइ गोवर महि 'गंवइ' ।
'मकु' चांदा खिन 'इकु दिखरावइ' । 'तेहि असरें' निसि 'गोवरां आवइ' ।
सरगपंथ 'दै(दइ)' लोचन 'लावइ' । 'पाउ धरत मकु' चांद दिषावै(वइ) ।

इन परि 'रइनि परावइ' 'दिन फुनि इनहीं' भांति ।
'चांद' सनेह 'बउरावा' तिल इक 'होइ' न सांति ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५०, बी० ५५६-५५८।

शीर्षक—मै० : सहरा गिरफ्तने लोरिक अज़ कमाल फ़िराक चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० रैनि चांद जौ दिहौ पयाना। २. बी० मरौं मरौं कै। ३. मै० लुलाना। (२) १. बी० है। २. बी० सिधौर। ३. मै० झकारहिं। (३) १. मै० तिन सेती भवै। २. बी० रैनि। ३. बी० गमै। (४) १. बी० मुकु। २. बी० दिखरावा। ३. बी० तिहि असिरैं। ४. बी० गोवर आवा। (५) १. मै० दोइ। २. बी० लावै। ३. बी० पाव धरत मुष। ४. मै० चांदा आवइ। (५) १. बी० रैन बौरावै। २. मै० अउ दिन फुनि इहिं। (७) १. मै० चांदा। २. बी० बौरायो। ३. बी० होय।

अर्थ—(१) [उस दिन] रात्रि में [मढ़ी से] जब चांद (चांदा) ने प्रयाण दिया (किया), तब से 'मर रहा हूं', 'मर रहा हूं' करते-करते दिन हो आया। (२) और वह वीर वहां के लिए चल पड़ा जहां बनखंड था; वहां सिंह तथा शार्दूल (शरभ) चीत्कार कर रहे थे। (३) सारे दिन वह उनके साथ भ्रमण करता रहता और रात्रि में गोवर में आकर विचरण करता। (४) चांदा एक क्षण के लिए दिखाई पड़ती, इसी आसरे से वह रात में गोवर आता। (५) नेत्रों को वह आकाश के मार्ग में देकर लगाए रखता और [वह इस आशा से] पैर रखता कि [किसी झरोखे में] चांदा दिखाई पड़ जाती। (६) इसी रीति से वह रातों को भगाता (बिताता) और पुनः दिनों को भी इसी भांति से [भगाता-बिताता]। (७) चांदा के स्नेह ने उसे बावला कर दिया था, [जिसके कारण] एक तिल भी शांति उसे नहीं होती थी।

(१८२)

परी 'केवच्छ' सेज न[हि] 'भावइ'।
'रइनि'चांद 'बिहफइ जो बोलावइ'।
'कह तेहिं सू(सु)रिजु कवन' घर बसा।
'बिख' सिर चढ़ा 'चेतु मोर' डसा।
'अहं कहुं होइ तेहिं जाइ बोलावहिं'।
सूरिजु आनि सेज 'बइसावहिं'।
चांद 'मरति लइ' सू(सु)रिजु 'जियावइ'।
'तउ का करबि मरें हुत' 'आवइ'।
आनि बिरसपति 'तो' पा सरनां। रै(रइ)नि दिवस आहि मोहिं मरनां।

'आंगि दाहु' मनि चटपटी घरु बाहरु न सुहाइ।
चांद 'न जीयइ भानु बिनु' आनि बिरसपति जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५१, बी० ५५९-५६१।

शीर्षक—मैं० : बेक़रार शुदने चांदा अज़ कमाल इश्क़ लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० कवीछ। २. बी० सुहाई। ३. बी० रैनि। ४. बी० दिवि पै जु बुलाई। (२) १. बी० सुरिजु कहौ कौन। २. बी० पष (बिख—फ़ारसी)। ३. बी० चित्तु मोर। (३) १. बी० जौ कहीं परिक(का)रि बुलावौहु। २. बी० बैसावहु। (४) १. बी० मरत पै (लइ—फ़ा०)। २. बी० जिवावै। ३. बी० तो को करिबि मुये हितु। ४. बी० आवै। (५) १. मैं० सो। २. मैं० राति। (६) १. बी० आंग दौह। (७) १. बी० भान बिनु न जीवै।

अर्थ—(१) [उधर] चांदा को शैया न भाती, [जैसे] उस पर केवांच पड़ी हो, और रात्रि में वह बृहस्पति को बुलाती। (२) उससे वह कहती (पूछती), "सूर्य (लोरिक) किस घर में बस रहा है ? [उसके विरह का] विष मेरे सिर पर चढ़ा हुआ है और मेरी चेतना को डस रहा है। (३) वह जहाँ-कहीं भी हो, जाकर उसे बुला दे और उस सूर्य (लोरिक) को लाकर [मेरी] शैया पर बिठा दे। (४) सूर्य (लोरिक) को ला कर मरती हुई चांद (चांदा) को जीवित कर, [अन्यथा] तब मैं [उसे] क्या करूंगी जब वह [मेरे] मरने पर आएगा ? (५) ऐ बृहस्पति, तू उसे लाए, मुझे तेरे पैरों की शरण है, [अन्यथा] मुझे रात-दिन मरना ही है। (६) [मेरे] अंगों में दाह रहता है और मन में विकलता रहती है, घर और बाहर [कुछ] सुहाता नहीं है। (७) चांद (चांदा) भानु (लोरिक) के बिना नहीं जी सकती है, [इसलिए] ऐ बृहस्पति, तू जा कर उसे ला।"

(१८३)

'हउं' निसि चांद सुरिज कब 'पावउं'।
दिवसु होइ 'चढि' सरगि' बोलावउ'।
बांधी 'पंवरि पंवरिया' जागहिं। तसकर 'बैरि' देखि 'डरि भागहिं'।
'तिवइहिं' 'कहां एत बउसाऊ'। 'रइनि कांप हिय उठइ' न पाऊ।
पावस राति देखि अंधियारी। 'कितु हुत सू(सु)रिजु हंकारउं' बारी।
जो' मन' रूच 'सो मिलइ' न बारा। 'भूष कि पावै(व)हि अंब सहारा'।

दिवस चारि तुम्ह 'साधन' 'एहिं' जोबन कइ 'आस' ।
चांद 'सुरिजु' 'मइं मेरउब' 'मानिहु भोग बिलास' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५२, बी० ५६२-५६४ ।

शीर्षक—मैं० : अँजन दर बेक़रारी चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ । २. बी० पाऊ । ३. बी० चरि । ४. बी० सरगि बुलाऊ । (२) १. बी० पौर पौरिया । २. बी० बीर (बैरि—फ़ारसी) । ३. बी० डर भागैहि । (३) १. बी० तिवइ । २. बी० येत कहा बौसाऊ । ३. बी० रैनि कांपैहि उटै । (४) १. बी० कत हुवैं सुरिजु बुलाऊ । (५) १. बी० मनु । २. बी० सि मिलै । ३. मैं० भूषौं आंत कि पाग संवारा । (६) १. बी० साधैहु । २. बी० इहि । ३. बी० तास । (७) १. मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०) । २. बी० मै मिरऊ । ३. बी० मानहु भोग बिरास ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ चांदा, मैं रात में सूर्य (लोरिक) को कब पा सकती हूँ ? दिन हो तो आकाश पर चढ़ कर उसको बुलाऊं भी । (२) पौरियों को बंद कर पौरिए जागते हैं, और तस्कर (चोर-डाकू) तथा वैरी [भी] उन्हें देख कर भाग निकलते हैं । (३) इतना व्यवसाय (पौरुष) [मुझ] स्त्री में कहा है ? रात्रि में हृदय कांपता है और पैर नहीं उठते हैं । (४) वर्षा की अंधेरी रात को देख कर मैं, हे बालिका, कहाँ से सूर्य (लोरिक) को हंकारूं (बुलाऊं) । (५) मन को जो रुचता है, हे बाला, वह नहीं मिलता भूखा क्या सहकार आम्र पाता है ? (६) हे भली स्त्री, चार दिनों तक ही है । तुम्हें इस प्रकार यौवन की आशा करनी है (उसका आसरा देखना है) । (७) [उसके बाद] मैं, हे चांद, सूर्य (लोरिक) को [तुम से] मिलाऊंगी, [और] तुम भोग-विलास मानना ।"

(१८४)

उतरी चांद 'बइठि' पटसारा । उदिनल भानु 'किएसि' उजियारा ।
चली बिरसपति 'झमकै पाहां' ।
'डंडकारन (डंडक अरन)' 'ब्यंझ (बिंझ)' बन माहां ।
जाइ तुलानि बीर 'कें बासा' । 'सींह संदूर' फिरहिं चहुं पासा ।
देखा लोर बिरसपति आई । नैन रगत भरि नदी बहाई ।
बिरसपति तोर पंथ 'हउं जोंवउं' । खिन इकु राति 'दिवस' 'नहिं' 'सोंवउं' ।

'काहि' संदेसु 'कहि पठऊ(वउं)' 'को रि(रे) जनावै(वइ)' बात।
कारि राति 'बन अंधिया(य)र' 'अउ हउं' 'चांद' चांद चिललात॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५३, बी० ५६५-५६७।

शीर्षक—मैं० : फ़ुरूद आमदने चांदा अज़ क़स्र व फ़रिस्तादने बिरस्पति रा बर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बैसि। २. बी० धोसु। (२) १. बी० झबकी बाहा (पाहां—फ़ारसी)। २. बी० डंडाकार। ३. मैं० बीच। (३) १. बी० कै पासा ('पासा' दूसरे चरण का भी तुक है)। २. बी० सिंघ सिधौर। (५) १. बी० मै जोऊ। २. बी० दिवसु। ३. मैं० न। ४. बी० सोऊ। (६) १. मैं० कहि। २. मैं० जेहिं पठई। ३ मैं० कवन जनाए। (७) १. बी० मोहि दूभर। २. बी० में नहीं है। ३. बी० संवरि।

अर्थ—(१) चांद [भवन के ऊपरी खंड से] उतरी और पटशाला मे जा बैठी [तब] उदीयमान भानु ने प्रकाश किया। (२) बृहस्पति झमकते हुए पैरों से (तेज़ी से) विंध्य वन के दण्डकारण्य में चल कर गई। (३) वह [लोरिक] वीर के निवास पर जा पहुँची, सिंह तथा शार्दूल (शरभ) उसके चारों ओर फिर रहे थे। (४) लोरिक ने देखा कि बृहस्पति आई हुई थी, तो उसने नेत्रों में रक्त भर कर उसकी नदी बहा दी। (५) [उसने कहा,] "ऐ बृहस्पति, मैं तेरा मार्ग देख रहा हूँ, और रात-दिन में एक क्षण भी नहीं सो रहा हूं। (६) मैं किससे सन्देश कह कर भेजूं और कौन [मेरी] बात (वार्ता) जनाए (सूचित करे)? (७) काली रात [जैसा] अंधकारपूर्ण वन है, और मैं [उसमें] 'चांद' 'चांद' चिल्लाता हूं।"

(१८५)

'तोरिइं पीर लोर हउं' पीरी। पान न 'खांडौं(डउं)' 'एकउ' बीरी।
अब 'मइं तो कहं' गुनु उपराजा। 'हिरदइं मतु रइनि एक' साजा।
'पवरि' पंथु 'तोहि' जाइ न जाई। बारकु 'होइ तउ' लेउ लुकाई।
'उटउ' बीर 'जउ' 'उटवइ' पारसि। सरग पथ 'जउ चढ़त' संभारसि।
'कइ' कारन 'हनिवन' बरु बांधसि। 'कइ' कर लाइ 'पुंख' सर सांधसि।
'कइ रे' फांस 'बरु मेलसु' 'जउ' 'रे' सरगि 'चढ़ि' जासु।
'कइ रे' चांद 'रवि(रबि)' 'भूंजसु' 'दुहुं तस सरग निबा(वा)सु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५४, बी० ५६८-५७० ।

शीर्षक—मैं० गुफ़्तन बिरस्पति बर [?] ।

पाठान्तर—(१) १. बी० तोरि पीर लोरिक हौं । २. मै० खाडउ (खाड्उं—ना०) । ३. बी० येकै । (२) १. बी० मैं तो कौ । २. बी० हिरदै मतरु रैनि कौ । (३) १. बी० पैरि । २. बी० तुहि । ३. बी० होउ तौ । (४) १. बी० उटै । २. बी० जै । ३. बी० उटवैं । ४. बी० जौ चरे । (५) १. बी० कै । २. बी० हनवंत । ३. बी० पांख । (६) १. बी० कै रु । २ बी० बर मेल्हसि । ३ बी० तौ । ४. बी० रु । ५. बी० चरि । (७) १. बी० तौर । २. 'रवि' पाठ दोनों प्रतियों में है । ३. बी० भूजसि । ४ बी० बैठि सरग कै पासि ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "तेरी ही पीड़ा से, ऐ लोरिक, मैं [भी] पीड़िता हूं : [एक] बीड़ा भी पान मैं नहीं खंडित कर रही हूं । (२) अब मैंने तेरे लिए [एक] गुण (उपाय) उत्पादित किया है, हृदय में मैंने रात मे एक मंत्र साजा है । (३) पौरी के मार्ग से तुझसे जाया न जाएगा, यदि कोई बालक हो तो मै उसे छिपा भी लूं । (४) ऐ वीर, तू पुरुषार्थ कर, यदि तू पुरुषार्थ कर सके, यदि तू आकाश के मार्ग पर चढ़ते समय अपने को संभाल सके । (५) या तो [उसके ?] कारण तू हनुमान का बल बांधे, और या तो तू हाथों से लगा कर पुंख (बाण के अग्रभाग) में शर (सरकंडा) लगाए । (६) यदि तू आकाश (धवलगृह के ऊपरी भाग) पर [किसी युक्ति से] चढ कर जा सके तो या तो तू [अपने गले में] फांसी लगाएगा, (७) और या तो तू, ऐ सूर्य, चांद (चंद्र) का भोग करेगा; दोनों ही प्रकारों से तुझे स्वर्ग का निवास [प्राप्त] होगा ।"

(१८६)

'जउ सो' वचन बिरसपति कहा । 'लोरिक बीरु' 'हियइं' 'गहगहा' ।
मन रहंसा कह आजु 'मेरावा' । 'जेहि लगि' 'सुरिजु रैनि दिन' धावा ।
बिरह झार आछत 'कुंबिलाना' । रहंसा 'कुवरु(कंवरु)' भांति 'बिगसाना' ।
सो मोहि बाट आइ दिखराऊ । 'जेंहि चढ़ि' जांउं चांद कर ठाऊ ।
धन सो राति जेहि सजन 'मिलाइहिं' । चांद सुरिजु 'दुइ' 'कोड' 'कराइहि' ।
चली बिरसपति सरगेहि सूरिजु 'गोहनि' लाइ ।
जहां चांद निसि 'बिसवइ' गई 'सो' पंथ 'दिखाइ' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५५, बी० ५७१-५७३।

शीर्षक—मैं० : बुरदने बिरस्पति लोरिक रा व नमूदन राहे क़स्र चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जौ ये। २. मैं० लोर। ३. बी० हिये। ४ मैं० कै गहा। (२) १. बी० मिलावा। २ बी० जिहि लगु। ३. मैं० सूर सरग चढि। (३) १. मैं० कुंमिलाना। २. मैं० कंवल। ३. मैं० बिहसाना। (४) १. बी० जिहि कर। (५) १. बी० मिराहीं। २. बी० दोइ। ३. मैं० गवन। ४. बी० कराहीं। (६) १. बी० गौहनि। (७) १. बी० बिसई। २ बी० जु। ३. मैं० दिखराइ।

अर्थ—(१) जब बृहस्पति ने यह वचन कहा, लोरिक वीर हृदय मे गद्गद हो गया। (२) वह मन में हर्षित हुआ और उसने कहा, "आज मिलाप होगा, जिसके लिए सूर्य (लोरिक) रात-दिन दौड़ रहा था।" (३) विरह-ज्वाला से वह कुम्हलाया हुआ था, [अब] वह हर्षित हो गया और कमल की भांति विकसित हो गया। (४) उसने कहा, "तू आकर मुझे वह बाट दिखा, जिस पर चढ़कर मै चांद के स्थान पर जा सकं। (५) वह रात धन्य होगी जिस रात में स्वजन मिलेंगे और चांद (चांदा) तथा सूर्य (लोरिक) दोनों क्रीड़ा करेंगे।" (६) बृहस्पति सूर्य (लोरिक) को साथ लगाकर आकाश (धवलगृह) की ओर चली, (७) और जहां पर चादा रात में विश्राम करती थी, वह (उसका) मार्ग [लोरिक को] दिखा गई।

(१८७)

पाट 'पढीनां' लोर बिसाहा। 'बरति' साठि गुन कीत बराहा।
मयन मांजि लोरिक तस तानां। 'जानु' सरग 'कहं रचे' बिवाना।
मुख भुवंग 'जनु धर हुत' काढ़ा। हाथ तीस 'एक आछइ' ठाढ़ा।
अकुरी सार'करी'तेंहि लाई। जिहि'परी(रि)परइ' तेहि निछुटि न जाई।
खड खंड लाग फांद 'सै चारी'। बीर पाउ जहं 'धरइ' संभारी।
देखि पूछ अस मैनां बरहा 'करियहु' काह।
'परइ' भइंसि अति' मारग 'बांधइ 'चाहत' 'आहि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५६, बी० ५७४-५७६।

शीर्षक—मैं० खरीदने लोरिक अफ़रेशम खाम बराए साख्तने कमंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० बुढनिया। २. बी० बरत। (२) १. बी० जानौ। २. बी० कौ रचे। (३) १. मैं० हुत जनु धर, बी० जानौ धर ते।

२ बी० यक आछै । (४) १. बी० गढी । २. बी० रु (५) १. मै० संचारी । २ बी० जहां धरै । (६) १. बी० करिहौ । (७) १. बी० बुरी (परइ— फा०) । २. बी० मारनि । ३. बी० बांधी । ४. बी० आह ।

अर्थ—(१) लोरिक ने पढीना (?) पाट (पटसन) मोल लिया और उसको साठ गुण वट कर उसने एक बरहा (रस्सा) बनाया (तैयार किया)। (२) मोम से मांज कर उसे उसने इस प्रकार ताना (तान कर खड़ा किया) कि मानो आकाश के लिए उसने विमान रचा हो, (३) अथवा मानो वह किसी भुजंग (सर्प) का मुख हो जो धड़ [अथवा धरा] से निकाला हुआ और तीस हाथ की ऊंचाई तक खड़ा हो। (४) उससे लगा कर फौलाद की एक आंकड़ी उसने की, कि जो जिस प्रकार से भी पड़े उसी प्रकार से वह छूट कर न जाए। (५) खंड-खंड पर [उसमें] चार सौ फंदे लगे हुए थे, जिन्हे पकड़ कर वह वीर संभाल कर पैर रखता। (६) उस [बरहे को] देखकर मैना पूछने लगी, "यह बरहा क्या करोगे ? (७) [लोरिक ने कहा,] "[मेरी] भैंस मार्ग में अत्यधिक [इधर-उधर] पड़ती रहती है, इससे उसी को बांधना चाहता हूं।"

(१८८)

छठि भादवं निसि भइ अंधियारी । नैन न 'सूझइ' बांह पसारी ।
चला बीरु बरहा कर लावा । जिय 'के परें' दूसर न बोलावा ।
घन 'गरजइ' भरि 'दइउ' बरीसा । 'खोरि भरी जनु' बाट न दीसा ।
दादुर 'ररहिं' वीजु 'चमकाई' । 'अइस न जान कवनि दिसि जाई' ।
'मसियरु' देखि 'झरोंखइं' पासा । 'लोरिक जान' 'नखत परगासा' ।
'चित (चित्त)' भुलान 'न संभारा' मंदिर 'कवनि दिसि आहि' ।
दिवसु होत तौ(तउ) 'चित(चित्त)धरउं' 'इतरु गहउं तउ' काह ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५७, बी० ५७७-५७९ ।

शीर्षक—मै० रवां शुदने लोरिक दर शबे तारीक······(अपाठ्य) सूए कस्र चांदा ।

बी० : फासा मेला—जो प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा दिया हुआ ज्ञात होता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० सूझै । (२) १. बी० क बरीति । (३) १. बी० गरजै । २. बी० देव । ३. बी० खोर भरे जानौ । (४) १. बी० रढै । २ बी० चमकाही । ३. बी० अैस न जानै कै दिस जाहीं । (५) १. बी०

मसिहरु २ बी० झगोष । ३ बी० लोरिक जान म० लोर जान ४ बी० निषतु परकासा । (६) १. बी० चित । २. बी० न सभारै । ३. बी० कौहु दिस आह । (७) १. बी० जिउ धरियै । २. बी० उतरु (इतरु—फ़ा०) करौ तौ ।

अर्थ—(१) भादों की छठी तिथि को [जब] अंधेरी रात हुई और बाँहे फैलाइए तो वे [अपने ही] नेत्रों से नहीं सूझती थीं, (२) वह वीर चल पडा । हाथ में वह उसने बरहा लगा लिया और अपने जीव के अतिरिक्त किसी दूसरे को उसने न बुलाया । (३) घन गरज रहे थे और दैव भरपूर बरस रहा था, खोरियां (गलियां) भरी हुई थीं, मानो मार्ग नहीं दिखता था । (४) दादुर चिल्ला रहे थे और बिजली चमक रही थी, ऐसा नहीं जान पड रहा था कि किस दिशा में जाइए । (५) झरोखे के पास [जल रहे] मशालों को देख कर लोर ने समझा कि नक्षत्रों का प्रकाश था । (६) [उसने कहा,] "चित्त भ्रमित हो गया है, इसलिए वह यह नहीं स्मरण कर रहा है कि [चांदा का] मंदिर (भवन) किस दिशा में है । (७) दिन होता तो चित्त मे [उसके मंदिर को] धारण करता; यदि इतर [मंदिर] पकड़ूँ तो क्या [लाभ] होगा ? ।"

(१८६)

'कौधा लौकें भा' उजियारा । 'चरचा' लोरु मंदिर मंसियारा ।
'संवरेसि' 'भीम केर बउसाऊ' । 'मेलेसि' बरहु रोपि धर पाऊ ।
परा बरहु 'तउ' चांदा जागी । 'अंकुरी देख' चौखंडी लागी ।
'झांखा' चांद लोरु तरि आवा । अंकुरी काढ़ि बरहु छिटकावा ।
'जेउं जेउं' मेलि मंदिर पर जाई । हंसि हंसि चांदा देइ छिटकाई ।
'एक बार' वर 'आनउं मेलउं' 'वरह' फिराइ ।
'काटउं ठौर' तीस 'एक' 'जउ' न मंदिर पर जाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५८, बी० ५८०-५८२ ।

शीर्षक—मै० : दर फ़र्सीदन बर्क़ व शिनाख्तन लोरिक ख़ान: चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कवधा लवकै भया । २. मै० चरचिया । २) १. बी० सवरसि । २. बी० भीव केर बैसाऊ । ३. बी० मेलसि । ३) १. बी० तब । २. बी० अंकुर देषि । (४) १. बी० झाका । ५) १. बी० ज्यौं ज्यौं । (६) १. बी० ये । २. बी० नै मिलिवो । ३. बी० बहुरि । (७) १. बी० काटौ ठाव । २. बी० यक । ३. बी० जो ।

अर्थ—(१) [जब] बिजली के चमकने से प्रकाश हुआ, तब लोर ने [चादा के] मंदिर के मशाल को जान लिया। (२) उसने भीम के पौरुष का स्मरण किया, और धरा पर पांव रोप (स्थित) कर उसने बरहा डाला (फेका)। (३) बरहा पड़ा, तब चादा जाग गई, और उसने देखा कि [बरहे की] आंकड़ी चौखंडी में लगी हुई थी। (४) चांदा ने झांका तो देखा कि लोर नीचे आया हुआ था, तो उसने आंकडी निकाल कर बरहे को छिटका दिया। (५) जैसे-जैसे (जब जब) वह बरहा मंदिर पर मेला (फेंका) जाता, चादा हंस-हंस कर उसे छिटका देता। (६) [लोरिक ने कहा,] "एक बार [और] बल लाऊं (एकत्रित करूं) और बरहे को फिरा कर डालूं (फेंकूं)। (७) यदि यह मंदिर पर [फिर भी] न जाए, तो इसे तीस-एक स्थालों पर काट डालूं।"

(१९०)

चाद कहा अब लोरिकु 'जाइहि'। मन उतरें 'फुनि फिरि नहि आइहि'।
'हउं असि बोलिउं' चतुरि सयानी। बरहा 'छाडिउं कवनि' अयानी।
हाथ क मानिकु 'समंदियहि राई'। 'मुइय' 'सो' हाथ 'न चढई' आई।
'कइ औगुन' 'भयं मइं गुनु' तोरा। परा 'बरहु' 'बुधि' 'हीनिइं' छोरा।
'दइय' ठाउं जउ मांगा 'पावउं'। 'मेल बरहु खांभहि' 'लइ लावउ'।

'दइय बिधाता बिनवउं' सीसु नाइ कर जोरि।
परा 'फांद पुनि मोरें' 'जाइ बरहु जिनि तोरि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५९, का०, बी० ५८३-५८५।

शीर्षक—मै०: अफ़सोस करदन चांद बाज़ गुज़ाश्तने कमंद।

का०: अफ़सोस करदन चांदा गुज़ाश्तने कमंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैहै। २. बी० फिरि बहुरि न अैहै। (२) १. बी० हौं कस बोलियों। २. बी० छाड्यौं कौन। (३) १. का० समदि बडाई, बी० समदिया राई, मै० समदियहि राई। २. मै० बहुरि, का० मुएहु। ३. बी० स। ४. बी० न चरई। (४) १. बी० कै ओगन। २ मै० मयं वाएं कइ, बी० मैं सो गुनु। ३. बी० फंधु। ४. का० में नहीं है। ५ बी० हीनी। (५) १. बी० दई। २. बी० पाऊ। ३. का० मेली (मेलि) बरह खांभ (खांभहि), बी० मेलै बरहु षंभि। ४. बी० लै लाऊ। (६) १. बी० दई बिधात बीनऊ। (७) १. बी० फासु बसि मेरैं। २. का० अपाठ्य है, बी० जाय बरहु जिन तोरि।

अर्थ—(१) चांद (चांदा) ने [मन में] कहा, "अब लोरिक [चला] जाएगा, और मन के उतर जाने पर वह पुनः न आएगा। (२) मैं ऐसी चतुरा और सयानी कहलाती रही हूं, तब मैंने [उसके द्वारा फेंके हुए] बरहे को किस अज्ञान के कारण छोड़ दिया ? (३) हाथ का माणिक्य यदि राजा को समंद (भेंट कर) दीजिए, तो वह पुनः हाथ नहीं चढ़ता (आता) है। (४) अवगुण (अपवाद) का भय करके मैंने [लोरिक का] गुण (फंदा) तोड दिया (छिटका) और पड़े (लगे) हुए बरहे को मुझ बुद्धिहीना ने खोल दिया। (५) [अब तो] यदि दैव के स्थान (दरबार) में मांगा हुआ पाऊं और वह बरहे को मेले (फेंके), तो मै उसे लेकर खंभे से लगा दूं। (६) देव और विधाता से मैं सिर नमित कर और हाथ जोड़ कर विनय करती हूँ (७) कि [अब] फंदा [मेरे मन में] पड़ गया है, इसलिए ऐसा न हो कि वह (लोरिक) बरहे को तोड़ कर चला जाए।"

(१९१)

'बीर भुआ बर' बरहु फिरावा। 'तस मेलेसि जस निछुटि' न आवा।
परा बरहु 'तउ' चांदा धाई। 'अंकुरी' मंदिर खांभ 'लइ' लाई।
रहा बरहु लोरिक 'धरि' तानां। माल 'जुगुति पउ धरेसि सुआनां'।
बीर परान 'बरन गुन काहा'। 'बेडिनि' बांस 'चढ़ति जनु आहा'।
'चादइं देख लोरिकु' गा आई। सेज 'सुभर होइ' 'बिसई' जाई।
'चढ़ा' लोरु धौराहरि 'देखेसि' बिषम अवास।
सरग 'नियर' धर औहट रांध न 'केऊ' पास ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६०; का० के प्राप्त अंशों में यह छंद नहीं है किन्तु पूर्ववर्ती छंद के बाद उसमें इस छद का तर्क "वीर भुआ" है अतः का० मे भी इसका रहा होना प्रमाणित है; बी० ५८६-५८८।

शीर्षक——कमंद अंदाख्तने लोरिक व रिहा करदने चाद बसतून।

पाठान्तर—(१) १. बी० बीरि भुवारि। २. बी० तैस मेला जैसै बहुरि। (२) १. बी० तव, मैं० तउ तिरि। २. बी० अंकुरि। ३. बी० लै। (३) १. बी० भरि। २. बी० जुगति पगु धरसि बिवाना। (४) १. बी० रगै (बरन गुन—फ़ा०) कहा। २. बी० नाचनि। ३. बी० चरति जैसै रहा। (५) १. मैं० चांदइं देख लोर, बी० चांद देषि लोरिकु। २. बी० नभर भै। ३. मैं० बिसवइं। (६) १. बी० चरा। २. बी० देषति। (७) १. बी० नीरै। २. बी० कौउ।

अर्थ—(१) वीर [लोरिक] ने भुजाओं के बल से बरहे को चक्कर दिया और ऐसा डाला (फेंका) कि वह [पुनः] खुल कर न आता। (२) बरहा जब पड़ गया, तब चांदा दौड़ी [आई] और उसकी आंकड़ी को लेकर उसने मंदिर के खंभे में लगा (फंसा) दिया। (३) जब बरहा रह (रुक) गया, तब उसको लोरिक ने पकड़ कर ताना (खींचा) और उस सुजान ने मल्ल की युक्ति से [उस पर] पैर रक्खा। (४) उस वीर के प्राणों (पुरुषार्थ) के गुण का क्या वर्णन किया जाए? मानो कोई देड़िन (नट का खेल दिखाने वाली स्त्री) बांस पर चढ़ रही हो। (५) चांदा ने देखा कि लोरिक आ गया था, तो वह शैया में सुभर होकर (फैल कर) जाकर विश्राम करने लगी। (६) लोरिक जब धवलगृह (प्रासाद) पर चढ़ गया, उसने उस विषम आवास को देखा। (७) वह ऐसा था कि आकाश उसके निकट था और धरती ओहट (दूर) थी, न कोई रांध (निकट) में था और न पास में।

(१६२)

लोरिक 'लीति' खांभ 'परिछांहीं'। सो 'देखिसि जो देखा' नाहीं।
'दिया साठि लिरि खांभइं बरहीं'। जगमग रतन पदारथ करहीं।
'हियरइं' हारु 'धरि(री) तसि' जोती। सरग नखत 'जनु बइठे' मोती।
चेरी 'सोइ जो' पहरे गई। 'जानु' अकासि 'कचपची' उई।
'बिसवइ' चांद संपूरन 'जहां'। मानिक 'जोति तराइनि' 'तहां'।
'रइनि' मांझ 'जस' दिनु भा नांही 'पैर पराउ'।
'चढ़ि' 'लोरिक' 'सो' देखा जो न 'दीख हुत' काउ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६१, बी० ५८६-५६१।

शीर्षक—मैं०: बर बालाए क़स्र ईस्तादने लोरिक व दीदने तमाशाए ख्वाबगाहे चांदा व ख़ुफ़्तने कनीज़गान।

पाठान्तर—(१) १. बी० लीन्ह। १. बी० परछाही। ३. बी० देषा जो देषसि। (२) १. बी० दियर साठि नौ षंभ बराही। (३) १. बी० हीयरै। २ बी० धरा तस। ३. बी० जानौ बैठे। (४) १. बी० सोय जु। २. बी० जानौ। ३. बी० किरकची। (५) १. बी० बिसई। २. मैं० लहां। ३. बी० दिपैहि तरायन। ४. मैं० जहां। (६) १. बी० रैनि। २. बी० जैसौं। ३. बी० बीर बराउ (पैर पराउ—फ़ा०) (७) १. बी० चरि। २. मैं० लोर। ३ बी० अ [स]। ४. बी० देखो हुति।

अर्थ—(१) लोरिक ने खंभों की प्रतिच्छाया (आड़) ली और उसने वह देखा जो [पहले कभी] नहीं देखा था। (२) साठ दीपक तीन (?) खभो पर जल रहे थे, और रत्न तथा पदार्थ (बहुमूल्य पत्थर) जगमग कर रहे थे। (३) [चांदा के] हृदय पर के हार ने भी वैसी ही ज्योति धारण कर रक्खी थी और उसमें जो मोती बिठाए हुए थे, वे [ऐसे लग रहे थे] मानो आकाश मे नक्षत्र हों। (४) चेरियाँ जो पहरे के लिए जाकर सोई हुई थीं, वे [ऐसी लग रहीं थी] मानो आकाश में कचपचियां उदित हुई हों। (५) सम्पूर्ण चाद (चांदा) जहां पर विश्राम कर रही थी, वहा पर माणिक्यों की ज्योति ही तारिकाओं की ज्योति हो रही थी। (६) रात्रि में ही जैसे दिन हो रहा था [इसलिए लोरिक के] पैर नहीं पड़ रहे थे। (७) लोरिक ने चढ़ कर वह देखा जो उसने [पहले] कभी न देखा था।

(१९३)

झारि चौखंडी ईंगुर बानी। चित्र उरेह 'कीन्ह' 'सोनवानी'।
लक 'उरेहि' भभीखनु 'रेहा'। 'संची' 'मानु दसगियं कइ' देहा।
'छीतां' हरन राम संगरामू। दर 'पांडव' कुरखेत 'क' ठाऊ।
'खरपरा' चोरुकौडिया जुआरू। 'उजइनी(नि)' 'नगरी' अगियाबेतारू।
'मांझ हो(हि ?) पंडु काबि लिहि' लावा। 'चकाबूह' 'अरियहु' उचावा।
सींह 'संदूर' 'मिरिग मिरिगावन' 'सावज' 'अनवन' भांति।
कथा 'काबि' सिरलोक नटारंभ 'लिखी (खि)' लाए चहुं पांति॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९२, शि०, बी० ५९२-५९४।

शीर्षक—मै० : सिफते नक़शकारी चौखंडी। शि० में शीर्षक, (३), (६)।२ तथा (७) अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. बी० की (किए—फ़ा०)। २. बी० सुनवांनी। (२) १. बी० उरेह। २ बी० रहा। ३. शि० संचीं, बी० साजी। ४. बी० मुन दसगैं की। (३) १. मै० सीता। २. बी० पंडौ। ३. बी० का। (४) १ मै० करिया, बी० षपरा। २. बी० उजिन। ३. शि० में स्पष्ट नही है, बी० नयरु। (५) १. बी० माछी ब्यंदु खाभ लै। २. बी० चंकबोह। ३. बी० आरोहि। (६) १. बी० सिंधौर। २. मै० मिरिघ मिरिघावन, बी० मिरग मिरगावा। ३. मै० में नहीं है। ४. बी० अन [अन]। (७) १. बी० काब्य। २. बी० लिखैं (लिखी : लिखि—फ़ा०)।

अर्थ—(१) [उसने देखा कि] सारी की सारी चौखंडी ईंगुर के वर्ण

की थी, और उसमें चित्रों का उरेह (उल्लेखन) सोने के पानी से किया हुआ था। (२) लंका को उरेह कर [उसमें] बिभीषण को उरेहा गया था, और दशग्रीव की देह मानो [उस में] संची हुई थी। (३) सीता-हरण और राम का [रावण से हुआ] संग्राम, पांडव-दल तथा कुरुक्षेत्र का स्थान भी [उरेहे हुए थे]। (४) खर्पर चोर और कौड़िया (कौड़ी ढालने वाले) जुआड़ी उरेहे हुए थे, उज्जयिनी नगरी और [उसमें] अगिया बैताल उरेहे हुए थे। (५) मध्य में ही पांडवों का काव्य (महाभारत ?) अंकित कर लगाया हुआ था, और वह चक्रव्यूह [अंकित हुआ] था, जिसे शत्रुओं ने उठा रक्खा था। (६) सिंह, शार्दूल (शरभ), मृग, मृगारण्य और श्वापद (हिंस्र जंतु) अनबन (अनहोने) भांति के [उरेहे हुए] थे। (७) कथा काव्य के श्लोक और नाट्यारंभ (नाट्य ग्रंथ) चार पंक्तियों में लिख (उरेह) कर लगाए हुए थे।

(१९४)

'लवटि देख जउ' कूंकू लोरा। चंदन घसि भरि धरे कचोरा।
'बेनां' परिमलु अति औछरा। 'ठौर ठौर' खर तेलिया जरा।
मेध सुगंध 'आहि' असरारू। चोवा बास 'होइ' महंकारू।
खैर कपूर सुरंग सुपारी। पान अडागर धरे संवारी।
नरियर दाख चिरौंजी 'आहा'। खांड 'खंडौर' 'कहउं' तेहि काहा।
'लोरहिं लीन्हि खांभ' परिछाहीं 'परा जाइ' मुख 'जोव'।
धनु बिरास चांदा कर बासु 'मांति' निसि 'सोव'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६३, बी० ५६५-५६७।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते खुशबूए हर जिन्स आरास्तः गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लवटि देषि जौ। (२) १. बी० बीना (बेना—फ़ा०)। २. बी० ठाव ठाव। (३) १. बी० अते। २. बी० होय। (५) १. बी० अहा। २. बी० गदौर। ३. बी० कहं। (६) १. बी० लोरु बैठ। २. बी० सिर उचाइ। ३. मै० जोइ। (७) १. बी० मांत। २. मै० सोइ।

अर्थ—(१) जब लौट (घूम) कर कूंकू लोरिक ने देखा, [उसे दिखाई पड़ा कि] चंदन घिसे जाकर कच्चोलों में भर कर रक्खे हुए थे। (२) बीरण (खस) का परिमल अत्यधिक उछल (महक) रहा था और स्थान-स्थान पर तेलिया प्रखर रूप से जल रहा था। (३) मेद की सुगंध असराल

(निरंतर) हो रही थी, और चोवा की महकीली वासना [भी] हो रही थी। (४) खैर (कत्था), कपूर, अच्छे रंग की सुपारी, तथा समूचे पान संवार कर रक्खे हुए थे। (५) नारियल, द्राक्षा, तथा चिरौंजी थे, और जो खांड तथा खडौर (खण्डपूर—शक्कर के लड्डू) थे, उन्हें क्या कहूँ ? (६) लोर ने खभो की प्रतिच्छाया ली और वह जा कर [चांदा का] मुख देखने लगा। (७) [उसने कहा,] "चांदा का विलास धन्य है, जो [सुवासों से] मस्त रात में सो रही है।"

(१६५)

पालिक सेज 'जो' आनि बिछाई। धरत पाउ भुइं 'लागइ' जाई।
पाट 'बिनी' 'अरु' 'फूल उभारी'। 'सोनइं झारी हांस कुंदारी'।
सुरंग चीरु इकु आनि बिछावा। धरती 'लागि' चहूं दिसि आवा।
'तेहि चढ़ि' सूति रवनि 'बेकरारा'। 'खोंपा' छूटि छिटकि गए बारा।
बहु 'भति करी फूल बहु' बासी। करंडी चारि 'भोर भर दासी'।

लोरु 'जान अइ' बिसहर पुहुप बास रस आइ।
'मनसा' हाथ 'पसारइ' कांपि 'उठइ' डरपाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६४, बी० ५६८-६००।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते तख़्ते ज़री व मुकल्लल व जवाहरब (?) चिराग।

पाठान्तर—(१) १. बी० जु। २. बी० लागे। (२) १. बी० बुने। २ बी० औ। ३. मैं० फूलन्ह भारी। ४. बी० सोनें झारे हंस कुडारी। (३) १ मैं० बइसि। (४) १. बी० तिहि चरि। २. बी० बिकरारा। ३. बी० खुपा। (५) १. बी० भातें करि फूल औ। २. बी० सौरि पर डासी। (६) १. बी० जानये (आइ—फ़ा०)। (७) १. बी० मन सैं। २. बी० पसारैं। ३. बी० उठी।

अर्थ—(१) जो पलग की शैया लाकर बिछाई हुई थी, वह पांव रखते ही भूमि से जा लगती थी। (२) वह रेशम से बिनी और फूलों से उभाडी हुई थी। वह सोने की झाली (पानी चढ़ाई ?) हुई और हांस (?) की कुदारी (कुंदी की) हुई थी। (३) उस पर एक सुरंग (अच्छे रंग का) चीर लाकर बिछाया हुआ था, जो धरती पर चारों ओर बैठला (लिपटता हुआ) आया था। (४) उसी पर चढ़ कर वह रमणी बेचेत सो रही थी, : उसके खोपें (बालों के जूड़े) से छूट कर उसके बाल छिटक गए थे। (५) वह [शैया] बहुतेरी भांति की कलियों और बहुतेरे फूलों से सुवासित थी, उनकी : चार करण्डियां दासियां भोर (प्रभात) होने पर भरती थीं (६) लोर ने समझा कि

यह [कोई] विषधर (सर्प) था जो उन पुष्पों के सुवास-रस के लोभ में बहा आया हुआ था। (७) वह [उस रमणी को] छूने के लिए हाथ पसारने (बढ़ाने) की इच्छा करता था किन्तु [फिर] वह डर कर कांप उठता था।

(१६६)

'गेडुवा' चांद धरा उढिकाई। दिनियर 'पइतिइं' वैठेउ आई।
मुखा कंवलु 'जनु बिहसत' अहा। अधर सुरंग 'बरन गुन' 'कहा'।
सोवत 'फिरा हिएं कर' चीरू। 'अस्थन' देखि मुरुछि गा बीरू।
'चित्तहिं कहई' आपु 'जनावउं'। 'पाय धरउं गइ बिगति सुनावउ'।
'फिरि कइ' लोरु चहूं 'दिसि' आवा। 'मनि संका नहि सोवत' जगावा।

गा परान बर पौरुख 'बीरहि बकति' न आउ।
'जीउ उडाना(न)' 'मनि संका 'केहि' बिधि सोवत जगाउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६५, बी० ६०१-६०३।

शीर्षक—मै०: बेदार करदन लोरिक चांदा रा अज़ ख्वाब।

पाठान्तर—(१) बी० गिडुवा। २. बी० पैतिहि। (२) १. बी० जानौ बिगसत। २. बी० बरंगौ (वरन गुन—फ़ा०)। ३. मै० काहा। (३) १ बी० हिये बिहरि गा। २. बी० स्तन। (४) १. बी० चिंता है कस। २ बी० जगाऊ। ३. बी० पाव धरौ कै बगत सुनाऊ। (५) १. बी० फिर कै। २. बी० दिस। ३. बी० मिसु कै सोवत न सकै। (६) १. बी० बीरैहि बगत। (७) १. मै० जीउ दान। २. बी० कहि (केहि—फ़ा०)।

अर्थ—(१) चांदा ने गेंडुआ (गोली तकिया) इस प्रकार उढका कर रक्खी थी कि मानो दिनकर (सूर्य) पैंती (?) पर आकर बैठ गया हो। (२) उसका मुख-कमल मानो विहस रहा था; उसके सुरंग (सुदंर) अधरो के गुण का क्या वर्णन किया जाए? (३) सोते समय उसके हृदय पर का चीर हट गया, तो [खुले हुए] स्तनों को देखकर वह बीर मूर्च्छित हो गया। (४) चित्त में वह कहने लगा (सोचने लगा), "अपने आप को जना दूं, उसके पैर पकड़ूं और [उसे] अपनी गई-बीती सुनाऊं।" (५) [यह सोचते-सोचते] लोरिक [शैया के] चारों ओर घूम आया, किन्तु मन में वह शंकित था इसलिए उसने उसे सोते से जगाया नहीं। (६) उस के प्राण, बल और पौरुष चले गए थे, और उस वीर के [मुख से] वाक्य नहीं निकल रहे थे, (७) मन मे [की] शंका के कारण उसके प्राण उड़ गए थे, फिर वह किस प्रकार उसे सोते हुए ?

१२. चांदा-लोर-संवाद खण्ड

(१९७)

'उछरत' बीर 'गहइ' कर बारी। 'नैनन सोव' मन 'जाग' गोवारी।
फुनि खतरी 'जउ' 'नियरइं' आवा। कर गहि केस चांद 'गुहरावा'।
चोर चोर 'कह कोउ न जागइ'। 'मानुस सोवत सो गुहारि न लागइ'।
ऊच 'बोल सुनि' चेरीं 'जागहिं'। चोरु देखि 'बहु चीसइं लागहिं'।
'तानेसि केस दिहेसि दुइ' फेरा। 'करै(रइ) गुहारि चोर मुंह' हेरा।
मन रहंसी धनि अस 'गहे' 'कहइ जे' आस तुलानि।
वई ठाउं जो 'मांगिउं' सो मोहि 'मेरइसि' आनि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६६, बी० ६०४-६०६।

शीर्षक—मै० : बेदार शुदन चांदा व गिरफ़्तन मोए सरे लोरिक व फरियाद बर आवरदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० अछरत (उछरत—फ़ा०)। २. बी० गही। ३ मै० नैन सोवहि। ४. बी० जागु। (२) १. बी० जौ। २. बी० नियरै। (३) १. बी० कै कोय न जागै। २. बी० मानस सूत गुहारु न लागै। (४) १. बी० बोलौ तौ। २. बी० जागैहि। ३. बी० बिह जैसें (बहु चीसइ—फा०) लागैहिं। (५) १. बी० तान(ने)सि केस दिह(हे)सि दोय, मै० छाड न केस धरें दुइ। २. बी० करै गुहरु चोर मैं हेरा। (६) १. बी० कहै। २ बी० जिय की। (७) १. बी० मागा। २. बी० मेर्यौं।

अर्थ—(१) [जब] उछलते हुए उस बालिका के हाथों को वीर [लोरिक] ने पकड़ लिया, तब वह नेत्रों से सो रही थी किन्तु मन से जाग रही थी, (२) और जब वह क्षत्रिय (वीर) निकट आया, उसके केशों को पकड़ कर चाद (चांदा) ने पुकार लगाई। (३) वह 'चोर' 'चोर' कह पुकार रही थी, किन्तु कोई न जागता था, जो मनुष्य सो रहा हो वह [किसी की] गुहार में नहीं लग सकता है। (४) [फिर उसने सोचा कि] उसकी ऊंची आवाज़ सुनकर दासियां जाग पड़ती और चोर देखकर बहुत चीखने लगती, (५) अतः उसने उसके केश खींचे, उन्हें दो फेरे दिए, और उस चोर (लोरिक) का मुंह देखते हुए वह गुहार (पुकार) करती रही। (६) धन्या (नारी) इस प्रकार उसे पकड़ कर मन में हर्षित हुई, और कहने (सोचने) लगी कि उसकी आशा

तुल गई (पूरी होने को आई)। (७) [उसने मन में कहा,] "दैव के स्थान पर (दरबार में) मैंने जो मांगा था, उसे उसने लाकर मिला दिया।"

(१९८)

सुनु अचेत 'धनि भेंभर' भोरी।
'अपनें जरमि' न 'कीत्यैं (तिउं?)' चोरी।
'आइउं तोरें' नेह 'गोवारी'।
'कहे चोरु अउ' 'देत्यौं (दीतिउं ?)' गारी।

चोरु 'होतेउं तोर' अभरन 'लेतेउं'। पूर गहन 'लइ उ(उं)छहिं देतेउ'।
धरे केस 'तूं मोहि गोहरावसि'। 'सोवत' लोग 'केहि' अरथि जगावसि।
अभरन काजि न 'आवइ मोरें'। रूप 'भुलानेउं' चांदा 'तोरें'।

'तोहि लागि जउ मरऊं' नेहु न 'छाडउं' काउ।
'पिरीति तुम्हारि लागि मोरे हिरदइं' 'जइ जीउ जाइ तउ' जाउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६७, बी० ६०७-६०९।

शीर्षक—जवाब दादने लोरिक बर चांदा वा नरमी।

पाठान्तर—(१) बी० धन भ्यंभर। २. बी० अपनै जनमि। ३. मैं० कीन्हिउं। (२) १. बी० आयो तोरैं। २. बी० गुवारी। ३. बी० कहसि चोरु औ। ४. मैं० दीन्हीं। (३) १. बी० होउ तौ। २. बी० लेऊ। ३. बी० ले बोछे देऊ। (४) १. बी० मोरे तूं गुहरावसि। २. बी० सूत। ३. बी० किह। (५) १. बी० आवहि मोरैं। २. बी० भुलानौं। ३. बी० तोरैं। (६) १. बी० तोर लागि जौ मरिहौं। २. बी० छाडौं। (७) १. बी० पिरति तुह्मार लाग मो हियरौ। २. बी० जौ सिरु जाइ तु।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ अचेत, भेंभर (तमतमाई हुई ?) और भोली स्त्री, सुन; अपने जीवन भर मैंने चोरी नहीं की। (२) ऐ ग्वालिन, मैं तेरे स्नेह में आया, [किंतु] तूने मुझे चोर कहा और गाली दी। (३) मैं चोर तब होता जब मैं तेरे आभरण लेता और पूरे (सब) आभरण लेकर छुडा भागता। (४) तू मेरे केश पकड़े हुए लोगों को बुला रही है! लोग सो रहे हैं, उन्हें तू किस प्रयोजन से जगा रही है ? (५) आभरण मेरे काज नहीं आते हैं, मैं तो, हे चांदा, तेरे रूप पर भूला हुआ हूं। (६) तेरे लिए यदि मैं मर जाऊं, [तब भी] मैं तेरे स्नेह को कभी न छोड़ूंगा। (७) तेरी प्रीति मेरे हृदय से लगी हुई है, यदि इस कारण जीव जाता है तो भले ही जाए।

(१६६)

चोरु 'रइनि जउ' चोरीं 'आवइ' । अभरन 'लेत तेहि' 'कवनु छुड़ावइ' ।
'चोरत नेंह कहिय दहुं काहा' । 'अइस उतर केहु जानियत आहा' ।
'भई तोहि कों का' संदेस पठावा । कौन सकति तूं मो पहि आवा ।
चांटहि 'पंख' 'उठइ' जउ आई । 'रहइ' न 'परि' सो 'मरइ' उडाई ।
जिउ 'देइ चाह' आइ सो वेरा । 'जियतहिं' न 'कोउ चोर मुह' हेरा ।

मींचु टारि तूं 'आतेसि' 'कइसेइं' 'मेंटि' न जाइ ।
पाउ 'धरहि तोहिं बिस्तर' 'जाइहि जीउ गंवाइ' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६८।१, बी० ६१०-६१२ ।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियत चादा लोरिक रा दुज़्द ।

पाठान्तर—(१) १. बी० रयनि जौ । २. बी० आवै । ३. बी० ले ताह । ४. बी० कौनु छुडावै । (२) १. बी० चोरहि । २. बी० कहै धौं कहा । ३. बी० अैसे उतरि जाइ धौ अहा । (३) १. बी० मैं तौ कहु कि । (४) १. बी० पांख । २. बी० उठेहि । ३. बी० रहै । ४. मैं० पाउ । ५. बी० मरै । (५) १. बी० दे जाहि (चाहि—फ़ा०) । २. बी० चीन्ह । ३. बी० कोइ चोरु हम । (६) १. बी० आनसि (आतेसि—फ़ा०) । २. बी० कैसन । ३. बी० मेट । (७) १. बी० धरा तिहि बस्तरि । २. बी० जायहो जीउ गमाई ।

अर्थ—(१) [चांदा ने उत्तर दिया,] "चोर जब रात्रि में चोरी के लिए आए, तब उसको आभरण लेते समय कौन छुड़ा सकता है ? (२) चोरी करते हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में भला स्नेह की बात क्या कही जाए ? ऐसा उत्तर किसी प्रकार से तूने जान (सीख) लिया है । (३) मैंने तुझको क्या सन्देश भेजा और तू किस शक्ति से मेरे पास आया ? (४) चींटे को जब आकर पंख उठे (निकले) तो वह [जीवित] नहीं रहता है, और हो न हो वह उड़ कर मर जाता है । (५) यदि तू जीवन (प्राण) देना चाहता है तो वह वेला आ गई है, [चोर के] जीवित रहते हुए कोई चोर का मुंह नहीं देखता है । (६) तू [अपनी] मृत्यु को हटा कर आया है, किन्तु वह किसी प्रकार भी मिटाई नहीं जा सकती है । (७) यदि तूने बिस्तरे पर पैर रक्खा, तो तू अपने प्राण गंवा कर [ही] जाएगा ।"

(२००)

'जउ लहि जीउ घट महंहि' होई। तउ लहि सागि न 'आवइ' कोई।
परथमि 'मानुस' जीउ 'गंवावइ'। तउ 'पाछें चढ़ि सरगेंहि आवइ'।
मरि 'कइ' चांद सरगि 'हउं' आवा। 'जउ' जिउ होइ डराइ डरावा।
हउ तउ 'मरिउं जउहि' तूं देखी। तोहि देखि 'धनि मुइउं' बिसेखी।
'मुएं जो मारइ' सो कस आहा। चांद मुएं कर 'मारब' काहा।
देखि रूप जिउ 'दीन्हां' तउ 'आएउं तोहि' पासि।
रहे नैन 'जेहिं देखउं' 'रहइ जियहु लइ' सांस॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६८।२, बी० ६१३-६१५।

शीर्षक—मैं० : सवाल करदने लोरिक व नमूदने तमशीद।

पाठान्तर—(१) बी० जौ लहु जीउ कया घट। २. बी० आवै। (२) १. बी० मानसु। २. बी० गवावै। ३. बी० बिवान चरि सरगेहि आवै। (३) १. बी० कैं। २. बी० जौ। ३. बी० जै। (४) १. बी० मुयो जबहि। २ बी० धन मुयो। (५) १. बी० मुयाह जु मारै। २. बी० मारसि। (६) १. बी० लीन्हौ। २. बी० तौ आयो तुम्ह। (७) १. बी० जिहि देष्यौ। २ बी० रही जीभ (रहइ जियहु—फ़ा०) ले।

अर्थ—(१) "जब तक जीव" [लोरिक ने कहा,] "घट (शरीर) मे ही होता (रहता) है, तब तक कोई प्राणी स्वर्ग (धवलगृह तथा बैकुंठ) में नही आता है। (२) पहले मनुष्य अपना जीव (जीवन) गंवाता है, तब [उसके] पीछे चढ़ कर वह स्वर्ग में आता है। (३) मैं, हे चांदा, मर कर [इस] स्वर्ग मे आया हूं, यदि जीव हो तब [तो] डराया हुआ डरे। (४) मैं तो तभी मर गया था जभी मैंने तुझे देखा था; [आज] तुझे देख कर, ऐ नारी, मैं विशेष रूप से मर गया। (५) [इस समय] जो तू मृत को मार रही है, वह कैसा है? ऐ चांदा, मृत को मारना क्या? (६) तेरा रूप देख कर मैंने जीव (जीवन) दिया, तब मैं तेरे पास आया। (७) [या तो मेरे] नेत्र शेष है जिनसे मैं तुझे देख रहा हूँ, और [या तो मेरा] जीव साँसें ले ले कर शेष है।"

(२०१)

लोर 'बचन' सुनि उठा मरोहू। 'चांदा चितहिं बुझानेउं' कोहू।
केस छाड़ि 'धनि आंचर' गहा। चांद 'बइठि' बीरु ठाढा रहा।
'चोर' नाउं आपन कहि मोही। बोलु 'सद्दु' 'मकु चीन्हउं' तोही।

'कवनि जाति' तोर घरु 'हइ' कहां। 'कवनु' लोग तुम्हं आछहु 'जहा'।
'मता' पिता तोरी 'चित' न करहीं। 'रइनि' फिरत तोहि 'बाजि' न धरहीं।
'कहत' वचन 'मोहिं' अस भा 'का गहि करियहिं' तोहि।
महरु 'रूषि लै (लइ) टागै (टांगइ)' सो हत्या 'फुनि' मोहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६६, बी० ६१६-६१८।

शीर्षक—मैं० : गुज़ाश्तने चांदा मूये सरे लोरिक व गिरफ़्तने कमर-बन्दे ऊ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० में नहीं है। २. बी० चांदहि वचन बुझाना। (२) १. बी० धन अंचरु। २. बी० बैठ। (३) १. बी० चोरु। २. बी० सबदु। ३. बी० मुषु चीन्ही। (४) १. बी० कौन जाति तोरु। २. बी० कहु। ३. बी० कौनु। ४. बी० अहा। (५) १. बी० मात। २. बी० च्यंत। ३ बी० रैनि। ४. बी० बरज। (६) १. बी० हसत। २. बी० मन। ३ बी० काढि न औपी। (७) १. मैं० रूख लइ करमहिं। २. बी० लागै।

अर्थ—(१) लोर के वचनों को सुनकर [चांदा के जी में] मरोह उठा (करुणा जागृत हुई) और चांदा के चित्त का क्रोध बुझ गया। (२) [लोरिक के] केशों को छोड़ कर उस नारी ने उसका अंचल पकड़ा; चांद (चांदा) बैठी रही और वीर (लोरिक) खड़ा रहा। (३) [चांदा ने कहा,] "ऐ चोर तुम अपना नाम मुझसे कहो; [कुछ] शब्द बोलो, जिससे तुम्हें पहचान सकूं। (४) तुम्हारी कौन-सी जाति है और तुम्हारा घर कहा है? वह कौन-सा लोक (देश?) है जहां तुम [रहते] हो? (५) क्या [तुम्हारे] माता-पिता [तुम्हारी] चिन्ता नहीं करते हैं और रात में फिरते समय वे तुम्हे वर्जन कर (रोक कर) नहीं रखते हैं? (६) ये वचन कहते हुए मुझे ऐसा हुआ (लगा) कि तुम्हें पकड़ कर किया ही क्या जायगा।? (७) महर यदि तुझे ले जाकर वृक्ष पर टांगे (तुझे फांसी दे), तो उसकी हत्या मुझे ही [तो होगी]!'

(२०२)

आजु कि 'चांद न' चीन्हसि मोही। 'गहने लीति उबारिउं तोही।
'तुम्हरिय माख जो' दीत न काऊ। 'मारिउं' बांठ 'खी(खि)देरिउं राऊ'।
'अनवन बीर देखु तोर अहईं'। संकरी 'बार' मोर मुख 'चहईं'।
'हउं सो आहि धहि' कूंकू लोरा। खांड परत 'जेइं' आंगु न मोरा।
'महर काज मइं जीव न बारिउं। गार पसेउ तहां लोहू ढारिउ।'

पुरुख न आपु सराहइ पूछत कहई बात।
'चोर बोल सो मारइ' 'जो' 'मनि बाउर' रात ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७०।१, बी० ६१६-६२१।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक चांदा रा।

पाठान्तर—(१) बी० चांदा। २. बी० गहनै लेत (लीत—फ़ा०) उबार्‌यौ। (२) १. बी० तुम्हारी साषि (माषि—ना०) न। २. बी० मार्‌यौं। ३. बी० पदेर्‌यों। (३) १. बी० अनअन बीर भाइ तोरै अहही। २ मै० बेर। ३. बी० चहही। (४) १. बी० हौं सु आहि धन। २. बी० जिहि। (५) १. बी० महर काजि वस कूवैं लेउ : जौं जिउ चाहि काढि कै देऊ। (किन्तु यह आगे २०४.४ है)। (६) १. बी० बीरु नहि। २. बी० सराहै। ३. बी० औ कहि। (७) १. बी० वोछ बोलु नहि बोलिये। २. बी० जौ। ३. बी० मनु बावर।

अर्थ—(१) "ऐ चांद (चादा)," [लोरिक ने कहा,] "आज क्या तुम मुझे पहचान नहीं रही हो ? जब तुम ग्रहण में ली हुई थीं, तब मैंने ही तुम्हे उबारा था। (२) यह तुम्हारी ही माख (ममता) थी, जो [तुमने] कभी नहीं दी थी, कि मैंने बांठ को मारा और राजा [रूपचंद] खदेड़ा (भगाया)। (३) देख, तेरे [पिता के] अनहोने बीर थे, [किन्तु संकट की वेला में [उन सबने] मेरा [ही] मुंह जोहा। (४) मैं, ऐ स्त्री, वह कूकू लोर हूँ, जिसने खड्ग पड़ते [समय] अंग नहीं मोड़ा। (५) महर के कार्य के लिए मैंने अपना जीव नहीं बचाया; जहां उसने प्रस्वेद (पसीना) गारा, वहाँ मैंने लहू ढारा (गिराया)। (६) [सच्चा] पुरुष अपनी सराहना नहीं करता है, पूछने पर ही वह बात कहता है, (७) और चोर भी बोल वही मारता (निकालता) है जो मन में बावला [या] अनुरक्त होता है [क्योंकि उसे ही जीने की चिन्ता नहीं होती है]।"

(२०३)

'आपुहिं' बीर 'सराहसि' काहा। जाति 'गोवारु' आहि चरवाहा।
'हमरें' चेर सहस 'एक अहहिं(हीं)'। काच खाहिं 'तोहि' आगिन चहही।
अत केकान 'जउ पूंछु पधावा'। 'असवारहु कहं फेरि न' आवा।
जा 'कहं' लोरु 'कीन्हि' मनुसाई। 'तेहिं कें' मंदिर 'कस पैठेउ' धाई।
अइसे 'परि जउ' सेव 'करावा'। साई दोह अस 'छुटि नावा (न आवा)'।

सुनि 'जउ पावइ' महरु अस 'गोवरा दीन्ह' बसेर।
एक धरत सो धर येंहि तूं 'दूलह केहि' केर॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७०।२, बी० ६२२-६२४।

शीर्षक—मै० : सवाल करदने चांदा दर अहानतः लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० आपन। २. बी० सराहहि। ३. बी० गुवारु। (२) १. बी० महरे। २. बी० दोइ रहही। ३. बी० तौ। (३) १. बी० ज पूछ बधावा (पधावा—फ़ा०)। २. बी० असवा बारैहि का फिरि कै। (४) १. बी० कौहु। २. बी० करै। ३. बी० तिहि कै। ४. बी० कि पैठै। (५) १. बी० पहि जौ। २. मै० कराबइ। ३. बी० जीउ गवावा। (६) १. बी० जौ पाव। २. बी० गोवर पारि। (७) १. बी० दुलही कि।

अर्थ—(१)—[चांदा ने कहा,] "ऐ वीर, तू अपने आप को क्या सराहता है? तेरी जाति ग्वाले की है और तू चरवाहा है। (२) हमारे एक सहस्र चेर (सेवक) हैं, वे तुझे कच्चा ही खा जाएं और वे [इसके लिए] आग भी न चाहें। (३) [हमारे] केकान (घोड़े) इतने हैं कि यदि तू दौड़ता हुआ [उनके सवारों से] पूछने लगे, तो समस्त सवारों [से पूछने] का फेरा न आएगा। (४) जिसके लिए, ऐ लोरिक, तू ने पुरुषार्थ किया, उसके मंदिर मे दौड कर तू कैसे (क्यों) प्रविष्ट हुआ? (५) इस प्रकार (विधि) से जो सेवा कराता (करता) है, उससे स्वामि-द्रोह [का अपराध] छूटने पर नहीं आता है। (६) यदि महर ऐसा सुन पाए, जिसने तुझे गोबर में वास (रहने का स्थान) दिया है, (७) और वह [स्वामि-द्रोह] एक को [भी] पकड़े, तो वह इसी स्थान पर [तुझे] पकड़ेगा। [तब] तू किसका दूलह (प्रेमी) [होगा]?"

(२०४)

साइं दोहु 'अस' वोलिए नारी। राति 'आइ हियै हनै(नइ)कटारी'।
'कइ पायन्हि पखवारि संचारइ'। 'कइ दिन पाइ चूनां मुंह सारइ'।
'जेहि करइं काजि' जीउ 'लइ' दीजा। ताकहुं चांद 'दोहु कइस' कीजा।
'महर काज धसि कुवड़ां लेऊं। जिउ जउ मांग काढि कइ देऊं'।
'महरइं' दोह न 'कीजइ' धनां। दोहु 'करहिं तिन्ह' कोउ न गना।
गुन अवगुन 'तहं' 'कोई जानै(नइ)' 'जउ' मन आहि सरीरि।
'वाएं नारि घर आइउं' हउं 'बूडउं' मंझ 'नीरि'।

सन्दर्भ—मैं० १७१।१, बी० ६२५-६२७।

शीर्षक—मै० ' जवाब दादने लोरिक बर चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी से। २. मैं० जाइ अहितानें मारी। (२) १. बी० कै पानहि बधवारु सचारै। २. बी० कै दिनाइ दर नैमहि सारै। (३) १. बी० जिय कर काजि। २. बी० लै। ३. बी० दोषु कैसै। (४) १. बी० महर काजि हौ जीऊनि वारौ : परै पसेउ लोही तहा ढारे। (किन्तु यह २०२.४ है। (५) १. बी० महरै। २. बी० कीजै। ३. बी० करौ तिह। (६) १. बी० सभ। २. मैं० कोइ न जानइ। ३. बी० जो। (७) १. बी० सोई टारि बाहरि। २. बी० हैं बूडौ। ३. बी० नीरी।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ नारी, तू इस प्रकार स्वामिद्रोह [की बातें] उसके लिए कह जो रात्रि में आ कर हृदय में कटारी मारे। (२) तू चाहे तो मेरे पैरों में पखवारी (बेड़ी ?) सँचारे और चाहे तो दिन पाने (होने) पर मेरे मुंह में चूना लगाए (उसे उज्ज्वल करे)। (३) जिसके काज (लिए) जीव ले कर दिया जाए, उसको (उससे), ऐ चांदा, द्रोह कैसे किया जा सकता है ? (४) महर के लिए में कुए में धंस पड़ूँगा, और यदि वह जीव मागेगा, तो वह [भी] निकाल कर दे दूंगा। (५) मैं [महर का] द्रोह नहीं कर सकता, [क्योंकि] जो द्रोह करते हैं, उन्हें कोई नहीं गिनता है। (६) गुण-अवगुण वहाँ (तब) कोई जानता है, जब [उसके] शरीर में मन होता है। (७) [अपनी] घर की नारी [अथवा अपने नारी और गृह] की उपेक्षा कर मैं आया, सो जल के मध्य में डूब रहा हूं।"

(२०५)

'पूछउं' 'लोरिक कहु' सति मोही। 'कैं(केइं)' 'असती' बुधि 'दीन्हीं' लोही।
'सतहिं तिरइ सायर' महिं नावा। बिनु सत 'बूड़इ थाह न' पावा।
'जेहिं' सतु होइ 'सो लागइ' तीरा। सत 'कर' हीन 'बूड़' मंझि नीरा।
सत गुन 'खैंचि' तीर 'लइ लावा'। सत 'छाड़ैं' गुन तोरि 'वहावा'।

सत 'संभार (सांभर ?) तउ पावइ' थाहा।
'बिनु' सत थाह 'होइ अवगाहा'।
सतु साथी सतु 'सांभल' 'सतइ नाउ' कंडहार।
'करि' सत कत तू आवसि 'बर सिधि देइ' करतार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७१।२, बी० ६२८-६३०।

शीर्षक—मैं० : सवाल करदने चांदा बर लोरिक दर इश्क़ ।

पाठान्तर—(१) मैं० पूछीउं (पूछिउं—ना०) । २. बी० लोर कहौ । ३. मैं० लेइं (केइं) । ४. बी० अस्त्री । ५. बी० दीनी । (२) १. बी० सतांह तिरै सियार । २. बी० बूर (बूड़—फ़ा०) थाह नहि । (३) १. बी० जिहि । २. बी० सु लागै । ३. बी० क । ४. बी० बूर । (४) १. बी० तारि । २. बी० लै लावै । ३. बी० छोरै । ४. बी० बहावै । (५) १. बी० सभरि लिहि पावै । २. बी० बिन । ३. बी० होय औगाहा । (६) १. बी० साबरा । २. बी० सतै नाव । (७) १. बी० कहि । २. बी० पर सिधौं ।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "ऐ लोरिक, मैं तुझसे पूछती हूं, तू मुझसे सत्य कह, किस असती (असत्य-निष्ठ) ने तुझे [यह] बुद्धि (युक्ति) दी है ? (२) सत्य से ही सागर में नाव तिरती है, बिना सत्य के वह डूब जाती है, क्योंकि उसे थाह नहीं मिलती है । (३) जिसमें सत्य होता है, वह किनारे लग जाता है और सत्य से हीन जल के मध्य में ही डूबता है । (४) सत्य ही गुण (रस्सी) को खींच कर [नाव को] तट पर ला लगाता है, और सत्य को छोड़ने पर [तुमने जैसे] उस गुण (रस्सी) को तोड़ फेंका । (५) यदि सत्य का शंबल होता है, तो थाह मिल जाती है और बिना सत्य के थाह [का स्थल] भी अवगाढ (गहरा—अथाह) हो जाता है । (६) सत्य ही साथी, सत्य ही शबल और सत्य ही नाव का कर्णधार [होता] है । (७) तू कहां सत्य [का आश्रय] कर आ रहा है कि सृष्टिकर्ता तुझे श्रेष्ठ सिद्धि दे ?"

(२०६)

'जेहिं' दिन चांद 'गइउं जेवनारा' । देखि 'विमोहिउं रूप तुम्हारा' ।
तुम्हरी जोति 'जु भा' उजियारा । 'परिउं' पतंगु 'होइ' मइं 'न संभारा' ।
सो रंगु रहा 'न चित हुत' जाई । चितहुं मांझ रंग कुरिया छाई ।
रग 'जेवन' रंग भोजन 'करउं' । रंग 'पुनि' 'जीवन' 'निरंग पुनि मरउं' ।
'तेहि रंग नैन नीर नइ' 'बहे' ।
'हें (होइ ?) बर रंग किरारैनै (करारन ?) ढहे' ।
रंगु 'जउ देह मन भारी' बिनु रंग 'उठइ' न पाउ ।
'जीउ' चाहि रंग दूलहु सुनु चांदा सत भाउ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७२।१, बी० ६३१-६३३ ।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने लोरिक चांदा रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिह् । २. बी० गयो जिवनारे। ३. बी० बिमेहें रूप तुम्हारे। (२) १. मैं० भएउ। २. बी० पर्‌यों। ३. बी० होय। ४ मैं० नसंभारा (न संभारा)। (३) १. बी० जु चितहु न। (४) १. बी० जीवै। २. बी० करें। ३. बी० सौं। ४. बी० जीव। ५. बी० रंग बिनु मरौ। (५) १. बी० तिहि रंग फूटि नयन तस। २. मैं० बहा। ३. मैं० बिनु सत बूड होइ अवगाहा (तुल० २०५.५)। (६) १. बी० जु देहि मन बावरि। २. बी० उठैं। (७) १. बी० जिहि।

अर्थ—(१) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जिस दिन, ऐ चांद (चांदा), मैं ज्यौनार में गया, तुम्हारा रूप देखकर विमुग्ध हो गया। (२) तुम्हारी (रूप की) ज्योति से जो प्रकाश हुआ, मैं पतिंगा होकर बेसंभाल [उस पर] जा पड़ा। (३) [तदनंतर] वही रंग (अनुराग) बना रहा और वह चित्त से नही जा रहा है, चित्त में भी उस रंग ने कुटी छा ली है (घर बना लिया है)। (४) उसी रंग (अनुराग) का जीमना और उसी रंग का भोजन करता हू रग (अनुराग) ही [मेरा] जीवन है और निरंग (अनुरागहीन) होकर मैं मर जाऊंगा। (५) उसी रंग (अनुराग) में नेत्रों ने अश्रु-सरिताएँ बहाई और रंग (अनुराग) से वर (प्रबल) होकर उन्होंने करारों को ढहा दिया। (६) जब रंग (अनुराग) होता है देह और मन भारी होते हैं और बिना रग (अनुराग) के पैर भी नहीं उठता है। (७) जीव की अपेक्षा भी रंग (अनुराग) दुर्लभ (प्रिय) होता है, ऐ चांदा, मेरा यह सत्य भाव सुनो।"

(२०७)

रग 'कइ' बात 'कहउं' सुनि लोरा। 'कइसें' रात मोहि मनु तोरा।
जाति अहीरु रंगु आहि न तोही। रंग बिनु निरंगु न 'राता होई'।
कहु दुखु 'जो तइं मोहिं निति' सहा। बिनु दुख 'यह' रंगु 'कइसें रहा'।
'जउ न सहिय सिर खांडइ' घाऊ। रंग 'रती एक होइ' न काऊ।
'अगिनि' झार बिनु रंगु न होई। जेहि रंगु 'होइ' अवटि 'मर' सोई।
'अन' न रुच 'रंग' बेधा जाइ नींदि निसि जाग।
मोंट 'थूल तूं लोरिक' कह 'कइसें' रंगु लाग॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७२।२, बी० ६३४-६३६।

शीर्षक—मैं० : गुफ्तने चांदा हिकायत इश्क ऊ।

पाठान्तर—(१) बी० की। २. बी० कहौं। ३. बी० कैसें। (२) १. बी०

राचें मोही। (३) १. बी मो तिहि जो तै। २. बी० य। ३. बी० कैसैं साहा। (४) १. बी० जौ न सहै सिर पाड़ै। २. बी० राता औ चलै। (५) १. बी० अगनि। २. बी० होय। ३. बी० मरै। (६) १. बी० अंन। २. बी० रंग कर। (७) १. बी० थूल्ह तू लोरिका। २. बी० कैसैं।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "ऐ लोरिक, सुन; रंग (अनुराग) तू [अपने] की बात [मुझसे] कह कि कैसे तेरा मन मुझ पर अनुरक्त हुआ? (२) [तेरी] जाति अहीर की है, इसलिए तुझे रंग (अनुराग) नहीं [हो सकता] है और जो रंग के बिना निरग होता है, वह अनुरक्त नहीं हो सकता है। (३) वह दुःख बता जो तूने मेरे निमित्त सहन किया; बिना दुःख सहन किए यह अनुराग किस प्रकार रहा? (४) यदि कोई सिर खड्ग का आघात नहीं सहन करता है, तो उसे एक रत्ती भर भी रंग कभी नहीं होता है। (५) [पुनः] अग्नि की ज्वाला सहन किए बिना रंग नहीं होता है, जिसमें रंग होता है वह औट कर (संतप्त होकर) मरता है। (६) रंग से विद्ध को अन्न नहीं भाता है, उसकी निद्रा जाती रहती है और वह रात्रि भर जागा करता है। (७) ऐ लोरिक, तू मोटा और स्थूल है, तब तू कैसे कहता है कि तुझे रंग लगा हुआ है?"

(२०८)

'पानु भएउं' चांदा तोहि जोगू।
सिर 'देइ खेलेउं' चित धरि भोगू।
'गात किहेउं' 'जस अँसू (अइसु) सुपारी'।
'खांडि पीसि दोइ' 'कीत्यों(नेउं)' नारी।
'औ(अव)न' स 'काढि कीन्ह दुइ आधा'।
अइस चांद 'मइं आपुहि' साधा।
बिरह दगध 'हउं' चूनां कीन्हां। जरत नीरु 'तेहि' ऊपर दीन्हां।
अंनु 'छाड़ेउ' बिरहइं कइ झारा। पानी 'कें हउं रहिउं' अधारा।
'कहिउं' निरति 'सब आपनि' अब 'जउ' पूछहि बात।
अधर 'धरत गइ पियरई 'लेहिं' रंग तोरें रात॥

सन्दर्भ—मै पत्र १७३।१, बी० ६३७-६३९।

शीर्षक—मै० जवाब दादने लोरिक चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० बांनु (पांनु—फ़ारसी) मयो। २. बी० सौं षेल्यों। (२) १. बी० काटि (गात—फ़ा०)। २. मै० जस सूवा सारी

३. बी० खारि पीठि दोइ। ४. मै० कीन्हेउं। (३) १. मै० में प्रथम अक्षर त्रुटित है। २. बी० काढि कियो दोय। ३. बी० मैं आपहि। (४) १. बी० हौं। २. बी० तिहि। (५) १. बी० छाडौ। २. बी० बिरहै की। ३. बी० कै हौं रह्यो। (६) १. बी० कहै। २. बी० सभ आपन। ३. बी० जौ। (७) १. बी० अधर की बीरी (पियरई—फ़ा०)। २. बी० तिह।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] 'तेरे योग में मैं पान [जैसा पीला] हो गया, और [पान की भांति ही] सिर देकर तथा चित्त में [तेरा] भोग धारण कर मैंने [प्रेम का] खेल खेला। (२) [अपने] गात्र को मैंने ऐसा किया जैसे सुपारी हो, और ऐ नारी, उसे खंडित कर और पीस कर मैंने उसके टुकड़े कर डाले। (३) अपने अवन (असुदर) को निकाल कर दो आधो में विभाजित कर डाला, इस प्रकार, ऐ चांदा, मैंने अपने-आपको साधा। (४) बिरह के दाह ने मुझे चूना कर डाला, और उसके ऊपर भी मैंने [अपने] जलते हुए शरीर पर [आंसुओं का] पानी दिया (डाला)। (५) बिरह की ज्वाला के कारण मैंने अन्न छोड़ दिया, और पानी के आधार पर मैं [जीवित] रहा। [६] मैंने अपनी समस्त निरति [इसलिए] कही है कि अब तूने बात पूछी है। (७) अधरों पर धारण करते ही [उनके अमृत से] पीतिमा चली गई (जाएगी ?) इसलिए (इस आशा से) मैं तेरे रंग (अनुराग) में रक्त हो गया हूँ।"

(२०६)

सुरंग सेज भरि फूल बिछावसि। 'कंवल कली तसि' मैनां रावसि।
'असि धनि छाडि जउ अनतइं धावा'। कइ सनेह 'तउ हीं छटकावा'।
भंवरु 'फूल' पर 'रहइ' लुभाई। रसु 'लइ' ता 'पहिं' बहुरि न जाई।
काहि लागि तूं 'कोड करावसि'। 'मोहि कुल राका धूर(रि) भरावसि'।
'अरे' लोर तूं 'केहि बउरावसि'। 'तेहि बउराउ' जहां कछु पावसि।
'का अचेति हउं बाउरि' 'कइ' तू लोर 'बउरावसि'।
'कइ' सनेह मोहि 'छरंगसि' 'जित भावइ तित जावसि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७३।२. बी० ६४०-६४२।

शीर्षक—मै० : गुफ़तने चांदा हिकायत मैनां बा लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० कंवर करी अस। (२) १. बी० अस धन छारि जु अनतैं धावै। २. बी० तब ही छिटकावैं। (३) १. बी० फुर। २ बी० रहै। ३. बी० ले। ४. मै० कहं। (४) १. मै० कोरइ करसी।

२ मै० उहिं के लिलार खूंट न धरसी। (५) १. बी० अहो। २. बी० तिहि बौरावसि। ३. बी० तिहि बौराई। (६) १. बी० कै हौ अचेत कि बावरि। २ बी० कै। ३. बी० बौरासि। (७) १. बी० कै। २. बी० छिरगसि। ३ बी० बरि भावै तहा जासि।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "तू फूलों से भर कर सुरंग शैया बिछाता है, और [उस पर] कमल-कलिका जैसी मैनां से तू रमण करता है। (२) [अपनी] ऐसी स्त्री को छोड़ कर जो तू अन्यत्र दौड़ रहा है, [उससे ज्ञात होता है कि] तू स्नेह करके तदनतर [अपने को] अलग कर लिया करता है। (३) भौंरा फूल पर लुभाया रहता है किन्तु उसका रस लेकर पुनः उसके पास नहीं जाता है। (४) तू किसलिए [मुझसे] ऐसा कोड (खेल-खिलवाड़) करा रहा है और [किसलिए तू] मेरे राका (पूर्णिमा के चन्द्र) जैसे कुल मे [मुझसे] धूल भरवा रहा है? (५) अरे लोरिक, तू किसको बावला कर रहा है? तू उसको बावला कर जहा (जिससे) कुछ पास के। (५) या तो (?) मैं अचेत और बावली हूं, और या तो तू, ऐ लोर, मुझे बावला कर रहा है। (७) तू स्नेह [की बातें] कर मुझे छल रहा है; जहां भी तुझे भाए, वहा तू जा।"

(२१०)

'जेहिं' दिन चांद 'दइय हउं' गढ़ा। तेहिं दिन हुंते तोर रंगु चढ़ा।
'बिसरा' 'लोकु कुटुबु' घर 'बारू'। बिसरा अरथु दरबु 'व्यवहारू'।
मुख तंबोलु सिर तेलु बिसारा। बिसरा परिमलु फूल 'कइ' मारा।
अन न रूच निसि 'नींदि' बिसारी। बिसरी सेज सो 'कलि फुल बारी'।
बुधि बिसरी रंग 'भएउ सबाई'। 'ता कहं निरंग कहइ बउराई'।
'तहं तोरइ रंग' बिरवा हिरदइं 'लागेउ आइ।
'कोंप' सरग जरि धरती 'जिय वरु' जाइ तउ 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७४।१, बी० ६४३-६४५।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक चादा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिह। २. बी० दइ हौं। (२) १. मै० बिसर। २ बी० लोग कुटंबु। ३. मै० बार बिसारा। ४. मै० बेहवारा। (३) १. बी० की। (४) १. बी० सेज ('सेज' दूसरे चरण में आता है)। २. बी० मैंना-रानी। (५) १ बी० भयो सवायो २ बी० चाद निरग करि तैं बौरायो

(६) १. बी० नेह रंग तोरैं। २. बी० लागा धाउ। (७) १. बी० कूप (कोंप—फ़ा०)। ३. बी० जैं सिरु। ४. मैं० जाउ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जिस दिन, ऐ चांदा, दैव ने मुझे निर्मित किया, उसी दिन से तेरा रंग मुझ पर चढ़ा [हुआ है]। (२) लोक (देश-समाज), कुटुंब, और परिवार मुझे [उसी दिन से] विस्मृत हो गए, अर्थ, द्रव्य, और व्यवहार मुझे भूल गए। (३) मैंने मुख में तांबूल [लेना] और सिर पर तैल [लगाना] विस्मृत कर दिया, मुझे परिमल भूल गया और पुष्प-मालाएं भूल गईं। (४) मुझे अन्न नहीं रुचता है, मैंने रात्रि में निद्रा विस्मृत कर दी है, और मैंने कलियों-फूलों वाली शैया भुला दी है। (५) बुद्धि भूल गई, तो रंग सवाया हो गया और उसको तू बावली हो कर निरंग कह रही है। (६) वहां (इस सब का कारण) यह है कि तेरे रंग (अनुराग) का विटप हृदय में आकर [ऐसा] लग गया है (७) कि उसकी जड़ें धरती में हैं तो उसकी कोपलें स्वर्ग (आकाश) में [निकल रही] हैं, और भले ही अब [उसके कारण] जीव जाता है तो जाए।"

(२११)

'जेहिं' दिन लोरिक 'रन' 'जिनि' 'आएहु'। पइसत नगर धायं 'दिखराएहु'।
'तेहिं दिन हुत मइं' अंनु न कराई। 'परइ' न नीदि सेज न सुहाई।
'पेट पइसि जिउ लीन्हा' काढी। बिनु 'जिउ' नारि 'देख बरु' ठाढी।
'मइं' तोहिं लागि 'जेवनार' कराई। छतीस कुरी 'पिता' हंकराई।
'मकु' 'इक' तिल तुम्हं 'देखइ' 'पावउं'। देखि रूप 'मकु नैन सिराहउं।
'तेहिं' 'दिन' 'हुत' 'हउं भूलिउं' 'मोर जिउ तोहि कों चाह'।
चरचा मरमु तुम्हारा 'लोर दहुं करियहु काह'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७४।२, बी० ६४६-६५१।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने चांदा हिकायत इश्क़ ख़ुद बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिह। २. बी० रिन। ३. मैं० जीति। ४. बी० आयुहु। ५. बी० दिषरायुहु। (२) १. बी० तिह दिन ते सोहिं। २. बी० परैं। (३) १. बी० नैन पासि जीउ लेहिस। २. बी० जिव। ३. बी० देषि मै। (४) १. बी० मैं। २. बी० जिवनार। ३. मैं० पिताहि। (५) १. बी० मुकु। २. मैं० टक। ३. बी० पाऊ। ४. बी० जिय नै सिराऊ। (६) १. बी० तिही। २. बी० हुतै। ३. बी० हू भूली। ४. बी० रह्यो न तुम्ह बिनु जाई। (७) १. बी० अब धौ करौ हौं कहाई।

अर्थ—(१) [चाँदा ने कहा] "ऐ लोरिक, जिस दिन तुम रण जीतकर आए थे और नगर में प्रवेश कर रहे थे, धाय ने मुझको तुम्हें दिखाया। (२) उसी दिन से ही मैंने अन्न [का आहार] नहीं कराया (किया), मुझे नींद नहीं पड़ती है और शैया नहीं भाती है। (३) तुमने [मेरे] पेट में प्रविष्ट होकर [मेरा] जीव निकाल लिया और बिना जीव के मैंने स्तब्ध होकर तुम्हें देखा। (४) मैंने तुम्हारे लिए ही ज्यौनार कराई, और छत्तीसों कुल वालों को पिता के द्वारा बुलवाया, (५) कि कदाचित् [इसी युक्ति से] तुम्हें एक तिल (थोड़ा सा) देखने पाऊँ, और तुम्हारे रूप को देखकर [अपने] नेत्रों को सिराऊं (शीतल करूं)। (६) उसी दिन से मैं भूली [सी] हूं और मेरा जीव तुमको चाहने लगा है। (७) [प्रश्नोत्तर करके] मैंने तुम्हारा मर्म चर्चा (देखा-समझा) है। ऐ लोरिक, [अब] बताओ कि क्या करोगे।"

१३. चांदा-लोर-मिलन खण्ड

(२१२)

'अंब्रित' बचन चांद अनुसारा। हंसा 'बीरु' भा बोलु अधारा।
हंसि 'कइ' 'बीरु' चीरु 'कर' गहा। 'मोतिन्ह' हारु टूटि 'गियं' रहा।
चांद कहा खिनु एकु 'सहारौ(र)हु। हारु टूटि गा मोंति 'संभारहु'।
बीनि 'मोति' सभ 'लोर' उचावहु। तउ 'चढ़ि' 'सेज (?)' रावहु।
मोंति 'उचावत' 'रइनि' बिहांनी। उठा 'सूर लइ साध निमांनी'।
बीरु 'डरान' भोरु भा 'मन कइं चेत गंवाएउ'।
सेज हेठि 'लइ चांदइं सूरुज दिवसु' 'लुकाएउ'॥

सन्दर्भ—मै० : १७५, बी० ६५२-६५४।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत दर खदह व लागे शब गुजरानीदन।

पाठान्तर—(१) १. मै० अमिरित। २. मै० लोरु। (२) १. बी० कै। २. मै० लोरु। ३. बी० सिरु। ४. बी० मोत्यों। ५. बी० गै। (३) १. मै० सभारहु (दूसरे चरण का भी तुक यही है)। २. बी० संभारौहु।(४) १. बी० मोत। २. मै० बीर। ३. बी० चर। ४. मै० पिरम रस। प्रतिलिपि में यह अर्द्धाली बाद में आती थी इसलिए छूटी समझकर [संभवतः आदर्श के अनुसार] पुनः किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऊपरी हाशिए में दे दी गई। प्रति-लिपि मे इसका पाठ है मोती तौ ज लेउ उचावहु त चरि सेज रवनि र

रावहु। (५) १. मैं० उठावत। २. बी० रैनि। ३. बी० सुरिजु घन सुष चित मानी। (६) १. बी० डरा मन ('मन' आगे आता है)। २. बी० सुनि कै जीउ मकान। (७) १. बी० लैं लोरिक चादहि घोसु। २. बी० लुकान।

अर्थ—(१) जब इस प्रकार का अमृत (अमृतोपम) वचन चांदा ने निकाला, लोरिक हंस पड़ा (प्रसन्न हो गया) [क्योंकि] उसे वचनों का आधार मिल गया। (२) हंस कर बीर [लोरिक] ने हाथ से [उसका] चीर पकड़ लिया, तो ग्रीवा में [का] उसका मोतियों का हार टूट कर रह गया। (३) चांदा ने कहा, "एक क्षण सहारो (संभलो—रुको); मेरा हार टूट गया है, [पहले] उसके मोतियों को संभालो। (४) सभी मोतियों को विन कर, हे लोर, उठा लोगे, तभी तुम शैया में चढ़कर रमण करो और कराओगे।" (५) [किन्तु] मोती उठाते-उठाते रात व्यतीत हो गई, और सूर्य (लोरिक) अपनी निर्मानित (तिरस्कृत) साध को लिए हुए उठा। (६) वीर (लोरिक) डरा कि प्रभात हुआ [इसलिए] उसने मन की चेतना गंवा दी। (७) दिन मे शैया के नीचे सूर्य (लोरिक) को लेकर चांद (चांदा) ने छिपाया (छिपाए रक्खा)।

(२१३)

दई दई कै (कइ) द्यौ (दिव)सु गंवावा।
परी सा(सां)झ लोरिकि(क?) जिउ पावा।
छिरका चांदेहि (चांदहि) अंव्रित बानी।
पल्ह(ल्हु)ई बेलि जैसे कु(कुं)बिलानी।
न्हाइ धोइ बस्तर पहिरावा।
मधुर षुजांहजा (खजंहजा) काढि जिवावा।
नारिग बेलि (?) गुसय (गुसाइं) निचाषी।
लोर देषि मैं (मइं) तुम्ह कौहु (कहुं) राषी।
मंदिर पिता कर आहा लोर पपु (पापु) नहि कीज।
उरौहु(उतरहु)आजु स कोसर(सकूसर)काल्हि दाष रसु लीज॥

सन्दर्भ—बी० ६५५-६५७। एक अर्द्धाली बी० में नहीं है।

मै० त्रुटित है, क्योंकि पिछले कडवक के साथ जो चित्र है वह लोर-चादा सभोग का है, जो बाद में आता है।

अर्थ—(१) "दैव, दैव" करके लोरिक ने दिन गंवाया (काटा); जब

सध्या पड़ी (आई), तब लोरिक ने [अपना] जीव पाया। (२) चादा ने अमृत-जल छिड़का, तो उसकी [काया-] वल्लरी, जो जैसे कुम्हलाई हुई थी, पलुह उठी। (३) उसको नहला-धुलाकर [चांदा ने] वस्त्र पहनाए, और मधुर खाद्य-भज्य निकाल कर उसे खिलाए। (४) [चांदा ने कहा,] जिस नारगों की वल्लरी (?) को मेरे स्वामी (पति) ने नहीं चखा था, ऐ लोरिक देखो, मैंने उसे तुम्हारे लिए रख छोडा है। (५) [किन्तु] यह मंदिर (भवन) मेरे पिता का है, ऐ लोरिक, [यहाँ पर] पाप न करो; (६) आज सकुशल तुम उतर जाओ, [तो] कल तुम द्राक्षा का रस (अधर-रस) लेना।"

(२१४)

सुनहु चांद मोरी येकै (एकइ) बिनती।
आपनु भरमु कहौ (हौ) अरु हीनति (हिनती)।
उटइ सीसु तोरैं मंदिर पइ(ई)ठे। जूवा पैलु जिउ लाइ बईठो(ठे)।
तुम्ह जीता मोर(री?) भइ हारी। कौन छंद पेल्या(ला?) तुम्ह नारी।
तनु मनु जीउ लेई(इ) तूं गई। बिनु जिय काया रकत बिनु भई।
नैन सरूप तोर कर तानें। अभरन सब जानों(?) ऊपर बाने।
सत परान बुधि पावसि चित मन नैन बिसेष।
अति बिमान तुम्ह जीता काया थाक अस देष॥

सन्दर्भ—बी० ६५८-६६०।

मै० यहाँ पर त्रुटित है जो उसके चित्रों से प्रकट है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु चांद ने पिछले कडवक की अंत की पंक्ति में दूसरे दिन जो द्राक्षा-रस लेने की बात कही है, उसका स्पष्ट उत्तर इस कडवक में नहीं दिखाई पड़ता है, यह चित्य है।

अर्थ—(१) "ऐ चांद, सुनो", [लोरिक ने कहा,] "मेरी एक बिनती है, मै अपना भ्रम (मर्म) कह रहा हूँ और अपनी हीनता का निवेदन कर रहा हूँ। (२) अपने सिर को उठा (साहसपूर्वक ले) कर मैं तेरे इस मंदिर मे प्रविष्ट हुआ, और जुए की पैंत (बाज़ी) के रूप में अपने जीव को लगा कर बैठा रहा। (३) इस जुए में तुम जीतीं और मैं हार गया! ऐ नारी [इस जुए मे] तुमने कौन-सा छद्म खेला? (४) तुम [बाजी के रूप में लगाए हुए] मेरे तन-मन-जीव को ले गईं, और मेरी काया बिना जीव और बिना रक्त की हो गई। (५) नेत्र तेरा स्वरूप········और सब आभरण मानो उस पर

.........। (६) मेरे सत्व प्राण, बुद्धि, चित्त, मन तथा नेत्र तुम्हें विशेष रूप से मिल रहे हैं, (७) तुमने मुझे अत्यधिक......जीता है, ऐसा देख कर (?) काया थक गई है (निःसत्व हो गई है)।"

(२१५)

सुनि कै चांद भीरि गै(गियं) लावा। सकति रूप मेरैं कै आवा।
जिह नित मरन गंजन जो सहा। सो पर(रि?)छि तस ता कर कहा।
मोहि लागि लोर जीउ परछेवा। अब हौं करौं दासि तोरि सेवा।
अधर षंडि नै[न]नि घिउ सांनौ। हिरदौ थार भर(रि) आगें आनौ।
सुर(र)ग बेलि फर तुम्ह कौ राषी (राषे?)।
नैनहु देषि गुसाइ(ई) नचाषी (निचाषे?)।
फूर सेज पर(रि)मल चंदन बहु बिधि कीज।
कर गहि रद(ही) पयोधर अधर षंडि रसु लीज॥

सन्दर्भ—बी० ६६१-६६३।

मै० यहाँ पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

ऊपर आई हुई (५) निम्नलिखित २१३.४ से तुलनीय है—

नारिंग बेलि (?) गुसय (गुसाइं) निचाषी।
लोर देषि मैं (मइं) तुम्ह कौहु (कहुं) राषी।

अर्थ—(१) लोरिक की यह भीरुता (हीनता-दैन्य) सुनकर चांदा ने उसे गले से लगा लिया [और कहा,] "शक्ति और रूप (सौन्दर्य) मिलने को आ गए हैं। (२) जिसके लिए तुमने मरण और गंजन (कष्ट) सहन किए, अब तुम उसकी और उसके कथनों की परीक्षा कर लो। (३) ऐ लोरिक, तुमने मेरे लिए अपने जीव (प्राणों) को परिच्छिन्न किया, तो मैं [भी] तुम्हारी दासी [होकर] तुम्हारी सेवा करूँगी। (४) [मैं अपने] अधरों की खांड को [अपने] नेत्रों के घृत (स्नेह ?) में सान रही हूँ और [उन खंडपूरों से] मैं हृदय के थाल को भर कर तुम्हारे आगे ला रही हूं। (५) मैंने सुरंग (सुन्दर) वल्लरी के फल (कुच) तुम्हारे लिए रख छोड़े हैं; नेत्रों से देखो कि वे मेरे स्वामी द्वारा अनचखे [छोड़ दिए गए] थे (६) पुष्प-शैया, परिमल तथा चंदन बहुतेरे प्रकार से [तैयार] किए हुए हैं। (७) मेरे पयोधरों को हाथों से ग्रहण किए रहिए और मेरे अधरों को खंडित करके उनका रस लीजिए।"

(२१६)

आपनु मरम चांद जौ कहा।
उठि कै(कइ) चांद लोरु (लोरु चांद ?) कर गहा।
गहि अंकौ गै(गियं) दीन्ही बा(बां) हा। पिरम न संकै लोरिकु नाहा।
आधी बीरी खडि मुपि दीन्ही। आधी छीनि लोर पहि लीन्ही।
तबहि (कबही ?) सीसु लोर सिरु वारै।
त(क ?)बही षौ(षै)चि माझ मुष मारै।
त(क ?)बही रोस पीठि दै बैस(सा)।
तू त(क ?)बही हसि कै तोरै केस(सा)।
: चलत लोर कछु मन न सुहावै। कहि कहि प(पि)रम चांद बौरावै।
भव कर (?) चितु उपना लोर मदन [अ ?]ति लाग।
अति [रस?] रसिकु सेज फुनि रावै चांदा देय सुहाग॥

सन्दर्भ—बी० ६६४-६६७। इस कडवक में एक छठी अर्द्धाली भी है, इसीलिए बी० की चतुष्पदी संख्या भी इस कडवक में एक बढ़ गई है। यह छठी अर्द्धाली असंगत है, क्योंकि लोर के जाने की बात इस प्रसग में नहीं आती है जो इसमें कही गई है। इसलिए यह अर्द्धाली कदाचित् प्रक्षिप्त है।

मै० यहाँ पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

अर्थ—(१) जब चांदा ने अपना मर्म कहा, तो लोरिक ने उठ कर चादा का (?)हाथ पकड़ा। (२) उसको अंक में पकड़ कर उसकी ग्रीवा में उसने बांह दी, प्रेम [के इस व्यापार] में लोरिक-नाथ शंकित नहीं हो रहा था। (३) [पान की] आधी बीड़ी काटकर [चांदा ने लोरिक के] मुख में दी और आधी लोरिक [के मुख] से छीन ली। (४) कभी (?) लोरिक चांदा के सिर पर अपना सिर वारता, कभी उसे खींच कर उसके मुख पर अपना मुख मारता, (५) कभी रोष करके चांदा को पीठ देकर बैठ जाता, और कभी हसते हुए उसके केश तोड़ने लगता। (बाद की अर्द्धाली कदाचित् प्रक्षिप्त है)। (६) चित्त में············उत्पन्न हुआ, और लोरिक को मदन अत्यधिक लगा। (७) अत्यधिक [रस का ?] रसिक लोरिक पुनः (तदनंतर) शैया मे रमण करने और चांदा को सौभाग्य देने लगा।

(२१७)

पैठ भुजंगु राइ की बारी। फूल करी रसु लै(लेइ) फुलवारी।
डार डार चहुं दिस(सि) फिरि आवै। षूटै दाख बेलि फर रावै।
रवै नारिंग उतंग जभीरी। बिरसै नारिंग (?) दार्यों षीरी।
चंदन कू(कों)प नासिका लावै। बासु ल(ले ?)इ औ सीसि चरावै।
जहीं जहीं (जाही जूही) अवर सेवती। सबै फूर बिलस बनपा(प)ती।
राव की राषी बारी चांद भुजंगहि दीन्ह।
रसु जु लीन्ह पियासे भुजंग बिनु रस कीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ६६८-६७०।

मैं० यहां पत्र त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु मैं० पत्र,१७५ के साथ जो चित्र इस समय है, वह कदाचित् इसी कडवक का है: उसमें नायक-नायिका का संभोग चित्रित है।

अर्थ—(१) राय की बारी (राजा की बालिका रूपी बाटिका) में [वह] भ्रमर प्रविष्ट हो गया, और वह पुष्प-वाटिका के पुष्पों और कलिकाओं का रस लेने लगा। (२) वह चारों दिशाओं में एक-एक डाल पर फिरने, द्राक्षा वल्लरी का खंडन करने और बिल्व फल (कुचों) से रमण करने लगा। (३) वह नारंगों और उत्तुंग (उन्नत) जंभीरियों [जैसे चांदा के कुचों] से रमण करने और उसके नारंगों (?), दाड़िम-बीजों (दांतों) तथा खीरनी (जिह्वा) से विलास करने लगा। (४) चंदन की कोपलों (?) को वह नासिका से लगाता था और उसकी सुवास लेकर उसे सिर पर चढ़ाता था। (५) वह जाही-जूही (?) और सेवती (?) आदि सभी फूलों (?) और बनस्पतियों (?) का विलास कर रहा था। (६) राजा की रख छोड़ी हुई उस बारी (बालिका-वाटिका) को चांदा ने उस भ्रमर को दे दिया, (७) और उस प्यासे भ्रमर ने जो उसका रस लिया, तो उसे रस-हीन कर डाला।

(२१८)

खिन एक 'हाथ पाय रेंगि आए'। फुनि 'रे फेरि' दुहुं 'हियं उर लाए'।
बहु 'सोहाग दइ' सुंदरि' धरी। खरी अवटि जनु 'सांचइं' भरी।
अधर अधर 'सौं' कर 'कर'धरी। नाभी नाभि 'सों' 'तानी' रहीं।
'जांगि(घि?)जोरि तस कइ लइ लाए'। 'जनु' गज मैंमंत 'बर कहं आए'।
'काम सकति' धन(नि) अस कै गही'। फुनिरु 'फूटि अंम्रित नै(नइ)बही।

'धन सु राति जिहि सजन मिरावा' 'रइनि' छमासी 'होउ' ।
'पंच' भूत आतमां सिरानें अस बिरसौ(सउ) सभ 'कोउ' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १७६, बी० ६७१-६७३ ।

शीर्षक—मै० : मजामअत करदने लोरिक बा चांदा ।

पाठान्तर—(१) बी० यक । २. बी० बा(?)ह हाथ रग आई । ३. बी० रु भीरि (फेरि—फ़ा०) । ४. बी० हिरैं लाई । (२) १ बी० सुहागु दे । २. मै० दोउ सिर । ३. बी० सांचै । (३) १. मै० में नहीं है । २. बी० गहि । ३. बी० सौ । ४. बी० ताने (तानी—फ़ा०) । (४) १. बी० चापि चूरि कैं तस गै लाई (लाए—फ़ा०) २. बी० जानौ । ३. बी० पुरषेहि आई (आए—फ़ा०) । (५) १. मै० रस सभ निसि अहे । मै० बहुत अपुरुब ते भए । (६) १. मै० चांद घरिहि सूरुज आवा । २. बी० रैनि । ३. मै० होइ । (७) १. मै० पांच । २. मै० कोइ ।

अर्थ—(१) एक क्षण के लिए [लोरिक के] हाथ [चांदा के] पैरों तक रेंग आए, तब उन्हें लौटा कर उसने [उसके] दोनों हृदय-उरों (उरोजों) से लगाया । (२) बहुत सुहाग देकर उसने सुंदरी को पकड़ा, मानो खूब औटा कर उसे सांचे में भरा हो । (३) अधरों से अधरों और हाथों से उसने हाथों को पकड़ा, [उसकी] नाभि [स्त्री की] नाभि के साथ तानी हुई थी, (४) जांघों को जोड़ कर उसने इस प्रकार ले कर मिलाया कि मानों दो मदमत्त गज परस्पर बल [-प्रयोग] के लिए आए हुए हों । (५) काम-शक्ति भर उसने स्त्री को इस प्रकार से पकड़ रक्खा, तो अमृत की नदी फूटकर बह निकली । (६) वह रात्रि धन्य थी जिसने [दो] स्वजनों को मिलाया, ईश्वर करे यह रात छः मास की हो जाए ! (७) [दोनों के] पंचभूत और आत्मा शीतल हुए, इसी प्रकार ईश्वर करे सब विलास-लाभ करें !

(२१९)

'केलि' करत सभ 'रइनि' बिहानी । देखि 'सूर धनि' उठी डरानी ।
'जउ' लहि चेरी 'उठइ' न पावा । 'तउ' लहि 'चांदइं' सुरिजु लुकावा ।
मोहि 'संक' आपुन नांहीं लोरा । 'मत' कछु 'होइ' बहुल डरु तोरा ।
मत 'कोइ' चेरी 'देखन' 'पावा' । जाइ महर 'पहं' बात 'जनावा' ।
'जउ कोइ तोहि कों देखइ' आई ।
'हौं (हउं) फुनि मरौं (रउं)' 'तउहि' बिसु खाई ।

परम ‘खलीती जउ कर साहस’ सो ‘तरि लागइ’ पार ।
मांझ समुंद ‘होइ बेरी’ थाकी तीर लाउ करतार ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १७७, बी० ६७४-६७६ ।

शीर्षक—मै० : वक़्त सुबह बिनहान: (?) करदने चांदा लोरिक रा दर ज़ेर तख़्त ।

पाठान्तर—(१) १. बी० केरि । २. बी० रैनि । ३. बी० सुरिजु धन । (२) १. बी० जौ । २. बी० उठै । ३. बी० तौ । ४. बी० चांदा । (३) १ बी० डरु । २. बी० तुह्य । ३. बी० होय । (४) १. बी० को । २. मै० देखइ । ३. बी० पावै । ४. बी० सौ । ५. बी० जनावै । (५) १. बी० जौ रु तुमहि कोउ देषै । २. मै० हउं फिरि नरउं (मरउं—ना०) । ३. बी० तबहि । (६) १. बी० पिरम खलंताह जौ कर सैहिहस । २. बी० तिहि लागै । (७) १. बी० होय वेरी, मै० होइ ।

अर्थ—(१) केलि करते हुए समस्त रजनी व्यतीत हो गई, तो सूर्य को [उदित होता] देखकर धन्या (स्त्री) अत्यधिक डरी हुई उठी । (२) जब तक चेरियां उठ न पाएं, तब तक मैं चांद (चांदा) सूर्य (लोरिक) को छिपा दूँ । (३) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, मुझे अपनी शंका नहीं है, किन्तु तुम्हें कुछ न हो, इसका तुम्हारे लिए बहुत डर है । (४) ऐसा न हो कि कोई चेरी देख ले, और वह जा कर महर से यह बात बता दे । (५) यदि कोई तुम्हें आ कर देख लेगा, फिर (तो) मैं तत्काल विष खाकर मर जाऊँगी । (६) परम स्खलित [नौका] भी यदि साहस करे तो वह तैर कर पार लग सकती है, (७) किन्तु यदि समुद्र के मध्य में पहुँच कर [नावों का] बेड़ा भी थक जाए (साहस हार बैठे), तो उसे सृष्टिकर्त्ता ही तीर से लगा सकता है ।"

(२२०)

‘भोर चेरि पानी लइ’ आई । मुखु ‘धोवा अउ’ सखीं बुलाई ।
‘भेंभर’ मुखु निसि चांद न सोवा । चीरु फाटु ‘कहवां लहि’ गोवा ।
‘फिरी मांग केस’ ‘उधसाने’ । ‘फूल झूरि हिरदै’ ‘कुंबिलाने’ ।
‘सखिन्ह’ देखि ‘रावन की(कइ)’ रई । ‘तउ रे चांद भरि आंकुर’ गई ।
‘भए उनिद लोयन’ रतनारे । ‘दुहु दिसि’ ‘खाए तंबोल पियारे’ ।
‘चोली’ चीरु संवारहि(हिं) सीस ‘सिंदूरहि(हिं)’ मांग ।
भंवर ‘फूल पर बइठेउ’ लाग ‘दीख तेहि’ आंग ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १७८, बी० ६७७-६७६।

शीर्षक—मै० : आब आवरदने कनीजगान बरूए चांदा शुस्तन (?) व आमदने सहेलियान।

पाठान्तर—(१) बी० उठि चेरी ले पानी। २. बी० धुवाय। (२) १. बी० भ्यंभर। २. बी० कहुवां लैं। (३) १. मै० उधयाने। २. बी० फूर जोर हिरदौ। ३. मै० कुंमिलाने। (४) १. बी० सषियन। २. मै० रवा कैं। ३. बी० तो र चांद भरि आकुरि। (५) १. बी० भइन नीं[द] लोइन। २. बी० चहुं दिस। ३. बी० धाइ लंबोर अडारे। (६) १. बी० चोरा। २. बी० सिदुरेहि। (७) १. बी० फूर पर बैठ्यौ। २. बी० दसौ नख।

अर्थ—(१) प्रभात में चेरियां पानी ले आईं, चांदा ने मुख धोया और सखियों को बुलाया। (२) [सखियों ने कहा,] "ऐ चांदा, तुम्हारा मुख भँभर (तमतमाया हुआ) है, क्या रात में तुम सोईं नहीं ? तुम्हारा चीर फट गया है, कहां तक तुम उसे छिपाओगी ? (३) [तुम्हारी] मांग फिरी हुई है, [तुम्हारे] केश उद्ध्वस्त हो गए हैं, और [हार के] फूल सूख कर हृदय पर कुम्हला गए हैं !" (४) सखियों ने देखा कि वह रावण (रमण) के द्वारा रमण की हुई थी, तभी चांद अंकुर (पुलक) से भरी हुई थी। (६) उसके उन्निद्र नेत्र लाल हो रहे [थे], [मानो] दोनों ओर के उन प्यारे [नेत्रों] ने तांबूल खाया हो। (६) [जब] वे उसकी चोली और उसके चीर को ले कर संवारने लगीं और उसके सिर की मांग सिंदूरित करने लगीं, चांदा से उन्होंने कहा, "फूल पर भौंरा बैठ चुका है, [और उसका] लाग (लगाव—चिह्न) [तुम्हारे] शरीर पर दिखाई पड़ रहा है।"

(२२१)

चांद 'सहेलिन सों' अस कहा। 'एकउ' चेरि न जागत रहा।
'रइनि' चौखंडी 'चढ़ि(ढ़ी) बिरारी'। 'लइ' उंदिरु खसि परी 'मंझारी'।
ऊपरि परी 'तउहि मइ' जागा। नख 'थन' लाग चीरु फुनि भा(भां)गा।
'तउहि' हुतें 'मोरि नींदि उड़ानी'। 'इहि परि' जागत 'रइनि' बिहानी।
हाथ 'पाउ मई निरु' 'न संभारा'। फिरी मांग 'सीस' अउ बारा।
'तेहि गुन' नैन रात मोर मुख 'भँभर' कुंबिलान।
'अइसि' राति मोंहि 'दूभरि' मंदिर न कोऊ जान॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७६, बी० ६८०-६८२।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने चांदा बर सहेलियान रा अज़ बहानः।

(२)।२ के अंतिम दो शब्दों पर मैं० में चित्र का रंग उभड़ आया है।

पाठान्तर—(१) १. बी० सहेल्योंह सौं। २. बी० येक। (२) १. बी० राति। २. बी० चरी बिलारी। ३. बी० ले। ४. बी० मजारी। (३) १. बी० तैहु मौं। २. बी० फुनि ('फुनि' आगे ही पुन. आया है)। (४) १. बी० ते। २. बी० मोरी नीद गवानी। ३. मैं० इत फुनि। ४. बी० रैनि। (५) १. बी० पाव मै सिरु। २. मैं० नसंभारा (न संभारा)। ३. बी० केस। (६) १. बी० तिहुतें। २. बी० म्यंभर। (७) १. बी० अस। २. बी० दूभर।

अर्थ—(१) चांदा ने सहेलियों से ऐसा कहा, "एक भी सेविका जाग नहीं रही थी, (२) रात में चौखंडी पर बिल्ली चढ़ी, और वह मार्जारी उंदुर (चूहे) को ले कर गिर पड़ी। (३) जब वह ऊपर पड़ी (गिरी), तब मैं जागी; उसका नख [मेरे] स्तनों पर लगा, तदनंतर चीर फट गया। (४) तभी से मेरी नींद उड़ गई और इसी प्रकार जागते-जागते रात बीत गई। (५) हाथ-पैर मैं निश्चित रूप से न संभाल पाई। सिर में मेरी मांग फिर गई और मेरे बाल फिर गए। (६) उसी कारण मेरे नेत्र रक्त वर्ण के हो रहे हैं, मेरा मुख मेंभर (तमतमाया हुआ ?) और कुम्हलाया हुआ है। (७) रात मुझे ऐसी दूभर हुई, फिर भी मंदिर (भवन) में यह कोई नहीं जानता है!"

(२२२)

जाइ बिरसपति महरि जुहारी। कइ जुहारु फुनि बात उभारी।
'रइनि' डरानी चांद दुलारी। 'बिसवइ ऊपर' परी 'मंझारी'।
चीरु फाट मुखु गा 'कुंविलाई'। चांद 'कुमन होइ बहुत' लजाई।
चेरी 'बिसवइ(इं)' भा अंधियारा। जागत चांद 'भएउ भिनुसारा'।
अन न रूच 'अउ भाव न' पानी। फूल घाम जस चांद सुखानी।
'चलहु महरि कछु देखउ' 'अउ' कछु धरहु उतारि।
'बिसई जस को' छंरगी 'अैस (अइसि) चांद बि(बे)करार'॥

सन्दर्भ—मैं० १८०, बी० ६८३-६८६।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तने बिरसपति बर महरि व कैफ़ियत गिरियः उफ़-तादने बाज़ नमूदन।

पाठान्तर—(२) १. बी० रैनि। २. बी० बिसइ उ परी। ३. बी० मजारी। (३) १. मैं० कुमिलाई। २. मैं० चितहि महं रही। (४) १. बी०

बिसइ। २. बी० किया उजियारा। (५) १. बी० भाव नहि। (६) १. बी० अबहि महरि तुम्ह देषहु। २. बी० औ। (७) १. मै० सोवत जइसे। २. मै० असि भइ चांदा नारि।

बी० में उपर्युक्त के अतिरिक्त उसके पूर्व निम्नलिखित दोहा और है, जिससे उसकी चतुष्पदी-संख्या एक अधिक हो गई है :

चली महरि उठि उठि देषैं चरी धौरहर जाई।
मुष कुंबिलान सूषि गौ चांद देषि तिहि आई॥

यह संभवतः ऊपर स्वीकृत दोहे के पाठान्तर के रूप में हाशिए में लिखा हुआ था, और प्रतिलिपि में मूल में सम्मिलित हो गया।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जा कर महरी को जुहार की, और जुहार कर तदनन्तर बात उभाड़ी (उठाई)। (२) [उसने कहा,] "रात में चांदा दुलारी डर गई, [क्योंकि] विश्राम करते में ही [उसके] ऊपर बिल्ली गिरी। (३) [उसका] चीर फट गया और मुख कुम्हला गया, जिससे चांदा कुमन होकर बहुत लज्जित होगई है। (४) अंधेरा था और चेरियां विश्राम कर रही थीं, [इसलिए अकेली] चांदा को जागते-जागते सबेरा हो गया। (५) उसको अन्न नहीं रुच रहा है और न पानी भा रहा है और धूप में फूल जिस प्रकार सूख जाता है, उसी प्रकार चांदा सूख गई है। (६) ऐ महरी, चलो, कुछ देखो और कुछ द्रव्य उस पर उतार (वार) कर [दान-पुण्य के लिए] रख दो। (७) जैसे कोई विश्राम करते (सोते) में छली गई हो, चांदा इस प्रकार बेचैन है।"

(२२३)

माता पिता 'लोकु' जनु 'आवा'। 'कनबड़ि' चांद न मुखु 'दरसावा'।
'एक' आपुहि अस 'अकरंकुलाएसि'। 'अउ तेहि' ऊपरि 'सुरिजु' लुकाएसि'।
'चांद सुरिजु' धर धरा 'छपाई'। 'राहु गरह दुइ गरहइं' आई।
लोरु 'चउखंडी' दई संभारा। 'कउहु' दिवसु 'अंथवइ' करतारा।
'अइस कुलखनां मूंड कटाउब'। 'पापधि चोर परि' रूंखि 'टंगाउब'।
'नियरि' मीचु होइ ढूकी रगत न रहा मुखान।
बिनु जिय 'लोरिकु सेजि तराहीं' 'आपनि' कया न जान॥

सन्दर्भ—मै० १८१, बी० ५८७-६८६।

शीर्षक—मै० : आमदने मादर व पिदर जानदन (?) व दरख्वाब साख्तन चांदा खुद रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोगु। २. बी० आवैं। ३. बी० कनवडि। ४. बी० दरसावै। (२) १. बी० इक। २. बी० अकुरंकु लायसि। ३. बी० औतिहि। ४. मै० सूरुज (सुरुज)। ५. बी० लुकायसि। (३) १. मै० चादा सूरिजु (सुरिजु)। २. बी० लुकाई। ३. बी० राहु गरहु दोय गरहे। (४) १. बी० चौखंडी। २. बी० १. कबहि। २. बी० अंथवै। (५) बी० अब को लहै तो महरु मरावै। २. बी० बाधि चोरु लै। ३. बी० टगावै। (६) १. बी० नेर। (७) १. बी० लोरु सेज तर। २. बी० आपन।

अर्थ—(१) माता-पिता, लोक (आत्मीय ?) तथा जन आए तो कना-वड़ी (लज्जित) चांदा ने [अपना] मुख न दिखलाया। (२) [वे कहने लगे], "एक तो इसने अपने आप ही ऐसा कलंक लगा रक्खा था [कि अपने विवाहित पति को यह छोड़ कर आई थी], उस पर इसने सूर्य (प्रेमी) को छिपाया!" (३) [जब] चांदा ने सूर्य (लोरिक) को घर में छिपा कर रक्खा था, दो राहु ग्रह (राजा के सेवक ?) उसे ग्रहण लगने के लिए आए। (४) लोरिक ने [यह देखकर] उस चौखंडी में दैव का स्मरण किया [और कहा,] "ऐ सृष्टि-कर्त्ता, कभी तो दिवस को अस्तमित कर। (५) मैं ऐसा कुलक्षण [हुआ] कि सिर कटाऊंगा, पापद्धिक (बधिक—जीवघात करने वाले) और चोर की भांति अपने को वृक्ष पर टंगवाऊंगा।" (६) मृत्यु [जब इस प्रकार] निकट आ पहुँची, [उसके शरीर में] रक्त नहीं रह गया, वह ऐसा सूख गया। (७) बिना जीव के लोरिक शैया के नीचे [छिपा हुआ] अपनी काया को नहीं जानता था।

(२२४)

अंथवा सरिजु चांद 'दिखरावा'। 'अंब्रिल छिरका' लोरु 'जियावा'।
'आपनि' मींचु नैन 'मई' देखी। मींचु 'आइ फी(फि)रि गई' बिसेषी।
'हौं (हउं) जैंजिया चांद कुंविलानी'। 'अत अवसान भया तेहिं बानी।
'एहि परि रइनि जउ' दई जियावइ। ताकहुं मींचु न 'नियरे' 'आवइ'।
'अधर चूंबि भर दै (दइ) अंकवारी'। चांद पायं 'परि' बांह पसारी।
'सुनहु लोर' 'एक बिनती अब तुम्हं काह मंखाहु'।
'हउं तुम्हरइ जइसि' ब्याही 'तूं मोर ब्याहू नाहु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८२, बी० ६९०-६९२।

शीर्षक—मै०: विदाअ् करदने लोरिक बा चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० दषिरावा। २. मै० अमरित छिरिकि।

३ बी० जगावा। (२) १. बी० आपनु। २. बी० मै। ३ बी० देषि घन मुवो। (३) १. मैं० सूर जिया अउ चांदा रानी। २. बी० अति औसान पयौं नहि पानी। (४) १. बी० याह बरिया जे। २. बी० नीरी (नियरे—फा०)। ३. मैं० आवा। (५) १. मैं० काहे अस मन करहु मुरारी। २ बी० पर। (६) १. बी० अहो लोर यही न गौहन अब जिन काहु सकाहु। (७) १. बी० हो तुम्हरै जस। २. बी० तुम्ह मोरे ब्याहे नाह।

अर्थ—(१) सूर्य अस्तमित हुआ और चांद दिखाई पड़ा, तो [चांदा ने] अमृत छिड़का और लोरिक को जीवित किया। (२) [उसने कहा,] "अपनी मृत्यु मैंने नेत्रों से स्वयं देखी, [मैंने देखा कि] मृत्यु आकर और मुझ को पहचान कर चली गई। (३) और यदि मैं जीवित [भी] हुआ तो चादा कुम्हलाई हुई है, [अपनी] उस वर्णिका में मैं इतना अवसन्न हुआ! (४) इस रीति से रात में यदि दैव ने जिला दिया है, तो मैं देखूंगा कि मृत्यु [फिर] निकट न आए।" (५) लोरिक के अधर चूंब कर और भरी अंकवारी देकर [तदनंतर] बाहें फैला कर चांदा लोरिक के पैरों में पड़ी। (६) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, तुम [मेरी] एक विनती सुनो, अब तुम क्यों माख (ममता-मोह) कर रहे हो? (७) मैं अब तुम्हारी वैसी ही हूं जैसी विवाहिता हो और तुम मेरे [जैसे] विवाहित स्वामी (पति) हो।"

(२२५)

बोला बीरु बाट 'दिखरावहु'। 'अउ' तुम्हं चांद बार 'लहि' आवहु।
उतरी चांद मंदिर चलि आई। 'भूपर' सूरिजु 'गोहनि' लाई।
'छाडिसि' मंदिर वेगि 'घरसारा'। पंवरि पंवरियहिं जागि खंखा [रा]'।
चलत 'पाय कर आरौ' पावा। कहा 'पंवरियहिं' तसकरु आवा।
चाद कहा 'मइ चेरि बुलाउब'। 'फूलन्ह कहुं फुलवारि पठाउब'।
उघरी 'पंवरि' बजर 'कइ' बीरु 'समंदि गा भागि'।
चांद 'चढ़ी चौखडी' 'पंवरि' बजर 'होइ लागि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८३, बी० ६९३-६९५।

शीर्षक—मै०: फ़ुरूद आमदने लोरिक अज़ क़स्रे चांदा व ख़बर याफ़्तने दरबानान।

पाठान्तर—बी० में कडवक के पूर्व और है: आपनु मरमु चांद जै कहा इनका महल लौर ईव रहा; पुनः दूसरा चरण काट कर अन्य द्वारा संशोधित है

सुरजह बौहत सु अहा। किन्तु इस अर्द्धाली का प्रथम चरण २१६.१ है। (१) १. बी० दिषराबाहु। २. बी० औ। ३. बी० लैहि। (२) १. बी० भवरै। २. बी० गौहनि। (३) १. मै० छाडि। २. बी० गौहनि। (३) १. मै० छाडि। २. बी० पसारा। ३. बी० पौरि पैरिया जागि षघारा। (४) १. बी०पाव षभराऊ। २. बी० पैरिहि। (५) १. बी० मैं चेर पठायौ। २ बी० फूलाह् कौ बरहलु बुलायो। (६) १. बी० पौरि। २. बी० की। ३ बी० सभरिगा भाग। (७) १. बी० चरी षंड सतषणै। २. बी० बहुरि। ३ बी० होय लाग।

अर्थ—(१) [लोरिक] वीर बोला, "तुम मार्ग दिखाओ, और हे चादा, तुम [स्वय] द्वार तक आओ।" (२) चांद (चांदा) उतर कर मंदिर (भवन) [की सीमा] तक चली आई और भूमि पर सूर्य (लोरिक) को [अपने] साथ लाई। (३) [लोरिक ने] वह मंदिर छोड़ दिया और वह तेज़ी से घर की ओर चला, तो पौरी पर पौरिए ने जाग कर खंखारा। (४) [उसके] चलते (जाते) समय उसने [उसके] पैरों की आहट पाई, इसलिए पौरिए ने कहा, "चोर आया है!" (५) चांदा ने कहा, "मैं चेरियों को बुलाऊंगी और फूलों के लिए उन्हें फुलवाड़ी में भेजूंगी।" (६) [इस बहाने से जब] वह वज्र की पौरी खुल गई, तो वीर [लोरिक] [चांदा से] विदा लेकर भाग गया। (७) [तदनंतर] चांदा चौखंडी पर चढ़ गई और पौरी [पुनः] वज्र हो कर लग गई (बंद हो गई)।

१४. मैनां-समाधान खण्ड

(२२६)

मैनां 'पूछ' कहां निसि 'कीन्हेहु'। 'कवनि नारि भुव बरु गियं दीन्हेहु'।
रगत न देह 'हरदि जनु' लाई। 'अउ मसि' मुख 'सभ दीन्हि चढ़ाई'।
'पियर' पात 'जस' लोरिकु डोलसि। 'मुरि मुरि' हंससि निरंगु भा बोलसि।
'हउं मनुसहि ओहट पहिचानउं'। 'नैन न लाव सूत जस' 'जानउ'।
'ढेल काजहि' सतु आपु गंवावा। सत 'क' हीन 'जस तुम्हं घर' आवा'।
हंसि 'लोरिकु' अस बोला 'राधा' राति 'कछाइउं।
'कउतिगु रइनि बिहानि तेहि देखत नैन न लाइउं'॥

सन्दर्भ—मै० : पत्र १८४, बी० ६९७-७०० (दो अतिरिक्त अर्द्धालिया होने के कारण चतुष्पदी-संख्या मे एक की वृद्धि हो गई है)।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदने मैंना बर लोरिक रा केह शब कुजा बूद ।

बी० में नीचे के हाशिए मे अन्य हाथ के द्वारा लिखी हुई निम्नलिखित दो अर्द्धालियां और हैं—(तुल० क्रमशः पाँचवीं तथा दूसरी अर्द्धाली) :

ढील गात सम आप गुंवाये : संग हुतै जैसे तुम्ह घर आये ।
औस मुष सब लीन्ह छराई : औस मुप दीस जु बराई ।

पाठान्तर—(१) १. बी० पूछि । २. बी० कीन्ही । ३. बी० कौन नारि तुम्ह भव (भुव—फ़ा०) बरु दीन्हा । (२) १. बी० हरद जानौ । २. बी० औ रस । ३. बी० रस लीन्ह छिडाई । (३) १. बी० पीर (पियर—फ़ा०) । २ बी० जैसे । ३. बी० मरि मरि (मुरि मुरि—फ़ा०) । (४) १. बी० हौ मानस औ अते पिछानौ । २. मैं० बात कहइ मइं देखेहि । ३. बी० जांनौ । (५) १. बी० तेज काटि । २. बी० के । ३. बी० जैसे तुम्ह । (६) १. मैं० लोर । २. बी० मैं रावा । ३. बी० कछाये । (७) १. बी० कौतिगु रैनि भान (बिहान—फ़ा०) लहु देष्या मैना नैन न लाये ।

अर्थ—(१) मैंना [लोरिक से] पूछने लगी, "रातें कहा कीं (गंवाई) ? बल्कि, [कहो] किस नारी की भुजाएं तुमने [अपने] गले में दी ? (२) देह में रक्त नही है, [मानो] हल्दी लगाई हुई है, और सम्पूर्ण मुख पर मसि (कालिमा) चढ़ा दी गई है। (३) [ऐ लोरिक,] तुम पीले पत्ते के जैसे डोल (हिल) रहे हो, तथा मुड़ मुड़ कर हंस रहे और निरंग (निःस्नेह) होकर बोल रहे हो। (४) मैं मनुष्य को ओहट (दूर) से ही पहचान लेती हू, और नेत्रों से (के निकट) लाए हुए सूत के सदृश उसे मैं जान लेती हू। (५) तुमने ढेले (मिट्टी के शरीर) के लिए ही [अपना] सत गंवा दिया [है], और जैसे तुम सत से हीन [हो कर] घर आए [हो] !" (६) [उत्तर मे] हंस कर लोरिक इस प्रकार बोला, "मैंने रात्रि में राधा [की रास या स्वाग ?] कछाई थी। (७) उसी कौतुक में रात बीत गई और उसे देखते हुए मैंने आंखें न लगाई (मै सोया नहीं)।"

(२२७)

चाद धौराहर चढ़ि 'अस' चाहा । सुरिजु कौन मंदिर 'दहुं' आहा ।
जनम 'अस्थान' जाइ पगु धरा । 'बांधि एहिं सत्रुहि दिन' भरा ।
मीन रासि 'जउ' करकेहि 'जाइहि' । सिंघपरोसि 'नियर होइ आइहि' ।
'तुला रइनि' दिन 'दोउ सम आवहिं' । पंथ बराबरि 'पइ रे' धावहि ।
'पाछें बरुइ गगन चढि आवइ' । 'रइनि' चांद 'कस तहु रे पावहि'

बहु दिन होइ 'मेरावा' चांद गिनि देखी रासि।
गांग लांघि 'कइ' लोरिक 'जउ हरदीं लइ' जासि ।।

सन्दर्भ—मै० १८५, बी० ७०१-७०३।

शीर्षक—मै० : मुअज़िमे (?) शिमुरदने लोरिक चांदा बर क़स्र खुद रफ्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० दिनु। २. बी० धौ। (२) १. बी० थान। २. बी० पांच आठ सतराहनि। (३) १. बी० जौ। २. बी० जाई। ३. बी० नीरे होइ छाई। (४) १. बी० तुरा रैंनि। २. बी० दुसमहि आवैहि। ३ बी० नित उठि। (५) १. बी० पाछैं परैं गवनु चरि धावै। २. बी० रैनि। ३. बी० थोरे पिउ पावै। (६) १. बी० मिरावा। (७) १. बी० कै। २. बी० हरदी पाटन।

अर्थ—(१) चांद (चांदा) ने धवलगृह [के ऊपरी खंड] पर चढ़ कर ऐसा (इस अभिप्राय से) देखा कि सूर्य (सूरज और लोरिक) किस मंदिर मे है। (२) [दोनों ने] जाकर जन्म के स्थान में पैर रक्खा था और इस प्रकार शत्रुओं से बच कर दिन भर (पा) लिया था। (३) [चांदा ने कहा,] "जब मीन राशि से सूर्य कर्क पर जाएगा, तब पड़ोसी सिंह उसके निकट आ जाएगा। (४) तुला राशि मे रात और दिन दोनों समान होते है और दोनों, हो न हो, बरावर का भाग दौड़ कर तै करते हैं। (५) पीछे भले ही तुम (सूर्य और लोरिक) गगन में चढ़कर आओ, रात में चांद (चंद्र और चांदा) को तुम तब किस प्रकार पाओगे ?" (६) बहुत दिनों पर ही [पुनः] मिलना होगा, यह बात राशियों की गणना कर चांदा ने देख ली, (७) [और यह तब होगा] जब गंगा को पार कर लोरिक [मुझे] लेकर हरदीं [पाटन] जाएगा।

(२२८)

'महरिइं महर पाई असि' चाहा। मंदिरि पुरुखु इक 'आवति' आहा।
चेरी चेर नाऊ 'अउ' बारी। 'तिह(न्ह)'सुनि 'पुर घर बात' संचारी।
घरि घरि महरीं 'कहि मिसु' करहीं। 'सुनि कइ अकरकु चितहि न' धरहीं।
'गोवरां' बात 'कहनाभन' भई। 'अउ' कछु मैंनां पहिं फुनि गई।
फूल घाम 'जसि' रही सुखाई। बिहसति मैंनां गई कुंबिलाई।
'ता दिन कहा लोरिकहिं रोवत मैंनां जाइ'।
आगि लागि 'सुनि' 'बस्तर' 'जरतइ जाइ' बुझाइ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८६, बी० ७०४-७०६।

शीर्षक—मैं० : ख़बर याफ़्तने मादर व पिदरे चांदा अज़ आमदने कसी बेगाना बर क़स्र।

पाठान्तर—(१) १. बी० महरि महर पै अस मुष। २. मैं० आवहि। (२) १. बी० औ। २. बी० तिव। ३. बी० परकन जाइ। (३) १. बी० घेमसि। २. बी० सुनिकैं अंकरंकु मन महि। (४) १. बी० गोवर। २. बी० घनाहुन। ३. बी० कछु। (५) १. बी० जैसी। (६) १. बी० मारनि कहा सुर लै चांदहि तू परहाउ। (७) १. बी० सो। २. बी० वस्तर तोरै। ३. बी० अब फुनि जरत।

अर्थ—(१) महरी और महर ने ऐसी चाह (ख़बर) पाई कि मंदिर (प्रासाद) में एक पुरुष आता रहा था। (२) सेविकाओं-सेवकों और नाइयो-बारियों ने सुनकर यह बात पुर (गोबर) के घर-घर में संचारित कर दी। (३) घर-घर में महरियां [इस समाचार की] चर्चा कर उसका मिस (चर्चा का बहाना ?) कर रही थीं, और इस कलंक [की बात] को सुन कर वे चित्त मे नहीं धारण कर रही थीं। (४) पुनः गोबर में यह बाता-कथनी (चर्चा) हुई, और तदनंतर यह कुछ मैनां के पास भी पहुंची। (५) जैसे कोई फूल धूप में [पड़ने पर] सूख रहता है, [उसी प्रकार] बिहसती हुई मैना [इस चर्चा को सुनकर] कुम्हला गई। (६) उसी दिन जाकर लोरिक से रोते हुए मैनां ने कहा, (७) "[तेरे इस दुष्कृत्य को] सुनकर [जैसे मेरे] वस्त्रो मे आग लग गई [है] और वह [मेरे] जलने से ही [वह जैसे] बुझेगी।"

(२२९)

'खोलिनि' मैनहि 'देखत' अहा। कहसि न 'किर' 'धिय केइं कछु' कहा।
बरन रात सांवर 'तोर' कांहें। 'बरन स तोर रात होइ चांहें'।
'मोहिं कहु सुनीं कछू तइं' बाता। 'लोर बीर बहुयरि कहुं राता'।
बारी उत्तरु देसि न मोही। 'केइं' कछु आइ कहा हइ तोही।
जीभ काढि 'ताकरि हउं जारउं'। 'घरहि छंडाइ तेहि देस निसारउ'।

उरध 'काटि' 'हउं मरिहउं' कहसि न बेदन 'काहि'।
'सुहर रूप तोर बहुयरि' 'बिड' रे ढांकत आहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८७।१, बी० ७०७-७०९।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदन खोलिन बर मैनां रा अज़ तग़ैयुरे हाले ऊ

पाठान्तर—(१) १. बी० षौलनि । २. मै० देखतहिं । ३. बी० कुर । ४ बी० घी के कुछु । (२) १. बी० तूं । २. बी० करौ सरात होइ नहि जाहे (चाहे—फ़ा०) (३) १. बी० मो कौ कहु जु हीये की । २. बी० सांवर [बर]नु भयो तोहि राता (तुल० अर्द्धाली २) । (४) १. बी० कैं । (५) १. बी० ताकर हौं जारौ । २. बी० नांकु काटि जा देस निकारौ । (६) १. मै० फाटि (काटि—ना०) । २ बी० हौ मरिहौ । ३. बी० काहु । (७) १. बी० ससि जु रूपु तोर भइ है (बहुयरि—फ़ा०) । २. बी० बहु ।

अर्थ—(१) खोलिन मैना को देख रही थी; [उसने कहा,] "ऐ बेटी, बता न कि किसी ने तुझे कुछ कहा है ? (२) तेरा रक्त वर्ण क्यों सांवला [हो रहा] है, तेरा वर्ण तो रक्त होना चाहिए ! (३) मुझ से कह कि क्या तूने कुछ [यह] बात सुनी है कि लोरिक वीर, ऐ बधूटी, कहीं [अन्यत्र] अनुरक्त है । (४) ऐ बालिका, मुझे तू उत्तर नहीं दे रही है, तो क्या किसी ने आकर तुझे कुछ कहा है ? (५) उसकी जिह्वा निकाल कर मैं जला दूगी और घर छुड़ाकर उसे देश से निकलवा दूंगी । (६) मैं ऊर्ध्व (शिर) काट कर मर जाऊंगी, [क्योंकि] तू यह नहीं कह रही है कि तेरी वेदना क्या है । (७) ऐ बधूटी, तेरे सुघड़ रूप को [लगता है कि कोई] विट (दुष्ट, दुराचारी) ढाक रहा है ।"

(२३०)

काह 'कहउ हउं खोलिनि' माई । 'हउं फुनि आहउं' धीय पराई ।
धिय 'कै' जाति आहि सभ 'केरीं' । 'हउं फुनि भई तेहि कइ चेरी' ।
जानि 'बूझि कउ मोहि कस गोवहु' । होइ 'तुम्हार त[इ?]स करि रोवहु' ।
'जाकरि कोई(ही) जरइ सो जानइ' । 'अनजरतें' कस काह 'बखानइ' ।
तुम्हं 'जानति मोसेउं' कर चोरी । लोरिकु 'रवंइ पराई' गोरी ।
'हउं जो' कहति तुम्हं दिन दिन लोरु रइनि कत जाइ ।
'घरह दाख रस परिचा' चरि चरि 'आउ' पराइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६०, बी० ७१०-७१२ । मै० में इस कडवक के सामने अब जो चित्र है वह लोरिक द्वारा की जाने वाली मैना की मनुहार का है, जो आगे आती है। इसलिए मै० यहाँ पर अस्त-व्यस्त लगती है ।

शीर्षक—मै० : जवाबदादन मैना बर खोलिन रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहौं तुम्ह षौलनि । २. बी० हौं फुनि आहौ ।

(२) १. बी० की । २. बी० केरैं । ३. बी० फुनि आहौं तिहकैं औभेरें । (३) १. बी० बूझि कै मुहि का गोवोहु । २. बी० तुम्हर तटस कह रोवोहु । (४) १. बी० जिहि कर जरै सोइ पै जानै । २. मै० बिन जरते । ३ बी० बखानै । (५) १. बी० जानत मो सौ कर । २. मै० बीरु खंड किहु । (६) १. बी० हौ जु । (७) १. मै० घर न दाख रस पिउ रे (तुल० २४२·७) । २. बी० आवै ।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "ऐ खोलन मां मैं क्या कहूं ? मैं तो पराई कन्या हूं । (२) समस्त [कन्याओं] की जाति [चेरी की][होती] है, फिर मैं तो उसकी सेविका हो चुकी हूं । (३) जान-बूझकर तुम मुझसे क्यो गोपित कर रही हो ? वह तुम्हारा है, उसी [नाते] से तुम रो रही हो । (४) जिसकी कोही जलती है (जिसका कलेजा जलता है), वही जानता है, बिना जलते हुए [होने से] कोई कैसे और क्या कहे ? (५) तुम जानती हो कि मुझसे चोरी करता है और लोरिक वीर अन्य की गोरी (स्त्री) के साथ रमण करता है । (६) तुम से इसलिए मैं कहती रहती हूं कि प्रति दिन लोरिक रात में कहीं जाता है, (७) और वह घर के द्राक्षा-रस का परित्याग कर पराए का [खेत] चर-चर कर आता है ।"

(२३१)

'अउ ही पोह मोरि' माटी हो ऊ । 'मोहि आगें जउ कह' 'कस' कोऊ ।
'हउं दोखी जउ' कछू न जानउं' । अनजानते कस काहि बखानउ ।
दई 'ठाउं' भल 'बार न पावउं' । जानि बूझि 'जउ' तोहि लुकावउ ।
सो कस 'आहि रांडहि भंडहाई' । सेज छाडि 'जो अपुनिइं' जाइ ।
घर 'कइ' 'सुंदरि' 'कीन्हि' बिराई ।
'आपनी(नि) कीत्यों(तेंउ)' आनि पराई ।
तोहि लागि चितु 'बांधेउं' 'जीउ' मोर तूं आहि ।
'कहहि न कवन' भंडिहाई देस 'निसारउं' ताहि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८७।२, बी० ७१३-७१५ ।

शीर्षक—मै० : मुनकिर शुदने खोलिन केह मन हेच न मी दानम ।

पाठान्तर—(१) बी० षोही पूतु मोरौ । २. बी० मुहि आगै जौ कहि । ३ मै० कुछ । (२) १. बी० हौं दुषई (दोषी—फ़ा०) जौ । २. बी० जानौ । (३) १ बी० ठाव । २ बी० कबहि न पांउ ३ बी० जौ

(४) १. बी० राड अहि झौहाई । २. बी० तुहि वा पैहि । (५) १. बी० की । २. मैं० धीय । ३. बी० कीन्ह । ४. मैं० अपनी कीनें । (६) १. बी० बाध्यँ । २. बी० जीव । (७) १. बी० कहु सो कौन । २. बी० निकारौ ।

अर्थ—(१) [मैंना ने कहा,] "इसी समय मेरी मिट्टी (मेरा शरीर) पोह (गोबर की छोल) हो जाए, यदि मेरे आगे कोई कहे कि यह कैसा है। (२) मैं इसलिए दोषी [कही जा सकती] हूं कि [इस विषय में] कुछ जानती नहीं हूं, किंतु बिना जाने किसी के बारे में क्या बखानूं (कहूं)? (३) दैव के स्थान पर [जाने के लिए?] मैं भला द्वार न पाऊं यदि जान-बूझकर तुझसे कुछ लुकाऊं (छिपाऊं)। (४) [किन्तु] किसी रांड (विधवा या परित्यक्ता) से भंडता [जैसी] यह कैसी बात है कि कोई अपनी शैया को छोड कर [अन्य की शैया पर] जाए? (५) घर की सुंदरी को उसने [जैसे] अन्य की कर डाला है और दूसरे की स्त्री को ला कर उसने अपनी कर लिया है! (६) मैंने तेरे लिए (तुझ से लगा कर) ही अपने चित्त को बांध रक्खा है, तू ही मेरा जीव है। (७) तू कह न कि किसने वह भंडता की है; मैं उसे देश से निकाल (निकलवा) दूंगी।"

(२३२)

माइ 'मोरि' तुम्हं सासु न होहू । 'बोलिउं चितहिं उठा जो' कोहू ।
'जाकर निल उठि बार बोहारउं' । 'ताकर ओछ कहइ का पारउं' ।
'कइ बियाह बारी हउं' आनीं । 'चूल्हि न फूंकि गइउं नहिं' पानी ।
भवरु बासु 'कंवरे कइ' राता । 'कंवल कली' 'रोहि' पूछ न बाता ।
'अम्रितु 'सरवरु आछत' भरा । सो सरवरु 'लइ अनतइं धरा' ।
जाइ 'देहु मोहि खोलिनि' लोरिक 'कीन्ह(न्हि)' दुहेलि ।
'सारसि परि ररि मरुऊं' 'पिउ बिनु रइनि' अकेलि ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८८।१, बी० ७१६-७१८।

शीर्षक—मैं० : बाज गुप्तने मैंना बर खोलिन रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मोर । २. बी० बोल्यौ चिताह उठ्यौ जौ । (२) १. बी० जाकौ बालु उभर न पारै । २. बी० ताकौ वोछ बोल कर मारै । (३) १. बी० कै बियाहि बरी हौ । २. बी० चूल्ह न फूंक्यौं गइ न । (४) १. बी० केवरै कि । २. बी० केवर करी । ३. मैं० फुनि । (५) १. मैं० अभिरित । २. बी० सरवरु अछतु, मैं० कुंड जो आछत । ३. बी० अन पासेहि

हरा (धरा—फ़ा०)। (६) १. मैं० देखहु भाई षोलिनि, बी० देहु मोहि षोलनि। २. मैं० हइ सत्त। (७) १. बी० सारस जौ परि मरिहौं। २. बी० संग बिनु रैनि।

अर्थ—[मैंना ने उत्तर दिया,] "तुम मेरी माँ हो, सास नहीं हो; [जो-कुछ] मैंने कहा है, वह इसलिए कि मेरे चित्त में क्रोध उठा हुआ है। (२) जिसका मैं नित्य उठकर द्वार बुहारती (झाड़ती) हूँ, उसकी ओछी बात (निंदा की बात) क्या कह सकती हूं ? (३) विवाह करके मैं तभी लाई गई थी जब मैं बालिका थी, [जब तक] न मैंने चूल्ही फूंकी थी (रसोई करती थी) और न पानी के लिए गई थी (पानी भरती थी)। (४) किन्तु [अब] भौंरा (प्रिय) केवड़े की सुवास पर अनुरक्त है, [इसलिए] वह कमल-कलिका को रोध (रोक) कर उससे बातें भी नहीं पूछता है। (५) जो [प्रीति का] अमृत-सरोवर भरा हुआ था, उस सरोवर को ले जा कर उसने अन्यत्र रख दिया है। (६) खोलिन, मुझे जाने दो, क्योंकि लोरिक ने मुझे दुःखित किया है। (७) [अब] मैं सारसी की भांति रट लगाती (चिल्लाती) हुई प्रिय (पति) के बिना रात में अकेली ही मर जाऊंगी।"

(२३३)

'रोस' न जाइ होइ 'हरुवाई'। 'हरुई' बात जाइ 'गरुवाई'।
'हरुव बोल भार सहि' लीजा। 'हरुएं कहं' जिउ 'करुव' न कीजा।
'हरुव होइ बुधि केर' अयानां। 'हरुवै होय कैरु (?)' सयानां।
'हरुव सो फूंकेहि' जाइ उड़ाई। 'पाउ न डोल जेहिं चितहिं गरुवाई'।
'गरुई' होइ घर अपनें 'रहहू'। 'उहि हरुवै' 'कै(कइ)' चित न करहू।
'उत्तिउं' जाति 'कुरवती' मैंनां 'कीज न' कोहु।
'गाल्ह फारि कै(कइ)'जीभ 'उपारउं' पीउ(ऊं)लोरिक 'लोहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८८।२, बी० ७१९-७२१।

शीर्षक—मैं० जवाब दादन खोलिन बर मैंनां रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० रोसि। २. बी० हरवाई। ३. बी० हरइ (हरुई—फ़ा०)। ४. बी० गरवाई। (२) १. बी० हरुवो बोलु भारि सुनि कै। २. बी० हरुवैं कौ। ३. बी० करू। (३) १. बी० हरू जिय बुधि करे। २. मैं० हरुव न सेइय कहा। (४) १. बी० हरू जु फूकत। २. बी० आंधी न डोलौ जीह गरवाई। (५) १. बी० गरइ। २. मैं० रहू। ३. मैं० अस

हइए। ४. मैं० कहं। (६) १. बी० उत्तिम। २. मैं० गुन आगरि। ३. मैं० न कीजइ। (७) १. मैं० गाला फारि दुइ। २. बी० उपारौ। ३. मैं० आहु।

अर्थ—(१) [खोलिन ने कहा,] "रोष यदि नहीं जाता है तो हल्कापन होता है, और हल्की बात से गुरुता चली जाती है। (२) हल्के बोल का भार सहन कर लेना चाहिए और हल्के [बोल] के लिए जी को कटु नहीं करना चाहिए। (३) हल्कापन बुद्धि के अज्ञान से होता है; क्या हल्का [व्यक्ति] सज्ञान हो सकता है? (४) जो हल्का होता है, वह फूंकने से ही उड़ जाता है और जिसके चित्त में गुरुता होती है, वह डोलने (हिलने) नहीं पाता है। (५) गुर्वी होकर अपने घर में [पड़ी] रहो, उस हल्के (हल्का कार्य करने वाले) की चिन्ता न करो। (६) तुम उत्तम जाति की हो और कुलवती हो, ऐ मैनां, तुम क्रोध न करो। (७) [यदि लोरिक ऐसा कर रहा है तो] मैं उसके गाल फाड़कर उसकी जिह्वा खींच लूँगी, और उस लोरिक का लहू पिऊँगी।"

(२३४)

बारि बियाहि 'जु (जो) तर(रु)नि उढाटी'।
बेर बांधि 'औ(अउ) नाव उसाटी'।
गुन 'जो' तोरि 'धरि' नाउ 'चढाई'। 'तेहिं रे निगुनियहि को' 'पतियाई'।
'तेहि' सेतीं कसि होइ हियारी। लेजु काटि 'कइ कुवइं' उसारी।
'लावइ आगि सेज दिन' 'मोरी'। सूरिजु चांद खवइ निसि चोरी।
'जउहि' 'सूरुज' चांद पहिं आवा। सरग 'तराइन महिं दिखरावा'।
'लाज भइउं तेहिं' सांवरि 'जइसि' राति 'अंधियारि'।
निलज चांद मुख 'कारें' 'फिरइ' 'राति उजियारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८६, का०, बी० ७२२-७२४।

शीर्षक—मैं० : तक़रीर करदने खोलिन बर मैनां रा।

का० : जवाब दादन मैनां खोइलिन रा।

पाठान्तर—(१) १. मैं० जउ तई हुत आनी, का० तरनि जउ राती। २ मैं० कइ दीन्हि अस्तानी। (२) १. बी० जु, मैं० में नहीं है। २. मैं० धनि (धरि—ना०)। ३. बी० चरावैं। ३. मैं० तेहि निगुनिहि कों कवनु, बी० तिह रगनेह (निगुनिहि—ना०) कोइ। ४. बी० पतिआवै। (३) १. मैं०

ओहि, बी० तिहि । २. का० खट, बी० जिहि कुवां । (४) १. का० लावइ आगि सेज दिन, बी० लावै आगि सेज तनि । २. का० मोरीं । ३. बी० रवै । (५) १. बी० जोवोहु । २. का० सूरुज सो । ३. बी० तरायन मोहि दिषावा । (६) १. का० हो गइउं तसि, बी० भयो तिहि । २. बी० जैस । ३. बी० अधियार । (७) १. मै० कारे, बी० कारौ । २. का० भवंइ, बी० फिरै । ३ बी० रैनि अधियार (पूर्ववर्ती चरण का तुक भी यही है) ।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "बचपन में ही ब्याह कर यदि किसी ने अपनी तरुणी स्त्री को अलग डाल दिया (?), बेड़े से बाँधकर यदि किसी ने नौका को दूर कर दिया, (२) गुण (नाव की रस्सी) तोड़ कर यदि किसी ने किसी को पकड़ कर नाव पर चढ़ाया, तो उस निर्गुणी की प्रतीति कौन करेगा ? (३) उससे हृदय का संबंध कैसे हो जो रस्सी को काट कर [किसी को] कुए मे से उस्सारे (ऊपर उठाए) ? (४) वह मेरी शैया में प्रतिदिन आग लगाता है, और चांद (चांदा) से वह सूर्य (लोरिक) रात्रि में चोरी-चोरी रमण करता है। (५) [क्योंकि] वह सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) के पास आता (जाता) है, तभी तो आकाश (धवलगृह) की तारिकाए (चादा की सेविकाएँ) मुख दिखाने लगी हैं। (६) उसी लज्जा से मैं ऐसी सांवली हो गई हूं, जैसी अधेरी रात होती है। (७) भगवान करे निर्लज्ज चांदा के मुख पर कालिमा हो और मेरी उजाली रात पुनः आए।"

(२३५)

निसि दूभर (रि) तहां गई बिहाई । दिनु भा लोरु पहूता आई ।
मदिर चहूं दिस रबि उजियारा । तउ सु(सो) मैना मुषु अधियारा ।
आगि न चूल्हें धरा न पानी । लोरिक चरची रबिनु(?) सुखानी ।
दरसनु न करै लोर सौ(सौं) मैना । श्रवन नहि सुनै बगत(ति) नहि बैना ।
लोरिक चाहि नारि मुख जोवै । चीरु खांचि धन तिह रस(?)गोवै ।

मरइ सनेह स मैना उठी प(पा)य सिरु झार ।
रगत धार दुहु नैनाह रोयसि घालि ङभा(फा)र ॥

सन्दर्भ—बी० ७२५-७२७। यह कडवक मै० में नहीं है, किन्तु इस समय मै० पत्र १६० पर जो चित्र है वह इसी का लगता है, इसलिए असंभव नही कि यह कडवक उसमें से निकल गया हो। कडवक प्रसंग में आवश्यक लगता है, क्योंकि इसके अभाव में अगले कडवक का विषय आकस्मिक रूप से प्रस्तुत किया हुआ लगेगा।

अर्थ—(१)जब [मैंनां की] दूभर रात्रि वहाँ छोड़कर चली गई(व्यतीत हो गई), दिन हुआ और लोर आ पहुँचा। (२) मंदिर में चारों ओर सूर्य का प्रकाश हो गया था किन्तु मैंनां के मुख पर तब भी अंधेरा ही था। (३) उसने चूल्हे में न आग जलाई थी और न पानी [भर कर] रक्खा था; लोरिक ने अनुमान कर लिया कि नलिनी (?) सूख गई है। (४) लोरिक के सम्मुख मैंनां देखती न थी, न कानों से कुछ सुनती थी और न वचन बोलती थी। (५) लोरिक नारी (मैंनां) का मुख [यह समझने के लिए] ध्यानपूर्वक देख रहा था [कि उसका रोष कहाँ तक वास्तविक है], और इसलिए वह [उसके मुख पर से] उसका चीर खींचता था, किन्तु स्त्री (मैंनां) रोष(?) के कारण उस (अपने मुख) को छिपाती रहती थी। (६) मैंनां के संबंध में उसे यह सन्देह हुआ कि वह मर जाएगी, पैर से सिर तक ऐसी ज्वाला [उसके शरीर मे] उठी; (७) उसके दोनों नेत्रों से रक्त की धारा बह चली, और वह डफार छोड़ कर रो पड़ी।

(२३६)

'कइ' गियानु मनि लोरिक 'गुनां'। 'अवसिउ' मैंनां 'कछु हइ' सुना।
'तउ रे' बिरोधु 'मोहि' सेतीं कीन्हां। नारि अंतरपटु अंतरु दीन्हा।
'कर गहि कैं धन(नि) पासि बईठा'।
रगत 'झरत' 'तातें औ(अउ)र न' दीठा।
आसु 'पोंछि 'मुख' पानी धोवा। मोहि देखि 'तुम्हं' काहे रोवा।
निससति रहइ न पारइ सैनां'। 'दिस्टि न करइ' 'बकति' 'नहि बैना'।
'कइ मन सोग सोगाइहु' 'कइ' कछु 'भएउ बिसाउ'।
रस महि बिरसु 'संचारइ' 'चितहि चढ़ा कस भाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६१, बी० ७२८-७३०।

शीर्षक—मैं० : दर खातिर गुज़रानीदने लोरिक मैंनां शुनीदने अस्त।

पाठान्तर—(१) १. बी० कै। २. बी० गना। ३. बी० अैसैं। ४. बी० कुछू न। (२) १. बी० तें। २. बी० मुझ। (३) १. मैं० बर कइ लोर पास धनि बइठा। २. बी० झार। ३. मैं० मुख रोवत। (४) १. बी० पूछ(पोछि—फा०)। २. मैं० में नहीं है। ३. बी० तै। (५) १. बी० निसिसत रहै न बारी मैंनां (पारइ सैना—फ़ा०)। २. बी० श्रवन न सुनैं (तुल० २३५.४)। ३ बी० बगत। (६) १. बी० कै मन सुरग सुकन्युहु। २. बी० कै। ३. बी० भयो बिपाऊ। (७) १. बी० संचारौहु। २. बी० चितेहि चरा कास भाऊ।

अर्थ—(१) लोरिक ने मन में ज्ञान करके विचार किया, "मैंना ने अवश्य ही कुछ सुना है। (२) तभी तो उसने मुझसे विरोध कर रक्खा है और उस नारी ने [मेरे और अपने बीच] अंतर-पट का अंतर दे रक्खा है।" (३) [यह सोच कर] लोरिक [स्त्री का] हाथ पकड़ कर उसके पास बैठ गया, किन्तु [उसके नेत्रों से] रक्त झड़ रहा था इसलिए उसे और कुछ न दीखा। (४) उसके आंसू पोंछ कर [लोरिक ने] उसका मुख पानी से धोया और बोला, "मुझे देखकर तू क्यों रो पड़ी? (५) तू निःश्वास ले रही है और कोई संकेत नहीं डाल (कर) रही है; तू [मेरी ओर] दृष्टि नहीं कर रही है और न कोई वचन बोल रही है। (६) तू या तो मन में शोक से शोकायित हो गई है, अथवा तुझे कुछ विस्वाद हो गया है। (७) रस में तू विरसता का संचार कर रही है, [इसलिए बता कि] तेरे चित्त में कैसा भाव चढ़ा हुआ है?"

(२३७)

'तेहिं लइ' भाउ 'चढ़ावहिं' लोरा। 'जेहिं' सेतीं मन 'लागा' तोरा।
तजि मारगु 'जो' कुमारगि जाई। सो कस मुख 'दरसावइ' आई।
सुद्ध सांत 'जनु कछुव न जानइ(इ)'।
'मांगति' पान तउ पानी 'आनइ(इ)'।
'जे' छंद नौ खंडि 'काहि न आवै(वइ)'।
ते लोरिक 'कहूवां(हुंवां) अवरावै (वइ)'।
सेज छाडि 'तूं' सरगेहिं जासी। 'चांद रवसि' 'अउ' बोलसि 'भासी'।
'बारि भोरि मोहिं डहकसि' जानसि 'कछुव' न जान।
'नारि कीन्हि तइं बाउरि' 'तेहि पंथ बहुल' सयान॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९२, बी० ७३१-७३३।

शीर्षक—मै०: कैफ़ियत दादन मैंना बर लोरिक रा बा गुस्सः।

पाठान्तर—(१) १. बी० तिह लैं। २. बी० चरावोहु। ३. बी० जिह। ४. मै० लागेउ। (२) १. बी० जु। २. बी० दरसावै। (३) १. बी० जानौ कछू न जानौ। २. बी० मागैं। ३. बी० आंनौ। (४) १. बी० जै। २. मै० काउ न आए। ३. मै० तुम्हं कहवां पाए। (५) १. बी० तहुं। २. मै० चांदहि रवं। ३. मै० और। ४. मै० में शब्द नहीं है। (६) १. मै० भानु बोलि मोहिं डहंकसि। २. बी० कछु। (७) १. बी० बार कीन्ह तैं बावरि। २. बी० तुह्म (तुम्ह) पहि आहि।

अर्थ—(१) [मैंना ने उत्तर दिया,] "ऐ लोरिक, उसको लेकर भाव चढ़ा, जिससे तेरा मन लगा हुआ है। (२) जो मार्ग को छोड़ कर कुमार्ग पर जाता है, वह कैसे आ कर मुख दिखाता है? (३) [ऊपर से] तू ऐसा शुद्ध (सीधा-सादा और शांत है मानो कुछ जानता ही नहीं है, पान माँगती हूं तो पानी लाता है। (४) जो छद्म नौ खंडों में किसी को नहीं आते हैं, ऐ लोरिक, तू उनका अभ्यास कहाँ पर कर लेता है? (५) [मेरी] शैया को छोड़कर तू आकाश (चांदा के धवलगृह) में कहाँ जाता है? तू चांद (चांदा) से रमण करता है और भासित कर (बना बना कर?) बोलता है। (६) मुझ बालिका और भोली को तू डहक रहा (धोखा दे रहा) है और जानता (समझता) है कि मैं कुछ भी नहीं जानती हूं। (७) नारी को तूने बावली कर रक्खा है, और इस मार्ग में तू बड़ा सयाना है।"

(२३८)

अस 'धनि' 'पुरुखहि' बेगि 'मरावा'। 'अनसंभवइं अस उत्तरु पावा'।
ठाकुर 'कइ धिय बिरिछहि' लावा। 'बास घलइ लइ' मूंड़ु कटावा।
सरग चांदु धर लोरिकु 'आहा'। 'इन्ह बातइं दहुं कहियइ काहा'।
सरग गएं वर 'बहुरि न आवइ'। 'जियतइं' सरगेंहि जान न 'पावइ'।
'अउ जउ तुम हम सरग पठाउबि'। सरग गएं 'फिर' बहुरि न 'आउबि'।
जीभ संकोरहु मैना 'रानी' 'होइ' बहुल पछिताउ।
'जइ मोंहि' सरगि 'चलाव(उ)बि' 'तुम सों कहां मेराउ'।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६३, बी० ७३४-७३६।

शीर्षक—मैं०: जवाब तरसानीदने लोरिक बर मैनां रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० धन। २. बी० पुरखहि। ३. बी० मरावैं। ४. बी० अनसंभौ जिहि उतरु न आवै। (२) १. बी० की धी अकरंकु। २. बी० अस अनसभये (तुल० अर्द्धाली २)। (३) १. बी० अहा। २. बी० यह र बात घन कहिए कहा। (४) १. बी० फिरे न आई। २. बी० जैतिहि। ३. बी० पाई। (५) १. बी० अैसे तुम्ह हौ सरगि पठावबि। २. बी० वर। ३. बी० आवबि। (६) २. मैं० में नहीं है। १. बी० होय (७) १. बी० जौ हो। २. मैं० चलावहु। ३. बी० तुम्ह सौ कहौ मिलाऊ।

अर्थ—(१) "ऐसी स्त्री", [लोरिक ने कहा,] "पुरुष (पति) को शीघ्र ही मृत करती है!" इस प्रकार का असंभाव्य (जिसकी कल्पना नहीं की जा

सकती थी) उत्तर [मैंना ने] पाया। (२) [उसने कहा,] "एक ठाकुर (क्षत्रिय) की दुहिता ने एक वृक्ष लगाया, तो [उसकी] सघन वासना को लेकर उसने सिर कटाया ! (३) चांद (चांदा) स्वर्ग (आकाश) में है और लोरिक धरती पर है, [अतः] इन [बेतुकी] बातों के संबंध में क्या कहा जाए ? (४) स्वर्ग जा कर कोई धरती पर लौटता नहीं है, और जीवित अवस्था में कोई स्वर्ग जाने नही पाता है। (५) अब यदि तुम मुझे स्वर्ग भेजोगी, तो स्वर्ग जा कर मैं पुनः न आऊँगा। (६) ऐ मैंना, तुम [अपनी] जिह्वा सिकोड़ो (कम बोलो), [अन्यथा तुम्हें] बहुत पछतावा होगा। (७) यदि तुम मुझे स्वर्ग चलाओगी (भेजोगी), तो तुम से कहां [मेरा] मिलना [होगा] ?"

(२३९)

सुनि 'खरभरि खोलिनि तसि' धाई। 'जनु फुकरति बिहिलागनि' आई।
'लोरहि' अचगरु 'बकति' न आवा। अब 'हउं एहि(हीं) भूखिइ' खावा।
केस गहें कर मांथ 'ओनाएसि'। 'झूट(ठ) पचारि' 'दुहुं गालहि' लाएसि।
'जाकरि चेरी पियाव न पानी। ता करि धिय चेरी कै(कइ)' आनी।
'अउ तेहि ऊपरि' 'दिहसि' अंगारा। दहि दहि 'कुइला' भई सो 'बारा'।
'आगि' लाइ घर 'अपनें' लोर 'दहां दिसि धावहि'।
बेगि 'पइसि' जरि मैंनां 'अंब्रित' 'छिरकि' 'बुझावहि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९४, बी० ७३७-७३९।

शीर्षक—मैं० : व आमदने मादर लोरिक व आश्ती करदने मियाने लोरिक व मैंनां।

पाठान्तर—(१) १. बी० करहु घौलनि तस। २. बी० जानौ फिकरति बिहिलागनि। (२) १. बी० लोरैंहि। २. बी० बगत। ३. बी० हौ यहि पहि भूष्या। (३) १. बी० नवाईसि। २. मैं० कूंचि झालि। ३. बी० दौहु गालहु। (४) १. बी० जाकर चेर। २. मैं० कहं। (५) १. बी० औ तिहि। २. बी० बरसु। ३. मैं० कोतला। ४. मैं० नारा। (६) १. बी० अग। २. बी० आपन। ३. बी० दहा दिस धाउ। (७) १. बी० पैंसि। २. मैं० अमिरित। ३ मैं० छिरकि छिरकि। ४. बी० बुझाउ।

अर्थ—(१) खलबली सुनकर खोलिन इस प्रकार दौड़ पड़ी जैसे फूत्कार करती हुई कोई विहिलाग्नि (?) आ जाए। (२) [यह देख कर] अचगर (अपराधी) लोरिक को वाक्य न आया, [क्योंकि] उसने समझ लिया कि इस

भूखी [अग्नि ?] ने मुझे खा लिया। (३) खोलिन ने दोनों के केशों को हाथो से पकड़े हुए [दोनों के] मत्थे झुकाए और झूठ-मूठ डाट-डपट कर दोनों को [एक-दूसरे के] गालों से लगा दिया। (४) [उसने कहा,] "जिसकी चेरिया पानी नहीं पिलाती हैं, उसकी कन्या को तुम [अपनी] सेविका(पत्नी) बनाने को लाए, (५) और उस पर तुमने [इस प्रकार] अंगारा दिया कि वह बाला जल-जल कर कोयला हो गई। (६) अपने घर में आग लगा कर, ऐ लोरिक, तुम दसों दिशाओं में दौड़ रहे हो ! (७) तुम शीघ्र [घर में] प्रविष्ट हो, क्योंकि मैनां जल रही है, और तुम उसको अमृत छिड़क कर बुझाओ।

(२४०)

'लोर' हरकि 'खोलिनि' घर आई। बीर नारि कंठि लाइ मनाई।
'भुजा झेलि धनि सेज बइसारी'। पान 'बिरी मुख दीन्हि' संवारी।
रग बिनु पान खवावसि मोही। सो रंग 'अबहुं न देखउं' तोही।
रग बिनु 'बातन्ह भाउ बनावा'। तुम्हं लोरिक रंगु 'अनतइं' लावा।
धर 'तोर आछइ' मैनां 'पहां'। चितु मनु 'धावइ' चांदा जहा।
'सवन न सुनइ नैन नहि देखइ' 'जउ न होइ मन हाथि'।
सेज न भाव रूच नहिं कामिनि 'तिल न रहइ' संग साथि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६५, बी० ७४०-७४२।

शीर्षक—मै० : आश्ती करदन लोरिक बा मैना अज गुफ़्तार मादर।

पाठान्तर—(१) १. मै० लोरिक। २. बी० षौलनि। (२) १. बी० गहि अंगुरी सेज बैसारी। २. बी० बीर मुष दीन्ह। (३) १. बी० घूत न देष्यौं। (४) १. बी० बीर भान औपावा (उपावा—फ़ा०)। २. बी० अनतहि। (५) १. बी० तुर आछै। २. मै० जहां ('जहां' दूसरे चरण के तुक मे भी है)। ३. बी० धावै। (६) १. बी० श्रवन न सुनै नैन न देषै। २ बी० जो न होय जिउ हाथि। (७) १. बी० सो न रहै। मै० में दोहे के दोनों चरणों के प्रथमार्द्ध परस्पर स्थानांतरित हैं।

अर्थ—(१) लोरिक को [इस प्रकार] वर्जन कर खोलिन घर आई, तो वीर [लोरिक] ने स्त्री (मैनां) को गले से लगा कर मनाया। (२) भुजाओ पर ले (उठा) कर [उसने] स्त्री को शैया पर बिठाया और [तदनंतर] उसने सवार कर मैनां के मुख में पान की बीड़ी दी। (३) [मैनां ने कहा,] "तुम बिना रंग (अनुराग) के पान खिला रहे हो; वह रंग (अनुराग) अभी भी

मैं तुममें नहीं देख रही हूं। (४) बिना रंग (अनुराग) के ही तुम बातों से भाव (स्नेह) का अभिनय कर रहे हो और तुमने, ऐ लोरिक, रंग (अनुराग) अन्यत्र लगा रक्खा है। (५) धड़ तुम्हारा [भले ही] मैना के पास है, किन्तु तुम्हारे चित्त और मन वहाँ दौड़ रहे हैं जहाँ चांदा है। (६) कान सुनते नहीं हैं, नैन देखते नहीं हैं, यदि अपना मन हाथ में नहीं होता है। (७) शैया भाती नहीं है और कामिनी रुचती नहीं है, [इसलिए] उसके संग-साथ मे [पुरुष] तिल भर भी नहीं रहता है।"

(२४१)

मैनां तोहि 'जसि' तिरी न 'आहइ'। तोहि छाड़ि चितु 'लाग न चाहइ'।
मइं 'तोरें' रसि बिरसु बिसारा। 'देखि निभावइं आंबु' सहारा।
मइं तूं नारि चांद 'जसि' पाई। चांद जोति सबु गई 'हिराई'।
'सवन [नि ?] सुनि अपजसु केइं लाए'। लागु न मैनां 'कहें पराए'।
नैन देख तउ बात 'उभारी'। 'ढांकिय सुनि कइ उघरत बारी'।
'तोरि चाहि' को 'आगरि' 'मैनां' 'मोरें चित(चित्त)न समाइ'।
'अंब्रितु चूरि जु (जो)' 'बिरसइ' सो 'फर टेंटि' न खाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६६।१, बी० ७४३-७४५।

शीर्षक—मैं०: गुफ्तने लोरिक जमालियत व खूबी मैनां।

पाठान्तर—(१) १. बी० जस। २. बी० आही (आहइ—फ़ा०)। ३. बी० लागैं काही। (२) १. बी० तेरैं। २. बी० देखहि भावहि अंबु। (३) १. बी० जस। २. बी० रहाई। (४) १. बी० अगर न मैना अप[ज]सु लायें। २. मैं० कहन पराए, बी० कहे परायें। (५) १. बी० उभारैं। २. बी० जौ उघरहि तौ ढाकैंहि पारैं। (६) १. बी० तोहि। २. बी० आगर। ३. बी० में नहीं है। ४. बी० मेरैं चितह कराय। (७) १. मैं० अमिरित कुंड जेहिं। २. बी० जु बिरसैं। ३. बी० हर (फर—फ़ा०) नीबु।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "मैंनां, तेरी जैसी [कोई भी] स्त्री नहीं है, [जिससे] तुझको छोड़ कर [मेरा] चित्त लगना चाहे। (२) मैंने तेरे रस मे विरस [होना] विस्मृत कर दिया, और तुझे देख कर मुझे आम्र-सहकार भी नहीं भाता है। (३) मैंने तो तुझे ही चंद्र जैसी स्त्री पाया है, और तुझे देख कर चंद्र की समस्त ज्योति गुम हो गई है। (४) कानों से तू किसी के लगाए हुए अपयश को सुनकर अन्य के कथन पर, ऐ मैंनां, न लग। (५) नेत्र से देखे,

तो [कोई] बात उभाड़े, [अन्यथा] ऐ बालिका, उघड़ती हुई बात को सुन कर ढक दे। (६) मेरे चित्त में यह [बात] नहीं समा रही है कि तेरी अपेक्षा कोई बढ़ कर है, (७) और जो अमृत [फल] को तोड़ कर उसका विलास करता [होता] है, वह टेंटी (करीर) का फल नहीं खाता है।"

(२४२)

'लोर चांद मोरु केर महं काहा'। 'जो केरइ सो आछत आहा'।
'सोरह करां जउ रे दिखरावइ'। 'चांदा मोसिउं न सरभरि पावइ'।
लोरिक 'बिसरै(र)हु नारि गंवारी'। 'फूर' न बीनि पराई बारी।
'फूर' केतुकी भंवरु जो 'रावइ'। सो हरि कांटैं जीउ 'गंवावइ'।
'हउ' जिय 'तोरें' लोर डराऊं। नींद न 'जानउं भुगुति' न खाऊं।
'तोरिइं' बहुलि मन 'संका' पर बेलीं कत 'जाहु'।
'घर न दाख रस पिउ रे' 'नाह संकोरहु खाहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६६।२, बी० ७४६-७४८।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तन मैनां बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिक चांदा करिहौ कहा। २. बी० जो करिहौ सो आछौहु अहा। (२) १. बी० सोराह करा जो रि दिषरावै। २ बी० चांद कि सरभरि मो पैंहि पावै। (३) १. मैं० तोरें नारिग बारी (नारि गंबारी—ना०)। २. मैं० फूल। (४) १. मैं० बास। २. बी० जु रावै। ३. बी० गवावै। (५) १. बी० हौ। २. बी० तेरै। ३. बी० जानौ भुगति। (६) १. बी० तोर। २. बी० संकौ। ३. मैं० जाइ। (७) १. बी० घरह दाष रस पूरें (पिउ रे—फ़ा०)। २. मैं० चरि चरि आउ पराइ (तुल० २३०.७)।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "ऐ लोर, चांदा मेरी सापेक्षता में क्या है? और जो सापेक्षता में होता है, [वास्तव में] वही होता है। (२) यदि चादा अपनी सोलह कलाएँ भी दिखाए, [तो भी] वह मुझसे समानता नहीं पा सकती है। (३) ऐ लोरिक, तू उस गंवार नारी (चादा) को विस्मृत कर दे; तू पराई वाटिका में फूल न बिने (पर-स्त्री का अंग-स्पर्श न करे)। (४) केतकी के फूल से यदि भौंरा रमण करता है, तो वह कांटों द्वारा हरा जा कर प्राण गंवाता है। (५) मैं तेरे जी [के विषय] में, ऐ लोर, डरती रहती हूँ, और उसके कारण न नींद जानती हूं और न भुक्ति (भोजन)

खाती हूं। (६) तेरी (तेरे लिए) ही मेरे मन में बहुत शंका रहती है, तू पराई बेली के पास क्यों जाता है ? (७) तू घर का द्राक्षा-रस नहीं पीता है और, हे स्वामी, तू [दूसरों के द्वारा उच्छिष्ठ किए हुए] सकोरे खाता है।"

(२४३)

'बइठि' सांत 'हंसि लोरिक' कहा। गा 'सो' 'कोपु मैनां चितु अहा'।
'खर उपहर कइ' मंदिरु 'संवारा'। 'कीत' रसोइ 'अगिनि परजारा'।
'सहजि जेउं लोरिकु' अन्हवावा। अउ 'भल' भोजनु काढि जिवावा'।
रग सुरंग 'सेउं' 'लीन्हि' सोपारी। पान बीरी मुख 'दीन्हि' संवारी।
हसत लोरु बाहरि नीसरा। चांद बात 'मैनां' बीसरा।
सोइ 'पुरुष' 'सो' 'तरिवर' सोइ लोरु 'सो बेर'।
सोइ 'मिरिघु सो थरहरु सोइ अहेरिया सो अहेर'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६७, बी० ७४६-७५१।

शीर्षक—मै० : लहू दर खुशदिली लोरिक व मैनां गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी. बैठि। २. बी० धन सौ अस। ३. बी० सु। ४. बी० कोहु रामां चित अहा। (२) बी० घरु उजारि कै। २. बी० संवारी। ३. बी० आनि। ४. बी० आगि पैंजारी। (३) १. मैं० सेज विछाइ। २. बी० औ भवि। (४) १. बी० सौ। २. बी० दीन्हि। ३. बी० दीन्ह। (५) १. बी० मैंनाही। (६) १. बी० पुरषु। २. बी० सोइ। ३. बी० तर वरु। ४. बी० बरबीर। (७) १. बी० मिरगु सोई पारधी सो घरु सोई अहीरु।

अर्थ—(१) "तू शांत [होकर] बैठ," हंस कर लोरिक ने कहा, तो मैना के चित्त में जो क्रोध था वह चला गया। (२) उसने खूब आडंबर-युक्त करके [अपने] मंदिर (भवन) को संवारा और अग्नि प्रज्वलित (जला) कर रसोई की। (३) सहज जैसे ही लोरिक को उसने नहलाया और भला भोजन निकाल कर उसे जिमाया। (४) सुरंग रंग (अनुराग) के साथ सुपारियां उसने लीं और पान की बीड़ी संवार कर उसने [लोरिक के] मुख मे दी। (५) हंसते हुए लोरिक बाहर निकला और चांदा की वार्ता [के समक्ष] मैनां को भूल गया। (६) [पुनः] वही पुरुष था, वही तरु वर था, वही लोरिक था और वही वेला थी, (७) वही मृग था, वही स्थल था, वही अहेरी था और वही आखेट था।

१५. चांदा-मैनां-विवाद खण्ड

(२४४)

असाढ़ असाढ़ी 'कइ' तिथि अही । 'दुज गिनि' देव जातरा कही ।
सोम बारु 'स' महतु 'गुनि' कहा । सो दिन 'आगें' आवतु अहा ।
होम जाप 'अगियारि करावहिं' । 'परसि देव' कर जोरि 'मनावहिं' ।
'जउ धरि' मांथ देव पां 'लावइ' । 'सो' जसि चांद 'सुरिजु' वरु 'पावइ' ।
सोमनांथ 'कहुं' पूजा 'लीजइ' । अखित फूल 'मार लइ' दीजइ ।
चली 'पिरथिमी नौ खंड' 'देव' जात सुनि 'आइ' ।
चांद सुरिजु सुनि रहंसी 'देउ मनाइसु' 'जाई(इ)' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १६८, बी० ७५२-७५४ ।

शीर्षक—म० : कैफ़ियते चांद तरावत दरबुत खान : गुप्तन महत ।

पाठान्तर—(१) १. बी० की । २. बी० द्विजगनि । (२) १. मै० मे नही है । २. बी० गिनि । ३. बी० आगै । (३) १. बी० अगियार करावोहु । २ बी० पाइ लागि (तुल० चौथी अर्द्धाली) । ३. बी० मनावोहु (४) १. बी० जौधरि । २. बी० लावै । ३. बी० से । ४. मै० सूरिजु । ५. बी० पावै । (५) १. बी० कौहु । २. म० कीजइ । ३. बी० सिर पाती । (६) १. बी० सु नव षंड पिरथमी । २. बी० हेव । ३. बी० आई । (७) १. बी० देव मनायौं । २. मै० में नहीं है ।

अर्थ—(१) आषाढ़ की आषाढ़ी की तिथि [आई हुई] थी, तो पंडित ने गणना कर देव [-दर्शन की] यात्रा । (२) उसने सोमबार का महत्त्व समझ कर बताया, और वह दिन आगे आ रहा था । (३) [उसने कहा,] "[यदि कोई स्त्री] हवन, जप और अगियार (अग्नि-कर्म) कराए, देवता का स्पर्श कर उसे हाथ जोड़ कर मनाए (४) और यदि कोई माथा पकड़ कर उसे देवता के पैरों में लगाए, तो वह, हे चांदा, सूर्य [का सा सुन्दर] वर प्राप्त करे । (५) सोमनाथ की पूजा [की सामग्री] लीजिए और अक्षत फूल तथा माला ले कर उन्हें दीजिए ।" (६) नौ खंड पृथ्वी चल पड़ी थी, और देव-यात्रा सुन कर आई [हुई] थी । (७) चांदा ने जब सूर्य [को पाने] की [बात] सुनी, वह हर्षित हो गई कि वह भी [अपने सूर्य को प्राप्त करने के लिए] जा कर देवता को मनाती ।

(२४५)

'टांकिनि खतरिनि' बांभनि मिलीं।
'वैस(सि)नि' 'धगरिनि' भाटिनिचलीं।
'चउहाननि फुनि पहिरि' पटोरा। 'गवन करत जनु समुंद हिलोरा'।
'कइ' सिंगार 'श(स)तभिनि' नीसरीं। 'कैथिनि डोडिनि अउ' गूजरीं।
'चमकति निकरी रूप' सुनारीं। 'निकरीं मालिनि अउ' कलवारीं।
'चली बेसवा अनवन' भांती। परजा 'पवनि सो' 'पांतिहि' पाती।
चला महर कर गोवरु देस परा सभ रोरु।
सोमनाथ 'कहं पूजहिं' 'सेंदुर 'फूल' तंबोरु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६६, बी० ७५५-७५७।

शीर्षक—मैं० : रवानः शुदन औरतान खास व आम बराय परस्तीदन देव रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० टाकनि खतरनि। २. मैं० बैस। ३. बी० ढाकनि भाटनि। (२) १. बी० चौहाननि फुनि पहरि। २. बी० गमन करत जानौ समद लेहारा। (३) १. बी कौं। २. बी० बस्तर। ३. बी० कैथनि डडनि औ। (४) १. बी० झमकति निसरी नैंन। २. बी० निसरी मालनि औ। (५) १. बी० चली जु बेसा अन अन। २. बी० पौनि सु। ३. बी० पात्यौं। (७) १. बी० देव पूजैंहि। २. बी० आखत फूर।

अर्थ—(१) टाकिनें, खतरिनें और ब्राह्मणिएं मिलीं (आईं), बैसिनें, धगरिनें, तथा भांटिनें चलीं। (२) पुनः चौहानिनें, जो पटोर पहने हुए थी, इस प्रकार गमन कर रही थीं जैसे समुद्र की हिल्लोलें हों। (३) शृंगार करके सतभिनें निकलीं, कैथिनें, डोडिनें और गूजरिएं भी [निकलीं]। (४) रूप की चमकती हुई सुनारिनें निकलीं तथा मालिनें और कलालिनें भी निकलीं। (५) वेश्याएं अनहोनी भांति से चल पड़ीं, [इसी प्रकार] प्रजाएं और पावनिएं पंक्तियों-पंक्तियों में [चलीं]। (६) महर का गोवर चल पड़ा, सारे देश में रोर पड़ गया। (७) [लोग] सिन्दूर, फूल और ताम्बूल से सोमनाथ की पूजा कर रहे थे।"

(२४६)

चांद सहेलीं 'सबइ बोलाईं'। 'सरग हुतें जनु' 'आछरि' आईं।
'फिरि कइ चांद चउद्दसि' दीठी। 'जनु तरईं' चहुं पासि बईठी।

न्हाइ धोइ 'कइ' चीर 'फिराए'। अगर चंदन 'घसि सीस भराए'।
सेंदुर छिरकि भई रतनारीं। मुख 'तंबोरु' सभ 'जोबन वारीं।
'इंद्र' सबद पंचतूर बजाए। गरह नखत 'सभ भेषन' आए।
'सोवन सुखासन बइठी' बहु गुन 'कीन्ह' 'सिंगार'।
चांद 'तराइन' सेती गवनीं 'देउ' दुवार॥

सन्दर्भ—पत्र २००, बी० ७५८-७६०।

शीर्षक—मै० : तलबीदने चांदा सहेलियान रा व रवान: करदन सुए बुतखान:।

पाठान्तर—(१) १. बी० सभैं बुलाई। २. बी० सरगा हत्यें जानौं। ३. मै० अछरिन्ह। (२) १. बी० चांद चंहू दिसि फिरि बैं। २. बी० जानौं तिरियन (तरई—फ़ा०)। (३) १. बी० कै। २. मै० फिरावा। ३. मै० लाइ सीस गुंदावा (४) १. मै० तंबोलु। २. मै० जोबन नारीं। (५) १. बी० यंद्र। २. मै० चलि कूकत। (६) १. बी० आयौ सोवन सुषासन चांदा। २. मै० किएउ। ३. मै० में नहीं है। (७) १. बी० सहेल्यौंहु। २. बी० देव।

अर्थ—(१) चांद ने सभी सहेलियों को बुलाया, [वे ऐसी सजी हुई आईं] मानो स्वर्ग से अप्सराएं आई हों। (२) चतुर्दशी का चांद [चांदा के रूप में] [मानो] पुन: दिखाई पड़ा हो, और वे मानो तारिकाएं हों, इस प्रकार वे उसके चारों ओर बैठ गईं। (३) न्हा-धो कर उन्होंने चीर बदले और अगुरु तथा चंदन घिस कर उन्होने सिर भराए। (४) सिन्दूर छिड़क कर वे रतनारी हो गईं, उन सभी यौवनवती नारियों के मुख में ताम्बूल था। (५) इन्द्र शब्द (वाद्य) तथा पंच-तूर्य बजाए गए, [उस वादन-मंडली मे] समस्त ग्रह-नक्षत्र [छद्म] वेषों में आए हुए थे। (६) [चांदा] सोने के सुखासन पर बैठी, जिसका बहुतेरे गुणों से शृंगार किया गया था, (७) और चांदा तारागणों (सहेलियों) के साथ देव-द्वार को गई।

(२४७)

हाथ 'सेंधउरा' सेंदुर भरा। भीतरि मंडप चांद 'पउ' धरा।
सखी साठि इक 'गोहनि' भई। नावति सीसु 'देउ' पहिं गई।
'देउ' दिस्टि चांदा मुखि लागी। बुधि बिसरी 'अउ' सिधि फुनि भागी।

देखत 'देउ गएउ मुरुझाई'। चांद 'तराइन' सेउं चलि आई।
'कइ बिधि मोह मोहि जिउ' दीन्हां। 'कइ हउं सरग मंडप तेहि कीन्हां'।

मंडप 'तराइनि' भरि गा 'चांदइ किएउ' अजोरु।
होम जाप 'सभ' बिसरा 'कवनु' दिवसु 'यह' मोरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०१, बी० ७६१-७६२।

शीर्षक—मै० : रफ़्तन चांदा दरून बुतख़ानः व आशिक़ शुदने देवान दीदने चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सिधौरा। २. बी० पाउ। (२) १. बी० गौहनि। २. बी० देव। (३) १. बी० देव। २. बी० औ। (४) १. बी० देव गयो मुरझाई। २. बी० तरायन स्यौं। (५) १. बी० कै बिधि पूर मोहि बरु। २. बी० कै हौं सरगि मंडप सौं लीन्हा। (६) १. बी० तरायन। २. बी० चांदेहि कीन्ह। (७) १. बी० सब। २. बी० कौनु। ३. बी० अब।

अर्थ—(१) हाथ में सिन्दूर-पूरित सिन्दूर-पात्र [लिया] तथा मंडप (देव-मंदिर) के भीतर चांदा ने पैर रक्खा। (२) वह साठ-एक सखियों के साथ हुई और सिर नमित करती हुई देवता के पास गई। (३) देवता की दृष्टि चांदा के मुख पर लगी, [तो उसकी] बुद्धि विस्मृति हो गई और तदनंतर [उसकी] सिद्धि भाग गई। (४) उसको देखते ही देवता मूर्छित हो गया, [क्योंकि उसने देखा कि] चांद (चांदा) तारिकाओं (सहेलियों) के साथ आई हुई थी। (५) [उसने कहा,] "विधाता ने या तो मोह (ममता) करके मुझे जीव ही दिया था, अथवा [अब] उसने मुझे स्वर्ग-मंडप में कर दिया है! (६) मंडप तारिकाओं (सहेलियों) से भर गया है और चांद (चांदा) ने यहां प्रकाश किया है! (७) [लोगों को] हवन और जप-सब-कुछ भूल गया है, यह हमारा कौन-सा (कैसा) [भाग्य का] दिन है!"

(२४८)

सेंदुर 'छिरका' अगरु 'चढ़ावा'। 'नमसकार कइ देउ' मनावा।
'सोवन' आखत 'फूल कइ' मारा। 'पाइ' लागि 'बिनवइ' अस ना(बा?)रा।
'देउ' सुरिजु 'मांगउं' तुम्हं पासा। सेव 'करउं' मन 'पूजइ' आसा।
चांद 'सुरिजु' बरु 'जेहि दिन पावउं'। 'देउ करस बहु घिरित भरावउं'।
'बिनवइ चांदा पायंन' परी। 'देउ' सूरिज बिनु जियउ' न घरी

'इक' चित कइ मोहि 'आपैहु(प)' 'दूसर' राध न जाइ ।
देउ पूजि 'कइ चांदा' 'बिनती ठाढि' कराइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०२, बी० ७६४-७६६ ।

शीर्षक—मैं० : परस्तीदने चांदा बुत रा व ख्वास्तने मुहब्बत बा लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० छिरकि । २. बी० चरावा । ३. बी० पाइ लागि कर जोरि (तुल० दूसरी अर्द्धाली) । (२) १. बी० सौवन । २. बी० फूर कि । ३. मैं० पार्य । ४. बी० बिनवै । (३) १. बी० देव । २. बी० मागयौं । ३. बी० करौं । ४. बी० पूजैं । (४) १. मैं० सूरिजु (सुरिजु) । २ बी० जिहि दिन पाऊ, मैं० जेहि पावउं । ३. बी० देव करस सभ घिरति भराऊ । (५) १. बी० बिनवै चांदा पायेहि । २. बी० देव । ३. बी० जिउ । (६) १. बी० यक । २. मैं० देइहउं । ३. मैं० बिहफै (?) । (७) १. बी० कै बिनती । २. बी० चांदा ठाढ ।

अर्थ—(१) [चांदा ने] सिंदूर छिड़का, अगुरु चढ़ाया तथा नमस्कार कर देवता को मनाया । (२) सोने के अक्षत थे, फूलों की माला थी । वह बाला [देवता के] पैरों में लग कर इस प्रकार विनय करने लगी, (३) "हे देव, मैं तुमसे सूर्य (लोरिक) को मांग रही हूं, मैं तुम्हारी सेवा करूँगी यदि मेरी आशा पूरी होगी । (४) [मैं] चांद (चांदा) जभी सूर्य (लोरिक) को वर [के रूप में] प्राप्त करूंगी, हे देव, मैं [तुम्हारे लिए] बहुतेरे कलश घृत से भराऊंगी ।" (५) चांदा उसके पैरों में पड़कर विनती करने लगी, "हे देव, मैं सूर्य (लोरिक) के बिना एक घड़ी न जीऊंगी । (६) उसको मुझे एकचित्त करके दो [जिससे] वह दूसरे (मैंना) के निकट न जाए ।" (७) देवता की पूजा कर चांदा [उससे] खड़े-खड़े [इस प्रकार] विनती कर रही थी ।

(२४६)

'चढ़ी पालिकी' मैंनां रानी । 'सखी साठि सेउं' आइ तुलानी ।
सोक संताप बिरह 'कइ' जारी । 'किसन' बरन मुख 'दीसा नारी' ।
मर 'सेउं' अमर सीस अति रूखा । मुख 'कंवलु कंदरपु झरि' सूखा ।
'बहुल' उदेग उचाट संताई । पूजा 'देउ चढ़ाएसि' आई ।
आखत फूल 'लीन्ह' कर काढी । 'देउ परांतर उतरि भइ' ठाढ़ी ।

'अहो देउ तेहि खाएहु' जो पर 'पुरुखहि राव'।
'अपनिइं सेज छाडि' निसि 'अनतइ' फिरि फिरि धाव ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०३, बी० ७६७-७६६।

शीर्षक—मैं० : आमदने मैनां व मुनिदयान खुद दरे बुतख़ान: व परस्तीदने देव रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सखी साठि सौं। २. बी० चरी पालिकी। (२) १. बी० की। २. मैं० किशन (किसन)। ३. बी० दीसै कारी। (३) १. बी० स्यौं। २. बी० कवरु कंद्रपु झिरि। (४) १. बी० बहुत। २ बी० देव चरायसि। (५) १. बी० लीन्ह। २. बी० देव बरतर उतर। (६) १. बी० अहौ देव तिहि षयुहु। २. बी० पुरषेहि रांव। (७) १. बी० अपना छारि सेज। २. बी० अनतें।

अर्थ—(१) [इसी समय] मैनां रानी [भी] पालकी चढ़ी और साठ सखियों के साथ वह [भी] आ पहुँची। (२) वह शोक, संताप और विरह की जली हुई थी और कृष्ण वर्ण का उस नारी का मुख दीख पडा। (३) उसका अमर (जीव) [जैसे] मर [रहे शरीर] के साथ था, उसका सिर अत्यधिक रुक्ष था और उसका मुख-कमल कन्दर्प की ज्वाला से सूख गया था। (४) बहुत उद्वेग और उच्चाट से सन्तप्त हो कर उसने आकर देवता को पूजा चढ़ाई। (५) अक्षत और पुष्प उसने हाथ में निकाल लिए और वह देव [-मंडप] के प्रान्तर में उतर कर खड़ी हो गई। (६) उसने कहा, "अहो देवता, उसे तुम खा जाना जो पर-पुरुष से रमण करती है, (७) और जो रात में अपनी शैया छोड़कर बार-बार अन्यत्र दौड़ती है?"

(२५०)

'हंसि कइ चांदइं' मैंनां बूझी। 'कइ ससुरें हुति आइहु झूझी'।
अति 'दूमनि' अउ सांवरु बानूं। सीस न 'चंदनु' अधर न पानू।
'कइ' साईं निसि सेज न 'आवइ'। तेहि संताप दुख 'रइनि' बिहावइ।
'कइ तोहि' नारि आहि बुधि थोरी। 'तेहि' औगुन पिउ 'लावइ' खोरी।
'कइ तुम्हं करहु' न अरप 'सिंगारू'। 'कइ सोहागु हिएं हुंत बारू'।

'तोरि जसि' तिरी न 'देखउं' कवनि खोरि सो 'लाव'।
कइ सुगाइ काहू सेउ अपजसु आनि चढाव'

सन्दर्भ—मै० पत्र २०४, बी० ७७०-७७२।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने चांदा बर मैनां रा अज़ शिकस्तगी हाले ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हसि कै चांदहि। २. बी० के सुसरें हुत आयेहि जूझी। (२) १. बी० दूमन। २. मै० बेदनु (बंदनु—ना०), बी० चदनु (बंदनु—ना०)। (३) १. बी० कै। २. बी० आवौ। ३. मै० रोइ। (४) १. बी० कै तुम्ह। २. बी० तिहि। ३. बी० लावै। (५) १. बी० कै तुम्ह करौ। २. बी० सिंगारा। ३ बी० गयो सुहागु हियो ही बारा। (६) १. बी० तुम्ह जस। २. बी० देष्यैं। ३. मै० लाइ। (७) १. बी० के। २. बी० स्यौं। ३. मै० सोइ। ४. बी० चराव।

अर्थ—(१) हंस कर चांदा ने मैंनां से पूछा, "क्या तुम सासुर (ससुराल) से झगड़ा करके आई हो, (२) [और इसलिए] तुम अत्यधिक दुर्मन हो, तुम्हारा वर्ण सांवला [हो रहा] है, सिर पर वंदन (रोली) नहीं है और अधरो पर पान [का रंग] नहीं है ? (३) अथवा (क्या) यह है कि तुम्हारा स्वामी रात्रि में शैया पर नहीं आता है, और उसी संताप के कारण दुःख में रात व्यतीत होती है ? (४) या, ऐ नारी, तुम्हें बुद्धि थोड़ी है, और उस अवगुण के कारण तुम्हारा पति तुम में खोडि (त्रुटि) लगाता है ? (५) या, तुम अल्प शृंगार [भी] नहीं करती हो, और या तुम सौभाग्य को हृदय से दूर रखती हो ? (६) तुम्हारी जैसी स्त्री मैं नहीं देखती हूँ, तब वह कौन-सी खोडि (त्रुटि) [तुममें] लगाता है ? (७) अथवा, वह किसी से [तुम्हारे अनुचित संबंध का] सन्देह करता है और उसका अपयश तुम्हें ला कर चढ़ाता (लगाता) है ?"

(२५१)

सुनहु न 'चांदा' उतरु हमारा। 'घरु मुसिया निसि कै(कई) उजियारा'।
नाहुं लीन्ह मोहि परा खंभारू। 'काकहुं' अटवौं(उटवउं) 'अरप सिंगारू'।
हंसि हंसि बात 'कहइ बिगराई'। तिल इक 'नैन न देखि' लजाई।
बहु 'खंखोट' तोहि 'तिरिया आवहिं'। सती 'रूप' पर पुरुखहिं 'रांवहि'।
आपु छिनारि अउर कहुं कहा। सो कस चांदा 'ढांके' रहा।

गा सुहागु सुख निंद्रा चांद नाहु 'जउ' लीन्ह।
'सोग' संताप बिरह दुख सेज 'पूरि' मोंहि दीन्ह॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०५, शि०, बी० ७७३-७७५।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने मैनां बर चांदा रा।

शि० : जवाब दादने मैनां चांदा रा कैफ़ियते इश्क़ लोरिक बा चांदा बाज नमूदन ।

बी० : मैनां चाद जुध । किंतु यह शीर्षक बाएं हाशिए में और प्रतिलिपि-कर्त्ता से व्यक्ति द्वारा दिया हुआ लगता है ।

शि० में अधिकांश पाठ अस्पष्ट है ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० चांद एक । २. मैं० नांह कीन्ह मोहि परा खभारा (तुल० दूसरा अर्द्धाली) । (२) १. बी० काकौहु । २. मैं० करिहउ । (३) १. बी० कहौ बिषराई । २. बी० देष नैन न । (४) १. बी० घंघोट । २ मैं० दूषन आवहिं । ३. मैं० तीय । ४. बी० रावैहिं । (५) १. बी० ठाढे । (६) १. बी० जौ । (७) १. बी० सोक । २. बी० पूर ।

अर्थ—(१) "ऐ चांदा" [मैनां ने कहा,] "मेरा उत्तर तू सुन न ! तूने मेरा घर रात्रि में प्रकाश करके मूसा (लूटा) है । (२) मेरा स्वामी तूने लिया तो मुझे खभार (उद्वेग) पड़ गया, [अतः] अब किसके लिए मैं अल्प श्रृंगार [भी] करने का साहस करूंगी ? (३) तू हंस हंस कर और विहंस कर बातें कहती और तिल भर भी नेत्रों से देख कर लज्जित नहीं होती है । (४) ऐ स्त्री, तुझे खंखोट बहुत आता है, तू सती का रूप बनाए हुए पर-पुरुष से रमण करती है । (५) अपने-आप तो तू छिनाल है, और दूसरे को [छिनाल] कहती है । किंतु, ऐ चादा, यह [तथ्य] ढांकने से कैसे [ढंका] रहेगा ? (६) मेरा सौभाग्य, मेरा सुख, मेरी निद्रा चले गए, क्योंकि तूने मेरे स्वामी को [मुझसे] छीन लिया, (७) और शोक, संताप तथा विरह का दुख [तुम ने] मेरी शैया में पूरित कर (भर कर) मुझे दे दिया ।"

(२५२)

देखहु बांगरि 'कीरु(केरि)' धिठाई' । 'आइ सो बूझति' बात सुगाई ।
मइ 'तोंहि कों' का अचगरु कहा । 'अइस कहत को ऊतर' सहा ।
'जसि आपुन' 'तसि अवरहि जानइ' ।'जसि छिनारि तसि सूगि वखानइ' ।
'पुरुख' छिनारि 'केर' को लेई । बात 'कहत अस ऊतर' देई ।
'तइं का दीखि हउं वेसा' दारी । चित 'सुगाइ' मोहि दीन्हीं गारी ।

तूं 'बिटारि' जग 'जूठि(ठ)नि' 'देस घेरि' 'लै(लइ)' जासि ।
घर घर घालि बिगोइसि' खोरि खोरि' चिललासि

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०६, बी० ७७६-७७८।

शीर्षक—मैं० : जवाव दादने चांदा मर मैंनां रा।

पाठांतर—(१) १. मैं० करइ धुताई। २. बी० अैसें पूछत। (२) १. बी० तो कहु। २. बी० अस औहट को काकर। (३) १. बी० जस आपनु। ३. बी० तस और हि जानौ। ४. बी० जानु छिनारि कि सुरगि बषाना। (४) १. बी० पुरषु। २. मैं० कर। ३. बी० बात अनउतरु। (५) १. बी० तें कहि देषति वेसां। २. मैं० सुंवाइ। (६) १. बी० छिनारि। २. मैं० कुच छुवतइं। ३. बी० देसि घोरि। ४. मैं० लइ लइ। (७) १. बी० बिगोयसि। २. बी० घोरि घोरि।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "इस बांगड़ लड़की की धृष्टता देखो, यह [यहां] आकर सन्देह करती हुई [ऐसी] बातें पूछ रही है! (२) मैंने तुझे क्या अनुचित कहा है, और ऐसा कहते हुए किसने ऐसा उत्तर सहन किया है? (३) तू जैसी अपने-आप है, वैसी ही औरों को भी जानती (समझती) है, जैसी छिनाल तू है, वैसी ही होने का सन्देह कर तू [अन्य को भी] कहती है। (४) उस छिनाल के पुरुष को कौन लेगा जो बात कहते ही ऐसा उत्तर देती है? (५) ऐ वेश्या और दारी, तुझे मैं क्या ऐसी दिखी कि तूने चित्त में [मेरे चरित्र] पर शंका करके तूने मुझे गाली दी? (६) तू बिटारी है और जगत् की जूठन है, देश [भर] को तू घेर-घेर कर ले जाती है। (७) घर-घर को [इस निंदित व्यापार में] डाल कर तूने बिगोया (तिरस्कृत किया] है और गली-गली तू चिल्लाती [फिरती] है।"

(२५३)

'आन होइ डरि कहु' मरि जाई। 'चांद न आछहु' 'मनहि' लजाई।
'हाथन्हि' 'मोर बियाहा लीजिय'। अउ मोहि सेती 'ऊतरु' 'कीजिय'।
'यह' 'फुनि' कहिय 'नांउं' मसवासी। 'जो पर पुरुख' न छाड़इ पासी।
आपु 'करावइ' मोहि डरु 'लावइ'। अवरु बिसेखें 'रावरि' 'धावइ'।
यह उपखान 'कि' 'आछइ' गोवा। 'झूठइं नाएं जस बिसहर' रोवा।

पाटि 'पढी' 'हंसि (हसि)' चांदा चहूं भुवन उजियारि।
देस 'लोक सब जानइ' 'पितहि 'देवाय(इ)सि' गारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०७, भो० पत्र २० (नवीन), बी० ७७९-७८१।

भो० में इस कडवक के नीचे तर्क 'बाद' दिया हुआ है, जो आगे आने वाले कडवक का है।

शीर्षक—मै० : जबाब दादने मैनां बर चांदा रा।

भो० : मकाशफ़ः गुफ़्तन मैनां बर चांदा रा व फ़ोहश गुफ़्तन इश्क़ बा लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० अन (आन—फ़ा०) होई दर केहि। २. भो० चांदहि आछरि, मै० चांद आछिय। ३. बी० मनह। (२) १. बी० हाथौहु। २. बी० मोरि बियाही लीजै। ३. भो० सरभरि। ४. बी० कीजै। (३) १. बी० याह। २. मै० सो। ३. भो० काहूं, बी० मा। ४. बी० जौ पर पुरषु। (४) १. बी० करावै। २. बी० लावै। ३. भो० पर ओर, मै० रांवा। ४. बी० धावै। (५) १. मै० करि। २. बी० आछै। ३. भो० झूठइ पासन बिसँभर, बी० झूठे ठांव बैसि भरि। (६) १. मै० बड़ी। २. बी० अस। (७) १. भो० लोक जग जानेसि, बी० देस नर जानै। २. मै० कुरहि। २. भो० देवावसि, मै० देवाइय।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "अन्य कोई हो तो डर कर कहीं मर जाए, किंतु ऐ चांदा, तू मन में लज्जित [भी] नहीं है। (२) [मेरे] हाथो से तू मेरा विवाहित ले रही है और मुझ से [ही] उत्तर कर रही है। (३) इस पर भी उसका नाम 'मसवासी' कहा जाए जो पर-पुरुष को, यदि वह पासी भी हो तो, नहीं छोड़ती है? (४) [जो कार्य] स्वतः तू कराती है, मुझे [उसके लिए] डर लगाती (डराती) है, और अन्य को बिसेखने (दूषण लगाने) के लिए तू स्वयं दौड़ती रहती है। (५) यह उपाख्यान क्या छिपा हुआ है कि जैसे विषधर [जिसको काट खाता है उसके] नाम पर झूठ-मूठ ही रोता है। (६) ऐ चांदा, तूने [ऐसी] पट्टी पढ़ रक्खी है कि चारों ओर भुवनों में प्रसिद्ध है। (७) देश और लोक में यह बात सभी-कोई जानता है कि तूने अपने पिता (कुल) को गाली दिलाई है।"

(२५४)

पाटि 'पढ़ी' 'हउं' काहे नाही। पंडित 'मुनिवर' सेव कराहीं।
बार बूढ 'नइ' पायन 'लागहिं'। 'पाप केत पुरसा कर' 'भा(भां)गहिं।
तूं 'उभरी' बोलसि भंडहाई। 'अउ' मोहिं सेतीं करसि बड़ाई।
सात छिनारि घालि 'तूं करही'। काह करउं जउ 'लीतें' मरही।
देवर जेठ 'भाइ संग' लेसी। 'ई'(ई)ठ' मीत 'कुनबा' परदेसी।

तेलि भूज औ कोयरी॑ धोबी नाऊ चेर।
रांध 'पास सभ' गांजसि 'काढइ' 'खोरि बिहेरि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०८।१, भो० पत्र २१ (नवीन), बी० ७८१-७८३।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने चांदा बर मैनां रा व दुश्नाम दादन।

भो० : इल्म व जमाल खुद नमूदन चांदा व फ़ोहश गुफ़्तन बर मैनां रा।

पाठान्तर—बी० में (४)। २ निकला हुआ है, उसके स्थान पर (५)। १ 'लेसी' का पाठ 'लागी' करके ले लिया गया है, फिर (५)। २ तथा (६)। १ की एक अर्द्धाली बनाने के लिए (६)। १ का पाठ 'तेली घाची और कपरिया' कर दिया गया है, पुनः (६)।१ किया गया है : छीपा नाउ और सुनरिया।

(१) १. मै० वड़ी। २. बी० हों। ३. बी० मुनियर। (२) १. मै० सव। २. बी० लागैहि। ३. भो० पायन्ह देखिकर, बी० पाब कीन्ह बर संहसु। ४ बी० भागहि। (३) १. मै० उभरैल। २. बी० औ। (४) १. बी० त गाढी। २. मै० लीन्हें। (५) १. भो० अउर सग, मै० भाइ सब। २. मै० ईट। ३ भो० कुरुंबा, मै० करटा। (६) १. भो० कोयरी बारी। २. बी० वारी। (७) १. मै० पापधि सब, बी० पा सभ। २. बी० जागसि। ३. मै० काढहि, बी० गदह। ४. बी० घौर बरेर।

अर्थ—(१) [चांदा ने उत्तर दिया,] "मैं पट्टी-पढ़ी क्यों न होऊं [जब कि] पंडित और मुनिवर [आकाश के चंद्र के रूप में मेरी] सेवा करते हैं, (२) [जबकि मेरे उस रूप में] बालक-बूढ़े सभी झुक कर पैरों लगते हैं, और [इससे] उनके कितने ही पूर्व-पुरुषों के पाप भग्न हो जाते है? (३) तू उभड़ी (मर्यादा का उल्लंघन करने वाली) है, भंडता [की बातें] बोलती है, और मुझसे [अपनी] बड़ाई करती है! (४) तू सात छिनालों को [अपनी तुलना में] घेलुवा (नगण्य) करती है; मैं क्या करूं जो तू [किसी को] लिए हुए मरती है! (५) देवर हो, जेठ हो, या भाई हो, तू [उसको] साथ ले जाती है, [अथवा] वह सगा हो, इष्ट हो, मित्र हो, कुटुंबी हो या परदेशी हो, (६) तेली हो, भूजा हो, कोयरी हो, धोबी हो, नाई हो चेर (सेवक) हो, रांध (पड़ोस) या पास का हो, (७) तू सबको गजती है, और [फिर] तू उसे बिहेड (पीड़ित) कर तथा दोष लगा कर निकाल देती है।"

(२५५

तूं 'चउगुन' बहु भेस 'फिरावसि'। 'गिनतकार' लेखें 'बौरावसि'।
'असितिरिया'फुनिसती'कहावै(वइ)'।'घरांघरा'जगुफिरिफिरि'आवइ'।
निचलि न 'आछइ एकउ' घरी। धरत दसांवन' ऊपरि परी।
'दुमनहु तोर हुंत चांदा आइहि'। कार'कीत'मुख सरगि'लुकाइहि'।
लीन किये मोर भतार छपाए। देखिउं गइउं दुवार दिवाए।

'तेहि' दिन कर 'तू संभरि' 'कहई पाछे हेरत' आइ।
देस 'मंदिर' जगु 'जानइ' 'रहंसति सुनहि लजाइ॥

संदर्भ—मै० पत्र २०८।२, बी० ७८५-७८७।

शीर्षक—मै० गुफ़्तने मैनां चांदा रा आ चे हिकायत बूद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जोगिनि। २. बी० फिरायसि। ३. बी० गिनतर-कार। ४. बी० बौराइसी। (२) १. बी० अस् तरिया। २. मै० कहावा। ३. बी० घराह घरह। ४. बी० आवै। (३) १. बी० आछै येकै। २. बी० पिरति (परत—फ़ा०) उसायक। (४) १. बी० दुमहि तिरहु चांदा आई। २. बी० कीन्ह। ३. बी० फिराई। (५) १. यह अर्द्धाली बी० में नहीं है। (६) १. बी० तिह। २. बी० ती जौहरु। ३. बी० घइ बाच्हिौं। (७) १. बी० देसा। २. बी० जानै। ३. बी० अपने हि मनह।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "तू [मुझसे] चौगुनी संख्या में बहुतेरे वेष धारण करती रहती है, और [आकाश के चंद्र के रूप में] गिनतकार (ज्योतिषी) के लेखे (गणित) [के मिस] [लोगों को] बावला करती रहती है। (२) [विडंबना यह है कि] इस प्रकार की स्त्री फिर भी सती कहलाती है जो जगत् में घर-घर [चंद्र के रूप में बारह राशियों] में फेरे (चक्कर) लगा जाती है। (३) तू एक घड़ी भी निश्चल नहीं रहती है और किसी के विस्तर धरते ही उस पर जा पड़ती है। (४) दुर्मनस् होते हुए भी, ऐ चांदा, यदि कोई तेरे पास आए तो [अपना] मुख काला कर तू उसको भी आकाश (धवलगृह) में छिपा लेगी। (५) मेरे भर्त्तार को [अपने में] लीन कर तुमने छिपा रक्खा, यह मैंने तब देखा (जाना) जब मैं गई और तेरे द्वार दिलाए (बंद कराए) हुए देखे। (६) उस दिन की [बात] तू स्मरण करके कहो, [जिस दिन] तू उसे पीछे-पीछे ढूँढती हुई आई थीं। (७) देश, घर और जगत् इसे जानता है, किन्तु तू इसे लज्जित होकर भी हर्षित होते हुए सुन रही है!

(२५६)

'हीनि' बिटारि 'हउं तोहि' 'पिउ' जोगू। अइसउ 'कहा कहि संभत्र' लोगू।
'जेहिं रूपवंतहि यह धनि मोहइ'। 'तेहि गियं' 'पाइ' 'निबांधा सोहइ'।
'सुनतहि' देह मोरि 'अंगिराई'। देखत मरउं 'आव' 'बिगराई'।
गाइ 'चरावइ करइ' दुहावा। तेंहि सेतीं मोंहि 'अकरंकु' लावा।
'जेहिं' धौराहर मोर बसेरा। सीस टूट 'जइ ऊपर' हेरा।
राय कुंवर 'नर नरवइ' 'मोहहिं' एक सिंगार।
तोर भतारु चेर उरगावन 'आछइ पवरि' दुवार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०६।१, भो० पत्र २३ (नवीन), बी० ७८८-७९०।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने चांदा मर मैनां रा।

भो० : बुजुर्गी व बलंदी खुद नमूदन चांदा व अहानत व हिमाकत लोरिक बाज नमूदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० है। २. बी० हौ तुझ। ३. भो० पिय। ४. भो० कहा कहि संभवइ, बी० कहा कैसा······(अपाठ्य)। (२) १. बी० जिह रूपवंतिह······मोहै। २. बी० तिहकैं। ३. मै० नारि, भो० बाब। ४. बी० कि बाध्यौ सोहै। (३) १. बी० सुनताह, मै० सुनतइं। २. बी० अंकुराई। ३ मै० आहि, बी० करौं। ४. बी० बुकराई (बिगराई—फ़ा०)। (४) भो० मे अर्द्धाली के चरण परस्पर स्थानांतरित हैं। १. बी० चरावै करै। २. मै० अकरकु। (५) १. बी० जिह। २. बी० पर ज······(संशोधन के कारण अपाठ्य है)। (६) १. बी० न रवै मुष मंडन। २. मै० मोहि मोहइं, बी० मो पति। (७) १. मै० आछहि पवंरि, बी० आछै पौरि।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "मैं हीना हूँ, विटा हूँ और तू ही प्रिय (पति) के योग्य है, ऐसा भी लोग क्या कह सकते हैं? (२) जिस रूपवान को यह स्त्री मुग्ध करती है, उसी के गले में पड़ा हुआ इसका निर्बंध पाव शोभा देता है। (३) [इसका नाम] सुनते ही मेरी देह अंगड़ाई लेने (टूटने) लगती है, और ऐसी विकृति आती है कि इसे देखते ही मैं मरने लगती हूँ। (४) जो गाएं चराता और [उन्हें] दुहता है, उससे मुझे यह कलंक लगा रही है! (५) जिस धवलगृह (प्रासाद) में मेरा निवास है, उसके ऊपर यदि देखा जाए तो सिर टूट जाए। (६) राजा, कुमार, नर, नरपति—सभी [मुझ पर] एकमात्र [मेरे] शृंगार (सौन्दर्य) के कारण मुग्ध होते है,

(७) जब कि तेरा पति [हमारा] दास है और [हमारी] पौरी के द्वार पर एक भृत्य के रूप में रहता है !"

(२५७)

मोर 'पुरुख खांडइं जगु जानइ' । गन गंध्रप 'सभ' रूप 'बखानइ' ।
पडितु पढा 'खरा' सहदेऊ । चारि 'बेद जीति जाइ न' कोऊ ।
'भीम बली' भोज 'कर' जोरा । राघौ 'बंसिक' कूकूं लोरा ।
'गहनइं पंथ जेइं' लीत उबारी । 'अस' न बोलु 'सुनु साथरि' दारी ।
'मोर' पिउ सरग 'कइ अछरिहिं रावइ' ।
'तोहि जइसी' पहिं 'पाउ न धुवावइ' ।
'तुरै चढ़े रन' बाग न 'मोरइ' तूं कस 'भुंजसि' ताहि ।
भाई भतारु 'तोर वि(बि)गरैता' 'जानउं' सेवक 'आहि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०६।२, बी० ७६१-७६३ ।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादन मैना बर चांदा रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० पुरषु खाडै जगु जानै । २. बी० मोहि । ३. बी० बषानै । (२) १. बी० खरी । २. बी० वाजनु न जानै । (३) १. बी० अब तौ करै । २. मैं० के । ३. बी० वासिक । (४) १. बी० गहन लीत जिहि । २. बी० कस । ३. बी० तू साटनि । (५) १. बी० मोरो । २. बी० आछरि रावै । ३. बी० तुम्ह वैसी । ४. बी० पाय न धुलावैहि । (६) १. बी० तुरी चरांह रिन । २. बी० मोरै । ३. बी० देखसि । (७) १. बी० बापु सबु कुनबा । २. बी० जानै । ३. बी० आह ।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "मेरे पुरुष को खड्ग [चलाने] में जगत् जानता है, और गण तथा गन्धर्व—सभी उसके रूप का बखान करते हैं । (२) वह ऐसा पढ़ा हुआ और पंडित है कि वह खरा सहदेव है और चारो वेदों में कोई उससे जीत कर जाता नहीं है । (३) वह भीम [जैसा] बली है और भोज की जोड़ी का है, वह कूकूं लोर राघव-वंशी (राघव की परंपरा का) है । (४) जिसने तुझे ग्रहण (संकट) के मार्ग से उबार लिया, [उसके संबध में] ऐसा न बोल, ऐ साथरी की दारी, सुन । (५) मेरा प्रिय स्वर्ग की अप्सरा से रमण करता है, तुझ जैसी से वह अपने पैर भी नहीं धुलाता है ! (६) जब वह रण में घोड़े पर चढ़ता है, तब वह [उसकी] लगाम नहीं मोड़ता है, तू उसे कैसे भूंज (भोग) सकती है ? (७) तेरे ही भाई और भर्त्तार ऐसे विकृत हैं मानो सेवक हों ।"

(२५८)

'जउ पइ' लोरु 'लीन्हहि मोहि लावसि'।
'बहुरि न' मैनां देखन पावसि।
आइ 'बइस' अब 'करसी' मोरी।
'सपनेहु' सेज 'नावइ (न आवइ)' तोरी।
ढाकी मूंठि 'हुती' अंधियारी। अब यह बात 'करउं' उजियारी।
'काह करइ तूं' पारसि मोरा। 'दइय' दीन्ह 'मइं पाइउं' लोरा।
'अब गरुई होइ' आछहु मैनां। जीभ 'संकोरि राखु मुख' बैना।
जाहि जोग हुत रावनु 'तासों भएउ' मिराव।
मोंतिहि हार महिं 'घुंघुची' मैनां 'होइ न' पाव॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१०।१, बी० ७९४-७९६।

शीर्षक—मै : जवाब दादने चांदा बर मैनां रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जो पै। २. बी० नेर मोरैं आवसि। ३. मै० फिरि कइ। (२) १. बी० बैठ। २. मै० कुरही। ३. बी सपनैं। ४. बी० न आवै। (३) १. बी० हुत्यै। २. बी० करै। (४) १. बी० काह करौ तोहि। ३. बी० दई। ४. बी० मैं पाया। (५) १. बी० सुध करहु जिउ। २ बी० संकौरौहु मुष कर। (६) १. बी० तासौं भयो। (७) १. बी० घूंघचि। २ बी० सोभ न।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा] "यदि हो न हो, तू लोरिक को लेकर मुझको [कलंक] लगाती है, तो मैनां, तू पुनः [उसे] देखने न पाएगी। (२) वह अब आकर मेरी करसी में बैठेगा और वह स्वप्न में भी तेरी शैया पर नहीं आएगा। (३) यह [अब तक] ढकी हुई मुट्ठी [जैसी] अंधकारपूर्ण थी, और अब इस बात को प्रकाशित कर रही हूँ। (४) तू मेरा क्या कर सकती है ? दैव ने दिया, तब मैंने लोरिक को पाया। (५) अब, ऐ मैना, तू गुर्वी (गंभीर) होकर रह, तू जिह्वा को सिकोड़ कर वचनों को अपने मुंह मे रख। (६) जिसके योग्य वह रमण था, उससे उसका मिलाप हो गया। (७) ऐ मैनां, [अब] तू मुक्ताओं के हार में घुंघुची न होने पाएगी।"

(२५९)

'पुरुख सिंघ सों' 'सरभरि' 'पावइ'। मारि 'बिधांसि' खाइ 'घरिआवइ'।
मछ नियर 'चारा कहं धावइ'। 'लइ कइ' भुगुति 'भंडार न आवइ'।

सूवा सबरु सेवा जाई खाइ बार हिरि गएउ उडाई
'गएं कर बहुल होइ' पछितावा। संवरि 'नियर' 'अंबरवां(व)हिं' आवा।
दिवस चारि 'तुम्हं' 'देह भोगाएहि'। साईं मोर 'कर' 'का घटि जाइहि'।
भंवर 'कि' 'नियरें' 'वइसइ' 'पइ कलि मांति' भुलाइ।
खिन एक 'लइ (लेइ)' वास 'रस' 'सुमिरि कंवर सिर' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१०।२, भो० पत्र २४ (नवीन), बी० ७६७-७६६।
भो० में इस कडवक के बाद तर्क है 'अरगि', जो आने वाले का है।

शीर्षक—मै० : जवाब दादन मैना वर चांदा रा।

भो० : मरदानगी व दिलावरी लोरिक गुफ़्तन मैनां वखिजालत नमूदन बर चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. मै० पुरुष सिंग सों, भो० पुरुष सिंघ सइं, बी० पुरषु सिंध सौं। २. भो सरवरि। ३. बी० पावै। ४. बी० विध्वंसि। ५. बी० घरी आवै। (२) १. मै० नियरा, बी० नीर (नियर—फ़ा०)। २. बी० चारै कहुं धावै। ३. बी० लोरिक। ४. मै० भंडार नावइ (न आवइ), बी० भंडारै पावै। (३) १. भो० सोईं सेंवर, बी० सूवै सीवरु (सेंवरु—फ़ा०)। २ बी० सेयो। ३. बी० घाइ चांच पर। (४) १. मै० तउहु गएं कर होउ, बी० करि करि मन में बहुल। २. भो० संवरि, बी० नेर। ३. मै० अंवरामहि, बी० अंब्ररायें। (५) १. भो० तुम। २. मै० देह भखाइहि, बी० लीन्ह भुगाई। ३. भो० का, बी० अव। ४. बी० नेर न जाई। (६) १. मै० जउ। २ मै० नियरे, बी० निवरै। ३. बी० बैसै। ४. बी० मैकर माति, मै० बेलि माहि जो। (७) १. बी० बैठि, मै० में नहीं है। २. बी० रस लेई। ३. भो० भवर कंवल सिर, बी० सुमिरि कंवर तनि, मै० उड़ि रे कंवर सिर।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "पुरुष तो उस सिंह से सादृश्य प्राप्त करता है जो [जन्तुओं को] मारकर, विध्वंस कर और खाकर घर आ जाता है। (२) मत्स्य चारे के लिए निकट दौड़ पड़ता है, किन्तु भुक्ति (भोजन) ले कर [चुगाने वाले के] भांडार में नहीं आता है। (३) सुए ने जाकर सेंबल की सेवा की, किन्तु उसे खाने की वेला में [जब उसे अपनी भूल ज्ञात हुई], वह लज्जित होकर उड़ गया। (४) [उसको सेंबल के पास] जाने का बहुत पछतावा होता है, और आम्राराम का स्मरण कर वह पुनः उसके निकट आ जाता है। (५) चार दिन तुमने देह का भोग करा ही लिया तो उससे मेरे स्वामी का क्या घट जाएगा? (६) भौंरा निकट बैठा कि, हो न हो,

कली पर मत्त होकर [अपने-आपको] भूल जाता है किन्तु वह क्षण भर [उसका] सुवास तथा रस लेकर [पुनः] कमलिनी का स्मरण कर उसके सिर (निकट) जा पहुंचता है।"

(२६०)

'अरगि ठाढ़ि हुति' मैंनां नारी। दवरि चांद 'वरु' बांह पसारी।
'इमिरे भा(भां)गि गए' अभरन तानें। हारु 'टूटि(ट)' 'मोंती' 'छिरियाने'।
एक 'बीर' नगुला 'दुइ' टूटे। 'भा(भां)गि सलोनी' मानिक फूटे।
'सकरी टूटि' दहां दिसि भई। 'चंदन चोरी (चोलि)' फाटि गियं गई।
उखरी 'खूंट' 'दुवउ' धर परी। मानिक हीर 'पदारथ' जरी।
अभरन टूटि बिथरि गा मैंनां गइ कुंविलाइ।
चांद बेगि 'कैं' देव घर 'मिली' 'तराइनि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २११, बी० ८००-८०२।

शीर्षक—मैं० : दस्त दराजी करदने चांदा बा मैंनां।

पाठान्तर—(१) १. बी० अरग ठाढि तुम्ह। २. बी० बरि। (२) १. बी० अम (इम—फ़ा०) र (रे—फ़ा०) भाग(भागि-फ़ा०) कर (गए—फ़ा०)। २ मैं० टूटि गा। ३. मैं० मोंति। ४. बी० छिहराने। (३) १. बी० बार (बीर-ना०)। २. बी० दोइ। ३. बी० भाग सलूनी। (४) १. मैं० टूटि हार। (तुल० अर्द्धाली २)। २. मैं० चोली चीर। (५) १. बी० खुटी। २. बी० दोउ। ३. बी० पवारी। (७) १. मैं० में नहीं हैं। २. मैं० मिलीं। ३. बी० तरायन।

अर्थ—(१) मैंनां नारी चुप होकर खड़ी थी, [तब तक] दौड़ कर चांदा ने [मैंनां पर] बाहें फैलायीं। (२) इस प्रकार तानें जाने पर [मैंनां के] आभरण भग्न हो गए, हार टूट गया और [उसके] मोती छिटक गए। (३) एक बीर (कर्णाभरण-विशेष) तथा दो नगुले टूट गए, सलोनी (बाहु का आभरण-विशेष) भग्न हो गई, और [उसके] माणिक्य फूट गए। (४) संकरी टूटकर दसों दिशाओं में हो गई, और ग्रीवा पर चंदनौटे की चोली फट गई। (५) खूंटे (कर्णाभरण-विशेष) उखड़ी हुई दोनों धरा पर आ पड़ीं, जो माणिक्य, हीरों और पदार्थों (बहुमूल्य पत्थरों) से जटित थीं। (६) आभरण टूट कर छितरा गए, इसलिए मैंनां कुंभला गई, (७) और चांद (चांदा) शीघ्रता कर देवगृह में तारिकाओं (सहेलियों) से जा मिली।

(२६१)

'जात' चांद मैनां फरहरी। 'जानु सत्तुरुइं' 'सारसि' धरी।
'तानिसि' चीरु चांद भइ नांगी। परा हाथु 'गइ फाटि पतांगी'।
दस नख लाग 'दुहूं' थनहारा। 'औ(अउ) देवरा भौ रगत मझारा'।
केस 'छूटि दहुं दिसि छिरियाए'। 'जनु' नावित अभुवां 'किर आए'।
'सोरह' करां चांद 'कइ' गई। 'कुरां उतार' 'घरी' इक भई।
'घालि रूप बांगरि कर' 'मैनां गई सिरानि'।
बांधि चांद 'करि कायर' कीलेसि बइरि' परानि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१२, बी० ८०३-८०५।

शीर्षक—मै० : मुह्कम गिरफ़्तने चांदा बर मैनां रा व मैनां नीज़।

पाठान्तर—१. बी० जातैं। २. बी० जानौ सूरैं। (सत्रुइं—फ़ा०)। ३. बी० सोसिर। (२) १. बी० तानसि। २. बी० गै फाटी आगी (आंगी—ना०)। (३) १. बी० दोउ। २. मै० चांद राति भइ रगतहि धारा। (४) १. बी० जूर दहु दिस छरहराई। २. बी० जानौ। ३. बी० देहि आई। (५) १. बी० सोराह। २. बी० की। ३. बी० करा उतारि। ४. बी० करा। (६) १. बी० ठालि रूप बांगर। २. बी० मैनां गइ सिरानि। (७) १. बी० केरा कापर। २ बी० लीतसि बीर (कीतेसि बैरि—फ़ा०)।

अर्थ—(१) चांदा के जाते समय मैनां फड़फड़ा उठी, [और उसे ऐसा पकड़ा] मानो शत्रु (बहेलिए) को सारसी ने पकड़ लिया हो। (२) उसने चादा का चीर खींचा तो चांदा नग्न हो गई, और [उसका] हाथ पड़ा तो [चादा का] पतांगी (पत्रांगिका—चोली) फट गई। (३) उसके दोनों भारी स्तनो मे [उसके हाथों के] दसों नख लगे और देवकुल (देवालय) रक्त के मध्य हो गया [इतना रक्त बहा]! (४) उसके केश छूट कर दसों दिशाओं में छिटक गए, [और वह ऐसी लगने लगी] मानो निश्चय ही नावित (दरसनिया) अभुवाने (सिर के बाल खोलकर उसे चक्कर देने) के लिए आने पर लगता हो। (५) चांदा की सोलहों कलाएँ चली गयीं, एक घड़ी भर [इस प्रकार की] कुल-उतार (कुल मर्यादा को विकृत करने) की वह घटना हुई। (६) तब मैना शीतल होकर गई, जब उसने उस वक्रा (चांदा) का रूप (शृंगार) गिरा दिया। (७) उसने चादा को बांध कर (?) उसे कादर बना दिया और [उस बैरी को पलायित कर दिया

(२६२)

'मलिन कामि दोऊ' परजरीं। 'जनु' गैवर मैमंत ऊभरीं।
दोउ नारि 'अभिरीं' सतमूला (समतूला)।
'नखहन(हिं)' आंग 'जनु' 'टेसू' फूला।
'अतैनित (अतियंत) करहिं हाथा बाहीं।
थन उघार 'तस' 'ढांकहिं' नाहीं।
मरन सनेह 'सो तिरियन्ह' रेसा।
चीर न 'संभरहिं' मोंकर केसा।
कहा न सुनैहि(नहिं)'उतरु न(नहि) देहीं।
सीस नांग 'जनु' भौं(भ)वंरी लेहीं।
'अते स बरबर' 'लागीं' दुहुं महिं हार न कोइ।
'लोगन्ह' 'जात बिसरि गई' 'मंडपि नटार(रं)भ' होइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१३, बी० ८०६-८०८।

शीर्षक—मै० : दर खून लाल शुदन चांदा व मैना व हज़ीमत नमी खुरदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० मदन कामि दूनौ। २. बी० जानौ। (२) १ बी० उभरी। २. मै० नख। ३. बी० दहुं। ४. बी० टेंस। (३) १. मै० ऊभी। २. बी० सिर। ३. बी० ढाकैं। (४) १. बी० जु तिरिया। २. बी० समरेहि। (५) १. मै० मुंह नहि बोल। २. बी० जानै। (६) १. मै० आए भर भर। २. बी० लागेहि। (७) १. बी० लोगाह। २. मै० जाप बिसरिगा। ३. मै० तेहि लरब बिटारीन्ह (बिटारिन्ह—ना०)।

अर्थ—(१) वे दोनों [नारियाँ] मलिन काम से प्रज्वलित हो कर उठीं और मानो [दो] मदमत्त श्रेष्ठ गज हों, [ऐसी] वे उभड़ (उठ) पड़ी। (२) दोनों नारियां समतुल्य रूप से भिड़ गईं और नख-क्षत से [उनके] अंग ऐसे हो रहे थे मानो किंशुक फूल उठे हों। (३) वे अत्यधिक हाथा-बाहीं कर रहीं थीं, उनके स्तन खुले हुए थे और वे उन्हें ढांक भी नहीं रही थीं। (४) उन स्त्रियों के संबंध में मरने का सन्देह [हो रहा] था; उनके चीर नहीं संभल रहे थे और उनके केश मुक्त हो रहे थे। (५) वे कहना नहीं सुन रही थी, न वे उत्तर दे रही थीं और उनके सिर ऐसे नग्न थे मानों वे भंवरी ले रही हों। (६) वे अत्यधिक बर्बरता पूर्वक लिपटीं, किन्तु दोनों में से कोई

हारी नहीं रही थी। (७) लोगों को यात्रा विस्मृत हो गई [क्योंकि], मडप में [यह] नाट्यारंभ (नाटकीय समारोह) हो रहा था।

(२६३)

'पउदर ओंदरि' 'धरनि मिलि गएऊ'। देवहि जिय 'कर सांसउ भएऊ'।
देवधर रगत 'भएउ तेहिं लोही'। हिएं लाग डर 'भुगुति न होई'।
'देउ कहइ' बिधि 'मइं न बोलाई'। 'इंद्र' सभा की 'आछरि' आई।
अब जउ 'दुहुं' महि 'एकउ मरई'। 'इंद्र' राय 'मोहि जीउ कहं धरई'।
चला देउ 'हत्या मोंहि लागी'। छाडि मंडपु 'निसरा डरि भागी'।
'सुर आएं देखहिं' सकइ न कोउ छुड़ाइ।
मुनिवर जाप बिसरि गा बरंभा सीस डोलाइ॥

सन्दर्भ—मै० : पत्र २१४, बी० ८०९-८११/१।

शीर्षक—मै० : गुरीख्तन बुत अज़ बुतखान : अज जंग अशियान।

बी० में दोहा नही है।

पाठान्तर—(१) १. बी० पौदर मंडपु। २. बी० धरा मिलि गायों। ३ बी० कौ सांसैं भांयों।(२) १. बी० भयो सब लोहू। २. बी० बगत न मोहू।(३) १. बी० मनाह कहै। २. बी० मै न बुलाई। ३. बी० यंद्र। ४ मै० अछरिन्ह। (४) १. बी० इह। २. बी० एकौ मरै। ३. बी० यंदु। ४ बी० जिय मोकोंहु धरै। (५) १. बी० नहि तिय मो लागै। २. बी० निसिरा डरु भागैं।(६)१. मै० में इस चरणार्द्ध में कोई शब्द छूटा लगता है।

अर्थ—(१)[उस झगड़े के परिणाम-स्वरूप] मंदिर का पौदर टूट-फूट कर [जब] धरती में मिल गया, तब [उसके] देवता को अपने जीव (प्राणों) का सशय हुआ। (२) देव-गृह उनके लहू से रक्त हो गया था, और [देवता को] हृदय में डर लग रहा था, इसलिए [चढ़ाया हुआ] भोजन उससे नहीं किया जा रहा था। (३) देवता कह रहा था, "हे विधाता, मैने इन्हें नहीं बुलाया था, इन्द्रसभा की ये अप्सराएँ [स्वतः] आई। (४) यदि अब इनमें से एक भी मर जाएगी तो इन्द्रराज मुझे मेरे प्राणों के लिए पकड़ेगा।" (५) [इसके अनंतर] यह सोच कर कि उसे हत्या लग जाएगी, [मंदिर का] देवता चल पड़ा और डर के मारे मंडप को छोड़कर भाग निकला। (६) देवता आ कर [उन्हें झगड़ते] देख रहे थे, किन्तु उन्हें कोई भी छुड़ा नही सक रहा था। ७ मुनिवरो को जप करना भूल गया [था] और ब्रह्मा सिर हिला रहे थे।

(२६४)

कवरि 'तराइनि' सूरिजु आवा। देसु 'लोकु' मिलि आगें धावा।
जन पठए 'हुत' वेगि 'बुलावहु'। करम 'हमार सहिइं' चलि 'आवहु'।
चादा 'मैनहि असि कइ' गही। अब लहि 'असि' न 'काहू' 'सेउं' भई।
'सुनहिं' न बोलु 'न करहिं' 'मिरावा'। तस न कोउ 'जो आइ' छुडावा।
'जउ इन्ह' महिं 'एकउ' मरि 'जाई'। हत्तिया 'लागी' देस बुराई।
कंवरि 'तराइनि' सूरिजु 'दुहु' 'तुम्ह' 'पइसि छुडावहु'।
लागि जाइगी हत्तिया उजरत देसु 'वसावहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१५, शि०, बी० ८११।१२-८१४।

शीर्षक—मैं० : आमदने लोरिक नजदीक बुतखान: व मअ़लूम करदन खल्क कैफ़ियते जंग। शि० : अपाठ्य है।

पाठान्तर—(१) १. बी० तरायनि। २. बी० लोगु। (२) १. मैं० सो। २. शि० वुलावउ, बी० वुलाये। ३. बी० हरसहीं। ४. शि० आवउ, बी० आये। (३) १. मैं० मैं ना कइ असि, बी० मैं न होइ कर। २. मैं० अईसि, बी० अस। ३. मैं० काहू (काहु)। ४. बी० स्यौं। (४) १. मैं० सुनहि। २. मैं० कों करहि, बी० न करैहि। ३. मैं० मनावा। ४. शि० जो इन्हां, बी० जौ पैसि। (५) १. मैं० जउ रे दुंहूं, बी० अब इन्ह। २. मैं० एक बी० येको। ३. मैं० नाई। ४. बी० लागै, शि० लागहि। (६) १. बी० तरायनि। २. बी० दहु। ३. बी० वा, मैं० में नहीं है। ४. बी० पैसि छुडाउ, शि० अस्पष्ट है। (७) १. शि० बस, बी० बसाउ।

अर्थ—(१) [मंदिर के देवता ने पुकारा,] "ऐ कमलिनियो (सुंदरियो) और तारिकाओ (दासियों-सखियो) तथा सूर्य (लोरिक), आ जाओ; देश तथा लोक मिल कर आगे दौड़ पड़ो! (२) जो जन भेजे हुए है, उन्हें शीघ्र बुलाओ, यह हमारा कर्म (भाग्य) होगा कि सभी चले आएँ! (३) चादा और मैंना ने [एक-दूसरे को] इस प्रकार पकड़ रक्खा है कि ऐसी [लड़ाई] अब तक किसी से नहीं हुई है। (४) वे [किसी की] वाते नहीं सुन रही है, इसलिए कौन उनमें मेल कराए? ऐसा कोई नहीं है जो आकर उन्हें छुडा सके। (५) यदि इन [दोनों] में से एक भी मर जाएगी, तो मुझे हत्या लगेगी और देश में बुराई (निन्दा) होगी। (६) ऐ कमलिनियो (सुंदरियो), तारिकाओ (सहेलियों-दासियो), और सूर्य (लोरिक), तुम प्रविष्ट होकर

दोनों को [एक-दूसरे से] छुड़ाओ। (७) [अन्यथा] हमें हत्या लग जाएगी, तुम उजड़ते हुए देश को बसा लो !"

(२६५)

'मेरई (ई) सूधि कइ' 'दोऊ' नारी। 'भेंभर' भोरीं जोबन बारी।
'कइ' 'खंडवानी' 'दोउव' 'पियाई'। 'कोह परजरती' छिरकि बुझाई।
वासि 'कपूरें' पान 'खियाई'। 'एक' खंड छाप आनि 'पहिराई'।
'यह गियानु' तुम्हं चांद न 'बूझउ'। मैनां 'सहुं को झूझ' न 'झूझउ'।
'ओछि' बात सुनु चांद 'न कीजिय'। ऊतर 'दइ अनु' 'ऊतर' 'लीजिय'।
'सिराजुद्दीन' सेउं 'कबि' छंद 'दाउद' कहे संवारि।
'मेरई सूधि कइ' दोऊ नारीं 'लाइ' धरीं अंकवारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१६, भो० पत्र २५ (नवीन), बी० ८१५-८१७।

शीर्षक—मै० : आश्ती करदने लोरिक मियाने चांद व मैनां।

भो० : रिहा करदन अमीर मसऊद व जंग व सामान दादन मैना रा व मनअ् करदन चांदा रा। [यह शीर्षक सर्वथा अशुद्ध है और (१) तथा (७) के पाठ-भ्रम से संबद्ध है।]

पाठान्तर—(१) १. भो० बी० मीर मसऊद कि (मसूद की-बी०)। २ बी० दून्यौ। ३. बी० भ्यंभर। (२) १. बी० कै। मै० खंडवानि (खंडवानी—ना०)। ३. बी० दुवै। ४. बी० पिवाई, भो० बनाई। ५. बी० कापर जारी। (३) १. बी० कपूरी। २. भो० खवाई, बी० खियाए। ३. बी० यक। ४ बी० पहिराए। (४) १. बी० योंहु ग्यानु। २. भो० बूझिय, बी० बुझाये। ३ भो० सेउं को जूझ, बी० सेती क जूझ। ४. भो० झूझिय, बी० जाये। (५) १. बी० बोछी। २. बी० ब कीजा। ३. मै० देइय। ४. भो० उतर न। ५ बी० दीजा। (६) १. बी० सिराजदि के। २. बी० में नहीं है। ३. बी० दाउदि। (७) १. भो० बी० मीर मसूद कि (मसउद की-बी०)। २. बी० लई।

अर्थ—(१) दोनों नारियों को [लोरिक ने] शुद्ध (सीधी-शांत) कर मिलाया। वे [दोनों] योवनवती बालिकाएं भेंभर (विह्वल) और भूली हुई [हो रही] थीं। (२) खंडवानी [तैयार] करके दोनों को उसने पिलाया, और क्रोध से जलती हुई दोनों को [मीठे शब्दों का जल] छिड़क कर बुझाया (शान्त किया)। (३) दोनों को [उसने] कर्पूर से सुवासित कर पान खिलाया और [दोनों को] एकखंडी छपी साड़ियां लाकर पहनाईं। (४) [फिर उसने

कहा,] "ऐ चांदा, यह ज्ञान तुम नहीं समझती हो कि मैंना से तुम्हें कोई युद्ध न जूझना (करना) चाहिए। (५) ऐ चांदा, सुनो; ओछी बात न करे, उत्तर दे और उत्तर ले।" (६) सिराजुद्दीन से काव्य के ये छंद दाऊद ने संवार कर कहे हैं। (७) सीधी (शांत) कर दोनों नारियों को [लोरिक ने आपस में] मिलाया और [तदनंतर दोनों को] ला (ले) कर [उसने उन्हें] अंकवार में पकड़ा।

१६. चांदा-लोर-परदेश-प्रस्थान खण्ड

(२६६)

चांद सुखासनु मंदिर चलावा। देउ मनाएं 'ला(लां)छनु' पावा।
'जउ देव बारहिं लांछनु' लागा। 'जानउं चंद्र' मेघ 'तर' भागा।
'सोरह' करां करत 'उजियारी'। 'पूनिउं राति भई' 'अंधियारी'।
चांद कलंकी 'चितहिं स(सं)खानी'। एक खंड 'नाहीं नौ' खंड जानी।
'एहिं' परि जाइ मंदिरि ऊतरी। कनवड़ि 'होइ तउ पाछें' परी।
'चढ़ी चांद धौराहरि' सिरु धनि' बइठि नवाइ'।
'नैन गांग मुख धोवइ' मुख मंसि धोइ न 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१७, बी० ८१८-८२०।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क है, 'चांद सुखासन' है, जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : बाज गश्तन चादा अज़ बुतखानः सूए ख़ानः ख़ुद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लछिनु। (२) १. बी० जो हुत बारेहि लंछिनु। २. बी० जानौ कि चांद। ३. बी० रत। (३) १. बी० सोराह। २. मैं० उजियारा। ३. बी० पून्यों चांद कि भइ। ४. मैं० अंधियारा। (४) १. बी० चितह लजानी। २. बी० छाडि नौव। (५) १. बी० इहि। २. बी० होइ तौ पीछे, मैं० दीख तउ पाछें। (६) १. बी० चरी राम धैराहर। २. बी० बैठि नवाई। (७) १. मैं० पंक नेक रे। २. बी० धोवैं। ३. बी० जाई।

अर्थ—(१) चांदा ने सुखासन मंदिर (घर) की ओर चलाया, [तो] [उसने मन में कहा,] "देवता को मनाने से मैंने लांछन [ही] पाया।" (२) जब देवता के द्वार पर [उसे] लांछन लगा, तब [वह छिप कर इस प्रकार भागी] मानो चंद्र मेघ के नीचे (पीछे) छिप कर भागा हो। (३) जो

सोलह कलाओं से उजाला करती थी, वह पूर्णिमा की रात्रि अंधकारमयी हो गई। (४) कलंकित चांदा चित्त में शंकित हो गई, [क्योंकि यह बात] एक खड तक [सीमित] नहीं रही, वह नौ खंडों में प्रसिद्ध हो गई। (५) इस प्रकार से जाकर जब वह [अपने] मंदिर (घर) में उतरी, वह कनावडी (लज्जित) होकर पीछे [के भाग में] पड़ रही। (६) चांदा धवलगृह (प्रासाद) पर चढ़ी, तो वह सिर पकड़ कर और उसे नीचा कर बैठ गई। (७) [अपने] मुख को वह नेत्र-गंगा से [भले ही] धो रही थी, किन्तु मुख की कालिमा नहीं धोई जा सकती थी।

(२६७)

'चढी' पालिकी मैंनां नारी। बिहस 'कंवरि सब' जोवन बा(वा)री।
'गोवां पूजि कइस सुख आई'। 'जइ सब गोहन देउ घर गई (?)'।
'खिनहि चांद कुर पानि' उतारा। 'हम सहिं' नारि छिनारि 'बिटारा'।
हसि हंसि पान अडाकर खाहीं। मिलीं सहेलीं कोड कराही।
'पानी उत(ता)रा' 'मसि मुख' लाई। सो मसि 'मुख थें धोइ' न जाई।
'झमकति' आई पालिकी सुख 'सउं' मंदिरि 'पईठि'।
'गई' सहेली घर 'घर' मैंनां 'सेजि बईठि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१८, बी० ८२१-८२३।

शीर्षक—मैं० : बाज गश्तन मैंना अज़ बुतखानः सूए खानः खुद।

पाठान्तर—(१) १. बी० चली। २. बी० कंवर पर। (२) १. बी० गोवरा बात घनांहुनि भई (तुल० २२८.४)। २. बी० सषी बुलाई सभै तिनि लई। (३) १. बी० कहेंहि (खिनहि—फ़ा०) चांद कर पानी। २. बी० मौसौ। ३. बी० नचारा। (५) १. मैं० पानि उतारी। २. बी० औ मसि। ३ बी० मुख की कदे। (६) १. बी० सुष स्यों (तुल० चरण का उत्तरार्द्ध)। २ बी० स्यौं। ३. बी० पईठी। (७) १. बी० गइ। २. बी० घरह। ३ बी० सेज बईठी।

अर्थ—(१) मैंनां नारी जब पालकी पर चढी, सब यौबनवती कमलिनिया (सुदरियां) हंस रही थीं। (२) [मैना ने कहा,] "हम किस सुख के साथ गोवां (ग्राम-देवता ?) की पूजा कर आई जब साथ-साथ हम देव-गृह में गईं। (३) [किन्तु] "चांदा ने क्षण भर में [हमारे] कुल का पानी उतार लिया [और कहा,] कि हम सभी नारियां छिनाल और बिटारिनें हैं। (४) [उसकी]

सहेलियां [किस प्रकार] हंस-हंस कर अडाकर (बिना कुचले हुए) पान खा रही थीं, और मिल कर कोड (क्रीड़ा-खिलवाड़) कर रही थीं। (५) मैंने तो [उसका] पानी उतार कर [उसके] मुख में मसि (कालिमा) लगा दी है, ओर वह मसि (कालिमा) मुख से धोई नहीं जा सकेगी।" (६) यह कहती हुई वह पालकी पर झमकती हुई आई और सुख-पूर्वक [अपने] मंदिर (घर) मे प्रविष्ट हुई। (७) सहेलियां अपने-अपने घर गई और मैंनां शैया पर जा बैठी।

(२६८)

'खोलिनि पूछहि कहु दहुं' मैंनां। 'देउ' बारि कस 'पाइहु' बैंनां।
'हउं' तुम्हं 'पूजइ देउ' पठाई। 'अउ पाछें तेहि चांदा आई'।
'हम जानां यह सहिय' तुम्हारी। 'ऊपर घालति करति धमारी'।
थोर बहुल 'जइसइं किछु परतिउं'। 'आजु सेउ चांदा कइ कीत्यौं(तिउं)।
'ए सब' लोरिक के उपगारा। 'बाजी मो सौं(सउं)' देव दुवारा।
बहुल 'भएउ नोचियाऊ' चांद 'सकूसर आइ'।
नांगि नंगि कइ छंडतिउं 'लेतिउं' चीर छिनाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१६, बी० ८२४-८२६।

शीर्षक—मै० पुरसीदने खोलिन मैंनां रा कैफ़ियते बुतखानः।

पाठान्तर—(१) १. बी० पौलनि पूछ कहौ धौं। २. बी० देव। ३. बी० पायो। (२) १. बी० हौ। २. बी० पूजा देव। ३. बी० औ पीछै कै चाद बुलाई। (३) १. बी० जौ हौं जांनौ सगी। २. बी० जे पर घालि बिपरीति अमारी। (४) १. बी० जैस कछु हूत्यौ। २. बी० आजु सु चांदा परगट। ३ मै० करतिउं। (५) १. बी० जे (ये—ना०) सभ। २. मै० बाचे तूसिउं (?)। (६) १. बी० भयो पछिताव। २. बी० सकोसर (सकूसर—फा०) आई। (७) १. बी० नगन करि छरत्यौं। २. बी० लेत्यौं।

अर्थ—(१) [खोलिन पूछने लगी,] "ऐ मैनां, कहो तो, देव-द्वार पर तुमने कैसा बैना पाया?" (२) [मैनां ने कहा,] "तुमने मुझे देवता की पूजा करने को भेजा और उसके पीछे ही चांदा [वहां] आ गई। (३) हमने जाना (समझा) कि तुम्हारी यह [चेष्टा] सहृदयता-युक्त (?) है कि तुम ऊपर [कुछ] डाल रही हो और धमार कर रही हो। (४) [फिर तो] थोड़ा-बहुत जैसा-कुछ हो सका आज मैंने [भी] चांदा की सेवा की। (५) और ये सब

लोरिक के उपकार हैं कि वह मुझ से देव-द्वार पर भिड़ गई। (६) [वहां] बहुत नोचियाव (नोंच-चोथ) हुआ, [तब] चांदा कुशल-पूर्वक [अपने घर] आई, (७) [अन्यथा] उसको मैं नंगी और नग्न करके छोड़ती और उसका चीर छिना लेती।"

(२६६)

'मैनहि मालिन तउहि बोलाई'।
'उरहन दें (दइ) महरीनि (इं ?)' पठाई।
चांद 'भुजंगि' राइ 'कइ' धिया।
'अइस नकीज (न कीज) जइस ओइं किया'।
'पूनिउं मुखु देखत' उजियारा। 'आपु कलंके' भा अंधियारा।
महर महरि कइ भइ मोंहि कानीं। 'लउतिउं' आगि 'उतरतिउं' पानी।
'असि कइ धीय दीन्हि मोकराई'। 'अबहि सकोरहु' अनत न जाई।
चारि भुवन जगु देखत मो 'सिउं' 'बांगरि' लागि।
जेहि 'अकरक' अस 'लागइ' 'जाइ' देस तजि भागि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२०।१, बी० ८२७-८२६।

शीर्षक—मै० : तलबीदने मैनां मालिन रा व फ़िरिस्ता[द]न बर महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैनां मारनि तोहि बुलाई। २. मै० ओरधन देइ महरां। (२) १. बी० भनीजै। २. बी० की। ३. बी० अैस न कीजै जस उनि कीया। (३) १. बी० पून्यों मुषु देस (दीस—फ़ा०)। २. बी० अबरु कलकी। (४) १. बी० लबत्यौं। २. बी० उतारत्यौ। (५) १. बी० अस कै धिया दीन्ह मुकराई। २. मै० में अस्पष्ट है। (६) १. बी० सौ। २. बी० बागरी। (७) १. बी० अकुरंक। २. बी० होइहै। ३. बी० जाई।

अर्थ—(१) मैनां ने मालिन को तभी (तत्काल) बुलाया, और उलाहना देकर (देने को) उसे महर के पास भेजा। (२) [उसने कहलाया,] "राजा की दुहिता चांदा भुजंगिनी है; उसे ऐसा न करना चाहिए था जैसा उसने किया है। (३) उसका पूर्णिमा का (के जैसा) मुख देखने में उज्ज्वल था, किन्तु अपने द्वारा ही कलंकित किए जाने के कारण वह अंधेरा (अंधकारपूर्ण) हो गया [है]। (४) महर-महरी की मुझे कानि हुई, नहीं तो उसे आग लगा [कर जला] देती और उसका पानी उतार लेती। (५) [तुमने अपनी] दुहिता को ऐसा मुक्त कर रक्खा है! अभी ही उसे सिकोड़ो (नियंत्रण में

करो), जिससे वह अन्यत्र न जाए। (६) चारों भुवनों और जगत् के देखते हुए वह वक्रा मुझसे लग (उलझ) गई। (७) जिसे ऐसा कलंक लगता है, वह देश को त्याग कर भाग जाता है।"

(२७०)

'मालिनि पुहुप करंडि भरि लिई'। राजमंदिर चलि भीतर 'गई'।
'महरिहि' सीसु नाइ भइ ठाढ़ी। कुसुम 'करी लइ दीतिसि' काढ़ी।
हार 'जोरि' 'फूला पहिराई'। 'अउर' फूल भरि सेज 'बिछाई'।
फुनि 'मालिनि बिनती' औधारी। 'सुनहु त बिनवइ दासि' तुम्हारी।
आजु लोर 'कें' मंदिर 'बुलाइउं'। चांद 'क ओरहन' देइ 'पठाइउं'।
जस 'उन कहा सो कहिसि अस 'तस' 'हउं कहइ न पारउं'।
बहुल 'मात हउं दोखी' 'कहं' लगि कहत 'संभारउं'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२०।२, बी० ६३०-६३२।

शीर्षक—मै० : रफ़्तन गुलफ़रोश दरखान: राय महर व पेश इस्तादन।

पाठान्तर—(१) बी० मारनि पहुप कडंड भरि लाई। २. बी० आई। (२) १. बी० महरिह। २. बी० जोर लेहसि करि (तुल०अर्द्धाली तीन का पूर्वार्द्ध)। (३) १. बी० जोर। २. बी० फूल पहिरावा। ३. बी० और। ४ बी० बिछावा। (४) १. बी० मारनि तीय। २. बी० सुनि बिनवौ अविचार। (५) १. बी० कै। २. बी० बुलायो। ३. बी० उराहन। ४. बी० पठायो। (६) १. मै० ओरहन ओई कहा। २. बी० हौ कहौ न पारौ। (७) १. बी० बात कहि देषी। २. बी० कहाँ। ३. बी० सभारौ।

अर्थ—(१) मालिन ने पुष्पों की करण्डी (डलिया, टोकरी) भर ली और राजमंदिर जाकर वह [उसके] भीतर गई। (२) महरी को सिर नमित कर वह खड़ी हुई और [एक] कुसुम-कलिका निकाल कर उसे दी। (३) उसने [इसके अतिरिक्त] हार जोड़ (गूथ) कर फूला (महरी) को पहनाया, तथा और फूलों से भर कर [उसकी] शैया बिछाई। (४) तदनंतर उस मालिन ने विनती प्रस्तुत की, "यदि तुम सुनो, तो यह तुम्हारी दासी तुमसे विनती करे। (५) आज मैं लोर के मंदिर में बुलाई गई और चांदा [के संबंध] का उलाहना देने के लिए मैं भेजी गई। (६) जैसा [उलाहना] उस (मैंना) ने कहा है—कि ऐसा कहना, वैसा मैं नहीं कह सकती हूं, (७) [इसके लिए] हे माता, मैं बहुत दोषी (दोष-पूर्ण) हूं, [क्योंकि] उसे कहते हुए मैं कहां तक स्मरण करूं?"

(२७१)

महरि कहा 'सुनि मालिनि' माई । जस 'तइ' सुनां 'तइस' कहु आई ।
'कालिह् जउ' चांद देव घर' गई । देव 'दुआर' 'बिटारित भई' ।
चारि भुवन जग 'जानहु' आवा । कछु आपनु 'अउ बहुल' परावा ।
चांद न आछइ 'अपनें' पानी । बिनु पानी अति जीभ सुखानी ।
घर घर बात'देस' फिरि आई । 'कार(रं)क दिए मुंह निकरि' न जाई ।
तूं राजा 'कइ धिय' 'सो चांदा' 'कैसें लोक' हंसावसि ।
'अउ जो पुरुखा सात गए' सरगि तू 'तिन्हहि लजावसि' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २२२, बी० ६३३-६३५ ।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने महरि बर गुलफ़रोश रा व बाज़ नमूदन गुल-फरोश अ्ताबे चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहु मारनि माई । २. बी० तैं । ३. बी० तैंस । (२) १. बी० कालि जु । २. बी० दुबार । ३. बी० जस होई षई । (३) १. बी० जातेहि । २. बी० औ बहल । (४) १. बी० आपन । (५) १. बी० जगाह । २. बी० कार कीन्ह मुष निसरि । (६) १. बी० की धीय । २. बी० में नहीं है । ३. बी० बारिक पिता । (७) १. बी० औ पनि पुरषह सात । २. बी० तिन्ह लाज लगावसि ।

अर्थ—(१) महरी ने कहा, "ऐ मालिन सखी, सुन; जैसा तूने [मैना से] सुना, वैसा तू आकर कह" (२) [मालिन ने कहा,] "कल जब चांदा देवगृह गई, देव-द्वार पर वह लांछित-अपमानित हुई । (३) मानो जगत् के चारो भुवन वहां पर आगए थे, कुछ अपने थे और बाहुल्य से पराए थे । (४) चादा अपने पानी (मर्यादा) में नहीं रहती है, [इसलिए] बिना पानी (मर्यादा) के उसकी जिह्वा अत्यधिक शुष्क [हो रही] थी । (५) देश में घर-घर यह बात फिर आई है कि उसने [अपने] मुँह में ऐसा कालिख दिया (लगाया) है कि उससे [बाहर] निकला नहीं जा रहा है । (६) 'ऐ चांदा' [लोग कहते है,] 'तू राजा की कन्या होकर कैसे लोक में [अपनी] हंसी करा रही है, (७) और जो तेरे सात पूर्व-पुरुष स्वर्ग जा चुके हैं, उन्हें लज्जित कर रही है !"

(२७२)

'सुनतहि फूला' महरि लजानी । 'घरी' सहस 'जनु' भेला पानी ।
'जइस तुसार पुरइनि दहि' दही । तस होइ महरि बात सुनि रही ।

'कवनि' भांति 'बरु गई बोलाई' । 'इहिं' कुर बोरनि लाज 'गंवाई' ।
काहे 'कहं बिधि तइं अवतारी' । 'बरु अवतरतइ मरतिउं बारी' ।
अस 'ओरहन दहुं कैसें' सहिए । जहां 'बियाही तहं' का कहिए ।
'दुइ' कुर बोरनि 'अकरनि' 'गोत लजावनि' दारि ।
'पायं लागि कह मालिनि' 'हरकी(किय) आहि छिनारि' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २२३, बी० ८३६-८३८ ।

शीर्षक—मै० : शरमिन्द: शुदने महर व फूला अज़ अ़तावे चांदा ।

मै० में इस कडवक के सामने जो चित्र है, वह बाद वाले कडवक का है, जो मै० में त्रुटित है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुनते फूलांह । २. बी० घरे । ३. बी० जानौ । (२) १. बी० जस तूसरि परयनि दह । (३) १. बी० नून । २. बी० कर गई बिलाई । ३. बी० यह । ४. बी० लगाई । (४) १. बी० कौ बिधि तू औतारी । २. बी० कोरि सहस चौहु देसेहि गारी । (५) १. बी० उरहन धौ कैसै । २. बी० बियाहि तहां । (६) १. बी० दोई । २. बी० अंकुरनि । ३ मै० लोक हंसावनि । (७) १. बी० पाई लागि कैं बिनइ मारनि । २. मै० हरकही । ३. बी० बहुल बिचारि ।

अर्थ—(१) यह सुनते ही महरी फूला [ऐसी] लज्जित हुई मानो उस पर एक सहस्र घटियाँ (छोटे घड़े) जल डाल दिया गया हो । (२) जैसे तुषार में दग्ध होने से पुटकिनी (कमलिनी) जल जाती है, वैसी ही [दग्ध] होकर महरी उसकी बात सुनती रही । (३) [उसने कहा,] "किस भांति (क्यों) यह [ससुराल से] बुलाई ही गई कि इस कुल को डुबाने वाली ने लज्जा गंवा दी ? (४) विधाता के द्वारा किसलिए अवतरित ही की गई ? बल्कि अवतरित होते समय ही, ऐ बालिका, तू मर जाती (गई होती) । (५) ऐसा उलाहना भला कैसे सहन किया जाए और जहां पर तू विवाहित है, वहां पर क्या कहा जाए ?" (६) "यह दोनों कुलों को डुबाने वाली, अकरणीय को करने वाली और गोत्र को लज्जित करने वाली दारी हुई", पैरो में लगकर मालिन ने कहा, "इस छिनाल को हटकिए (मना कीजिए) ।"

(२७३)

राज मंदिर हुतें मार(रि)नि आई ।
मैना नारि आइ सम(मु) झाई ।

महरि बिरूना (बिरवना) करै(रइ) बि[र]राई।
चांद केर मुषि लै(लइ) मसि लाई।
माइ बाप बंधु कुट(टुं)बु बिगोवै(वइ)।
रोइ रोइ चांद कार मुष धोवै(वइ)।
समदि(समुद ?) पैठि(बैठि ?) दिनु ले(लइ) मुसकाई।
मुषि जु चरी मसि धोई(इ) न जाई।
अ(आ)न होइ हीयो द[र]केहि फाटै।
पुरषु नारि कर नासिक काटै।
मैना आगि बुझान कह (इ ?) अस मारनि आई।
चांद कीन्ह सत ढील राह(हि ?) निरंग ही आई॥

सन्दर्भ—बी० ८३९-८४१। मै० में अब यह कडवक नहीं है किन्तु अब उसके पत्र २२३ पर जो चित्र है वह इसी कडवक का है, पूर्ववर्ती का नही है, क्योंकि उसमें मालिन और मैना का सवाद चित्रित है।

अर्थ—(१) मालिन राजमंदिर से आई और आकर उसने मैनां नारी को समझाया। (२) [उसने कहा,] "महरी बिलपना करती और बिललाती है [और कहती है] कि चांदा का मुख लेकर उस पर कालिख पोतनी चाहिए। (३) [चांदा] माता, पिता, बंधु और कुटुंब को बिगो रही है और रो-रोकर आंसुओं से अपना काला मुख धो रही है। (४) वह हर्षपूर्वक (?) बैठ कर (?) [भले ही] दिन भर मुसकराती रहे, किन्तु उसके मुख पर जो कालिमा चढ़ गई है, वह धोई नहीं जा सकती है। (५) अन्य कोई होता तो उसका हृदय दरक कर फट जाता, [क्योंकि] पुरुष ऐसी नारी की नाक काट लेता है।" (६) मैनां की आग (रिस) बुझ गई जब मालिन ने आकर उससे कहा, (७) "चांदा ने सत्व ढीला कर दिया है, [क्योंकि] सुसज्जित (?) होने (हो कर जाने) पर वह निरंग ही आई (लौटी) है।"

(२७४)

चाद बिरसपति 'सों' अस कहा। भा सो कुछ 'जो चित(चित्त)महं'अहा।
'सरग हुतें' धर परा 'अठाऊ'। उठा सबदु जग मेंट न काऊ।
अब 'यह' बात देस फिरि आई। 'अउ धइ ढांके रह' न लुकाई।
'हउं जो न सुनतिउं' बोलु परावा। 'जेहिं डरिउं सो आगें' आवा।
अब 'हनि मरिहउं' पेट कटारी। 'केइं रि (रे)' सहब देस कइ' गारी।

लोरहि कहसि बिरसपति 'मोहि लइ निकरि पराइ'।
आजु राति 'लइ निकरउ' 'न(ना ?)तरु मरउं भोर' बिसु खाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२४, बी० ८४२-८४४।

शीर्षक—मै० : तलबीदने चांदा बिरस्पति रा व फ़िरिस्ताने बर लोरिक।

पाठांतर—(१) १. बी० सौ। २. बी० हौंनै कौ। (२) १. बी० सरगौं हुतें। २. बी० निहाऊ। (३) १. बी० याह्। २. बी० ढाकी वाढी रहै न। (४) १. बी० हौं जनु सुनत्यौं। २. बी० जिहि दिन डरौ सु आगैं आगैं। (५) १. बी० लैं मरिहौं। २. बी० कोरि, मै० केइं दुख। ३. बी० सहस चहु देसहि गारी। (६) १. बी० मो लै निसरि पराय। (७) १. बी० ले निसरौहु। २. बी० ना तौ भोर मरिहैं।

अर्थ—(१) [उधर] चांदा ने बृहस्पति से ऐसा कहा, "कुछ वही हुआ जो मेरे चित्त (ध्यान) में था। (२) स्वर्ग से [वह पदार्थ] अस्थान में धरा पर आ पड़ा और उसका शब्द (शोर) ऐसा उठा कि जगत् में वह कभी भी न मिटेगा। (३) यह वार्ता अब देश भर में चक्कर लगा आई है और पकड़ कर (ज़बर्दस्ती) ढक रखने से छिप नहीं रही है। (४) [कहां तो] मैं ऐसी थी कि जो दूसरे का बोल नहीं सुनती थी, [और कहां अब ऐसी हो गई कि] जिस [बात] के लिए डर रही थी, वही आगे आई! (५) अब मैं पेट मे कटारी मार कर मरूँगी, क्योंकि मैं किस प्रकार देश [भर] की गाली सहूँगी? (६) लोरिक से, ऐ बृहस्पति, [तू मेरी ओर से] कह कि अब वह मुझे लेकर निकल भागे। (७) आज रात को [ही] वह मुझे लेकर निकल चले, नहीं तो मै सवेरे विष खाकर मर जाऊंगी।"

(२७५)

आइ बिरस्पति कहा संदेसू। लोर चांद 'लइ' 'चलु' परदेसू।
सावनु लाग 'देउ' घरराई। पावस 'पंथ न हांडे' जाई।
नार खोर नदि 'जर(ल?) भरि 'रहे'। 'एहिं सयंसारु जहां लहि अहे'।
'ओनइ' लाग 'धर' बादर 'आई'। 'दादुर ररहिं' 'बीजु चमकाई'।
पावस 'पंथ कवन निरबाहइ'। 'जीउ' डराइ हिय 'फाटइ चाहइ'।

सरद सिसिर 'रितु हेंवतहि' जात न लागी बार।
'चलब' चांद 'कहु बिहफइ' 'होइ' बसंत उजियार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२५, बी० ८४५-८४७।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने बिरस्पति लोरिक रा सुख़ुने चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै । २. मै० में नहीं है । (२) १. बी० देव । २. बी० पंथाह चले न । (३) १. मै० पानि । २. बी० रहै । ३. बी० वहि सैंसारू ज लहु औ अहें । (४) १. बी० उनै । २. बी० दर । ३. मै० बरिसइं । ४. बी० दादु रढैं । ५. मै० बीजुरी लौकइ । (५) १. बी० राति कौन निरवाहै । २. बी० जाइ । ३. बी० फाटन चाहै । (६) १. बी० रुति होवत । (७) १. बी० जाइ । २. बी० कौ बिहपै । ३. बी० होय ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने आकर [लोरिक से चांदा का] संदेश कहा, "ऐ लोरिक, तू चांदा को लेकर परदेश चले (जाए) ।" (२) [लोरिक ने कहा,] "सावन लग गया है और दैव गर्जन करने लगा है, वर्षा में मार्ग चलने से नहीं जाता (समाप्त होता) है । (३) जहां तक भी संसार में नालियां, खोरिया और नदियां थीं, वे पानी से भर रही हैं । (४) बादल आकर और अवनमित होकर धरा से लग रहे हैं, दादुर (मेढक) चिल्ला रहे हैं, और बिजली चमक रही है । (५) वर्षा में मार्ग कौन निबाह पाता है ? [मार्ग चलते हुए] जी डरता है, और हृदय फटना चाहता है । (६) शरद, शिशिर तथा हेमत ऋतुओं में जाने में देरी न लगेगी, (७) [अथवा,] चांदा से, ऐ बृहस्पति, कहना कि जब उज्ज्वल बसंत होगा, [तब] चलूंगा ।"

(२७६)

सुरिज सुमंतु बिरसपति पावा । चांद बारि कौ (कहं ?) जाइ जनावा ।
होहि न उतावरि चांदा रानी । उवै(वइ)अगस्ति घटै(ट)हि सर पांनी ।
पथ थाक साइर भरि रहे । गरैं बूड जहां लहु अहे ।
तर उपरि पानी न संभारै । चलै (चले) न जाइ बीचि होइ हारै ।
तौ निकरें कर होइ पछितावा । जान न जाई फिरि को आवा ।
जो अइबे कहुं आहि बीर कहि (कह) बिहपौं(फइ ?) आयहु ।
फुनि रु(रे) होइ पछिताऊ बहुरें मोहि न पायहु ।।

सन्दर्भ—बी० ८४८-८५० ।

मै० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से ज्ञात होता है । किन्तु यह कडवक प्रसंग में आवश्यक है । अतः असंभव नहीं कि यह मै० के पूर्वज में त्रुटित रहा हो अथवा, मै० की प्रतिलिपि करते समय रह गया हो ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जब सूरज (लोरिक) का सुमंत्र (विचार)

पाया, तो उसने चांदा बालिका को जाकर सूचित किया। (२) [लोरिक के शब्दों में उसने कहा,] "ऐ चादा रानी, उतावली न हो, अगस्त को उदित होने और सरोवरों का पानी घटने दो। (३) [इस समय तो] मार्ग बंद है और सागर (जलाशय) भर रहे हैं; वे जहां तक भी थे, आकंठ [जल से] बूडे (डूबे) हुए हैं। (४) [पथिक के लिए] एक तो तले जल है, और दूसरे ऊपर [वर्षा का] जल है, दोनों को [एक-साथ] वह संभाल नहीं पाता है और चल कर भी वह जा नही पाता है, तथा बीच में ही हार पड़ता है। (५) तब निकल पड़ने का पछतावा होता है, और यह नहीं जान पड़ता है कि लौट कर कौन आएगा।" (६) [यह सुनकर चांदा ने कहा,] "यदि लोरिक को आना है, तो वीर (लोरिक) से कहना, ऐ बृहस्पति, कि वह आ जाए, (७) [क्योंकि] फिर पछतावा होगा, और पुनः मुझे न पाएगा।"

(२७७)

'बिहफइ जाइ' लोरु 'समुझावा'। बीर चांद 'चित' कोपु उचावा।
'छाड़ि गोवर अइसइं बहिराउबि'। वरु जीउ जाइ बहुरि 'कोइ आउबि'।
'मइं आपन जिउ अस परिछेवा'। राति दिवस घन 'बरसइ' देवा।
'पटुवइं' केर देखि बौसाऊ। हाथ ऊभ 'भुइं परइ' न पाऊ।
'पुरुखहि' पानि आगि का कहिए। 'जइस परइ' सिर 'तइसइ सहिए'।
'कहा लोर सुनु बिहफइ' 'हउं तउ रासि गिनाउं'।
कालि धरउं 'लइ' पाइंतु 'तउ हउं' चांद 'पलाउं'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२६, बी० ८५१-८५३।

शीर्षक—मैं: तफ़्हीम करदने बिरस्पति बर लोरिक रा।

बी० में उपर्युक्त (३) के बाद अधिक है:

दीजै जीव तौ पायोहुं गोरी: जौ जिउ जाइतौ कुवरि बहोरी।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहपै आइ। २. बी० समझावा। ३. मैं० चिंत (चित्त—ना०)। (२) १. बी० छाडि लोर अैसै भुवरावबि। २. बी० को आवबि। (३) १. बी० मै अपना जिउ सब परछेवा। ३. बी० बरसहि। (४) १. बी० तिरियाह। २. बी० धर परै। (५) १. बी० पुरखैहि। २ बी० जैस परै। ३. बी० तैसि र रहिये। (६) १. बी० लोरिक कहा बिरसपति। २. बी० आजु जु गवन गिनाऊं। (७) १. बी० ले। २. बी० तौ हौ। ३. बी० बुलाऊ (पलाउं—फ़ा०)।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जाकर [तब] लोरिक को समझाया, [और कहा,] "ऐ वीर, चांदा ने चित्त में कोप उठाया (किया) है। (२) उसने कहा है, 'गोबर को छोड़कर मैं इसी प्रकार बाहर चली जाऊंगी और लौट कर न आऊंगी, भले ही जीव जाए और कोई लौट कर आए। (३) मैंने अपने जीव को इस प्रकार परिच्छिन्न कर लिया है, भले ही रात-दिन दैव घना बरसे। (४) बुनकर का व्यवसाय (पुरुषार्थ) देखो; [जब] उसका हाथ उठता है, [उसका] पैर भूमि पर नहीं पड़ता है। (५) पुरुष के लिए पानी या आग की बात क्या कही जाए? जैसा कुछ उसके सिर पर पड़ जाता है, वैसा ही वह सह लेता है।' " (६) लोरिक ने कहा, "ऐ बृहस्पति, तब मैं राशि गिनाता हूं। (७) कल मैं पांइत (प्रस्थान की वस्तु) लेकर रक्खूंगा, और उसके बाद मैं तथा चांदा पलायित हो जाएंगे।"

(२७८)

'रइनि खेलि' 'दिनु' भा 'भिनुसारा'। पंडित 'कें' घरु लोर सिधारा।
'बिसवां पंडित जाइ' 'जगावा'। 'पाटा' पानि 'वीर कहं' आवा।
पाट 'बइसारि' 'दीन्ह आसीसा'। चंद्र 'भायं' सूरिज 'मुख' 'दीसा'।
'काह चित वरु' भा परगासू। 'तू रबि जो कीन्हां' 'हम बासू'।
काह मया हम 'कहं चित' चढी। भइ 'उजियारि बिप्र की (कइ)' मढी।
कहु जजमान 'सो' कारनु 'जेहिं लगि इहवां आएहु'।
चंद्र जोति मुख उदिनल 'केहि लगि' 'चित्त' 'उचाएहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३७, म० पत्र १४५।२, बी० ८५५-८५७।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तने लोरिक दर खानए जुन्नारदार व पुरसीदने वक्ती साद।

म० : दास्तान रफ़्तने बर नजूमी पुरसीदन ऊ रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० रैनि खल। २. मैं० गइ। ३. बी० भुनसारा। ४ बी० कैं। (२) १. बी० बिसवां सिधु रिषि लोर, मैं० पंवरि जाइ कइ आपु। २. मैं० जनावा। ३. बी० पाट। ४. बी० बीर कौहु, म० बिप्र लइ। (३) १. बी० बिठाइ। २. बी० कि दीन्ह असीसा, मैं० फुनि दीन्ह असीसा। ३ बी० गुसाइ, म० भाव। ४. म० मुंह, बी० मति। ५. म० दी [सा]। (४) १. म० काह चेति चित, मैं० कहहुं चेति वरु, बी० काह चित च। २ मैं० पबितर निजुइ कीन्ह, बी० तैं [र] बि जोग कीन्ह। ३. बी० परगासू।

(५) १. मैं० कहं चित (चित्त), बी० उपरि। २. मैं० अजोरि जेइं हमरी। (६) १. बी० सु। २ मैं० जेहि इहवां तुम्ह आएहु, बी० जिहि मनसा चलि आइ। (७) १. बी० कह लगु। २. बी० जीउ, मैं० चित (चित्त)। ३. बी० उचाई।

अर्थ—(१) रजनी ने [खेल] खेल लिया, और दिन का भिनुसार (प्रभात) हुआ तो लोरिक पंडित के घर को चला। (२) विश्राम करते हुए पडित को जा कर उसने जगाया, तो वीर (लोरिक) के [बैठने के] लिए पाटा (पीढ़ा) और [हाथ-पैर धोने के लिए] पानी आया। (३) [पंडित ने] उसे पाटे पर विठा कर आशीर्वाद दिया [और कहा,] "सूर्य के मुख पर [आज] चंद्र का भाव (प्रभाव) दिखाई पड़ा है! (४) क्या चिंता हुई कि उसके कारण तुम्हारा प्रकाश हुआ—वह प्रकाश जो, ऐ सूर्य, तुमने हमारे आवास पर किया है। (५) मेरे लिए ऐसी क्या मया (ममता) [तुम्हारे] चित्त मे चढ़ी कि इस विप्र की मढ़ी प्रकाशित हुई है। (६) हे यजमान, वह कारण कहो जिसके लिए तुम यहां आए। (७) तुम्हारे मुख पर उदीर्ण चंद्र की ज्योति है, [तब] किसलिए तुमने [अपना] चित्त उठाया (उचटाया) है?"

(२७९)

सूरुज कहा मइं 'चांद' पलाउब। 'सुकुर' बाजु दइ पूरुब चलाउब।
घरी 'मांडि' कइ रासि गिनाई। सब ही सिधि ओइं पंडित पाई।
मोर 'गनित' तुम्हं लोरिक जानहु। 'कहउं बोल' 'सो सच करि' मानहु।
दिन दस तुम्हं कहं 'बाट चलावइ'। 'पर भुइं पंथ' 'बहुल सिधि पावइ'।

एक दोइ काल 'जइस मइं' 'देखी(ख)उ'।
औगुन होइ पइ नाहीं 'लेखी(ख)उं'।
आधी राति 'जउ' जाइहि तव उठि चालेहु बीर।
सूर उवत तुम्हं उतरेहु 'बूढ़ि' गांग के तीर॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२८, म० पत्र १४६।१, बी० ८६१-८६३।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'आत (रात)', जो बाद के कडवक का है।

शीर्षक—मैं०: गुफ्तने जुन्नारदार वक्ती नेक व साअती खूब।

म०: मुक़ाम करदन लोरिक बर नजूमी व कैफ़ियत जंग।

बी० में इस पाठ की तीसरी और चौथी अर्द्धालियां यथा दूसरी और तीसरी हैं, शेष तीन अर्द्धालियां और दोहा भिन्न है, जो इस प्रकार हैं:—

(१) सिधि शिषि रासि गिनै परवाना : गिनि सम भाव क रासि बयाना ।

(४) अगनित देव भला है वारू : पूरब दिसि चाली अवतारू ।

(५) सूर अंबव लौ लै चलु लोरा : षोजु न पावसि कोऊ तोरा ।

सूर चलै ले चांदहि कें गोवर अंधियार ।
बीजु लवैं घनु गरजै निसरी [न ?] कोउ बार ।।
(यही दोहा आगे कडवक २८१ में आया है)

पाठान्तर—(१) मै० चादा । २. भो० सगुन । (२) १. म० मांगि । (३) १. बी० गिनत । २. बी० कहा जु बोलु । ३. म० सबइ तुम्हं, बी० सोइ तुम्ह (४) १. म० पंथ चलावइ, मै० बाट चलावहि । २. मै० पुनि एहि पंथ, म० पूरूब पंथ । ३. मै० बी० भला सिधि (अस—बी०) पावहि । (५) १. मै० मइं किछु । २. म० देखउं । ३. म० लेखउं । (६) १. म० जब । (७) १. मै० बूड़ि ।

अर्थ—(१) सूर्य (लोरिक) ने कहा, "मैं चांद (चांदा) को भगाऊँगा । शुक्र (ग्रहा, वार तथा काने वावन) को वर्जित कर (बचा कर) उसे पूर्व की ओर चलाऊंगा ।" (२) घड़ी का निश्चय कर [पंडित ने] राशि गिनी, तो उसने समस्त सिद्धियां [उस यात्रा में] पाईं । (३) [उसने कहा,] "मेरा गणित, ऐ लोरिक, तुम जानते हो; [इसलिए] मैं जो वचन कर रहा हूँ उसे सच करके मानो । (४) दस दिनों तुम्हें मार्ग चलाएगा, [तदनंतर] परभूमि (परदेश) के मार्ग में बहुतेरी सिद्धियां तुम पाओगे । (५) एक-दो काल जैसे मैं देख रहा हूं, किन्तु [उनसे तुम्हारा] कोई अपगुण (अपकार) होगा, ऐसा मैं नहीं देख रहा हूं । (६) जब आधी रात चली जाएगी तब, ऐ वीर, तुम चल देना (७) और सूर्य उगते तक तुम बूढ़ी गंगा के तीर (तट) पर उतर जाना ।"

(२८०)

राति 'भई' 'तउ' लोरिक आवा । मेलि बरहु 'गै' आपु जनावा ।
'बाट चहति फुनि' 'चांदा होती' । 'लीतिसि' अभरन मानिक मोंती ।
अंकुरी लाइ 'लोर तस ताना' । आवत 'सुरिजु चांद' 'पइ जाना' ।
परथमि मेलि अरथु सबु 'दीतेसि' । 'पाछें सुरिजु चांद' 'धनि लीतेसि' ।
चांद 'सुरिज के पायंन' परी । 'सूरिज' चांद लइ 'मांथे' धरी ।

निसि अंधियारि 'नीरु' घन 'बरिसइ' 'चांदहि सुरिजु' लुकाई ।
बेगि बेगि 'कइ चाले दोऊ' 'जानउं जाइ' उड़ाई ॥

सन्दर्भ—मै० : पत्र २२६, म० पत्र १४६।२, बी० ८७०-८७२ ।

शीर्षक—मै०: फ़ुरूद आवरदने लोरिक चांदा रा व बाखुद बुरदन ।
म० : दास्तान आमदन लोरिक दर खानः चांदा बर लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. मै० परी । २. बी० तौ । ३. बी० तौ । (२) १. म० बी० कहत तौ । २. बी० चांद अहोती । ३. बी० लेतस (लीतिस—फ़ा०) । (३) १. बी० लौर अस तानां, मै० लोर तस तानेसि । २ मै० सूर । ३. बी० निसि जान्या, मै० न जानेसि । (४) १. बी० लीतसि । २ मै० औ पाछें चाद । ३. बी० भरि लीतसि । (५) १. मै० सूरिजु के, बी० सूरिजु कैं । २. बी० पायहि । ३. बी० माथैं, म० माथहि । (६) १ मै० मेघ । २. बी० बरसैं । ३. मै० चांद सूर । (७) १. बी० कै चालेहि, म० चलु चांद गुवारी । २. बी० जानौं जाह, म० जाहि केहा दोउ ।

अर्थ—(१) रात हुई तब लोरिक आया; [वहां] बरहा (रस्सा) फेंक कर और जाकर उसने अपने को जताया । (२) चांदा भी उसकी बाट जोह रही थी, उसने आभरण, माणिक्य और मोती ले लिए थे । (३) बरहे की आकड़ी लगाकर लोरिक ने [उसको] ऐसा ताना कि चांद (चांदा) ने सूर्य (लोरिक) को आते हुए, हो न हो, जान लिया । (४) पहले उसने समस्त अर्थ (धन-आभरणादि) [वस्त्रों में] डाल दिए (लिए) और पीछे सूर्य (लोरिक) ने चांदा स्त्री को ले लिया । (५) चांद (चांदा) सूर्य (लोरिक) के पैरों में पड़ी और चांद (चांदा) को सूर्य (लोरिक) ने लेकर मस्तक पर धारण किया । (६) रात अंधेरी थी और मेघ सघन रूप से बरस रहे थे, चाद (चादा) को सूर्य (लोरिक) ने [उस अंधकार में] छिपा लिया (७) और फुर्ती-फुर्ती करके दोनों [इस प्रकार] चले मानों वे उड़े जा रहे हों ।

१७. कुंवरू-भेंट खण्ड

(२८१)

'काले झगा पहिरि दोइ' चाले । 'रचे किरीज चांद सिर' घाले ।
ओडन 'खांड' लोर कर गहा । दुइ जन 'चले' न तीसर अहा ।
कर गहि निसरी 'धनुक गोवारी' । इहिं बिधि 'चली' 'सो' चांदा नारी ।

गोवरु छाडि कोस 'दस' 'गए'। छाडि बाट ऊवट होइ भए।
'खरग बिसाहत' कुंवरू भाई। 'चलहु चांद सो भेटती(ति) जाई'।
'सुरुज' चला लइ चांदहि कइ गोवर अंधियार।
बीज लवइ घन गरजइ निसर (रि) न कोउव 'पार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३०, म० पत्र १४८।२, बी० ८७६-८८१।

शीर्षक—मैं० : लिबासे सियाह पोशीदः रवान शुदने लोरिक व चांदा। म० : पीश्तर रवान शुदने लोरिक व चांदा।

पाठान्तर—(१) १. म० कार झटक (झंग) पहिरि के, बी० कारी राति फिरे दोइ। २. बी० अभरन वहुत चांद गै। (२) १. म० खरग। २. बी० चाले। (३) १. बी० धनुषु गुवारी। २. मैं० कीन्हि। ३. बी० स। (४) १ बी० चहु। २. मैं० भए (दूसरे चरण का भी तुक यही है)। (५) १. मैं० तहवां हुत सो, बी० खरक बिसैतिहि। २. बी० चलहु चाँद तिह मिलियेहि जाई, मैं० चलत लोर सो भेटहु आई। (६) १. मैं० सूर। (७) १. म० बार। बी० में दोहा इस प्रकार है :—

चांद कहा मैं सभ को छाड्यो कहू न काहू बात।
तुहि सनेह लोर भल दिषरयों नाउ बीर मन रात॥

अर्थ—(१) दोनों काले झगे (वस्त्र-विशेष) पहन कर चले, उन्होंने किरीज (किरिञ्ज—बांस का टोकरा ?) रचा था, उसे चांद (चांदा) के सिर पर डाल दिया। (२) ओडन और खड्ग को लोरिक ने हाथों में पकड़ा और दोनों जन चल पड़े, तीसरा कोई [साथ] न था। (३) हाथों में धनुष लेकर वह ग्वालिन निकली और इस प्रकार वह चांदा नारी चली। (४) गोबर को छोड़ कर वे दस कोस (गए) थे कि वे मार्ग को छोड़ कर अटपटे मार्ग से हो पड़े। (५) [लोरिक ने कहा,] "यहाँ पर मेरा भाई कुंवरू खड्ग मोल ले रहा [होगा], ऐ चांद चलो, उससे भेंट करते हुए चलें।" (६) [इस प्रकार] सूर्य (लोरिक) चांद को लेकर और गोवर को अंधकारपूर्ण करके चला। (७) उस समय बिजली 'लप-लप' कर रही थी, घन गरज रहा था और कोई निकल नहीं सकता था।

(२८२)

कुंवरू 'अगुमन' चीन्हां लोरू। 'धावा' सिघु चला 'सभ' गोरू।
'पाछें' 'हेरत' चांदा आई। जिउ 'कुंबरू कर गएउ' उड़ाई।

'कहेसि' लोर 'तुम्हं' भला न किया। 'कित' लइ 'चले' महर कइ धिया।
'तिरियहि जरम' 'टांक बुधि' होई। 'तिन्ह के' संग 'न' लागइ कोई।
बूढिय 'खोलिनि' तुम्हरी माई।
'तेहि कइ' 'मया' 'न तुम्हं चित(चित्त)' आई।
'बारि' बियाही मैनां 'मांजरि' लोरिक आहि तुम्हारि।
'वारि बूडि(ढि)' 'ररि' 'मरिहहिं' 'करहु न चित हमारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३१, म० पत्र १४६।१, बी० ८६५-८६८। म० में इस कडवक के नीचे तर्क है 'चांद', जो आगे के एक कडवक का है।

शीर्षक—मै० : शिनाख्तन कुंवरू लोरिक रा दरमियाने राह अज़ पसेऊ चांदा।

म० : शिनाख्तन कुंवरू लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. मै० अउतहि, बी० येकमै। २. म० रहा, बी० धावै। ३. म० चला सब, बी० मिलावै। (२) १. बी० पाछै। २. म० देषइ। ३. बी० कवरू कर गयो। (३) १. बी० कहा। २. मै० तइं। ३. बी० कथ। ४ मै० चला (४) १. म० तिरियहि जरहि, बी० तो यह जनम। २. म० नाक बडि, बी० नां वढ (बुधि—फ़ा०)। ३. म० निकरे, बी० तिहकै। ४. बी० कि। (५) १. म० बूढी खोइलिन, बी० बूढी षौलनि। २. मै० तेहिक, बी० तिहकी। ३. बी० चिता। ४. म० न चित महं, बी० चितह न। (६) १. बी० बार। २. म० में नहीं है। (७) १. बी० बार बूढ। २. म० दोउ, बी० चरि। ३. बी० मरिहै। ४. म० करु न चित तुम्हारि, मै० मानइ बचन हमार।

बी० में उपर्युक्तयों के पूर्व एक अर्द्धाली और है :

चांद कहा कंवरू सुनि वाता : लोर मोर मनु येकै राता।

किन्तु यह आगे आने वाले कडवक की है।

अर्थ—(१) कुंवरू ने आगे से ही लोरिक को पहचान लिया [और वह दौड़ कर उसके पास जा पहुंचा], [जैसे] जब सिंह दौड़ पड़ता है तो समस्त गोरू (जन्तु) चल पड़ते है। (२) [किन्तु] उसके पीछे चांदा को आई हुई देखते ही कुंवरू का जीव उड़ गया। (३) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, तुमने यह अच्छा नहीं किया। तुम महर की दुहिता को लेकर कहां जा रहे हो ? (४) स्त्रियों को जन्म (जीवन) भर एक टंक ही बुद्धि होती है. [इसलिए] उनके संग कोई नहीं लगता है। (५) तुम्हारी माता खोलिन

बुड्ढी है, तुम्हें चित्त में उसकी ममता [भी] नहीं आई ? (६) [फिर] मैंना मांजरि (मदन-मंजरी), ऐ लोरिक, तुम्हारी बचपन की विवाहिता है ! (७) वे दोनों बालिका (बाला) और बुड्ढी चिल्ला चिल्ला कर मर जाएंगी, [भले ही] तुम मेरी चिंता न करो ।"

(२८३)

चांद कहा कुंवरू सुनि बाता । लोर मोर 'जिउ एकइं' राता ।
'जियतइं जीउ' 'न छाडउं' काऊ । 'दुहुं दिसि भए सो लोग बटाऊ' ।
हउं 'ओहिं के वहु चित (चित्त)' 'बस' मोरें ।
'काह कुंवरू होइ' 'रोएं' तोरे ।
इहिं बिधि 'देखि देसंतर' 'लेऊं' । काहु 'कहउं' 'अनु' अतर 'देऊं' ।
तुम्हं 'हम' तजि 'जाइबि परदेसू' । मइं दुख 'कीन्ह' पुरुख कर भेसू ।
हउं 'महरी कइ धिय सो' चांदा 'चहूं भुवन' उजियारि ।
'कवन अजोगि संग मिलीयो (लेउ)' 'कुंवरू' भाइ तुम्हार ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३२, म० पत्र १४६।२, भो० पत्र २६ (नवीन), बी० ६४४-६४६ ।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने चांदा कुंवरू रा हिकायते इश्क़ ।
म० : गुफ़्तने चाद कुंवरू रा जवाब ।
भो० : जवाब दादने चांद अज़ कुंवरू रा ।

पाठान्तर—१. म० जिउ अब केहि, भो० जिउ एकइ, बी० मनु ऐकै । (२) १. बी० जबते जीव, भो० जियतइं जीय । २. मैं० न छाडीउं (छाडिउं), बी० नु छाडो । ३. म० दुइ दिसि होइ कि बाट बटाऊ, भो० दुइ दिसि भए यह लोग बताऊ, बी० दह दिस भये ति लोर बटाऊ । (३) १. म० ओहि कें वह जिय, भो० ओहि कें वह चित (चित्त), बी० उहि कै वोहु चित । २. बी० बसि, मैं० में नहीं है । ३. बी० काहु कहा होइ, म० का होइ कुंवरू । ४. भो० रोए । (४) १. बी० देषु दिसंतर । २. मैं० लेहूं, बी० लीयो । ३. भो० करउं, बी० कहौ । ४. म० कस, भो० किसु । ५. मैं० देहूं, बी० दीयो । (५) १. म० में नहीं है । २. मैं० जाइहिं परदेसू, बी० लै जाइ बिदेसू । ३. भो० लीन्ह । (६) १. म० महरी कै धिय, मैं० सो महर धिय, बी० महरे की धीय सु । २. बी० आछौ जग । (७) १. म० लोर लागि चित

वाधिउं, मैं० कवन अजोग संघ किएउ, वी० कौन औजोगि संजो मिलीयो, भो० कवन अजोग संग मिल । २. बी० कंवरू ।

अर्थ—(१) चांदा ने कहा, "कुंवरू, [मेरी] बात सुनो; लोरिक का और मेरा जीव एक है और वह रक्त (अनुरक्त) है। (२) जीव के जीवित रहते [लोरिक को] कभी न छोड़ूंगी; दो दिशाओं में वे ही लोग हो जाते है जो पथिक होते हैं। (३) मैं उसके और वह मेरे चित्त में वसते हैं, [इसलिए] कुवरू तुम्हारे रोने से क्या होता है? (४) इस प्रकार [घर से निकल कर] मैं देशान्तर देख लूंगी; [इससे अधिक] क्या कहूं तथा दूं? (५) तुम्हें (तुम सब को) छोड़कर हम परदेश जाएंगे, इसी दुःख के कारण मैंने पुरुष का वेष कर लिया है। (६) मैं महरी की कन्या वह चांदा हूं जो चारों भुवनों का प्रकाश है। (७) [तब] कौन-सी अयोग्य के साथ, ऐ कुंवरू, तुम्हारा भाई मिला है?"

(२८४)

'असि' चांदा तुम्हं लाज 'गंवाई'। सरग हुतें 'धर ऊतरि' आई।
'मुख कारे निसि रहै(हइ)''गोवारी'। 'पाख पाख दिन''होइ'अंधियारी।
'रहु नहि चांद(दा)''मनहि लजाई'। 'असि कि होइ गोवर कइ' जाई।
'वारह मंदिर रइनि' 'दिन' धावसि। सूरुज सेजि 'उजियारे' रावसि।
'तजि जिउ सोग रबि रहइ' लुभाई। 'कहउं बात तूं खिन न लजाई'।
दान खरग कर 'निरमल' लोरिक भाइ हमार।
'तूं रे निलज्जि अमावसि कुर जो कीन्ह' अंधियार ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३३, म० पत्र १५२।१ (म० में इस पत्र के बाद पत्र-सख्याएं बदली हुई हैं—प्रति के दो पत्र यहां पर त्रुटित है), बी० ९४७-९४९।

शीर्षक—म० : जवाब दादने कुंवरू बा एहानत चांदा रा।

म० : मलामत करदन कुंवरू चांदा रा।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे इसी कडवक का तर्क है 'असि चादा', जिससे यह ज्ञात होता है कि अत्रुटित अवस्था में उसमें भी यह छंद रहा होगा।

पाठान्तर—(१) १. बी० अस। २ म० लवाई, बी० गमाई। ३. वी० उतरि भुइ, मैं० भुइं उतरी। (२) १. मैं० मकु कारे मुख तै फिरसि, म० मुख कारे निसि रहु न। २. बी गुवारी। ३. मैं० पाखहि पाख। ४. बी० होय। (३) १. म० रहसि त (न) चांदा, वी० रही न चांदा। २. बी० मन

सुजाई । ३. बी० अस क्यौं होइ महर की । (४) १. बी० बाराह मंदिर रैनि । २ म० तूं । ३. म० अंधियारें । (५) १. म० तजि जिउ सोक मरि रह, मै० तजि जिउ सोक अरु रहइ, बी० तुझहि सूग रबि रह्यो । २. म० आन होइ तउ मरइ लजाई, बी० कहौ बात ता कहनु न जाई । (६) १. बी० निरमर । (७) १. म० तूं तउ मैन असि निलजि अमावस कै, बी० तूं निलज अमावस कुरह कीन्ह ।

अर्थ—(१) "ऐ चांदा (चांद)", [कुंवरू ने कहा,] "तूने लज्जा गवा दी जो तू आकाश (धवलगृह) से उतर कर भूमि पर आ गई ! (२) काले [किए हुए] मुख के साथ, ऐ ग्वालिन, तू रात में रहे और पक्ष-पक्ष भर के दिन तू अंधकारमयी होती रहे ! (३) तू मन में लज्जा लाकर के [चुप] नहीं रह सकती है ? क्या गोबर की कन्या ऐसी होती है [जैसी तू है] ? (४) रात-दिन तू बारह मंदिरों (बारह राशियों) में दौड़ती रहती है, और सूर्य (लोरिक) की शैया में उजाले में (सबकी जानकारी मे) मे रमण करती है । (५) तू [लोक-निंदा का] शोक त्याग कर सूर्य (लोरिक) को लुब्ध कर रखती है । मैं तुझसे ये बाते कह रहा हूं और तू क्षण भर के लिए भी लज्जित नहीं हो रही है ! (६) मेरा भाई लोरिक खड्ग-दान मे निर्मल है, (७) जब कि तू निर्लज्ज अमावस्या है, जिसने अपने कुल को ही अधकार पूर्ण कर लिया है ।"

(२८५)

'धरि कुंवरू लोरिकु' कंठि लावा । नैन नीरु भरि 'गांग' बहावा ।
'गी(गि)यं छोडि' कुंवरू 'पाइनि' परा । बिरह दगध 'बाएं जनु ररा' ।
'देखि सु(सो)' चांदा 'चितहिं संकानी' । 'म कहुं लोर छाड़इ मोरि कानी' ।
कातिग मास 'खेलि रितु' गाई । हम 'फुनि कुंवरू खेलत' आई ।
'ठाढ़े कुंवरू हरदीं बाटा । चलन देहु [?] चांद संघाता' ।
'माई खोलिनि औ मैनां' 'कहु संदेस अस जाइ' ।
'पीहर जान न पावइ मांजरि रहइ खोलिनि के पाइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३४, म० यहाँ पर त्रुटित है, बी० ९५०-९५२ ।

शीर्षक—मै० : विदाअ करदने लोरिक बा कुंवरू व पेश्तर रफ्तन ।

म० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'कुवरू', जो इसी कडवक का है, अतः अत्रुटित म० में भी यह कडवक रहा होगा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हरका कवरू लोरु। २. बी० वीरु। (२) १. बी० केस छोरि। २. बी० पाइ। ३. बी० घाई जौ डरा। (३) १. मैं० देखहुं। २. मैं० चितहिं संखानी, बी० चितांह संकानी। ३. बी० मुकु लोरिक छाडै मन जानी। (४) १. बी० खेल हृति। २. बी० कवरू भी देषत। (५) १. बी० में ऊपर की (४) यथा (५) है और (४) निम्नलिखित है :

तौ लहि चांद खेत चढ़ु गई : लांबी बीष उतावरि भई।

(६) १. बी० मा खौलनि औ माजरि। २. बी० कहौ संदेसा जाई। (७) १. बी० वाहरि जान न देयो मैंना पुरुओ षौलनि पाई।

अर्थ—(१) कुवरू को पकड़ कर लोरिक ने कंठ से लगाया, और नेत्रों में (अश्रु) भर-भर कर उसने गंगा बहा दी। (२) उसकी ग्रीवा को छोड़ कर कुंवरू उसके पैरों मे [गिर] पड़ा, और मानो विरह-दाह के घावों से [पीड़ित होकर] चिल्लाने लगा। (३) यह देखते हुए चांदा चित्त में [पुनः] शंकित हुई [क्योंकि उसने सोचा,] 'कहीं लोरिक मेरी कानि न छोड़ दे।' (४) [तब तक लोरिक ने कहा,] "कार्तिक मास को खेल कर (सुख-पूर्वक व्यतीत कर) और उसके ऋतु-गीत गाकर हम, ऐ कुंवरू, पुनः [गोबर] आकर खेलते (सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करते। (५) ऐ कुंवरू, हम हरदी के मार्ग में खड़े हैं, चांद के साथ [मुझे] जाने दो। (६) मां खोलिन तथा मैंना से जा कर ऐसा संदेश कहना, (७) "मांजरि (मैंना) पीहर न जाने पाए, और वह खोलिन के पैरों में (उसकी सेवा में) रहे।"

१८. बावन-युद्ध खण्ड

(२८६)

'चले दोउ भुइं पाउ न धरहीं। पैग बेगि उतावर भरही।'
'चला लोर मिलि चांदा आई। खोलिनि मैंना पसरी माई।'
'चांदहि देखि लोर कहं कहा।
कइसे भउ मलिन जो चित (चित्त) अहा।'
'अउ अस कहा सुनहि तूं लोरा।
नीकें मन चित करिहइं(उं ?) तोरा।'
'तोरे सनेह छाडिउं घरु बारू। कइ बोरहि कइ लावहि पारू।'

'सांझ परी दिन अंथवइ' लोरिक चांदा दोइ।
'अवघट' घाट 'गांग के' रहे पुरुष तिरि 'सोइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३५, म० यहां पर त्रुटित है, बी० ९५३-९५५।

शीर्षक—मैं० : रवान: शुदने लोरिक व चांदा ब शिताब।

पाठान्तर—(१) १. बी० चला लोर धरि पाउ न धरै: इक इक वीष खेत लौहु भरै। (२) १. बी० मिल्यौ बीरु चांदा चलि गई : मैंना षौलनि मन अस भई। (३) १. बी० चांदा देषि लोर चितु गहा : ले उसास फुनि बेदन कहा। (४) १. बी० चांद कह सुनि तुहि लगि लोरा : बहुतक महतु गयो है मोरा। (५) १. बी० तुम्ह लगि छाडे पास परिवारू : कै बूडहु कै लावोहु पारू। (६) १. बी० साझ परी दीनु आंथवा। (७) १. बी० औघट। २ बी० गंगा कै। ३. बी० सोय।

अर्थ—(१) दोनों चल पड़े किन्तु भूमि पर वे पैर नहीं रख रहे थे, उतावली के पग वे जल्दी-जल्दी भर रहे थे। (२) लोरिक चल पड़ा था और चादा आकर उससे मिल गई थी, [फिर भी लोरिक के मन में] खोलिन और मैनां की माया (ममता) प्रमार कर रही थी। (३) यह देख कर लोर से चादा ने कहा, "जो तुम्हारा मन था, वह मलिन कैसे हो गया ?" (४) उसने पुन ऐसा कहा, "ऐ लोरिक तू सुन, मैं अच्छे मन से तेरी चिंता करूँगी। (५) तेरे ही स्नेह में मैंने घर-बार छोड़ा है। तू या तो (चाहे) मुझे डुबाए और या तो (चाहे) मुझे पार लगाए।" (६) संध्या पड़ गई, दिन अस्तमित हो रहा था, [इसलिए] लोरिक तथा चांदा दोनों (७) गंगा के एक औघट घाट पर पुरुष और स्त्री सो रहे।

(२८७)

'गांग' 'सरस्सइ अउ तेहि तरनां'। लोरिक जाइ लीति एक छरना।
चादा फिरि फिरि आपु 'दिखावा'। 'मकु खेवट मोहि देखत आवा'।
सरगा 'ठांउ' जउ 'खेवट' आवा। कर कंगन चांदइ 'चमकावा'।
'खेवट' देखि 'अचंभइ' रहा। तिरिया एक 'अकेरिइं' अहा।
'खेइ नाउ दहुं' देखउं जाई। कवनि 'नारि कहवां हुत' आई।
सरंगा 'पेलि' चलाएसि खिन खिन चित(चित्त)हि 'संखाइ'।
काह 'कहिअ कस पूछिअ' कइसें इहवां आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३६, म० पत्र १५२।२ । बी० में इस एक कडवक के स्थान पर चार कडवक हैं [दे० परिशिष्ट] ।

शीर्षक—मैं० : रसीदने लोरिक व चांदा बरे गंगा व इशारत करदने चादा मल्लाह रा ।

म० : दास्तान नमूदन चांदा व दास्तान मल्लाह रा ।

पाठान्तर—(१) १. म० गंग । २. मैं० सरिस बहा मनकरना । (२) १. म० दिखावइ । २. म० मोहि देखत मकु केवट आवइ । (३) १. म० तीर । २. म० केवट । ३. मैं० झमकावा । (४) १. म० केवट । २. म० अचभउ । ३. म० अकेली । (५) १. म० कहइ नाउ लइ । २. मैं० तिरी यह इहवां [तुल० (७)] । (६) १. म० बेगि । २. म० सपकाइ । (७) १. म० कहउं केउं पूछउं ।

अर्थ—(१) गंगा सरस हो रही (बढ़ रही) थी और उसे पार करना था, [यह देखकर] लोरिक ने जाकर एक छलना (छलपूर्ण युक्ति) का आश्रय लिया : (२) [स्वयं वह छिप गया—दे० बाद के कडवक, और] चादा पुनः-पुनः अपने को दिखाने लगी कि कहीं (कदाचित्) उसे देखकर केवट आ जाए । (३) जब एक केवट [अपने] सरंगे (नाव) के स्थान पर आया, चादा ने हाथ का कंगन चमकाया । (४) केवट यह देखकर अचंभे में हो रहा कि एक स्त्री [वहां] अकेली ही थी । (५) [उसने मन में कहा,] "नाव को खेकर और [वहां] जाकर देखूं कि यह कौन-सी स्त्री है और कहां से आई हुई है ।" (६) उस सरंगे (नाव) को उसने ढकेल कर चलाया, [किन्तु] क्षण-प्रतिक्षण वह चित्त में शंका कर रहा था (७) कि इससे क्या कहा जाता और कैसे पूछा जाता कि यह यहाँ किस प्रकार आई हुई थी ।

(२८८)

'खेवट' देखि बिमोहा 'रूपा' । अभरन बहुल सो नारि 'सुरूपा' ।
दइय 'गोसाईं' पूजइ आसा । असि तिरिया जउ आवइ पासा ।
'कहा नाउ परदेसी चाहू (चहाहू)' । 'बइसि' सरंगा बाट गहाहू ।
लोर चांद 'दोइ सरंगा' चढ़े । 'एक काठ के दोऊ' गढे ।
'खेवट ठाढ उरवारहि रहा' । करिया 'लोर आपु कर' गहा ।
'आगें' 'चांद सयानी' 'पाछें' लोरिकु बीरु ।
दइय 'संजोगे' गांग 'तिरि आए' 'बूडत पाएउ' तीरु ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २३७ (१)–(३)+२३६ (४)–(७), म० प १५३, बी० ६६८-६७० ।

मै० में इस कडवक में दो और कडवकों की पंक्तियां हैं, जो प्रक्षिप्त ज्ञात होती हैं (दे० परिशिष्ट के कडवक २८८ अ–२८८ आ)।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'तउ लहि', जो अगले कडवक का है

शीर्षक—मै० : आशिक शुदन मल्लाह अज़ दीदन जमाल सूरत चांदा।
म० : दस्तान मुश्ताक़ शुदन केवट अज़ दीदन ऊ।

पाठान्तर—बी० में प्रथम तीन अर्द्धालियां भिन्न हैं :

(१) षेवट षाचि सुरग लै आवा : विनु इक लोरिकु माथु उठावा।

(२) उठा लोरु षेवट तस मारा : वँसि रही घन उठै न पारा।

(३) देहि तराइ तौ षेवट षेवा : दोइ जने चरे न तीसर लेवा।

(१) १. म० केवट। २. मै० रूप। ३. मै० सुरूप। (२) १. मै० विधाता। (३) १. मै० खेवट कहा उतर दिसि जाहू। २. म० लइ कइ। (४) १. बी० दोउ सरगह, म० आइ सरंगहि। २. म० अति सुरूप दइय के, बी० ऐक घाटि जानौ दोऊ। (५) १. म० केवट उतरि करियावन गहा, बी० ऊभा षेवटु पारे रहा। २. म० लोर आपुन कर, बी० लोरिक योहीं। (६) १. बी० आगै, मै० आगू। २. बी० षेव सु चांदा। ३ म० पाछूं। (७) १. म० संजोग। २. १. बी० सब लांघी, म० सब उतरे। ३. मै० बूडत पावा, बी० बूडन पायो।

अर्थ—(१) केवट उसके रूप को देखकर विमोहित हो गया, [और उसने मन में कहा,] "इसके शरीर पर बाहुल्य के साथ आभरण है और नारी सुरूपा भी है। (२) हे दैव स्वामी, मेरी आशाएं पूरी हो जाएं यदि ऐसी स्त्री मेरे पास आ जाए।" (३) [केवट ने कहा,] "ऐ परदेशिनी, क्या तुम नाव चाहती हो? इस सरंगे (नाव) पर बैठ कर मार्ग पकड़ो।" (४) [यह सुनकर] लोरिक और चांदा दोनों ही उस सरंगे (नाव) पर चढ़ गए [केवट को उन्होंने चढ़ने न दिया]; दोनों एक ही काठ के गढे हुए थे (एक-से चतुर थे)। (५) केवट [नदी के] इस पार ही खड़ा रह गया और लोरिक ने करिया (डांड) अपने हाथ में कर ली। (६) आगे सयानी चांदा थी, और उसके पीछे लोरिक वीर था। (७) दैव के संयोग से वे गंगा को पार कर आ गए, और डूबते-डूबते दोनों ने तट प्राप्त किया।

(२८९)

'तउ' लहि बावनु आइ तुलानां। पूछा 'खेवट' 'पिरम' भुलानां।
'चेरा चेरी मोरे' 'दोई'। इहिं मारग 'तइं' देखे 'कोई'।
'सुनि' 'खेवटु मुखु देखत' हंसा। 'कुवर कुंवरी इक इहवां' बसा।
पुरुख लुकान 'तिरी' दिखरावा। हउं रंगि 'राता' तेहि 'कें' आवा।
'ओहि राजा ओहिं' रानी जाने। 'कहउं साच तोहिं जानि नखाने'।
'उहइ नाउ लइ डांडइं लाए' ऊभी चेरि न 'जोवइ'।
'बावन देखि दौरि' धसि 'लीतीं' 'एहिं(हीं) परिहंस रोवइ'।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २४०, म० पत्र १५३, बी० ६७१-६७३।

शीर्षक—मै०: आमदने बावन बर किनारह् गंगा व पुरसीदन मल्लाह रा। म०: दस्तान आमदन बावन शौहर चांद पुरसीदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० तौ। २. मै० केवट। ३. बी० परम। (२) १. मै० चेरी चेर मोर दुइ। २. मै० आए, बी० दोऊ। ३. मै० तोहि, बी० तैं। ४. मै० पाए, बी० कोऊ। (३) १. बी० सु। २. म० कइ केवट मुह देखि। ३. बी० कवरि कवरु यकु ईहिवा। (४) १. म० तिरिया, मै० तिरियइ। २. म० रातै। ३. बी० तिह कैं। (५) १. बी० वोह राजा वाह। २. बी० कहै साच तोर झूंठु बषानें। म० में अर्द्धाली है: अति रूपवंत बिचक्खन सोई: रन खत्तिरी पुरुष औ जोई। (६) १. बी० बहु सुरंग दिषरावा। २ बी० जेऊ। म० में चरण है: वह देखु सरंगा लागा तीरहि धनी निचोरइ चीर। (७) १. बी० देषि वावन, म० बावन दौरि ऊभि। २. म० लीतेसि। ३ बी० परिहस परिहस रोऊ, म० परिहंस गने न नीर।

अर्थ—(१) तब तक बावन आ पहुंचा और [चांदा के] प्रेम में भूले हुए (भ्रमित) केवट से उसने पूछा, "(२) मेरे चेरी और चेर (सेविका और सेवक)—दो जन—[इधर आए] हैं; इस मार्ग में क्या तुमने [दोनों में से] किसी को देखा है?" (३) यह सुनकर केवट उसका मुख देखते हुए हंस पड़ा [और उसने कहा,] "एक कुमारी और एक कुमार यहां बसे थे। (४) पुरुष छिप गया और स्त्री ने अपने-आपको दिखलाया। मैं उसी के अनुराग में रंगा हुआ [यहां तक] आया। (५) मैंने उसे राजा और उसे रानी समझा; मैं सच कह रहा हूं, तुम्हें [पीछा करते हुए] जानकर वे [नदी] पार कर गए। (६) [तुम्हारे] उसी [चेरे] ने नाव को लेकर डांड लगाया

चेरी खड़ी रही और उसने [फिर कर] देखा भी नहीं।" (७) यह देखक बावन दौड़ा और [नदी में] धंस कर इस परिहास [की स्थिति] पर [वि उसकी स्त्री को एक अन्य पुरुष भगाए जा रहा था] वह रोने लगा।

(२९०)

'धनुक' बान बावन 'सिर' धरा। लोरिक देखि 'गांग' महिं परा।
'जउ लहि बावन' 'पार न भएऊ'। 'तउ लहि लोर' 'कोस चिहुं' गएऊ।
सांस 'मारि' बावनु तस धावा। 'मारि पबारउं' 'जान' न पावा।
'जस रे' 'गोवारु चरावइ' गाई। अपनी 'करइ सो धाइ' पराई।
'जउ जउ' 'धावइ' पावइ खोजू। 'एहिं परिहंस तउ' रहइ न रोजू।
'ओइ रे चलहिं' यहु धावइ' 'मिला' कोस दस जाइ।
ऊंचा 'रे बिरिख' सुहावन 'एक हुत' 'लोरिक लीन्हा 'आइ'।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २४१, म० पत्र १५४, बी० ९७४-९७६।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'चांदइं देखा', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मै० : दर गांग उफ्तादने बावन व दुबाल : लोरिक करदन।

म० : दस्तान दुबाल : चांद व लोरिक दोबारन बावन।

पाठान्तर—(१) १. बी० धनुष। २. म० कर। ३. बी० गंगा। (२) १. बी० बावन बीर। २. म० पारहि गोऊ, बी० पार जौ भए। ३. बी० तौलहि लोरिक। ४. म० कोस दुइ गएऊ, बी० जिउ लै गये। (३) १. बी० मारि (?)। २. बी० मारि बिपारौं। ३. म० जाइ। (४) १. म० जइसन, मै० जाति। २. बी० गुवारु चरावै। ३. बी० करैसु धाय। (५) १. बी० जौ जौ, मै० जेउं जेउं। २. म० धाव न, बी० धावै। २. म० एहिं परिहस, बी० अति परिहस चषि। (६) १. म० ओइ रे चलइं, बी० वै रु चलै। २. बी० वहु धावैहि। ३. बी० मिल्या। (७) १. बी० मंदिर, म० खेर। खेड़ा। २. बी० म० में नहीं है। ३. मै० लोरहि लीन्हां। ४. बी० धाय, म० जाइ।

अर्थ—बावन ने धनुष-बाण को सिर पर रक्खा और लोरिक को [नदी के उस पार] देखकर वह गंगा में [कूद] पड़ा। (२) [किंतु] जब तक बावन [नदी के] पार भी न हुआ था, तब तक लोरिक चार कोस आगे चला गया था। (३) सांस रोक कर बावन उसी प्रकार से दौड़ा [और उसने कहा,]

"मैं उसको मार कर फेंक दूंगा, और वह जाने न पाएगा। (४) [जिस प्रकार दौड़-दौड़ कर] जाति के उस ग्वाले ने गाए चराई हैं, अपनी [जैसी] वह कर रहा है और दौड़ कर भाग रहा है!" (५) [किंतु] जैसे ही जैसे वह दौड़ता था उसका खोज (चरण—चिह्न) पाता था, इस परिहास से तब उसका रोना [भी] न रहा। (६) वे चल रहे थे और यह दौड़ रहा था, [इस प्रकार पीछा करते-करते] यह उनसे दस कोस पर जा मिला। (७) एक ऊंचा और सुहावना वृक्ष [वहां पर] था, उसे लोरिक ने आ लिया।

(२६१)

'चांदइं' देखा बावनु आवा। बचनु न 'आवइ' 'दांत कपावा'।
'फिरि जउ' लोरिक पाछें हेरा। बावन आइ 'बाघ' जस घेरा।
'मुंख(मुक्ख)फिराइ' लोर 'सेउं' कहा। 'अइ' देखु बावन आवत अहा।
'धनुक चढ़ाइ बावन कर गहा'। 'तस मारउं जस देह न रहा'।
'ओहट' 'हुतें' बावन सरु मेला। 'सो रे' लोरिक ओडन 'ठेला'।
'ओडन फूट लुहावट फूटा अउ लोरिक कइ' बांह।
'ऊजा बिरिख आंब कर लोरिक लीन्ही छांह' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४२, म० पत्र १५४, बी० ६७७-६७६।

शीर्षक—मैं०: ख़बर करदने चांदा बावन मी आयद व आमदने बावन। म०: दास्तान नरसीदन चांद अज़ आमदन बावन।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदेहि। २. बी० आवै। ३. बी० ओठ कपावा, मैं० थाके पावा। (२) १. मैं० चांदइं। २. बी० पाग, म० बाग। (३) १. बी० मन ठहराइ, म० मुंह निहुराइ। २. बी० स्यों। ३. म० वह, बी० ये। (४) १. बी० धुनषु चराइ बावन सिर धरा [तुल० २६०·१]। २. बी० तस मारा जस तनु भुई परा। (५) १. बी० दूर। २. म० ओहट। ३. म० सोई, बी० सों सरु। ४. बी० पेला। (६) १. बी० वोडन फूटि लुहावटि फूटी औ लोरिक की। (७) १. बी० ऊचा रूख अंबर कर लोरिकि लीन्ही छांह, मैं०: परा बिरिक्ख आंब कर लोरिक ऊभा तेहि छांह, म० ऊजा बिरिख सुहावन लोरिक लीतेहि छांह [तुल० २६०·७]।

अर्थ—(१) चांदा ने देखा कि बावन आ गया था, [इसलिए] उसके मुख से बोल नहीं आ रहे थे और उसके दांत कांप रहे थे। (२) [तब तक] बावन ने आकर व्याघ्र के सदृश [उसे] घेर लिया, जब तक लोरिक ने घूम

कर पीछे [लोरिक] की ओर देखा। (३) उसने मुख फिरा कर लोरिक से कहा, "यह देख, बावन आ रहा है।" (४) [लोरिक ने यह सुनकर] धनुष चढ़ा कर हाथ में बाण लिया [और कहा,] "इसे मैं ऐसा मारूंगा कि इसका देह न रहेगा।" (५) [तब तक] ओहट (दूर) से बावन ने शर छोड़ा [तो] उसे लोरिक ने [अपने] ओडन से ठेल दिया (रोक कर व्यर्थ कर दिया)। (६) [पर] उसका ओडन फूट गया, लुह्मावट भी फूट गया, और लोरिक की [एक] बांह [फूट गई], (७) तथा वह आम वृक्ष उखड़ गया जिसकी छाया लोरिक ने ली थी।

(२९२)

'सुनु बावन कह' 'चांद गोवारी'। काहि लागि 'तुम्हं कीन्हि' गुहारी।
माइ बाप 'जउ' दीन्ह बियाही। 'बरिस दिवसु' 'हउ तुम्ह पहं' आही।
पिरम कहानी 'कीन्हि न' बाता। 'तइं नहि देखेउं' कार कि राता।
'सवन' 'मनां हुत तुम्हं रे ओनाइउं'। 'तरसि मुइउं पइ सेज न पाइउ'।
'जसि आइउं तसि मइकें गइऊं। दइय क लिक्खा सो मइं पइऊं।'
वहुरि 'जाहि' घरि आपनें 'कहा सुनहि जौ(जउ)' मोरु।
राव रूपचंद बांठा 'मारा' 'सो यह कूंकू' लोर॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४३, म० पत्र १५५, बी० ६८०-६८२।

मैं० में इस कडवक के वाद तर्क है 'अरे', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : गुफ्तने चादा मर लोरिक रा बावन रा।

म० : दस्तान दंबाल: चांद व लोरिक दूबद बावन व गुफ्तन चादा बावन रा बहुजूर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. मैं० बावन कह कौन, बी० सुनु बावन कहै। २. बी० चादा नारी। ३. म० तूं करसि, बी० तुम्ह लाग। (२) १. बी० जै। २. बी० बरसु द्यौंसु। ३. बी० हौं तुम्हरै। (३) १. म० कही जो, बी० कहौं न। २. बी० नैन न देष्यौं। (४) १. बी० म० स्रवन। २. बी० सुना हम तुम्हरा नाऊ। ३. बी० तिसर मुये दहि सेज क ठाऊ। (५) १. म० जसि देखिउं तसि मइकइ आइउं : दइय क लेखा हुत सो पाइउं, बी० में यह अर्द्धाली नहीं है। (६) १. बी० जाहु। २. म० बावन कहां सुनहि तू, मैं० बावन सग तजि। (७) १. बी० मार्‌यो। २. म० अहइ सो कूंकुहि, मैं० आहि सो कूंकू।

अर्थ—(१) चांदा ग्वालिन ने कहा, "ऐ बावन, सुनो तुमने किसलिए यह गुहार (पुकार) की है? (२) मां-बाप ने जब [मुझे तुम्हारे साथ]

ब्याह दिया और मैं बरस-दिन तक तुम्हारे पास रही, (३) तुमने प्रेम कथन करने पर [भी] बातें न कीं, और तुमने न देखा कि मैं काली (कुरूप) हूं कि राती (सुदरी)। (४) कानों और मन से मैं तुम्हें ओनाती रहती (तुम्हारे बोल सुनने के लिए आतुर रहती), किन्तु तरस कर मर गई और [तुम्हारी] शैया मैंने न पाई ! (५) जैसी [क्वांरी] मैं आई थी, वैसी ही [लौट कर] मैं मायके गई; दैव का जो लेख था, वह मैंने प्राप्त किया। (६) ऐ बावन, तू अपने घर लौट जा, यदि तू मेरा कहना सुने। (७) जिसने राव रूपचंद के बाठ को मारा था, यह वह कूंकूं लोर है।"

(२९३)

'अहे' 'पापिनि हउं तोहि का मारउं'। नाकु काटि 'कस' देस 'निसारउं'।
तोहि जसि तिरी 'कुवड़ां' 'धसि लेई'। बात कहत 'आन' ऊतर देई।
कस 'लोरिक सेउं' मोहि 'डरावसि'। 'तउ बड़बोलि जान जउ' 'पावसि'।
'तोहि' लगि लोरिक जीउ 'गंवावा'। 'भेट भई' अब जान न 'पावा'।
'बिसिख' मारि ओडन 'सेउं' 'फोरउं'। 'काटउं' मूड भुआडंड 'तोरउं'।
अस सुनि लोरिक 'सिंघ जस' 'कोपा' ओडन लइ पटतारि'।
'बावन एक फुंक(पुंख)सर छाडा गएउ बिरिख सउं फारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २४४, म० पत्र १५५, बी० ९८३-९८५।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने बावन चांदा व अन्दाख़्तने तीरे दु अम्बरू। म० : दस्तान जवाब गुफ़्तन बावन वा चांदा।

पाठान्तर—बी० में ऊपर दी हुई (२) नहीं है, ऊपर की (३), (४) (५) उसमें क्रमशः (२), (३), (४) हैं, और यथा (५) है :

जौ पर आइ सि करह उचावा : ले वोडन कस सौहां आवा।

(१) १. म० अरे, बी० है। २. बी० पापनि अब का तुझ मारौं। ३. म० तोहि। ४. बी० निकारौं। (२) १. म० कुवा। २. मै० अस, म० कइ। (३) १. म० लोर सेउं, बी० लोरिक पे। २. म० डरपावसि। ३. बी० तौ बड बोलु जान जौं, म० तूं पइ बोलि जाइ जनि। ४. मै० पावइ। (४) १. बी० तुहि। २. मै० गंवावहि। ३. बी० भइ सहेट। ४. मै० पाइहि। (५) १. मै० बी० बिरख। २. मै० तेहि, बी० सौं। ३. बी० फोरौ। ४. बी० काटौ। ५. बी० तोरौ। (६) १. बी० में नहीं है, मै० सिंग जस। २. म० गाजा। ३. बी० वोडन लै पटतार, मै० ओडन खाड संभारि। (७) १. बी० बावन भुवंग सर

छाड़्यौ : मार्‌यो बिरिषु दुफार, म० बावन इक जउहि सर छोडा अंगवंहि बीर संभारि ।

अर्थ—(१) [बावन ने उत्तर दिया,] "हे पापिनी, मैं तुझे क्या मारू, और [तेरी] नाक काट कर तुझे देश से क्या निकालूं ? (२) तेरी जैसी स्त्री तो कुअड़े (छोटे-मोटे कुएं) में धंस लेती (कूद पड़ती), किंतु तू [ऐसी निर्लज्ज है कि] बातें कहते हुए अन्य ही उत्तर देती है । (३) कैसे तू मुझे लोरिक से डरा रही है ? तब तो तू ऐसी लंबी-चौडी बातें करे जब तू जाने पाए ? (४) तेरे ही लिए लोरिक [अब] प्राण गंवा रहा है; अब उससे भेंट हो गई है, वह जाने नहीं पा सकता है । (५) बाण मार कर मै [लोरिक का उसके] ओडनके साथ फोड़ दूंगा, उसके मुंड को काट लूंगा और उसके भुजा-दंडो को तोड़ डालूंगा ।" (६) ऐसा सुन कर लोरिक सिंह के सदृश कुपित हुआ , उसने ओडन पटतार (संभाल) कर ले लिया था । (७) [तब तक] बावन ने एक फुंक (पुंख—बांण का अग्र भाग) तथा शर (सरकंडा—बाण का पिछला भाग) छोड़ा, जो वृक्ष को [अपने] साथ फाड़ता हुआ [निकल] गया ।

(२९४)

चांद 'कहा' अब देवरु 'लीजइ' । 'गाढे ओखदि ढीला दीजइ' ।
दो[इ] सर गएं रहा अब एकू । 'लोर' बीर 'कइसेउं कइ' टेकू ।
'वह सर मेलि फुनि नियर न आवइ' । 'जउ आवइ तउ जीउ गवावइ' ।
'गाढ़े रोस जो घात संचारू । गरजा देवरु उठा झनकारू' ।
'बावन बान पहूता आई' । मारिसि देवरु 'गएउ उड़ाई' ।
बर बावन कर 'भा(भां)गा' 'चांदइं' कहा 'पचारि' ।
'अंथवा सुकुर सुरिजु' परगासा 'जानइ' 'सभ' 'सयंसारि' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४५, म० पत्र १५६ ।

बी० ९८६-९८८ । म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'बावन', जो अगले का है ।

शीर्षक—मैं० : पन्दादने चांदा लोरिक रा व अन्दाख्तने बावन तीर सो अम ।

म० : दस्तान चांद गुफ़्तन पनाह देवर बकराइ लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहै । २. बी० लेजै (लीजै—फ़ा०) । ३. बी० गाढहि ढील लावै सो कीजै, मैं० गाढ़े ओखदि ढील न दीजइ । (२) १. म० लोरिक । २. मैं० कइसें कइ, बी० देवर कर । (३) १. बी० वोहु मेलहु जस

नेर न आवै, मैं० सर मेलेसि कसि नियरें आवइ। २. बी० जौ आवै तौ जीउ गवावै। (४) १. म० गाढे रोस जो घात संचारू : गरजा देवर उठा झनकारू, बी० गाढ परोय जौ धरह संचारी : गरजा देवरु उठी छिहारी (झनकारी—फ़ा०)। (५) १. म० बावन तब हीं धनुक चढाई, बी० बावन बीरु पहूता आई। २. बी० पर्‌यो पहराई। (६) १. म० नहा। २. म० चांद, बी० चादेहि। २. बी० बिचारु (पचारि—फ़ा०), म० पचारि पचारि। (७) १. मैं० अंथवा सुरुजि बहुरि, बी० उठा (अंथवा—फ़ा०) सूकुसूर। २. बी० जानै। ३. मैं० में नहीं है। ४. बी० सैसारु।

अर्थ—(१) [लोरिक से] चांदा ने कहा, "अब देवकुल (देवालय) [का आश्रय] लेना चाहिए, गाढ़े समय में ओषधि यह होती है कि ढील दीजिए [और बचाव कर लीजिए]। (२) दो शर बावन के व्यर्थ जाने से अब तो एक ही [उसके पास शेष] रहा है; ऐ लोरिक वीर, तू उसे किसी प्रकार से भी करके टेके (रोके)। (३) वह बाण [भी] छोड़ कर वह निकट न आएगा, क्योंकि यदि [तब] वह [निकट] आएगा तो अपने प्राण गंवाएगा। (४) बावन ने जब गाढ़े रोष में [लक्ष्य पर] घाव चलाया (बाण छोड़ा) और वह गर्जा, देवकुल (देवालय) में झंकार उठी। (५) बावन का बाण आ पहुंचा; उसने [बाण] देवकुल (देवालय) में मारा था, [किन्तु] वह [बाण] उड़ (चूक) गया। (६) चांदा ने ललकार कर कहा, "बावन का बल [अब] भग्न हो गया, (७) शुक्र (बावन) अस्त हो गया और सूर्य (लोरिक) प्रकाशित हो गया, यह संसार में सभी जान जाएँ।"

(२९५)

देवर 'मांझ लोर सिर' काढा। ओडन 'फूट पेट' 'हुत ठाढा'।
'लइ' चांदहि 'आगें कइ चला'। लोर बीर पाछें भा भला।
बावन कहा बाच 'यह' 'मोरी'। 'तूं रे पुरुख वह' तिरिया 'तोरी'।
लोक कुटुंबु 'हउं आखउं' जाई। 'मइं' तोहि दीन्हीं 'गांग' 'अन्हाई'।
लोरिक 'फिरि घर अपने जाई'। 'बोलिय पाछें' 'लखियं' 'बुराई'।
चांद 'कहइ सो मूरुख' 'जो अैसे (अइसें) पतियाइ'।
'जाकरि' बारि बियाही लीजइ 'सो होइहै(हइ) कस भाइ'॥

सन्दर्भ—मै पत्र २४६, म० पत्र १५७।१, बी० ६८९-६९१।

म० में इसके बाद तर्क है 'धीमर', जो २९५ अ (दे० परिशिष्ट) का ज्ञात होता है।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने बावन लोरिक रा बअ़द उफ़्तादने हर सेह तीर खाली।

म० : दास्तान गुफ़्तने बावन ब सुख़ुन ख़ुद रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० माहि बावनु सरु। २. म० फूट ठांउं। ३. बी० हुले गाढा। (२) १. बी० लै। २. बी० आगैं कै चाला। (३) १. म० हइ। २ बी० मेरी। ३. बी० तू रु पुरषु याह, मैं० लोर बीर यह। ४. बी० तेरी। (४) १. म० महि कहेऊं, बी० महि लीन्ह न। २. बी० मैं। ३. बी० गंगा। ४ म० नहाई, बी० न्हाई। (५) १. म० चांद बहुरि घर जाई, बी० कहा बहुरि घर जाये। २. बी० बोले पीछै। ३. मैं० लखिय, बी० लषमी। ४. बी० पराये। (६) १. बी० कहै सो बावर, मैं० कहइ मन मोरें लोरिक। २. मैं० अइसे बहुरि को जाइ। (७) १. मैं० जेहि कइ, बी० जाकर। २. मैं० तेहि कइसें पतियाइ, म० सो काहे कर पतिहाइ।

अर्थ—(१) देवालय में [से] लोरिक ने सिर निकाला, फूटा हुआ ओडन [उसके] पेट पर खड़ा था। (२) वह चांदा को लेकर और उसे आगे करके चल पड़ा, भला वीर लोरिक [उसके] पीछे हुआ। (३) बावन ने कहा, "यह मेरी वाचा है कि, ऐ लोरिक वीर, तू पुरुष है और वह स्त्री है। (४) लोक तथा कुटुब से मैं जाकर कहूंगा कि मैंने गंगा-स्नान कर तुझे उसको दे दिया। (५) ऐ लोरिक, तू लौट कर अपने घर जा; यदि पीछे कोई बुराई देखे तो कहे।" (६) चांदा ने कहा, "वह मूर्ख होगा जो ऐसे की प्रतीति करेगा। (७) जिसकी बाल्यावस्था की विवाहिता (स्त्री) को लीजिए, वह कैसे भाव (सद्भाव)-पूर्ण हो सकता ?"

(२९६)

बावन 'धनुकु सो दीन्ह अडारी'। 'बारेहि परखि तजी मइं' नारी।
'हम जानां' 'धनुकहि' सिधि पाई। 'बान' भरोसें 'तिरी' 'गंवाई'।
'गै धसि लेइ गांग महं परऊं'। 'बूडिहि मरउं' 'न करि लइ धरऊं'।
'अब हउं धनुक हाथ कस करऊं'। 'बरु' कंठ 'सारि कटारी' 'मरऊं'।
'बरु यह आंखि न देखत आई। लइगा सूरुज चांद भुलाई'।
'जउ यह मोरी बारि बियाही' 'माइ दीन्ह अउ' बाप।
'राज करउ जम लोरिक चांदहि खाइहि सांप'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४७, म० पत्र १५६, बी० १९२-१९४।

शीर्षक—मैं० : अन्दाख्तन बावन कमान व अफ़सोस करदन ।

म० : दास्तान अन्दाख्तन बावन तीर व कमान खुद रा बर ज़मीन ज़द ।

पाठान्तर—(१) १. बी धुनुषु स घालि अडारी, म० धनुष जो लीन्ह उतारी । २. बी० बाराह बरष तजी हम । (२) १. बी० मै जांनौ । २. बी० धुनष, म० धनुक । ३. बी० तिह र । ४. मैं० जोइ । ५. बी० गमाई । (३) १. बी० घर लै हौ गंगा महि पर्यौं । २. मैं० बूडि मरउं, बी० बूड न मुयो । ३. मैं० गै संक न धरऊं, बी० मगर नही धरचौ । (४) १. बी० बहुरि धुनषु कर गहि नहि धरौ । २. बी० बर । ३. मैं० सारा कटारा (सारी कटारी—ना०), म० मारि कटारिइं । ४. बी० मरौ । (५) १. म० बरु यह रूख न देखउं काही : लइगा लोरिक चांद चलाही, बी० यहु दुष नैन न देष्यौं अपनै : जिह की चांद रैनि जैसैं सुपने । (६) १. बी० जौ तैं बार बियाह । २. बी० दीन्ही माई औ । (७) १. म० लोर बहुरि फिरि एकसर भादिया मोरेउ बरउ (परउ) संताप, बी० राजु करी भरि लोरिका चांदा षई जो सांप ।

अर्थ—(१) बावन ने [अब] उस धनुष को डाल दिया, [और कहा,] "मैंने इस नारी को [इसकी] बाल्यावस्था में ही परख कर त्याग किया था । (२) मैंने जान रक्खा था कि धनुष से सिद्धि प्राप्त हो जाएगी, किन्तु बाण के भरोसे मैंने स्त्री गंवा दी । (३) अब मैं जाकर और धंस (कूद) ले कर गंगा में पड़ूंगा (गिरूंगा) और उसमें मैं जाकर डूब मरूंगा किन्तु अब धनुष हाथ में न धरूंगा । (४) अब मैं हाथ में धनुष कैसे करूंगा (पकड़ूंगा) ? उससे अच्छा यह होगा कि कंठ को कटार से काट कर मर जाऊं । (५) मैं आंखों से आकर यह न देखता कि चांद को सूर्य (लोरिक) भुला कर ले गया, तो अच्छा होता । (६) क्योंकि यह मेरी बाल-विवाहिता है और [इसके] मां-बाप ने [इसे मुझको] दिया है, (७) हे लोरिक, तुम यम (यमपुर) में राज्य करोगे और चांद को सांप खाएगा (डंसेगा) ।"

१९. कलिंग-युद्ध खण्ड

(२९७)

बावन फिरि गोवर दिसि 'भए' । 'लोर चांद दुइ आगें' 'गए' ।
'राइ करिंगा बोदिया' दानी । 'मांगइ' दान 'जइस जग नानी(नआनी)' ।
'बान दिलावहिं' 'लेहिं' न सोई । 'पुरुख मांग कइ मांगइ' जोई ।

'अइस' दान जगि 'काउ' न ली(लि)या ।
'कहु तइं जउ काऊ सुने 'दी(दि)'या ।
देस 'देसंतर मानुस जाई' । मेहरी 'पुर(रु)ष' बाप 'अउ भाई' ।
'ठौर ठौर जउ' 'दानिय' दुहुं महि इक इक 'लेंहि' ।
घर 'महं लोग संगहरि मरहिं' बाहरि पाउ न 'देंहि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २४८ । बी० ९९५-९९७ । म० यहां पर त्रुटित है ।

शीर्षक—मै० : बाज़ गश्तने बावन व मुलाक़ात करदने लोरिक व चांदा बा बोदिया ।

पाठान्तर—(१) १. मै० गए । २. बी० लोरिक चांदा आगैं । ३. मै० भए । (२) १. बी० राव करटेका (करिंगा—फ़ा०) बधिया । २. बी० मांगहि । ३. बी० जैस जगदानी (?) । (३) १. बी० बाह (बान—फ़ा०) डुलावहि (दिलावहि—फ़ा०) । २. मै० लीन्हा ३. बी० पुरषहि मागि कि मागहि । (४) १. बी० अस रि । २. बी० काहू । ३. बी० कहौ मोहि जौ काहौ । (५) १. बी० दिसंतर मानइ जाये (जाई—फ़ा०) । २. बी० महेरी पुरुष, मै० मेहरी मनुस । ३. बी० औ भाये (भाई—फ़ा०) । (६) १. बी० ठाव गव जौ । २. मै० मनुसइं । ३. बी० लेई । (७) १. बी० सभ लोगा ह (हु ?) सत धराह । २. बी० देई ।

अर्थ—(१) तदनंतर बावन के गोवर की दिशा में होने (जाने) पर लोरिक तथा चांदा दोनों आगे बढ़े । (२) बोदिया नाम का करिंगाराय का एक दानी (कर उगाहने वाला) था, वह इनसे ऐसा दान मांगने लगा जैसा कि संसार में अन्य नहीं मांगता है । (३) ये बाने (वस्तुएं) दिला रहे थे, किन्तु उसने उन्हें न लिया, वह या तो पुरुष को और या तो स्त्री को—दो में से एक को मांग रहा था । (४) "ऐसा दान जगत् में कभी भी नहीं लिया गया है", [लोरिक ने कहा,] "तू ही कह, यदि कभी तूने [ऐसा दान] दिया गया सुना हो । (५) मनुष्य देश-देशान्तर को जाता है और स्त्री, पुरुष, बाप और भाई [साथ-साथ] होते हैं । (६) स्थान-स्थान पर दानी यदि दो मे से एक-एक करके उन्हें ले लिया करे (७) तो घर ही में लोग साथ-साथ मरें, वे बाहर पैर न रक्खें ।"

(२९८)

'लीन्हें डांग फिरा' कोटवारा । बोलत बोलु मांझ 'मुख' मारा ।
देखि 'अकेरें चितहिं न लावहिं' । 'दुहुं' महि 'एक' 'लेन पइ धावहिं' ।

'देहिं दान अउ बिनति' कराहीं। 'कहा चलहु राजा पहिं जाहीं'।
कहा न 'सुनइं अउ दान न लेहीं'। 'भल बोलत' अन ऊतरु देही।
'लोरिक चांदा कुमषी भई(ए)'। 'असि बिनती कहि ओहट गए'।
'लोरिक' 'बीर' 'हथवासा' 'चांदा' 'धनुक चढाव'।
'दुइ' जन 'सभै(भइ)' 'संघारे' 'जान न' 'कोऊ पाव'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २४६, भो० पत्र ४४ (नवीन), बी० ६६८-१०००। म० यहां पर त्रुटित है।

भो० में इस कडवक के नीचे तर्क 'बोदिया' है, जो अगले का है।

शीर्षक—मै० : जंग करदने लोरिक बा कोतवाल व बोदिया दानी।

भो० : नशिस्तन ज़क वातियान दरमियान राह अज़ां चांदा व लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. भो० बइठे दानी अउ कोटवारा, बी० भीन्ही (लीन्हे-ना०) डाग पितर पटतारा। २. मै० मुंह। (२) १. भो० अकेले चितहिं न लावा, बी० अकेले चितह् न लावैहि। २. बी० दोहु। ३. मै० में नही है, बी० येकै। ४. भो० लेन पै धावा, बी० लीन (लेन—फ़ा०) पंथावहि (पै धावहि—ना०)। (३) १. बी० मागहि दानु औ नेत (बिनति—फ़ा०)। २ भो० कहइं चलहु राजा पहिं जाहीं। (४) १. बी० सुनैंहि दानु ना लैही, भो० सोभ न दानु न लेही। २. मै० बात कहत। (५) १. मै० लोरिक चांदहि अस मत किहे, भो० लोर चांद तउ कुमखी भए। २. मै० अस मनुसइं गै बैरी भए, बी० अस रि मतेहि बिरहे पर गई (गए—फ़ा०)। (६) १. भो० लोर। २. मै० खरग। ३. भो० हथवासा ओडन। ४. मै० चांदइं। ५. बी० धुनषु चराय, मै० धनुष चढ़ाए। (७) १. बी० दहुं। २. मै० सबही मारे। ३ भो० जा नहि। ४. बी० येको पाई।

अर्थ—(१) [फिर लोरिक ने देखा कि] डांग (लट्ठ) लिए हुए [एक] कोट्टपाल फिर रहा था, जो बोल बोलते ही मुंह में (पर) मार बैठता था। (२) अकेले [पुरुष] को देखकर [वे लोग] उसे चित्त में न लाते थे, [किन्तु पुरुष और स्त्री दोनो के होने पर] दो में से एक को लेने के लिए वे दौड़ते ही थे। (३) वे (लोर-चांदा) दान (कर) दे रहे थे और [उनसे] बिनती कर रहे थे; [वे कह रहे थे,] चलो हम राजा के पास चल रहे हैं।" (४) किन्तु वे उनका कथन नहीं सुन रहे थे, दान (कर) नहीं ले रहे थे, और भली बात भी कहते समय वे अन्य (बुरा) उत्तर देते थे। (५) [यह देख कर] लोरिक और चांदा को रोष हुआ और वे ऐसी बिनती कर ओहट (कुछ दूर)

हो गए। (६) लोरिक ने हाथ में खड्ग लिया और चांदा ने धनुष चढ़ाया, (७) [फिर] इन दोनों जनों ने [मिल कर] सबको मार गिराया और कोई भी [भाग कर] जाने न पाया।

(२६६)

'बोदिया लोर चेति कर गहा'। दस 'अंगुरी' मुख 'मेलत' अहा।
'कहा' बीर 'मोहि दै जिउ दानू'। 'जीउ छाडु काटु मंकु कानू'।
'मूंडि मूंडि' 'सिर जोरें धरे'। हाथ 'गात अंगुरा भुइं 'परे'।
नौ खंड 'प्रिथिमी' सुना न काऊ। अइस दान को देहि बटाऊ।
'अस कि' 'दानि अनियाई' होई। जो जस 'करइ' पाव तस 'सोई'।
'मुख कारी' 'कइ' 'बोदिया' 'पठवा' 'बेल बंधाइ'।
आपन राउ 'करिगा' 'बोदिया' 'बेगि हंकारहि' 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५०, म० पत्र १५६, भो० पत्र ४५ (नवीन), बी० १००१-१००३।

भो० में इस कड़वक के बाद तर्क है 'हाथ काटि', जो अगले का है।

शीर्षक—मैं० : गिरफ़्तार शुदने बोदिया व दस्त बुरीदने लोरिक।

म० : दास्तान अजज़ ब इलहाज करदनेबोदई पेश लोरिक।

भो० : खुसूमत शुदन बाज़ कबातियान व लोरिक बा चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० फुनि बधिया अस लोरि कहा, म० बोदई जाइ जियत घर कहा, मैं० बोदिया दानि चेति कर गहा। २. मैं० बी० अंगुरी। ३. म० झेलत। (२) १. म० बी० कहै। २. भो० मोहि देहि जिय दानूं, बी० मुहि दीजै दानू। ३. म० भो० छाडउं (गहा—भो०) नाक अउर काटउं कानूं, बी० जैय (जीय—फ़ा०) छाडौ अस ले तुम्ह कानू। (३) १. म० मूड मुंडाइ। २. बी० अस जो रै धरा, म० सिर जोरि धरे, भो० सिर जोरिया धरे। ३. म० गात अंगुरी भुइं परीं, भो० गात अंगुरी भुइं परी, बी० काटि अगुरी भुई परा। (४) १. म० पिरथी। बी० में अर्द्धाली है : बधिया चांद पाई परि रहा : अब सो सुनहु जो रु तुम्ह कहा। (५) १. म० अइस, बी० अस न। २. भो० अनियाई दानि, बी० नियाई दान न। ३. बी० करै। ४. म० होई। (६) १. मैं० मुंह कारा, बी० मुख कारौ। २. भो० करि बी० कै। ३. म० बोदई, बी० बधिया। ४. म० पठए, बी० बैंठो। ५. बी० बोलु बधाय। (७) १. बी० करुटेका (करिगा—फ़ा०)। २. बी० म० में नहीं है, भो०

बोदई । ३. भो० बेगि बोलावहिं, बी० उठै जाइ बलु । ४. बी० भाई, म० जाइ जाइ ।

अर्थ—(१) बोदिया ने लोरिक को चेत कर (पहचान कर) [उसका] हाथ पकड़ा और वह [अपने] मुंह में [हाथ की] दसों उंगलियां डालने लगा । (२) उसने कहा, "ऐ वीर, मुझे जीव-दान दे, मेरा जीव (मेरे प्राण) छोड दे, भले ही [मेरे] कान काट ले ।" (३) [लोरिक ने कहा,] "सिरों को तूने मूड-मूंड (मंडवा-मुडवा) इकट्ठा कर रक्खा है, और [मृतों के] हाथ, गात्र और उंगलियां भूमि पर पड़ी हुई हैं । (४) नौ खंड पृथ्वी में ऐसा कभी नही सुना [गया] है कि ऐसा दान भी कोई पथिक देता है । (५) क्या कोई दानी (कर उगाहने वाला) ऐसा भी अन्यायी होता है ? जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है ।" (६) [तदनंतर] बोदिया का मुंह काला कर और उसके बालों से बेल बंधवा कर [लोरिक ने] उसे भेज दिया, (७) [और कहा,] "ऐ बोदिया, अपने करिंगा राजा को तू जा कर शीघ्र बुला [ला] ।"

(३००)

'काटि हाथ मुख कीन्हां' कारा । 'बांधी (धि) बेल तेंहि चूरें बारा' ।
'इहिं परि बोदिया' जाइ तुलानां । देखि नगर सभ परा भंगाना' ।
'देखत लोगु अचंभइ' रहा । 'पूछत' बात न 'बोदियहि' कहा ।
'बोदियइं राइहिं कीन्ह पुकारा' । 'हुत जेवनार तहं राउ हंकारा' ।
'बोदियहिं राइहि कीन्ह' जोहारा । 'पूछा राव केइं यह सारा' ।
'कौन बरी अस राजा आवा देस हमार' ।
'राउत पाइक ओंहि कों लागउ जाइ' गुहार ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २५१, म० पत्र १६१, बी० १००४-१००६ ।
म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'बोदई', जो अगले कडवक का है ।
शीर्षक—मै० : आमदने बोदिया पेशे राव व फ़रियाद करदन ।
म० : दास्तान दस्त व गोश बुरीदने लोरिक ऊ रा ।

पाठान्तर—(१) १. म० काटि हाथ मुख कीन्हां (न्हां ?), बी० काटे हाथ कीन्ह मुष । २. म० बांधि बेल अउ चूरे बारा, बी० बाघ बेल कै चोरै पारा (चूरे बारा—फ़ा०) । (२) १. म० इहिं बिधि बोदई, बी० बैठ ग बधिया । (३) १. बी० देषि स लोगु अचंभै, म० देषत लोगु अचंभउ । २ म० पूछहिं । ३. म० बोदई, बी० बधियै । (४) १. बी० बधिया जें दिन

जाइ पुकारा, म० दानी केतइ जाइ पुकारा। २. म० बइठ राइ जहां जेवनारा, बी० हुत जियनार भीतरहि हकारा। (५) १. बी० राजा बधिये जाइ, म० बोदई राजहि जाइ। २. म० पूछ भंडारी गएउ अस बारा, बी० पूछै भर री अस कै मारा। (६) १. म० भीउं बरी अस राजा केइ रे आएउ बसति हमारि, बी० कौन बीर अस राजा जु आवा सेव हमार। (७) १. म० दानी मारि कोटवार जो मारइ लागहु वेगि, बी० रावत पाइक साजि कर लागहु जाइ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने बोदई के] हाथ काट कर उसका मुख काला कर दिया और बेल बांध कर उसके बाल तोड़ डाले। (२) इसी प्रकार से बोदिया जा तुला (पहुँचा) और उसे [इस प्रकार आहत] देखकर समस्त नगर में भग्नता (भगदड़) पड़ गई। (३) [उसे] देखकर लोग अचंभे में हो रहे, किन्तु प्रश्न करने पर बोदिया ने कुछ न कहा। (३) बोदिया ने राजा से पुकार की, तो राजा ने उसे वहां बुलवाया जहां वह भोजन पर [बैठा हुआ] था। (५) बोदिया ने राजा को जुहार की, तो राजा ने पूछा, "यह [दशा] किसने की ? (६) कौन ऐसा बली राजा हमारे देश में आया हुआ है ? (७) रावतो तथा पायको, जाकर उसको गुहार लगो (उसका सामना करो)।"

(३०१)

'बोदियइं आनि घोर' एकु 'दीन्हां'। पूछि बाट सो 'आगें कीन्हां'।
'दर नर पुरुख केर कस अहइ'। 'करत' 'संजोग कवनि बिधि' 'रहइ'।
एकु 'पुरुख अउ दूसरि' नारी। 'तीसर न कोऊ' 'नाऊ अउ बारी'।
अति 'बड होंति बिचक्खन' सोई। 'ओइं' खत्तिरी 'पुरुष अउ' जाई।
वह रे 'अचूक' बान सर मारइ। वह 'रन खतरी खरग संघारइ'।
'देई' संजोग 'राइ तिन्ह बोलिउं' 'मांगिउं' अचगर दानु।
'जन मानुस सभ जीउ गंवाइउं आपन' नांक 'अउ' कान॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५२, म० पत्र १५८, बी० १००७-१००६।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने राव बोदिया रा व जवाब दादने ऊ।

म० : दास्तान पुरसीदन राव बोदई रा।

पाठान्तर—(१) १. म० बोदई तुरी पलानि, बी० बूढि (बोदई—फ़ा०) पलानि घोर। २. बी० दीया। ३. म० आगेउ कीन्हा, बी० आगैं कीया। (२) १. बी० दरस पुरखैंहि पकर आहै, मै० दर नर पुरुष सो कइसइं अहा।

२ म० करत, बी० कैस । ३. बी० संजोव कौन वड । ४. म० रहइ, बी० आहै । (३) १. मै० पुरुष दूसरि हइ, बी० पुरषु औ दूसर । २. म० तस नहि कौनउ, बी० तीसर नाउ न । ३. बी० आहिउ बारी । (४) १. बी० रुपवंत विचषण । २. बी० रिण महि । ३. बी० पुरषु अ । म० में अर्द्धाली है : रूप दुहूं के सम जग मोहइ : रैनि मांझ चांद जस सोहइ । (५) १. म० चूकि । २. म० रन खेलइ खरग संभारइ । बी० में अर्द्धाली है : वोहु राजा जोगु धनष सर मारै : बहुरि न कहि कहि षरग उभारै । (६) १. मै० देषि । २. म० देहि भस्ट मोहि कहं, बी० आइ मति भूलो । ३. बी० मांग्यों । (७) १. म० जिहि मागें जीउ गंवाएउं अव रे, बी० जानु मानु सब जीउ गवायो काट । २ बी० औ ।

अर्थ—(१) [राजा ने] बोदिया को ला (मंगा) कर एक घोड़ा दिया (दिलाया), और उससे मार्ग पूछ कर उसको आगे किया । (२) [फिर उससे पूछा,] "उस नर (योद्धा) पुरुष का दल कैसा है, और वह सयोग (शस्त्रास्त्र-सज्जा) किस विधि से करता रहता है ?" (३) [बोदिया ने कहा,] "एक पुरुष है औ दूसरी नारी है, [उनके साथ] तीसरा कोई नाई-बारी भी नहीं है । (४) वे अत्यधिक विचक्षण हैं, वे पुरुष और स्त्री—दोनो ही क्षत्रिय (योद्धा) हैं । (५) वह [स्त्री] अचूक बाण (पुंख) और शर मारती है, और वह रण-क्षत्रिय (योद्धा) खड्ग [से] संहार करता है । (६) दैव-संयोग से, हे राजा, उन्हें मैंने बुलाया और एक अचगरा (औद्धत्य-पूर्ण) दान (कर) [उनसे] मांगा । (७) [किन्तु परिणाम यह हुआ कि] अपने जनों-मनुष्यों सब जीवों को गंवाया और अपने नाक और कान गंवाए ।"

(३०२)

बात 'सुने' 'सभ' मिले सियाने । 'तुम्हं भनि' 'नरवइ भए' अयाने ।
'जउ परदेसी एक नर' होई । 'लखि जउ मिलइ मान रे सोई' ।
'वह करि साहन जउ' सिधि 'पावइ' । 'दइय संजोग वह दर बिचलावइ' ।
'जानइ बात सभइ' 'सयंसारा' । इकु 'हारइ अउ' होइ मुंहु कारा ।
'बांह बाच दइ ओहि' 'हकराइय' । 'अस खतरी' जउ रह' 'ओरगाइय' ।
'वहु परसाध कइ बोलाइय' 'अंबरित बचन सुनाइ' ।
'गाउं ठाउं सब ओहि को' दीजिय 'जित भावइ तित' 'जाइ' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २५३, म० पत्र १५६, बी० १०१०-१०१२ ।

शीर्षक—मै० : मशावरत करदने राव करिंगा बा दानायाने खुद रा ।
म० : दास्तान तक़सीम करदने वजअ् साख्तन मर्दमान ।

पाठान्तर—(१) १. मै० सुनत । २. बी० कैं । ३. बी० तुम्ह फुनि, म० गै तुम्हं । ४. बी० नरवै भयहु । (२) १. म० जउ परदेसी आएउ, बी० जौ परदेसी थेकै । २. म० एकहि एक पवारइ सोई, बी० कौन जानै साहस करै कोई । (३) १. बी० जो कर सांहस सो । २. बी० पावै । ३. मै० दइय सजोगइं दल न चलावइ, बी० दई संजोग देइ बिचलावै । (४) १. बी० जानै बात सभै । २. म० संसारा, बी० सैसारा । ३. म० हारा औ, बी० हारै औ । (५) १. बी० बाही बाच दे कोहु । २. बी० हकराये । ३. बी० जौ रहि । ४ म० ओलगाइय, बी० उरगाये । (६) १. बी० यह परसाद करै हकराये । २ मैं० अमिरित बचन सुनाइ, बी० जस आवै उहि गाऊ । (७) १. म० गाउ ठाउ तेहि दीजिय, बी० बावनु छांडि चादा दै पुठि गौ । २. म० तित जित भावइ तर, बी० जह भावै तहां । ३. बी० जाउ ।

अर्थ—(१) यह वार्ता सुनने पर समस्त सयाने लोग मिले [और उन्होने कहा,] "ऐ नरपति, तुम जैसे अयाने हो गए हो । (२) यदि परदेशी एक (अकेला) पुरुष [भी] हो और वह दिखाई मिले (पड़े), तो उसे मानना (सम्मान देना) चाहिए । (३) वह साधन [एकत्रित] कर यदि सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो दैव-संयोग से [अकेला ही] दल को विचलित कर देता है । (४) समस्त संसार इस बात को जानता है कि एक (कोई) हारता है तो उसका मुंह काला होता है । (५) उसको बाहुओं (सुरक्षा) का वचन दे कर बुलाइए और यदि वह क्षत्रिय (योद्धा) रहे, तो उसकी सेवा लीजिए । (६) बहुतेरे प्रसाद (उपहारों) के साथ और अमृत [जैसे मधुर] वचन सुना कर उसे बुलाइए, (७) उसको गांव-ठांव सब दीजिए और [उसे इस बात की छूट दीजिए कि] जहां-कहीं उसे भाए, वह जाए ।"

(३०३)

'बाभन दस' 'बिदवांस' बुलाए । 'बांह' 'बाच दइ' 'राइ चलाए' ।
'जेहिं परि' आवइ 'तेहिं भनि' 'आथइ' । जो 'वह कहइ' 'सोइ तुम्हं माथइ' ।
'कहउं दानि हुत यहु' 'अनियाई' । नांक 'कान' भल 'कूंचि' 'कटाई' ।
'अवर जो मारे यहि कोटवारा' । 'तिन्ह औगुन ही नियाउ' तुम्हारा ।
'राइ' 'बांह' 'दइ तुम्हं हंकराइय' । 'जब जित भावइ तब उतहि जाइय' ।

'हम राजा कइ परजा' 'बिदवांस पंडित सभ आहि' ।
'दिस्टि पसारि देखन को पावइ' ऐती जोगिति 'काहि' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५४, म० पत्र १६१, बी० १०१३-१०१५ ।

शीर्षक—मैं० : फ़िरिस्तादने राव करिगा दह जुन्नारदारान रा बर लोरिक ।

म० : दास्तान तलबीदन राय जुन्नारदारान रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बंभन सब । २. मैं० बिधवांस । ३. मैं० बोल । ४. बी० होइ कै । ४. म० राव चलाए, बी० आनहु जाए । (२) १. मैं० जेहिं बिधि, बी० जिह परि । २. म० तेहिं बिधि, बी० तिह परि । ३. मैं० आवहु, बी० ल्यावोहु । ४. बी० वोहु कहै । ५. मैं० सोइ तुम्ह मानहु, बी० सु तुम्हहि मनावोहु । (३) १. म० कहहिं दानी हुतइ, बी० कहौं दान वहि हुत । १. बी० अममाये (अनियाई—फ़ा०) । ३. बी० काटि । ४. म० कीन्ह, बी० हाथ । ५. बी० कटाये । (४) १. बी० अरु जिय मारे बहु कुटवारा । २. बी० वोहु औगुन आनिये । (५) १. बी० राजा । २. मैं० पूर । ३. बी० देय अस करियोहु । ४. म० भन जित भावइ तुम्हं जाइय, बी० जितही जाइ तितई तुम्ह जइयहु । (५) १. म० हम रे अभागी बजा, बी० पूछा राजा कहि अस । २. मैं० बिधवांस पंडित सभ आहि, बी० हम सौ बाभन आह । (७) १. बी० द्रिष्टि पसारि देषि कै आवै, म० दिष्टि अपार देखि को पारइ । २. बी० एत आजुगति वाह, म० एती जोगिति केहि आहि ।

अर्थ—(१) [राजा ने यह मत सुनकर] दस विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाया और बाहों (सुरक्षा) का वचन देकर राजा ने उन्हें [लोरिक के पास] रवाना किया । (२) [राजा ने कहा,] "जिस प्रकार से वह आए, उसी प्रकार से वह रहे और जो वह कहे, वही तुम्हारे मत्थे हो । (३) [उससे] कहो कि यह दानी (बोदिया) ही अन्यायी था, और भले ही इसके नाक-कान कुचलवा कर कटाइए । (४) और जो तुमने इसके कोट्टपाल को मारा है, सो उसके अवगुणों (अपराधों) के कारण ही तुम्हारा [कार्य] न्याय्य है । (५) राजा ने तुम्हें बांह (सुरक्षा) [का वचन] देकर बुलाया है; जब जहां भाए, तब वहां जाना । (६) हम राजा की प्रजा हैं और सब विद्वान् पंडित हैं । (७) [किन्तु] दृष्टि को पसार (फैला) कर [अदृष्ट को] कौन देख सकता है ? इतनी योग्यता किसे [होती] है ?"

(३०४)

बांभन जाइ सो दीन्ह असीसा'। बात 'सुनत मन' 'उतरी' रीसा।
नोरिक 'कहा' चांद कस 'कीजइ'। 'एइं बंभनहिं कस' ऊतरु 'दीजइ'।
बहुते जन' हम 'इन्हके' मारी। 'मूंड काटि कइ दीन्ह अडारी'।
'जिय ऊपर अब उठइ गोवारी'। 'जूझि मरइं जउ लाग गुहारी'।
'राजा आहि भल अहइ नियाई'। 'नीकी बात तेहि कहेसि पठाई'।
'मंता' जो हम तुम 'उपजइ चांदा' 'अउर न कोऊ' आहि।
'भाई बापु बंधु नहि कुनबा' 'फिरि पूछौ (?) आ काह(हि)'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५५, भो० पत्र २७ (नवीन), बी० १०१६-१०१८।

शीर्षक—मै० : आमदने जुन्नारदारान व गुफ्तन लोरिक रा।

भो० : रसीदन जुन्नारदारान बर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. भो० बांभन दीन्ह आइ आसीसा, बी० बैठे जाइ कै दीन्ह असीसा। २. भो० सुनें मन, मै० सुनत सभ। ३. बी० गई सु। (२) १. भो० कीहा (किहा ?)। २. बी० कीजा। ३. मै० एहि बांभन का, बी० जै (यै) है बैठ कस। ४. बी० दीजा। (३) १. भो० बहुत लोग। २. बी० उनके। ३. भो० मूंड मुंडाइ जो देसहि निसारे, बी० दान रवूषी दीन्ह निसारे। (४) १. बी० जे ऊपर एम उठै स नारी, मै० जइ परि राजा लाग गोहारा। २. बी० जूझि मरइं जिय (जइ—फ़ा०) लाग गुहारी, मै० झूझि मरत गै दई उबारा। (५) १. भो० राउ बड़ा अउ अहइ नियाई, बी० राजा बड़ु डरावन जाई। २. भो० धनु बानहि दइ बाजि पठाई, बी० भली बात कहते न रिसाई। (६) १. भो० बी० मता। २. भो० उपजइ, बी० आई। ३. भो० सोइ पै, बी० और न कोई। (७) १. मै० बाई बाप बंधु कोउ नाहीं, भो० भाइ बंधु लोग नहि कुटुंबा। २. भो० बहिनि भौजि अब चाहि, मै० बांभन पूछहि काहि।

अर्थ—(१) [तदनुसार] एक ब्राह्मण ने जाकर आशीर्वाद दिया, उसकी बातें सुनते ही लोरिक के मन से रोष उतर गया। (२) लोरिक ने कहा, "चांदा, कैसा (क्या) किया जाए ? इस ब्राह्मण को कैसा उत्तर दिया जाए ? (३) हमने इनके बहुतेरे जनों को मार कर और उनके मुंड (सिर) काट कर डाल दिए। (४) ऐ ग्वालिन, अब तो जी पर उठती (लगती) है [क्योंकि] यदि राजा गुहार लगता है तो हमें जूझते हुए प्राण देने होंगे। (५) राजा भला है और न्यायप्रिय है और [इस ब्राह्मण को] भेज कर उसने अच्छी बात

कही है। (६) ऐ चांदा, मत वही है जो हममें-तुममें उत्पन्न हो, क्योंकि और कोई नहीं है [जिससे परामर्श किया जा सके]। (७) [यहां] भाई, पिता, बंधु तथा कुटुंबी नहीं हैं, फिर यह किससे पूछो ?"

(२०५)

इक बांभन 'का बहुरि' दस आए। बचन राइ के आइ सुनाए।
चलहु लोर 'अपुने' 'पउ' धारहु'। 'हम जियतइं' 'जीवन जनि हारहु'।
'चला' 'लोरु संजोइ' उतारा। 'जाइ करिंगा राउ' जुहारा।
'बहुतइ भूईं' 'चलि' हम आए। 'राजा सोग' 'खरे' संताए।
नैन न देखा सुनां 'न काऊ'। 'दुहुं' महिं एक दानु 'लेइ राऊ'।
'बैरि' बिरोधे 'नरवइ' छाड़ि चले घर बार।
'हम रे अकेले' 'दुमने भाई बीर परिवार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५६, म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र २८ (नवीन), बी० १०१९-१०२१।

भो० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनि राजा अस', तथा म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनि' जो अगले कडवक के हैं।

शीर्षक—मैं० : बाज़ आवरदने जुन्नारदारान बर लोरिक कलामे राव करिंगा।

म० : व रफ़्तन लोरिक पेश करिंगा।

भो० : गुफ़्तन जुन्नारदारान बर लोरिक व चांदा अज़ जेहल रवाना करदन अज़ पेशराह।

पाठान्तर—(१) १. भो० गै फुनि, बी० पडित दस। (२) १. बी० आपनु। २. भो० पा, बी० पगु। ३. बी० धारौहु। ४. भो० हम्हं जियतइ, बी० जैति हमार। ५. बी० मनहि जिन हारौहु। (३) १. म० चलि कै। २. बी० लोर संजोन, म० लोर संजोह (संजोइ—ना०), भो० लोरहि संजो। ३. मैं० राइ करिंगा राउ, बी० जाइ करनीका (करिंगा—फ़ा०)। (४) १. बी० पहलै भुमी जु। २. भो० चले। ३. म० रे सो हम, बी० राइ न किनहू, भो० राइ सेउ हम। ४. बी० हम न। (५) १. बी० नरु कोऊ। २. म० दो, बी० दौहु। ३. मैं० लेहिं बटाऊ, बी० ले राऊ। (६) १. मैं० बरिहि, बी० बीर (बैरि—फ़ा०)। २. बी० नरवै। (७) १. बी० हमहि राष ले। २. म० दुइ मानुस बैरी भा संसार, भो० आहि दोउ जन भाई बीर परिवार, मैं० दुमने भा बैरी कोटवार।

अर्थ—एक ब्राह्मण क्या ? फिर तो दस [ब्राह्मण] आए और आकर उन्होंने राजा के वचन सुनाए। (२) [उन्होंने कहा,] "ऐ लोर, चलो और अपने पैर रखो (पधारो), हमारे जीते जीवन न हारो।" (३) लोर चला, उसने सयोग (रण-सज्जा) को उतार लिया और करिंगा राजा को जुहार किया। (४) [लोरिक ने कहा,] "बहुतेरी भूमि चल कर हम आए हैं, और हे राजा, हम शोक से बहुत संतापित हैं। (५) हमने नेत्रों से यह [कभी] न देखा और कभी सुना है कि दो में से एक [पथिक] को राजा दान (कर) के रूप में ले लेता हो। (६) बैरी के विरोध के कारण ही, हे राजा, [हम दोनों] घर-बार छोड कर चले थे, (७) हम अकेले हैं और भाई, बंधु तथा परिवार [हमसे] दुर्मनस् हैं।"

(३०६)

सुनि 'राजइं' अस ऊतरु 'दीन्हां'। जो 'हम्हं बूझिय' सो तुम्हं 'कीन्हां'।
'अजहूं कहु सो बात करावउं'। 'जिय' 'मारउं कै सूरि भरावउ'।
सीसु नाइ 'लोरिक' अस 'कहा'। 'गरुव नरिंद' राउ 'तूं अहा'।
'मेदिनि कहइ' 'बड आहइ' राऊ। 'राइ' हुतें 'हइ बड़ा नियाऊ'।
'तुम्हं' 'नरवइ नियाउ सब' जानहु। 'जउ बर करहुं देस धरि आनहु'।
'मारग चलइ चहूं दिसि लोक असीसइ तोहि।
'राजा मया मोह कइ' 'हरदीं पठवहु मोहि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५७, म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र २६ (नवीन), बी० १०२२-१०२४।

शीर्षक—मै० : जवाब दादन राव बर लोरिक रा।

म० : जवाब दादन राव बर लोरिक रा।

भो० : जवाब गुफ़्तन राव करिंगा लोरिक व चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. भो० बी० राजा, मै० राजइ। २. बी० दीया। ३ म० हम चाहहिं, मै० बी० हम पूछें (पूछे—बी०)। ४. बी० कीया। (२) १. म० अजहूं कहु बहोरि हउं करउं, भो० कहु अबहूं सो बात करावउ, बी० अजहूं कहौहु त सासति करौ। २. मै० कै। ६. म० बी० मारौं कै सूरी भरउं (भरौ—बी०)। (३) १. मै० लोरहिं। २. बी० कहै। ३. भो० गरुवा नरिंद, बी० गरु मारिदु। ४. बी० त अहै। (४) १. बी० मेदनि कहत २ म० मन आहइ मै० बड़ा हुत बी० बड़े तुम्ह ३ भो० राउ

४ म० बर होइ न काऊ, बी० फुनि औ बड न्याऊ। (५) १. म० अउ तुम्ह, बी० तुम्हि फुनि। २. म० नरवइ नियावहु, भो० नरवइ अनियाउ न, बी० बडे नियावहु। ३ बी० जानौहु। ४ म० जो भल होइ सोइ तुम्हं मानहु, भो० जउ बर करहु देस कहं भानहु, बी० जौ बर करहु देस कर आनौहु। (६) १. तू सुमया करि नरवै हरदी पठवौहु मोहि (तुल० परवर्ती चरण)। (७) १. भो० राजा मया करउ तुम, मै० जउ बर लइ (कइ) संतावइ कोई, बी० जो रु दिनइ (दीनहि) बसि करहु। २. मै० बी० सो हत्या पुनि मोहि (फुनि तोहि—बी०)।

अर्थ—(१) यह सुन कर राजा ने ऐसा उत्तर दिया, "जो हम को पूछना (कहना) था, वही तुमने किया, (२) और आज (अब) भी जो कहो, वह बात मैं कराऊं : इनके जीव मारूं, या इन्हे शूली भराऊं।" (३) सिर नमित कर लोर ने ऐसा कहा, "ऐ राजा, तुम गुरु (बड़े) नरेन्द्र हो। (४) मेदिनी कहती है कि 'राजा बड़ा है, और राजा के द्वारा बड़ा न्याय है। (५) हे नरपति, तुम समस्त न्याय [का विषय] जानते हो, यदि तुम बल [-प्रयोग] करो तो देश [भर] को पकड़ कर ला सकते हो। (६) लोग चारो ओर मार्गों पर [निर्भय होकर] चलते हैं और तुम्हें आशीर्वाद देते हैं। (७) हे राजा, तुम मया-मोह करके मुझे हरदीं [पाटन] भेज दो।"

(३०७)

सुनि 'राजा अस कीन्ह' पसाऊ। 'भाइ हमार' 'जो' आहि बटाऊ।
'दीन्ह' सुखासनु 'अउर' 'तुरंगू'। पंथ 'लागि तुम्ह लागि करिगू'।
'टका सहस' 'परसाध' दिवाए। 'तुरित बेगि बलदा लइ' आए।
'सेव करहुं' 'जउ इहवां' रहहू। 'नहि जउ मन होइ तहवां चलहू'।
'तेहि करि' बात 'न पूछन' कोई।
तिह(जिहि) की(के) संक(ग) एक जन होई।
राइ बांभन 'दस' दीन्हें 'अगुवा' जित भावइ तित जाहु।
खर कइ कहइ न पारउं 'मयाह' करहु तउ रहाहु॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र ३० (नवीन), बी० १०२५-१०२७।१।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनहि', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—म० : मरहमत करदन राव करिंगा बर लोरिक ।

भो० : शुनीदन गुफ़्तार लोरिक मरहमत करदन राजा बा लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हसि राजा किया । २. बी० हमरैं भाइ । ३. बी० में नहीं है । (२) १. बी० देहि । २. बी० और । ३. भो० तुरंगा । ४. भो० लागि तुम्ह राइ करिंगा, बी० लाग तुम्ह नेह यकंगू । (३) १. म० टका लाष । २. बी परसाद । ३. भो० अपाठ्य है, बी० नित वै बेग बराई । (४) १. भो० सेव करउं, बी० सोय करहु । २. बी० जो ईह ही । ३. भो० जउ मनमान लहंहि तुम्ह जाहू, बी० औ जसु भाव तहा ही जहहू । (५) १ बी० तिह थी । २. म० करइ नहि, भो० न पूछइ । ३. म० जो परदेसी सहंगा, भो० जेहि के साथ तिरी इक । (६) १ भो० दुइ । २. भो० में नहीं है । (७) भो० मया । बी० मे दोहा नहीं है ।

अर्थ—(१) ऐसा सुन कर राजा ने पसाव किया, और कहा, "यह हमारा भाई है, जो [इस समय] पथिक है । (२) मैने [चांदा के लिए] सुखासन और [तुम्हारे लिए] तुरंग दिए, जो तुम्हारे कलिंग तक के लिए मार्ग के लिए होंगे । (३) मैंने एक सहस्त्र टके उपहार के रूप में दिलाए हैं, जिन्हें तुरंत और शीघ्र ही बलद (बैल) ले कर आ रहे हैं । (४) यदि तुम यहां रहो तो तुम [हमारी] सेवा करो, अन्यथा जब [और जहां के लिए] तुम्हारा मन हो, तुम वहां के लिए प्रस्थान करो । (५) उसकी कोई बात नहीं पूछनी है जिसके साथ एक ही जन हो ।" (६) [यह कहते हुए] राजा ने अगुवों के रूप में उसे दस ब्राह्मण दिए [और कहा,]" तुम्हें जहां भाए, वहाँ जाओ; (७) ज़ोर देकर मैं नहीं कह सकता हूं, किन्तु यदि तुम मया (ममता) करो तो [अभी] रहो ।"

२०. प्रथम सर्पदंश खण्ड

(३०८)

'सुनु नरवै' 'एक' बचन 'हमारा' । 'रहे चले सो बांध' 'तुम्हारा' ।
हरदीं आहि 'हमारेउ' लोगू । मन धरि 'चले दोउ तिन्ह' जोगू ।
'अस सुनि राइहि' बीरा 'दीन्हां' । सीसु 'नाइ' 'कइ' 'लोरहि लीन्हां' ।
उतरे 'आइ' 'बांभन के' अवासा । 'मंगता मिलिया आइ चहुं' पासा ।

'जो जिसु जोगु दानु तिस दी(दि)या' ।
जस कीरति आपनि करि ली(लि)या ।

'पूनिवं राति सपूरनि' 'सूते फूलन्ह' सेज 'बिछाइ'।
'बास लुबुध भुवंगु' 'एक आवा' 'अउतहि चांदहि खाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५६, म० पत्र १६३ (?), बी० १०२७-१०३०।

मैं० में इस प्रसंग का यही कडवक है, शेष चार नहीं हैं, जिससे स्पष्ट है कि मैं० का पाठ यहां पर त्रुटित है।

शीर्षक—मैं० : अर्ज़दाश्त करदन लोरिक पेशे राव करिंगा।

म० : अर्ज़ करदन लोरिक राव रा बअज़ी मरदुम।

पाठान्तर—(१) १. मैं० सुनु राजा, म० सुनहु राउ। २. बी० निजु। ३. बी० हमारे। ४. म० हउं चालसि चाहउं चेर, बी० रहे कुभेउ फुनि वासि। ५. बी० तुम्हारे। (२) १. बी० हमारौ, मैं० हमारा। २. बी० चलहु आहि तिहि। (३) १. बी० याह सुनि राजा, म० राइ उतर सुनि। २. बी० दीया। ३. म० चढ़ाइ। ४. बी० सो। ५. म० लोरिक लीया। (४) १. म० जाइ। २. बी० बंभन कै। ३. म० मंगता आइ मिले चहुं, बी० सभ ते आनि मिलाये। (५) इस अर्द्धाली के स्थान पर मैं० में यथा चतुर्थ निम्नलिखित है—

दीन्ह सुखासन अउर तुरंगू : पंथ लाइ तिन्ह राइ करिंगू। (तुल० ३०७·२) और म० में है : जा कह कछू हाथ कै देई : जस कीरति आपु कहं लेई। (६) १. बी० पून्यौ राति निरमल। २. म० भए आपनि, बी० फूलह। ३. बी० डसाई। (७) १. बी० बासु भुवंग बिरूधा। २. म० न मानइ, बी० मे नहीं है। ३. बी० सूत चांद गौ खाइ, म० चादहि खाइ अघाइ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ राजा, हमारी (मेरी) एक बात सुनो; हम रहे और अब चले, तो भी हम तुम्हारे बंध हैं (हमारा जीवन तुम्हारे पास बन्ध-गहन रख उठा है)। (२) हरदी [पाटन] में हमारे लोग (स्वजन) है, उनका योग (उनसे मिलना) मन में रखकर हम दोनों चले हैं।" (३) ऐसा सुनकर राजा ने उसे [विदा का] बीड़ा दिया, जिसे लोरिक ने सिर नमित करके लिया। (४) [तदनंतर] वे [चल कर] एक ब्राह्मण के आवास पर उतरे, तो उनके चारों ओर भिक्षुक आ मिले। (५) जो जिस योग्य था, [उन्होंने] उसको वैसा दान दिया, और अपनी यश-कीर्ति कर ली। (६) संपूर्ण रूप से पूर्णिमा की रात्रि थी, वे फूलों की शैया बिछा (बना) कर सोए। (७) [पुष्प-राशि की] सुवास पर लुब्ध एक सर्प आया, और आते ही उसने चादा को [काट] खाया।

टिप्पणी—कलिंग उस समय संभवत : एक अनुर्वर राज्य था, जिससे वहां के

भिक्षुक पड़ोस के राज्यों तक में जाकर भिक्षा मांगते थे। अवधी प्रदेश में अब तक ऐसे फटे-हाल मंगतों को 'करिंगा' कहा जाता है।

(३०६)

'डंसतहि चांद भई अंधियारी। पैग भरत बिसंभरि भइ बारी'।
खतरी खाइ 'चला फुफुकारी'। लोर बीर सुनि लाग गुहारी।
'पैसत बामीं लोर' कर गहा। तस 'पटकेसि' जम 'ठावहि' रहा।
मारि भुवंग 'लोर जउ' आवा। चांद मुई लोरिक गुहरावा।
'लोरिक बांभन सोवत जगाएउ'।
घर घर 'कहहीं' 'अै(अइ)स' 'केहि खाएउ'॥
'नगर सोर जब अथवा परा घरहि घर सोग।
तिरिया पुरुख उवरि गएउ(गए?) तहं बिधि दीन्ह बिजोग॥'

सन्दर्भ—म० पत्र १६३ (?), बी० १०३४-१०३७।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'साल', जो अगले का है।

मैं० यहां पर त्रुटित है, उसकी पत्र-संख्या २६० नहीं है। सभवत: यहा पर उसका आदर्श भी त्रुटित था, क्योंकि पत्रों के साथ के चित्र उन्हीं के कडवकों के हैं।

शीर्षक—म० : दास्तान बेहोश शुदन चांदा अल मुजर्रद खुरदन मार।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदा द्रिष्टि भइ उजियारी : बिसु चरि गयी न उठी नारी। (२) १. बी० चले रभकारी। (३) १. बी० पेट पान जाइ। २. बी० पटसि। ३. बी० ठावै। (४) १. बी० बीर जौ। (५) १. बी० बांभन सूत जागसि अस भाई। २. बी० सब। ३. बी कौहु घाई। (६-७) १. बी० मैं दोहा है :

नगर फिकारा उभथा परिहै सभा घभोरु।
तिरी पुरषु जो निया बिधि दीनौ र बिछोरु॥

बी० में इसके पूर्व अधिक है : बारा चांद जै कीन्ह अजोरा : चाद राहु लै गंगेवैहि जोरा।

अर्थ—(१) डंसते भर में चांद अंधकार-पूर्ण हो गई (काली पड़ गई), डग भरते ही वह बालिका बेसंभाल (अचेत) हो गई। (२) स्त्री (चांदा) ने कहा, "ऐ क्षत्रिय (बीर), वह काट कर और फुफकार कर चला जा रहा है।" यह सुनकर लोरिक बीर (चांदा की) गुहार लगा (सहायता

के लिए दौड़ पड़ा)। (३) [सर्प के] बिल में प्रविष्ट होते ही लोरिक ने उसे हाथ से पकड़ लिया, और उसे [भूमि पर] ऐसा पटका कि वह उसी स्थान पर रह गया। (४) जब सर्प को मार कर लोरिक आया, तो उसने पुकार लगाई, "चांदा मर गई!" (५) लोरिक ने ब्राह्मण को [जिसके आवास पर वह ठहरा हुआ था] सोते हुए से जगाया; घर-घर में लोग कहने लगे "किस [जंतु ने] ने [चांदा को] इस प्रकार काट खाया है?" (६) नगर मे जब यह शोर अस्तमित हुआ, घर-घर में शोक पड़ गया। (७) [लोग कह रहे थे,] "स्त्री-पुरुष जब [किसी प्रकार संकटों से] बचे भी, तो विधाता ने उन्हें [एक-दूसरे का] वियोग दे दिया!"

(३१०)

रइंनि 'भुवंग परि' काहू न सोवा। 'जेइं रे' सुनां सो 'धाहहिं' रोवा।
ततु न मंतु न ओखधु 'जोरा'। 'अउर सहेलिन्ह बन्हन तोरा'।
लोरिक बीर बहु 'कारनु करई'। 'चाहू कटारइ कंठ दइ मरई'।
'जेहिं' 'लगि तजेऊं सभ घर बारू'। 'तेहि बिन कस अब जिवन' अधारू।
'चंदन काटि कइ चितइ रची। आनि आगि तेहिं ऊपर संची'।
'लइ बैसंदरु बारइ कइसें [इं ?] धर सियराइ'।
'दई गुनी एक आना चांदा लीन्ह जिलाइ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६४, बी० १०३८-१०४०।

म० में इसके बाद तर्क है 'सावन', जो अगले कडवक का है, मैं० के विषय मे दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—म० : व अजज़ व इलहाज व ज़ारी करदन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० नगर महि। २. बी० जिहि र। ३. बी० झोहें। (२) १. बी० मोरा। २. बी० कैसे उपरि करिये सोरा। (३) १. बी० करनु करिये। २. बी० चाहि कटार कंठ गै सरिये। (४) १. बी० जिहि। २ बी० तज्यौ सबै परिवारू। ३. बी० अब तू कह (हु) न जिये। (५) १. बी० चंदन काटिहि चिहि चिरावा : ले चादेहि उहि उपरि छावा। (६) १. बी० षेव बैसंदरु बीना मार्‌यों रहहि बराई। (७) १. बी० दई संजोग लोरिक कर येत्यों चांदा आनि दिवाई।

अर्थ—(१) उस रात में, जो सर्प के प्रकार की [ही] थी, कोई भी न सोया; जिसने भी वह सुना, वह धाड़ मार कर रोया। (२) न तंत्र,

न मंत्र और न ओषधों का योग चल सका, और सहेलियों ने भी चांदा के [वस्त्राभूषणादि के] बंधन तोड़ दिए। (३) लोरिक बीर बहुत कारुण्य [-पूर्ण प्रलाप] कर रहा था, और चाहता था कि कंठ में कटार दे कर वह मर जाए। (४) [वह कहने लगा,] "जिसके लिए मैंने समस्त घर-बार छोड़ा, उसके बिना अब जीवन का आधार किस प्रकार [होगा] ?" (५) [चांदा के साथ भस्म होने के लिए] उसने चंदन की लकड़िया काट कर चिता रची और अग्नि [भी] लाकर उस पर संच दी। (६) आग लेकर जब वह [चिता] जला रहा था कि उसका धड़ किसी प्रकार [भी] [उस पर जल कर] शीतल हो, (७) दैव (ईश्वर) [वहां पर] एक गुणी को ले आया और उसने चांदा को जीवित कर लिया।

(३११)

'सरवन लागि मंत्र इन्ह कहें'। 'सुनतहिं' लोगु 'अचंभइ रहे'।
पहर 'इक राति चांद हुति' डसी।
'डंसतहि मुई न निसि करि बसी'।
अगनित गुनी 'सभइ चलि आवा'। 'होइ अकारन मरन न पावा'।
'जियतइं जीवनु काहूं पाए। 'डंसतहि मुनी परत खरि आए'।
अब 'सो' गुनी मंत्र 'इक बोलइ'। 'तिसु बाचा' हीरा कस 'तौलइ'।
'देखि गुनी मन चिंता' 'आखउं' मंतरु इक बार।
गुरु के बचन 'संभारउं' जीउ देइ करतार॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६४, बी० १०४१-१०४३।

मैं० के संबंध में देखिए पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—दास्तान आमद गारुरी व गुफ़्तन मंतर बर चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुगनि येकु मंत्र उनि कहा। २. बी० सुनि कै ३. बी० अचंभै रहा। (२) १. बी० येक रहतेहि बाह। २. बी० डसते जानौ गहनैं कसी। (३) १. बी० आयो तिह ठावा। २. बी० भई उक मरन नहि पावा। (४) १. बी० जसतें जीवनु काहू पाई। २. बी० तब मुवा जहा हूते पाई। (५) १. बी० योहु। २. बी० कस बोलै। ३. बी० बिनुत करी। ४. बी० तौलै। (६) १. बी० देखु गुनी जु सभै जसवंता २. बी० कहै। (७) १. बी० संभारै।

अर्थ—(१) इसने [चांदा के] कानों में लग कर एक मंत्र कहा अ

उसको सुनते ही लोग आश्चर्य-चकित रह गए। (२) एक प्रहर रात्रि मे (रात्रि व्यतीत होते) चांदा [सर्प के द्वारा] डंसी गई थी, और उसके डंसते ही वह मृत हो गई थी और रात भर के लिए भी नहीं बसी थी (जीवित रही थी)। (३) [वहां] अगणित गुणी थे ओर वे सभी [उसका उपचार करने को] चले आए थे कि अकारण मरण न होने पाए। (४) जीवित रहते हुए जीवन [भले ही] किसी ने पाया हो, [अन्यथा विषधर के] डंसते ही वे मुनि भी पड (मर) जाते हैं जो खरी (बड़ी) आयु वाले होते हैं। (५) अब वह गुणी एक मंत्र कह रहा था और उस [मंत्र] की वाचा (शब्दावली) को हीरे के जैसा तौल रहा था। (६) [उसकी अवस्था] देख कर गुणी मन में सोचने लगा, "एक बार मैं मंत्र कहूं (७) और [साथ ही] गुरु के वचनों का स्मरण करूं, तो [संभव है] कर्त्ता (ईश्वर) जीव-दान कर दे।"

(३१२)

'चांदहि फिरि जिउ नवा संचारू। फुनि लोरिक मनि सुखै (ख) अपारू'।
कर 'कंगन' अभरन सभ 'दीन्हां'। 'अउ सो गारुरि मांगि कइ लीन्हां'।
'हिरदइं सुमति चली फिरि आई'। 'कीन्ह' सुखासनु चांद चलाई।
'दुहुं के मन कइ' पूजी आसा। करहिं बहुत मन' भोग बिलासा।
अलख निरंजनु 'जाहि जियावइ'। 'दइअ क लिखा सो मानुस पावइ'।
अरथ दरब 'सभ होइहि' 'चांदा' 'जउ जीवन सयंसारि'।
तुम्हं मुए 'हम फुनि चांदा' मरत न 'लागति' बार॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६५, बी० १०४४-१०४६।

मैं० के संबंध में दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'दसीदन', जो बाद के कडवक के फारसी शीर्षक का ज्ञात होता है। म० में इस कडवक के वाद के दो पत्र नहीं हैं, जिन पर चार कडवक रहे होगे।

शीर्षक—म०: दास्तान नरिंद: शुदन चांदा अली फ़रमान खला इन माली।

पाठान्तर—(१) १. म० पिरम मंत्र जउ गारुरि पढ़ा: बिख लहरि सुनि चांदहि चढ़ा। (२) १. बी० कंकन। २. बी० दीया। ३. बी० बोटै लोर बाधि कर लीया। (३) १. बी० चला लोर तिल इक न रहाई। २. बी० फाद। (४) १. बी० चला लोर मन। २. बी० बहुते करिहैं। (५) १. बी० भुवाह जिवावै। २. बी० जोइ लिष्या सु सोई पावै। (६) १. बी० सब होय-

है। २. बी० में नहीं है। ३. बी० जे जीवत सैंसारि। (७) १. म० तुहु मइ होत जिउ देतउं। २. बी० लागैं।

अर्थ—(१) चांदा को फिर नए जीवन का संचार हुआ, तो लोरिक के मन में अपार सुख हुआ। (२) हाथों का कंगन और समस्त आभरण [लोरिक ने गारुड़ी को] दे डाला, और गारुड़ी ने भी उनको मांग कर लिया। (३) [चांदा के] हृदय में सुमति (चेतना) पुनः आ गई, तब लोरिक सुखासन (एक प्रकार की पालकी) [का प्रबंध] करके [अपने साथ] चांदा को ले चला। (४) दोनों के मन की आशा पूरी हुई, और वे मन में बहुत भोग-विलास [की कल्पना] करने लगे। (५) [लोरिक ने कहा,] "अलख-निरंजन जिसको जिला देता है, वह मनुष्य दैव (विधाता) का लिखा (कर्म का भोग) [भी] पाता है। (६) इसलिए ऐ चादा, यदि संसार में जीवन रहा, तो अर्थ-द्रव्य आदि सभी होंगे। (७) किन्तु तेरे मृत होने पर मुझे [भी] मरते देरी न लगती।"

२१. द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खण्ड

(३१३)

चलत चलत जउ भइ गइ 'सांझा'। 'कीन्ह' बसेरा बन खंड 'मांझा'।
'पाकरि रूंख' देखि 'छतनारी'। 'तेहि' तरि बसे पुरिखु 'अउ' नारी।
'जेंइ' भूंजि सुख सेजि डसाई। 'सूता सूरिज चांद गियं' लाई।
'अंथएं जोन्ह' 'भएउ' अंधियारा। 'पाछिलि' राति होत 'भिनुसारा'।
'तेहिं' खिन बिसहर दीन्ह दिखाई। 'चांदहि' 'डंसि कइ' 'गएउ' लुकाई।
'असि सुकुवारि' 'जो लहरि न आई' 'खात' गई मुरुझाइ।
एकु बोलु 'पइ बोलिसि चांदा' 'लोरहि सोवत' जगाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६१, भो० पत्र ३३ (नवीन), बी० १०७१-१०७३ म० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मैं० : मांदने लोरिक व चांदा शब्द दरे बयाबां व मार ख़ुरद चांदा रा ज़ेरे दरख़्त।

भो० : अज़ रफ़्तन राह शब दर आमद व फ़रूद आमदंद ज़ेरे दरख़्त पाकर व मार गुज़ीद चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० संझा। २ बी० लीन्ह। ३ बी० मंझा

(२) १. बी० पाकुरि रूखु। २. बी० छतभारी। ३. बी० ता। ४. बी० औ। (३) १. भो० जेइं, बी० जीय (जेंइ—फ़ा०)। २. बी० सोवत चांद सुरिज गैं (गिय—फ़ा०)। (४) १. मैं० अथए जोन, बी० अंथई जोन्हि। २. भो० भए, बी० भयो। ३. बी० पिछली। ४. बी० भुनसारा। (५) १. बी० तिहि। २ मैं० चांदइ। ३. मैं० डसि कइ, बी० डसि कै। ४. बी० गयो। (६) १ भो० अति सुकुवारि, बी० अस कुंवरि। २. बी० लहरि न आई, मैं० लहरि जउ आई। ३. भो० खातहि। (७) १. बी० पै बोलसि, भो० पइ बोली चाद। २. बी० सोवत लोरु।

अर्थ—चलते-चलते जब संध्या हो गई, तब उन्होंने [एक] वन-खंड मे बसेरा किया। (२) एक पाकर का छतनार (पत्र-बहुल) वृक्ष देख कर वे पुरुष तथा स्त्री उसी के नीचे बस रहे। (३) खा-पीकर उन्होंने सुख-शैया बिछाई, और सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को गले लगा कर सो गया। (४) ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) के अस्तमित होने पर जब अंधेरा हो गया था, और पिछली रात में जब भिनुसार (प्रभात) हो रहा था, (५) उसी क्षण (बेला) में [एक] विषधर दिखाई पड़ा और वह चांदा को डस कर छिप गया। (६) वह ऐसी सुकुमार थी कि उसे [सर्प-दंश की] लहर भी न आई और वह [सर्प के] काट-खाते ही मुर्झा गई। (७) केवल चांदा लोरिक को सोते हुए से जगा कर एक बोल बोल सकी।

(३१४)

चादा लोरहि कहा जगाई। उठहु नाह धन बिसहरि खाई।
चरि गै बिसु औ नारि न बोलै। जाग्यो(गेउ) नाहु सोवत धन तो लै।
चाद चांद कै मेलसि धाहा। रोइ रोइ लोर खेह सिर बाहा।
झगा फारि पाग भुई मारी। कहै पेट हनि मरौं कटारी।
कुकरमु करि संग लाग्यों(गेउं) तोरैं। तू फुनि हाथ न लागहि मोरैं।
बाट माझ ठसकावसि किय(ए)सि बिरहि मोहि जारि।
लहन मोर अस ही है चांदा कवन खोरि तुम्हारि॥

सन्दर्भ—बी० १०७४-१०७६।

मैं० यहां पर त्रुटित है। उसके पत्र २६१ पर जो चित्र है वह इसी कडवक का है, उसमें लोरिक खड़ा और चांदा विष-मूर्छित दिखाई गई है। भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे जो तर्क है वह इसी कडवक का है। म० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) चांदा ने लोरिक को जगाकर कहा, "हे स्वामी उठो, [तुम्हारी] धन्या (स्त्री) विषधर (सर्प) द्वारा खा (काट) ली गई है।" (२) [तब तक] विष चढ़ गया था, और स्त्री बोल नहीं रही थी, स्वामी उठा तो वह स्त्री [तब तक] सो (पड़) गई थी। (३) "चांद, चांद" [कह] कर वह धाड़ मारने लगा, और वह लोरिक रो-रोकर सिर पर मिट्टी फेंकने (डालने) लगा। (४) उसने झगा (वस्त्र) फाड़ कर पाग भूमि पर पटक दी, और कहने लगा, "मैं पेट में कटार मार कर मर जाऊंगा। (५) कुकर्म कर (अपनी विवाहिता को छोड़कर) मैं तेरे संग लगा, फिर भी तू मेरे हाथ न लगी ! (६) तू मुझे बाट में ही धोखा दे रही है और मुझे विरह में जला रही है। (७) मेरा प्राप्य (भाग्य) ही ऐसा है; हे चांदा, इसमें तुम्हारा कौन-सा दोष है ?"

(३१५)

'छाडेउं' भाइ बाप महतारी। 'तजेउं बियाही' 'मैंना नारी'।
लोगु 'कुटुबु' घरु बारु 'बिसारेउं'। देसु छाडि परदेस 'सिधारेउ'।
'गांउं ठांउं' पोखर अंबराईं। 'परिहरि निसरेउं' 'कूंवा वाईं'।
अरथ दरब 'कर' लोभु न 'कीन्हेउं'। चांद सनेहि 'देसंतरु लीन्हेउ'।
विचि 'हौं(हउं)' 'बाट' परी करतारा। 'ना' धनु 'भएउ' न मीतु पियारा।
'यह रे' बात 'सभ जानहिं' 'चांद मोर होत परान'।
जउ जिउ 'जाइ कया कस दीखइ' 'मइं' का 'करबि' अपान ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६२, भो० पत्र ३४ (नवीन), बी० १०७७-१०७६ : म० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मैं० : गिरियः करदने लोरिक अज़ बेहोशी चांदा।

भो० : तनहाई व बेकसी खुद नमूदन लोरिक अज़ बराय चांदा मुतअ़ल्लिक शुदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० छाड्यों। २. बी० तज्यौं बिवाही। ३. बी० मैं नारी। (२) १. बी० कुटंबु। २. बी० बिसार्यौं। ३. बी० सिधार्यौ (३) १. बी० गाव ठाव। २. बी० परहरि निकर्यो। ३. मैं० गवन उपाईं (४) १. बी० का। २. बी० कीन्हा। ३. बी० दिसंतरु लीन्हा। (५) १ मैं० होइ। २. मैं० बाट बाट। ३. मैं० नहि। ४. बी० हुवा। (६) १ मैं० इहइ, बी० यह र। २. मैं० अब जानउं, बी० सभ जानसि। ३. मैं० तो

मरन निदान। (७) १. बी० होय कया हौं देपौं। २. बी० हौ। ३. बी० करिब।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "मैंने भाई, बाप, मां को छोड़ा, और विवाहिता नारी मैंना को छोड़ा, (२) लोक, कुटुंब और घर-बार को विस्मृत किया, देश को छोड़ कर परदेश चला; (३) गांव, स्थान, पोखर (तालाब) आम्राराम, कूप तथा वापी को छोड़ कर निकला, (४) अर्थ और द्रव्य का लोभ मैंने न किया और चांदा के स्नेह में देशान्तर [का वास] ग्रहण किया, (५) बीच में, ऐ सृष्टि कर्त्ता, मुझ पर यह बाट पड़ी (यह डाका पड़ा) कि न धन [मेरे साथ का] हुआ, और न [मेरी] प्रिय मित्र [मेरे साथ की] हुई। (६) ऐ चांदा, यह बात सभी जानते हैं कि तू ही मेरा प्राण है। (७) यदि जीव चला गया (तुम चली गईं), तो काया कैसे दीखेगी (मैं कहां जीवित दिख सकूंगा)? तब मैं अपने आत्म (जीव) को [रख कर ही] क्या करूंगा?"

(३१६)

जीउ 'पइसारा' निसरि न जाई। बिसु 'न' 'गांठि' 'मरतेउं जेइं' खाई।
'मरिहउं' 'कवनें करि' उपगारा। जीभ खांडि हनि मरउं कटारा।
चाद 'मुएं' कल 'पावइ' लोरा। 'साथि गएं' 'सोवहि गियं मोरा'।
नैन नीर 'भरि' सायर 'पाटी'। 'नाउ चढ़ाइ' चांद गुन 'काटी'।
'दई' गुसाई सिरजनहारा। तोहि छाडि 'किसु' करउं पुकारा।
जस 'कीन्हेउं तस पाएउं' 'रहेउं' चांद मनु लाइ।
जो 'बाउर मनुसइं' 'चितु' 'बांधइ' सो 'अइसेंहिं' पछिताइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६३, म० पत्र १६५ (?), भो० पत्र ३५ (नवीन), बी० १०८०-१०८२।

शीर्षक—मैं० : अैज़न। म० : गिरीस्तन लोरिक फ़रियाद करदने ऊ।

भो० : जाने खुद फ़िदा साख्तने लोरिक अज़ बराए चादा वाक़याए हाल खुद बाज़ नमूदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० पपिया, म० पियारा। २. म० नहिं। ३. बी० गठिना, ४. म० मरब जा, भो० जो मरतेउं, बी० त्यो मरत्यों। (२) १. बी० मरिहौ। २. म० कवनउं कइ, मैं० कोई करी (करि), बी० कौन करि. ३ बी० षंडि। (३) १. बी० मुइ। २. म० पावहि, भो० पाउब, बी० पाइहौ। ३. बी० साथनि गई, मैं० म० साथ गए। ४. म० सोइहि तोरा,

भो० सोइहि गियं सभनहि मोरा, बी० सोभ लै। (४) १. म० भो० मइ, बी० मो। २. बी० फाटे। ३. बी० नाव चराय। ४. बी० काटे। (५) १ म० दया। २. म० भो० केहि, बी० कस (किसु—फ़ा०)। (६) १. बी० जस कीन्हौं तस पार्यौ। २. बी० रह्यौं। (७) १. म० बाउर मनुसहि, बी० बावर मनसहि। २. मै० चित (चित्त)। ३. बी० बाध्यो। ४. बी० अैसै।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "[मेरे शरीर में] जो जीव का प्रवेश है, वह निकल कर जा नहीं रहा है; गांठ में विष भी नहीं है, जिसे खाकर मर जाता। (२) [फिर] किस उपकार (उपाय) के द्वारा मरूंगा? जिह्वा को खंडित करके और कटार का आघात करके मरूंगा। (३) ऐ चांदा, तू उसके मरने पर लोरिक को कहां पा सकेगी? साथी के जाने पर तू ग्रीवा मोड़ कर सोया करे! (४) नेत्रों के नीर से सागरों को भर कर मैंने पाटा, तो [उस अश्रु-सागर से पार करने के लिए] ऐ चांदा, तूने नाव पर मुझे चढ़ाकर उसका गुण (रस्सा) काट दिया!" (५) "ऐ दैव, स्वामी और सृष्टि कर्त्ता, तुझे छोड़ कर किस की पुकार (गुहार) करूं? (६) मैंने जैसा किया, वैसा पाया, [क्योंकि] मैंने अपने मन को चाद (चांदा) से लगा कर रक्खा था। (७) जो बावला मनुष्य से चित्त को बांधता है, वह इसी प्रकार पछताता है।"

(३१७)

'बैरिनि भइ सो पाकरि' रूंखा। 'जेहिं' तरि बसें 'परा' मोहि दूखा।
काटि पेड 'जरि मूरि उपारउं'। 'डारि डारि' 'चइरी कइ' 'फारउं'।
सरु रचि आगि चहूं दिसि'बारउं'। चांद 'लाइ' 'गियं आपुहि' 'जारउं'।
देस 'देस मोरी भइ गइ' लाजा। सूरिजु 'चांद क निसि' 'लइ' भाजा।
'अब जउ पिरिति नहिं ओर निरीबाहउ'। नरक कुंड सभ पुरुषा बाहउं।
पति न होइ सत 'छाडें' हानि होइ कुर कानि।
'तउ रें बीर' 'जउ सिर पहुंचावउं' धीय 'पराई' आनि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६४, म० पत्र १६७, बी० १०८३-१०८५।

म० में इसके बाद तर्क 'कारी' है जो अगले कडवक का है। भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क 'बैरिनि' है, जो इसी का है।

शीर्षक—मै० गुफ़्तने लोरिक दरख़्त पाकर रा।

म० : मलामत करदन लोरिक अज़ दरख़्त रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० बैरनि भयो सु पाकुरि। २. बी० जा। ३. बी० परै। (२) १. बी० जरमूर उजारौ। २. बी० डार डार। ३ बी० छेदि कै। ४ मैं० बारउं, बी० फारौं। (३) १. बी० वारौं। २. म० लागि। ३. बी० गै आपनु। ४. बी० जारौ। (४) १. मैं० देसंतर भइ मोरि। २. म० चांदहि, बी० चांद कै। ३. बी० लै। (५) १. मैं० जउ एह बात ओर निरबाहउ, बी० अब जे पिरति न वोरि निबाहौ। (६) १. बी० हारे। (७) १. मैं० तोरे बूत, बी० तौरे पुरषु। २. बी० वोरि निबाहौं। ३. म० परारी।

अर्थ—(१) पाकर का वह (यह) वृक्ष मेरा वैरी हुआ, जिसके नीचे निवास लेने के कारण मुझे दुःख [झेलना] पड़ा। (२) [इस] पेड़ को काट कर इसको जड़-मूल से मैं उत्पाटित कर रहा हूँ और [इसकी] एक-एक डाल को चैलियों के रूप में फाड़ (चीर) रहा हूं। (३) [उससे] शर (चिता) रच कर चारों ओर से आग जला रहा हूँ और चांद को गले से लगा कर अपने आपको उसमें जला रहा हूँ। (४) मेरी यह लज्जा [की बात] देश-देशान्तर मे हो चुकी है कि सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को रात में लेकर भाग गया है। (५) यदि अब प्रीति का समाप्ति तक निर्वाह न करूँ, तो मै [अपने] समस्त पूर्व-पुरुषों को नरक कुंड में झोंक दूंगा। (६) सत्य छोडने से पत (प्रत्यय) नहीं रहता है, और कुल-कानि की हानि होती है, (७) [अतः ऐ चांदा,] तुझ पराई कन्या को लाकर यदि इस प्रीति को सिरे (समाप्ति) तक पहुँचाऊँ, तभी मैं वीर हूँ।"

(३१८)

'कारे' नाग 'सतुर' 'बटवारे'। मींत 'बिछोह' दीन्ह हतियारे।
'बरु मोहि खातिसि' फिटु रे कुजाती। काहे 'दूखे' मोर 'संघाती'।
'तोरें' 'ठांउ आइ जउ बसई'। 'पुरुख छाडि मेहरिहि कत' 'डसई'।
मतरु सकति 'किएं' सतुरु 'चलावा'। 'केइं रे' 'नाग तूं गोहनि लावा'।
'कइ तूं' बावन बीर पठावा। 'चांदहि डसइ' नाग होइ आवा।
'जेहिं' कारनि 'मइ जीव निबारा' 'देखउं' बहुल संताप।
तेहि सेतीं बिच 'बाहे' 'अरु पचि' मारे 'साप'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६५, म० पत्र १६७, भो० पत्र ६२ (नवीन), बी० १०८६-१०८८।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने लोरिक बर मार रा व तास्सुफ़ खुरदन।
म० : मलामत कर्दने लोरिक व बददुआए करदने मार रा।

भो० : बामादः गुफ़्तने लोरिक वाक़िए हाल खुद अज़ बुराई चांदा अंदेश मद।

पाठान्तर—(१) १. भो० काले। २. बी० सतर। ३. म० भो० बट-वारे। ४. बी० बिछोर। (२) १. बी० बरि मोहि षात कि। २. बी० डसिया, मै० देखे (?), म० दूखे तइं। ३. बी० संगाती। (३) १. मै० तोरे, बी० तोरी (तोरे—फ़ा०)। २. बी० ठाब आइ जौ बसे। २. म० पुरुख छाडि कस तिरिही, मै० पुरुष छाडि कत नारी, बी० पुरपु छडि कत मिहरी, भो० पुरुख छाडि मेहरिहि कस। ४. बी० डसै। (४) १. मै० केई, बी० के। २. म०, भो०, बी० सतुरु (सतरु—बी०) पठावा (तुल० पांचवी अर्द्धाली)। ३. बी० कै र। ४. म० भो० काल तू गोहनि (गोहनहि—भो०) लावा, मै० नाग तू गोहनि आवा। (५) १. भो० कै तोहि, बी० कै तहु। २. बी० चांदहि डसे, मै० चांदइं डसहि। (६) १. बी० जिहि। २. म० हउं जीव निबारेउं, बी० हौ जीउ उबारौं। २. बी० देपौं। (७) १. बी० पारा। २. बी० रे बिजु, भो० पचि र (रे)। ३. मै० सांप सांप।

अर्थ—(१) ऐ काले नाग, सत्वर डाका डालने वाले, ऐ हत्यारे, तूने मुझे मित्र का वियोग दिया! (२) भले ही तूने मुझे खाया होता! ऐ कुजाति, तू नष्ट हो जा, तूने मेरे संगी को क्यों दोष (दुःख) पहुँचाया? (३) यदि [कोई] तेरे स्थान पर आकर बसे, तो तू पुरुष को छोड़ कर नारी को क्यों डंसे? (४) [अथवा] तू शक्ति से सत्वर चलाया हुआ मंत्र है? ऐ नाग, तुझे किसने साथ लगा दिया था? (५) अथवा, तू बावन वीर का भेजा हुआ था, और चाद को डंसने के लिए नाग बन कर आया हुआ था। (६) जिस [चांदा] के कारण मैंने [गोवर से भागकर] अपना जीव बचाया, और [जिसके कारण] मैंने बहुतेरे संताप देखे, (७) उसी [चांदा] से तूने बीच डाल दिया, और हार कर, ऐ सर्प, [उसी को] तूने मारा!"

(३१९)

'कइ रे' कुदिन 'हम' पायंतु धरा। 'कइ रे कलापु' 'मांजरि' 'कर' परा।
'कइ रे कुटुंब' जिउ भारी कीन्हा। 'कइ रे' सरापु माइ मोहि दीन्हा।
'घरी' धरत 'कइ' पंडितु भुलानां। 'कइ हम' 'कुसगुनि' कीत पयाना।
अत 'बड भएउं न चांदु दुखाएउं'। 'कवल' पाप दइया 'मइं' पाएउ।
यह रे' महर धिय 'नारि' 'अबोसी'। 'केइं- रे' निपूती चांदा कोसी।

'कइ केहुँ' किच्छु 'देइ मोकरावा' दोसु भुवंगहि लाग।
'कवनि नींदि' तुम्हं 'सूतिहु' चांदा 'सपनहि भएउ' सुहागु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६६, म० पत्र १६८, भो० पत्र ३६ (नवीन), बी० १०८६-१०९१।

म० में इस कडवक के बाद तर्क 'नाग भेस' है, जो अगले कडवक का है। भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क 'कै' रे कुदिन' है, जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १. बी० कै र। २. भो० मइं। ३. बी० कै सरापु, म० कइ कराप। ४. मैं० मैना। ५. बी० का। (२) १. बी० कै कुटंब। २. बी० कै रु। (३) १. बी० परी। (घरी—फ़ा०)। २. मैं० गा, बी० कैं। २. भो० कै मइं, बी० कै हम। ३. मैं० कुसगुन कुसगुन, बी० कुसुगनि। (४) १. बी० बर भयो उचाटु दुपायों। २. बी० कौन। ३. म० हुउं, बी० मैं। ४. बी० पायों। (५) १. बी० रु। २. म० भो० चांद। ३. भो० निदोषी। ४. बी० कै रु। (६) १. मैं० कइ केउ, बी० कै काहू। २. म० देइ मोगलावा, भो० देइ मोगराए, बी० दौ मुकरावा। (७) १. बी० कौन नींद। २. मैं० सूती, बी० सोवोहु। २. मैं० सपनेइं भयेउ, बी० सुपनै भयो।

अर्थ—(१) "या तो हमने किसी बुरे दिन को पायंत रक्खा (प्रस्थान किया), अथवा हम पर मांजरी (मैना) का कलाप (दुःखित होने का प्रभाव) पड़ा है? (२) अथवा, मेरे कुटुंबियों ने जी भारी किया है? अथवा, मेरी माता ने मुझे शाप दिया है? (३) अथवा, [यात्रा की] घड़ी निर्धारित करते हुए पंडित ने भूल की है? अथवा, हमने कुशकुनों में प्रयाण किया है? (४) इतना बड़ा (इतनी बड़ी अवस्था) का हो गया हूं, [किन्तु] मैंने चींटे को भी दुःखित नहीं किया है; [तब] यह कौन-सा पाप (किस पाप का भोग), हे दैव, मैंने पाया है? (५) महर की यह दुहिता निर्दोष मारी है, [फिर] किस निपूती के द्वारा चांदा कोसी गई है? (६) अथवा, किसी ने कुछ दे (खिला) कर इसे मुक्त किया (आने दिया), और दोष भुजंग को लगा है? (७) ऐ चांदा, तुम कौन-सी निद्रा में सो गई हो कि स्वप्न ही मेरा सौभाग्य हुआ है?

(३२०)

नाग भेस होइ 'केइं' धनि 'हरी'। 'लोरहि' राम अवस्था परी।
रामहि हनिवंतु 'भएउ संघाता'। मोंहि न 'कोइ' विनु दई विधाता।

'दुसर न कोउ जो कर' उपगारा। सिरजनहार 'देहि' निस्तारा।
'हनिवंत सीता कहं धसि बारी'। लंका खूंट खूंट 'परजारी'।
'हउं फुनि' 'चांद हरी जउ' 'पावउं'। लंका 'छाडि पलंका' 'धावउं'।
'ओखदि मूरि' चांद 'जेहिं बहुरइ' 'जउ' 'कोइ देइ बताइ'।
'सातउ बादर' 'सात भुइं' इक इक 'ढूंढउं' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६७/१, म० पत्र १६८, भो पत्र ३७ (नवीन), बी० १०९२-१०९४।

शीर्षक—मै० अंजन लहू। म० : फ़रियाद व जारी करदन लोरिक व गुरबी व तनहाई खुद रा।

भो० : वाक़अ हाल खुद नमूदन लोरिक चुनांचि राम उफ़तादह बूंद बराए सीता रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कैं, मै० में नहीं है। २. मै० बी० धरी। ३ बी० लोरिक। (२) १. बी० भयो सगाता। २. बी०, भो० केऊ, म० कोउ। (३) १. बी० दुसर न कोई करि, म० मरहुं कोई जो करइ। २. मै० देवहि। (४) १. बी० हनिवति सीता कौ धस मारी। २. मै० कइ जारी, भो० फिरि जारी। (५) १. बी० हौं फुनि, मै० हउं पुनि, भो० हौं जउ। २ भो० चांद हरी सुनि, बी० चांदै हिरी ज्यों। ३. भो० पावहुं, बी० पाऊ। ४ बी० छोडि बिलंका। ५. मै० जावउं, भो० धावहुं, बी० धाऊ। (६) १ बी० औषध मूरि। २. मै० केहु जियई, भो० जेहि जीवइ. बी० जौ बहुरै। ३. म० जोति, मै० में नहीं है, बी० है। ४. म० भो० केउ (कोइ—म०) देइ दिखाइ, (७) १. बी० सातौ बादर, म० भो० सातउ सरग। २. बी० सातौ भुई इक इक। ३. बी० ढूढौ, बी० भो० हेरउं।

अर्थ—(१) [उसने कहा,] "नाग के वेष में होकर किसने [इस] स्त्री को हर लिया कि लोरिक को (के ऊपर) राम की जैसी अवस्था (विपत्ति) पड गई ? (२) राम को तो हनुमान का संग हो (मिल) गया था, जब कि मुझे विधाता के बिना (अतिरिक्त) कोई नहीं है। (३) [मेरा] दूसरा कोई नही है जो उपकार (उपाय) करे; ऐ सृष्टिकर्ता, तू ही मुझे [इस संकट-सागर से] निस्तार दे ! (४) हनुमान ने सीता के लिए [अशोक] वाटिका मे धंसकर (प्रविष्ट होकर) लंका को तनिक-तनिक करके जला दिया था, (५) मैं भी यदि हरी हुई चांदा को पा सकूं, तो लंका को छोड़कर [उसके आगे] पलंका तक दौड़ जाऊं। (६) चांदा जिस सेबाहुड (लौट) जाए (आए)

यदि कोई मुझे ऐसी औषधि-मूल बता दे, (७) तो उसे मैं सातों बादलों (आकाशों) तथा सातों भूमियों [में से] एक-एक में जाकर उसे ढूंढ़ डालूं।"

(३२१)

चाद लागि 'मइं' बहु दुख 'देखा'। गनत न 'आवइ' 'एकउ' 'लेखा'।
मारेउ बांठ 'किएउं सुध' राई। 'राखेउं' 'महरा कइ' महराई।
'परेउं खाट लइ' 'पिरम जउ' मारा। आइ बिरसपति दीन्ह अधारा।
एकु 'बरिस' 'मढ देवर जागेउं'। जोगी 'भेख भीख फुनि' 'मांगेउ'।
बरहा मेलि सरगि 'चढ़ि धाएउं'। सिर 'सेउं' खेलि चांद 'लइआएउ'।
चोरु चोरु 'कइ' मारत 'उबरेउं' 'तेइं धनि लिएउं छुड़ाइ'।
अब 'तेइं' 'धनि' बनखंडि 'कइ छाड़ेउं' 'केंहि गुहराऊं(वउं) जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६९, म० पत्र १६९, बी० १०९५-१०९७।

म० मे इस कडवक के नीचे तर्क है 'संगि गो' जो कडवक ३२२ का है।

शीर्षक—मैं० : ऐज़न लहू। म० : दर्द मंदी खुद गुफ्तन लोरिक दरख्त मुकाबिलन् (?)।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैं। २. मैं० देखे, बी० देष्यों। ३. बी० आवत। ४ म० कवन सो, बी० बनत न। ५. मैं० लेषे, बी० लेख्यौ। (२) १. बी० षदेर्‌यों। २. बी० राषी। ३. बी० महर केरि। (३) १. बी० पर्‌यौ षाट लै। २. बी० पिरम क, मैं० बिरह जउ। (४) १. बी० बरसु। २. बी० मढु देवरु जाग्यौं। ३. मैं० भेस होइ भीख, बी० भेस भीख फिरि। ४. बी० माग्यौ। (५) १. बी० चरि धायो। २. बी० स्यों। ३. बी० लै आयौ। (६) १. बी० मैं० करि। २. म० छूटेउं, बी० में नहीं है। ३. बी० चादा लियो छुडाइ, मैं० चांद लिएउ लुकाइ। (७) १. बी० तें ले, मैं० तेइ। २ बी० धन, म० धनि पुनि। ३. बी० छाड्यौं। ४. म० गहि गहि आनउ जाइ, बी० किहि गुहराउ जिवाय।

अर्थ—(१) "चांदा के लिए मैंने बहुतेरा दुःख देखा; एक भी लेखे मे वह गिनती में नहीं आ रहा है। (२) मैंने बांठ को मारा, राजा [रूपचंद] को शुद्ध (सीधा) किया तथा महर की महराई रक्खी। (३) जब प्रेम के द्वारा मै मारा गया (आहत किया गया) और मैं खाट लेकर पड़ गया, उस समय बृहस्पति ने आकर मुझे [जीवन का] आधार दिया। (४) एक बरस तक मै मढ़-देवालय में जागता रहा और योगी के वेश में होकर भीख माँगता रहा।

(५) बरहा (रस्सा) डालकर मैं आकाश (धवलगृह के ऊपरी खंड) पर चढ़ दौड़ा, और सिर (जीवन) के साथ खिलवाड़ कर [वहाँ से] चांदा को लेकर आया। (६) 'चोर' 'चोर' [पुकारा जा] कर मैं मारे जाने से बचा, [उस समय] उस स्त्री ने ही मुझे छुड़ा (बचा) लिया [अन्यथा न बच पाता]। (७) अब उसी स्त्री को, मैंने बनखंड में [ला] कर छोड़ (गंवा) दिया, तो किसको जा कर पुकारूं ?"

(३२२)

'संगि' न साथी 'भइं भइं' रोवा। मित 'जो होत'(हुत)'सो' दई बिछोवा।
आंसू 'सायर भरि' 'उपटाए'। 'नयनन्ह्' वनखंड 'रोइ बहाए'।
'कहि कहि' चांद चांद 'गुहरावइ'। 'धुनि धुनि' सीसु नारि'पइं''लावइ'।
उतरु 'न देइ लोर मुंह' जोवा। 'नाग' डसी बिसु 'लहरी(रि)न्ह'सोवा।
'गांउ ठांउ होइ तहं' 'धांवउं'। बिखम उजारि गुनी कत 'पावउं'।
माइ बाप 'गुरु दूलह' दुख न जान कस होइ।
जउ सिर 'परइ' 'तउ हि पइ' 'जानिय' दुखी 'होइ जनि' कोइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६७।२, म० पत्र १६६, भो० पत्र ४६ (नवीन), बी० १०६८-११००।

शीर्षक—मैं० : अंजन लहू। म० : दर तनहायगी व ग़रीबी ख़ुद गुफ़्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० संग। २. बी० भैं भैं। ३. म० जो हुता, बी० जु होत। ४. बी० सु। (२) १. बी० सैर भरैं। २. मैं० उपटावइ। ३. बी० नैनहु। ४. म० रोइ पहाए, मैं० रोइ बहावइ। (३) १. म० करि करि। २. बी० गुहरावै। ३. म० धरि धरि। ४. म० बी० पां, भो० पाय। ५. बी० लावै। (४) १. मैं० न देहि, भो० न देहिं। २. मैं० बी० नारि मुप। ३. म० बी० सांप। ४. लहरन्हि, मैं० लहरइं, बी० लहरेहि। (५) १. बी० गाव ठाव होइ तौ ब, मैं० गांउ ठाउं होइ तहंवा। २. मैं० धावउं, बी० धाऊं, भो० धांएउं। ३. मैं० पावउं, बी० पाऊं, भो० पांएउं। (६) १. बी० की दुलही, मैं० गुरु दूलहि। (७) १. भो० मैं० जौ सिर परा, बी० जिह सिर परै। २. भो० तउ, मैं० सो, बी० सु। ३. बी० म० जानसि, भो० जान्या। ४. बी० होउ जिन।

अर्थ—(१) उसका [अब] न कोई संगी था और न साथी वह घूम-

घूम करके रोया, क्योंकि उसका जो मित्र था, उसे दैव ने उससे वियुक्त कर दिया था। (२) आंसुओं से सागर भर कर [उसके द्वारा] उमड़ाए जा चुके थे और नेत्रों के द्वारा रो-रोकर वनखंड बहाए जा चुके थे। (३) वह 'चांद-चांद' कह कहकर पुकार (चिल्ला) रहा था, और अपना सिर पीट-पीट कर उस नारी के पैरों से लगा रहा था। (४) वह उत्तर नहीं दे रही थी, [इसलिए] लोरिक उस का मुंह देख रहा था, किन्तु वह नाग द्वारा डसी हुई उस के विष की लहरों में सो रही थी। (५) [लोरिक ने कहा,] "यहां कोई गांव-ठांव होता तो वहां दौड़ जाता, इस विषम उजाड़ में कोई गुणी कहाँ पाऊं ? (६) मां, बाप, गुरु और दूल्हा (विवाहित पति) नहीं जानते हैं कि दुःख कैसा होता है। (७) जब वह सिर पर पड़ता है तभी, हो न हो, उसको जाना जा सकता है। [भगवान करे] दुःखित कोई न हो!"

(३२३)

'जरमि' न छूट पिरम कर बांधा। पिरम खांड 'आहइ' बिस सांधा।
'जेहिं यह' चोट 'लागि' 'सो' जानी। 'कइ' लोरिक 'कइ' चांदा रानी।
'कोइ' न जान दुख काहू केरा। 'सो पै(पइ) जान' 'परइ जेहिं' बेरा।
पिरम 'आंच' 'जेहिं हियरे लागइ'। नींद 'जाइ तपि तपि' निसि 'जागइ'।
सात सरग 'जउ बरिसहिं' आई। पिरम आगि 'कइसेइं' न बुझाई।
चिनगि एक' जउ 'बाहेर मारइ' 'एहि' पिरम 'कइ' झार।
भसम 'होइ' 'जरि' धरती 'तिल' इक 'सरग पतार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६८।१, म० पत्र १७०, बी० ११०१-११०३।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'जेहि', जो अगले कडवक का है।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क है 'जरम', जो इसी का है।

शीर्षक—मै० : अैज़न लहू। म० : दर्द मंदी व सोज आशिक़ा ईशां।

पाठान्तर—(१) १. बी० जनमि। २. मै० होइ, बी० खइये। (२) १. बी० जें याह। २. म० लागी, बी० लाग। ३. बी० तें। ४. बी० कैं। (३) १. म० सुखी, बी० को। २. म० जानइ सोइ। ३. बी० परै जिह। (४) १. मै० झार। २. बी० जिह्नि हीरै लागै, मै० जेंहि हिरदैं लागइ। ३. मै० न जान तपत, बी० जाइ तापित। ४. बी० जागैं। (५) १. बी० जौ बरर्षाहि। २. बी० कैसैं, म० कैसेहुं। (६) १. बी० चिरंग (चिनगि–ना०)

ये [क] । २. बी० वाहुरि मारै । ३. मै० एहि, बी० याहु रु । ४. बी० की । (७) १. बी० होय । २. मै० जाइ । ३. म० खिन । ४. बी० सुरग पतारि ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "प्रेम के द्वारा बांधा (बंदी किया) हुआ कभी छूटता नहीं है, [उसके लिए] प्रेम विष से युक्त किया हुआ खड्ग [होता] है। (२) जिसको इसकी चोट लगती है, वही इसे जानता है; या तो [इसे] लोरिक जानता है और या तो [इसे] चांदा रानी जानती है। (३) कोई [अन्य व्यक्ति] किसी का दुःख नही जानता है; उसे, हो न हो, वही जानता है जिस के बेडे पर वह पड़ता है। (४) प्रेम की ज्वाला जिसके हृदय मे लगती है, उसकी नींद चली जाती है, और तप्त होकर वह रात में जागता है। (५) सातों आकाश (आकाशों के बादल) यदि आ बरसें, तो भी प्रेम की आग किसी प्रकार से नहीं बुझती है। (६) प्रेम की यह ज्वाला इसी प्रकार अपनी एक चिनगारी यदि बाहर मार (निकाल) दे। (७) तो उसके एक तिल मात्र से धरती, आकाश तथा पाताल जलकर भस्म हो जाएं।

(३२४)

'जेहिं रे पिरमु तेंहि' बिरहु संतावा। बिरहु 'जेंहि तेंहि' नींद नआवा।
पिरम सेलु 'आहइ अनियारा'। 'पैग न जोर' 'पिरम कर मारा'।
पिरम घाउ तेंहि पूंछहु' जाई'। 'जेइं यह भाल करेजइं' खाई।
पिरम 'घाउ' 'ओखदि नहि मानइ'। पिरम बान जेहिं 'लाग सो जानइ'।
भल 'फुनि होइ' 'खांड' कर मारा। जरम न 'पलुह' 'पिरम' 'कर' जारा।
'कवनिहु' भांति न 'छूटत देखेउं' 'तेहि रे' पिरम 'कइ' झेल।
पिरम खेल 'सोई' 'पइ' 'खेलइ' जो सिर सेतीं खेल॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६८।२, म० पत्र १७०, बी० ११०४-११०६।

शीर्षक—मै० : अैज़न लहू। म० : दर शौक़ व मुहब्बत ऊ गुफ़्तारी।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिहि रि पिरमु तिहि। २. मै० संतावइ। ३ बी० जिही तिह। ४. मै० पिरम सुहावा। (२) १. मै० बिह। २. मै० खरि पैं अनियारी, बी० घाउ अनियारा। ३. म० परग न जाइ। ४. मै० बिरह कर मारी। बी० में इस चरण के स्थान पर भी पांचवीं अर्द्धाली का दूसरा चरण है। (३) १. मै० बिरह पीर तेहि बूझउ, बी० पिरम परी (पीर) तिहु पूछौहु। २. बी० जो याह रि करेजौ। (४) १. बी० पीर। २. बी० औषध नहि मानै। ३. बी० लागै सो जानै। (५) १. बी० जु होय। २. मै० खरग।

३. मैं० पलुत, बी० पल्है । ४. मैं० बिरह । ५ बी० का । (६) १. बी० कौनहि, म० कउनिउं । २. बी० घूटइ, मैं० छूटहि । ३. मैं० परे, बी० यह रु । (७) १. मैं० सो । २. म० परि, बी० पै । ३. बी० षेलै ।

अर्थ—(१) "जिसे प्रेम होता है, उसे विरह संतप्त करता है, और जिसे विरह होता है, उसे नींद नहीं आती है । (२) प्रेम एक खरी नुकीली बर्छी है, प्रेम का मारा [इसीलिए] एक पग भी नहीं जोड़ पाता है । (३) प्रेम-घाव [के बारे में] उससे जाकर पूछो जिसने कलेजे में इस बर्छी को खाया हो । (४) प्रेम (विरह) का घाव औषध नहीं मानता है, प्रेम (विरह) का बाण जिसे लगता है, उसे वही जानता है । (५) खांड (खड्ग) का मारा पुनः अच्छा हो जाता है, किन्तु प्रेम का जलाया हुआ जन्म (जीवन) भर नहीं पलुहता (अंकुरित होता) है । (६) उस प्रेम की झेल में [पड़ने के अनंतर किसी को] किसी प्रकार से छूटते हुए मैंने नहीं देखा है । (७) प्रेम का खेल, हो न हो, वही खेलता है जो उसे सिर से (सिर की बाजी लगा कर) खेलता है ।"

(३२५)

इकु दिनु दूसरि 'रइनि निरिबही' । चांद न 'छूटि गहन जउ गही' ।
मन चिंता 'चखि' नींद गंवानीं । दई दई 'कइ रइनि' बिहानी ।
लोरिक 'देखि नियर भिनुसारा' । 'चंदन' काटि 'कइ चियहिं' संवारा ।
'चांद कांध कैं(कइ)सरि पहुचाई । आनी आगि चीह(चियहि)सिरगाई' ।
फिर 'जउ' देख गुनी इकु आवा । मंतरु 'बोल अउ' डाक बजावा ।
घालि पाग 'गियं अपनी' 'लोरिकु' परा 'पाइ भहराइ' ।
'सोवत' सांप डसी 'धनि' चांदा 'तूं मोहिं' देहिं 'जियाइ' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७०, म० पत्र १७१, बी० ११०७-११०६ ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'हाथ', जो अगले का है ।

शीर्षक—मैं० : दुअम रोज़ आमदने गुनी व पाय उफ़तादने लोरिक बर ऊ रा ।

म० : दो शब व रोज़ मानदन चांद अज़ बेहोशी ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० रैनि तसि भई, बी० रैनि निरबाही । २. बी० छुटै गरहनै गाही । (२) १. मैं० कइ । २. बी० कै रैनि । (३) १. बी० देष नेर (नियर—फ़ा०) भुनसारा । २. बी० चांदन । ३. बी० कैं चीह । (४) १. मैं० चांद मांथ ले सरि पहुछाई: नैंन नीर तेहि आगि बुझाई; म०

चाद कांध कै मेरिहउं जाई : आनी आगि चाह् (चीहि—ना०) बरि जाई। (५) १. बी० जौ। २. बी० दे औ। (६) १. बी० गैं आपनै। २. बी० लोरु। ३. म० पाव सहराइ, बी० तिसु पाई। (७) १. म० सोवतहि। २ बी० धन। ३. बी० तहु मो। ४. बी० जिवाई।

अर्थ—(१) एक दिन [बीता] और दूसरी रात निबही (व्यतीत हो गई), [किन्तु] क्योंकि ग्रहण ने उसे पकड़ा था, [इसलिए] चांदा उससे मुक्त न हुई। (२) मन में चिन्ता [होने] के कारण [लोरिक की] आंखों मे [की] नींद गंवा उठी; 'दैव, दैव' करके [उसकी] रात्रि व्यतीत हुई। (३) लोरिक ने प्रभात को सन्निकट देखकर चंदन [का वृक्ष] काट कर चिता सवारी। (४) चांदा को कंधे पर लेकर और चिता पर उसे पहुंचा कर वह आग लाया और उसने चिता को सिलगा दिया। (५) वह फिर जो देखता है, तो एक गुणी आया हुआ [दिखाई पड़ता] है, जो वह मंत्र बोल रहा है और डाक बजा रहा है। (६) अपनी ग्रीवा में पाग डालकर लोरिक उसके पैरों पर भहरा (वेग से गिर) पड़ा, (७) [और उसने कहा,] "सोते समय सांप के द्वारा स्त्री चांदा डस ली गई है, उसे तुम मेरे लिए जिला दो।"

(३२६)

हाथ 'क मुंदर' 'मकर' कटारा। कान 'क कुंडर चांद' 'गियं' हारा।
'अउर जो' सा(सां)ठि 'गांठि हइ' 'मोरी'।
'देहौं(हउं) सभ' 'बलिहारइं तोरी'।
करु उपगारु 'करइ जउ पारसि'। पिता मोर 'जउ' मोहि निसतारसि।
तोरें 'गुनहीं' चांद 'जउ लहऊं'। दुहूं जरम चेर 'होइ रहऊ'।
'जउ न होइ' पतियारु हमारा। 'बचा बांध कइ करु' पतियारा।
'कुवां डाभ' जल 'मेलउं' 'सत सइ होइ तउ' लेऊं(उं)।
जो रे 'बस्तु' 'मइं बोली' चांद 'चेतें' 'तुम्हं' देऊं(उं)॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७१, म० पत्र १७१, बी० १११०-१११२।

शीर्षक—मै० : शिरीनी (ज़रीन: ?) क़ुबूल करदन लोरिक बर गुनी रा। म० : जरीन: कुबूल करदन लोरिक हकीम अफ़सूंगर रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० का मूदरा। २. मै० खरग, बी० करि का। ३ म० कुंड चांदा, बी० का कुंडरु चाद। ४. बी० गैं। (२) १. बी० और। २. म० हइ गांठीं, बी० गांठि है। ३. बी० मोरै। ४. मै० सो फुनि देउ।

५. बी० बलिहारैं तोरैं, मै० बरिवारी तोरीं। (३) १. बी० करनु जो पावसि। २. बी० तूं। (४) १. म० बचन। २. म० जउ पइहउं, बी० जौ पाउं। ३. म० तोर होइहउं, बी० तोरौ कहांउ। (५) १. बी० जो न होय। २. मै० बचा बंध करि करहि, बी० बाचा बांधि रु करि। (६) १. मै० कुंवइ दाब, बी० कुंवा डासु। २. बी० मेल्यों। ३. मै० कइ सत सेतीं, बी० सत सई होय त। (७) १. मै० रे पता, बी० रु बस्त। २. बी० मैं बोल्यों। ३. बी० जिये। ४. म० तउ, बी० सौ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "हाथ की मुद्रा, मकर-कटार, कानों के कुंडल, चांदा की ग्रीवा का हार, (२) तथा और भी जो द्रव्य मेरी गांठ में है, वह सभी मैं तेरी बलिहारी दूंगा। (३) उपकार (उपाय) कर, यदि तू कर सके; तू मेरा पिता [होगा] यदि तू [इस संकट-सागर से] मेरा निस्तार कर देगा। (४) यदि तेरे गुण (उपाय) से चांदा को पा जाऊं, तो दोनों जन्मों (इस जन्म और अगले जन्म) में तेरा सेवक बन कर रहूं। (५) यदि मेरा विश्वास न हो, तो वचन-बंध करके मेरा विश्वास कर। (६) मैं [चाहे] कुएं के दाभ में जल डालूं [और डाल कर लूं], [चाहे बैठे-बैठे] सत्य से लूं, (७) जो भी वस्तुएं मैंने कही हैं, चांद के चेतित होने पर तुम्हें दूंगा।"

(३२७)

'कवन' लोग तुम्हं 'गारुरि पूछइ'। 'नांउं कहउ' अउ जातिहुं बूझइ।
जाति 'गुवार' गोवरु 'मोर' ठाऊं। 'धनि' चांदा 'मोहि' लोरिक नाऊं।
गुनी कहा 'जिनि' जीउ डुलावसि। धीरु 'बांधि' 'अब' चांदहि पावसि।
'बोलि' मंतरु 'छिरकेसि लइ' पानी। उतरा बिसु 'चांदा' 'अंगिरानी'।
धाइ लोर 'धरि' बांह उचाई। पिरम 'पियारि' चांपि 'गियं' लाई।
'सरग हुत' चांद उतरि 'जनु' 'आई' देखि 'लोरु' बिहसान।
'कंवल' भांति मुख बिगसा दुखु 'जो हुत कुंबिलान'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७२, म० पत्र १७२, बी० १११३-१११५।
म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'दाउद' है, जो कडवक ३२६ का है।
शीर्षक—मै० : मंतर ख्वानीदने गुनी व होशियार शुदने चांदा।
म० : पुरसीदने हकीम जात व नाम लोरिक व चाँदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौन। २. बी० गारुर पूछे। ३. मै० नाउ कहउ, बी० नांव कहसि। ४. म० अउ जातिउ पूछइ, बी० औ जातेहि इछें।

(२) १. बी० मेरौ। २. बी० धन। ३. बी० मोरो, म० अहइ। (३) १. बी० जिन। २. मैं० बंधि। ३. बी० जौ। (४) १. बी० पढा। २. बी० छिरका लै। ३. मैं० चांद। ४. बी० अगुरांनी। (५) १. बी० घर। २. बी० गै। (६) १. म० सरगहिं, बी० सरगैंहु। २. बी० भुई। ३. म० में नहीं है। ४ मैं० सूर। (७) १. बी० कंबर २. बी० सु होय सु बुझान।

अर्थ—(१) गारुड़ी पूछने लगा, "तुम कौन लोग (किस देश-प्रदेश के) हो ?" "तुम अपना नाम और अपनी जाति कहो," उसने कहा। (२) [लोरिक ने कहा,] "मेरी जाति ग्वाले की है और गोवर मेरा स्थान है, स्त्री को चादा है और मुझे लोरिक का नाम [मिला] है।" (३) गुणी ने कहा, "अपने जीव को तू मत विचलित कर; धैर्य बांध, अब तू चांदा को पा जाएगा।" (४) उसने मंत्र कह कर और पानी लेकर छिड़का, विष उतर गया और चादा ने अंगड़ाई ली। (५) लोर ने दौड़ कर और [चांदा की] बांह पकड कर उसे उठाया, और अपनी प्रेम-प्रिया को चिपका कर गले से लगाया। (६) मानो चांद [ही] आकाश से उतर कर आई थी, यह देख कर लोरिक हँसा (प्रसन्न हुआ)। (७) उसका मुख कमल की भांति विकसित हो गया, जो कि दुःख से कुम्हलाया हुआ था।

(३२८)

'हिया' सिरान जरत 'जो' अहा। 'दौरि लोर तौ पौ(पउं)चा गहा'।
'लोरिक' 'रस करि' आहि पियासा। 'चांद मिली मन' पूजी आसा।
'अभरन आनि कीन सभ लोरा। तरिवन हांस अउ सोनइ चूरा'।
'भवर मोर अउ कान क फेरे। मूड मंग अउ करइं केजूरे'।
'हाथ क करपा सोवन मांठी। अंगूठी मांनिक कइ कांठी'।
अनवट 'बिछुई' पायर लोर चांद 'कइ' लीन्ह।
अरथ दरब 'अउ खरग कटारा' आनि गुनी 'कहं' दीन्ह॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७३, बी० १११६-१११८।

म० में कडवक नहीं है, वह प्रतिलिपि करने में कदाचित् रह गया है।

शीर्षक—मैं० : होशियार शुदने चांदा व दादने लोरिक गुनी रा ज़ेवर।

पाठान्तर—(१) १. बी० हियरा। २. बी० जौ। ३. मैं० छूटि चाद निसि गहनइं गहा। (२) १. बी० लेरिक। २. मैं० हुत जो आस। ३. मैं० चांद जिई। (३) १. बी० : गहनां आनि गुनी कौं दीन्हा : हाथ पसारि

गुनी सबु लीन्हा। (४) १. बी० : भौंर मोर औ कान कि षूटी : गौ का हारु औ वरगज मोती। (५) १. बी० : हाथ क बाहू सोवन मांठी : अंगुठी व कुरा अन अन भांती। (६) १. बी० बिछुवा। २. मैं० कर। (७) १. बी० औ करि का कटारा। २. बी० कौं।

अर्थ—(१) [लोरिक का] हृदय शीतल हुआ, जो जल रहा था, और तब उसने दौड़ कर चांदा का पहुंचा पकड़ा। (२) लोरिक [उसके] रस के लिए प्यासा था, [अत:] चांदा जी गई तो इससे उसके मन की आशा पूरी हुई। (३) लोरिक ने समस्त आभरण लाकर [इकट्ठे] कि ए, तरिवन, हांसली, सोने के चूड़े, (४) भंवर (?), मोर (?), कान के फेरे, सिर की मांग, हाथों में [के] केयूर, हाथों के करपे, सोने की मांठिएं, अंगूठिएं, माणिक्य की कंठी (कंठमाला), (६) [पैरों के] अंगुष्ठ, बिछुए और पायल लोरिक ने चांद (चांदा) के ले लिए, (७) और अर्थ-द्रव्य, खड्ग तथा कटार लाकर उसने गुणी को दिए।

(३२६)

'दाउद कवि चांदायनि(न ?)' गाई।
'जेइं र (रे) सुना सो गा मुरुझाई'।
'धनि ते' 'बोल' धनि लेखनहारा।
धनि ते 'अखिर' 'धनि' अरथु बिचारा।
हरदीं जात 'सो' चांदा रानी।
'सांप डसी हउं सोइ' बखांनी।
'तउ र (रे) कहा मइं यहु खंडु गांवउं'।
कथा 'कबित' 'कइ लोग 'सुनावउं'।
'नथन मलिक दुख बात उभारी'।
सुनहु कान 'दइ' बहु गुनियारी।
'अउर केत मइं करउं बीनती' सीसु नाइ कर जोरि।
'इकुइकु सुनिसुनि बोलु बिचारौ(रउ)कहौं(हउं)जो ह्नि(हिर)दौ''तौरि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७४, म० पत्र० १७२, बी० १११९-११२१।

शीर्षक—मैं० : आख़िर बिसहर खंड चंद सुख़न फ़रमूदने मौलाना नत्थन।

म० : दास्तान सिफत मौलानां दाउद व गुफ़्तार ऊ।

पाठान्तर—(१) १. मी० दाऊद कबि जउ चांदा, मै० मौलानां दाउद यह कबि। २. वी० जें ए सुनी सो गा मुरझाई। (२) १. बी० धनु ति। २ मै० पंडित। ३. बी० धनु। ४. मै० बोल। ५. बी० जिनि। (३) १. बी० सु। २. मै० नाग डसी हुति सोंहि, बी० साप डसी हुत सबनि। (४) १. बी० तौ मैं कहा कि यहु षंडु गाऊ। २. म० कबि। ३. बी० कहि। ४. बी० सुनांऊ, मै० सुनाएउं। (५) १. म० मलिक नथन सुनु बोल हमारी, बी० नाथ मलिक यह बात तुमारी। २. बी० दै। (६) १. बी० और कवित मै करौ। २. म० बिनती., मै० बिनाती। (७) १. म० एक एक बोल मोति जस पिरोवा कहौं जो हियरा तौरि, मै० एक एक जउ तुम्ह बूझउ बिचारि कहउं जेहुं तौरि।

अर्थ—(१) दाऊद कहता है कि जब [भी] उसने 'चांदायन' का गान किया है, जिसने भी [इसे] सुना है, वह मुर्झा गया है (वेदना-व्यथित हो गया है)। (२) धन्य वे हैं जो इसे बोलते हैं, और वे धन्य हैं जो इसको लिखने वाले है; वे [भी] धन्य हैं जो इसके अखरो (शब्दों ?) और अर्थों का विचार करते हैं। (३) हरदीं [पाटन] जाते समय चांदा रानी सांप से डसी गई थी, उसी का मैंने [इस खण्ड में] वर्णन किया है। (४) मैंने तब (इसलिए) [मन में] कहा (सोचा) कि इस खंड का गान करू कि कथा-कवित्व कर लोक (लोगो) को सुनाऊं। (५) ऐ नथन मलिक, तुमने यह दुःख [-पूर्ण] वार्त्ता उभाड़ी थी, [अतः] इस बहुत गुणों वाली [वार्ता] को तुम कान दे कर सुनो। (६) सिर को नमित कर और हाथ जोड़ कर मैं और कितनी बिनती करू ? (७) [इस वार्त्ता का] एक-एक बोल तुम सुनो और उस पर विचार करो, [क्योंकि] मैं उसे [अपने] हृदय में तौल कर कह रहा हूं।

२२. हरदीं-निवास खण्ड

(३३०)

जाइ कोस दस ऊपरि 'भए'। 'बहुल भांति बिरहइं हुत दहे'।
सभ निसि 'आखै(खइं)' पिरम कहानी। 'बात कहत उन्ह रइनि' बिहानी।
'पहर रात उठि चले कहारा'। कोस 'चारि परि' 'भा भिनुसारा'।
हरदीं 'सीम' तुलानें जाई। 'सगुन भली एक पांडुक कहाई'।
'महर दाहिनें बाएं करावा(रा)'। 'अउर दाहिने मिरिघ कइ' मारा।

महरि कहा हुंत दाहिनें बांएं सगुन होइ न (नहि) पार।
तिन्हि अरथ तुम्ह सिधि पावहु लोरिक जानइ सयंसार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७५, बी० १०४७-१०४९।

शीर्षक—मैं० : रवान शुदन लोरिक व चांदा व रसीदन नजदीक़ हरदीं।

पाठान्तर—(१) १. बी० रहे। २. बी० बहु भांते बिरहैं हुते अहे (दहे—फ़ा०)। (२) १. मैं० कहहि ते। २. बी० उवा सूर निसि रैनि। (३) १. बी० फांद सुषासनु चले गुहारा (कहारा—फ़ा०)। २. बी० पाच। ३. बी० सूरु दिपारा। (४) १. बी० सेव (सींव—फ़ा०)। २. बी० सुरंगा झीवरु आइ तुलाई (तुल० तुलाने जाई—पूर्ववर्ती चरण में)। (५) १. बी० महुबर बानी (दाहिने—फ़ा०) राउ गुहारा। २. बी० औ दाहिनै मिरगु इकु। (६-७) दोहा बी० में इस प्रकार है :

होय कहा कहु पैसत दाहिन तुम्ह करतार।
और सभै तुम्ह पाये दाहिन सम सैसार॥

दोनों चरणों में 'दाहिन' की पुनरुक्ति चिन्त्य है।

अर्थ—(१) चलकर वे दस कोस से अधिक जा पहुंचे, वे बहुत प्रकार से विरह-दग्ध थे। (२) समस्त रात उन्होंने प्रेम-कथन किया और बातें कहते-कहते (करते-करते) उनकी रात व्यतीत हो गई। (३) [तदनन्तर] एक प्रहर रात के रहते ही उठ करके [चादा के सुखासन के] कहार चल पड़े, चार कोस चलने पर सबेरा हुआ। (४) वे हरदीं [पाटन] की सीमा पर जा तुले (पहुंचे), एक भली पांडुक [जहां पर] शुभ शकुन कह (बता) रही थी। (५) दाहिने महर तथा बाएं कराल पक्षी (काग) थे, पुनः दाहिने मृग-माला थी। (६) महरी (चांदा) ने कहा, "दाहिने और बाएं इतने [शुभ] शकुन हो रहे हैं कि उनका पार (अन्त) नहीं है। (७) उनका अर्थ यही है कि तुम सिद्धि पाओगे, ऐ लोरिक, यह (शकुनों का यह अर्थ) संसार जानता है।"

(३३१)

'छेतम' राउ 'अहेरइं' चढ़ा। हरदीं 'कहं हुंत दई जो' गढ़ा।
निकरत राउ 'जोहारेसि सोई'। 'राय बूझ अहिआनहु' कोई।
'अति गुनवंत आहि रुपवंता'। 'सहस करां जइस' मैमंता।
'कोउ न चीन्ह सभ कहहिं' बटाऊ। 'संग संग राजे(जइं?)' पठवा नाऊ।
'जउ तुम्हं चीन्हउं देखि लइ आएसु। जउ परदेसी उतार देवाएसु'।

हरदीं 'पइठइ' लोरिकु 'खोरि खोरि' फिरि आउ।
'जांवत नगर तहं' चीन्ह न कोऊ 'सब ही लोक पराउ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७६, बी० १०५०-१०५२।

शीर्षक—मै० : सलाम करदने लोरिक राव रादर शिकार व पुरसीदने राव छेतम रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैतम। २. बी० अहेरैं। ३. बी० कौ हिते ई जौ। (२) १. बी० झारअस (जुहारेसु—फ़ा०) होई (सोई—फ़ा०)। २ बी० कोइ जाय अहिजांनिहै। (३) १. बी० को रूपवंतु दीसै गुनवंता। २ बी० ससिहर बरन आहि। (४) १. बी० चीन्ह न कोई आहि। २. मै० पाछें राउ। (५) १. बी० होय जुहार देपि घर आवोहु : होई परदेसी उतारा द्यावोहु। (६) १. बी० पैठा। २. बी० षोर षोर। (७) १. बी० जनि। २ बी० सभै लोगु तह आव।

अर्थ—(१) छेतम राव ने आखेट के लिए चढ़ाई की, जो हरदी के लिए दैव गढ़ा हुआ (निर्मित) था। (२) निकलते ही उस राजा को [लोरिक ने] जुहार की, तो राजा ने पूछा (कहा), "इसे कोई अभिजानते (पहचानते) हो? (३) यह अत्यधिक गुणवान और रूपवान है, यह सहस्र-कला (सूर्य) जैसा और मदमत्त है।" (४) किन्तु कोई उसे पहचान नहीं रहा था, सभी कह रहे थे कि वह पथिक था, [इसलिए] राजा ने उसके साथ-साथ नाई को भेजा, (५) [और कहा,] "यदि तुम पहचान सको तो उसे देखकर ले आना, और यदि वह परदेशी हो, तो उसे उतारा (उतर कर ठहरने का स्थान) दिलाना।" (६) हरदीं में प्रविष्ट हुआ और लोरिक गली-गली फिर आया। (७) यावत् नगर में वहा उसे कोई पहचानता न था, सभी लोक (देश) उसके लिए पराया था।

(३३२)

'राउ दीन्ह राउल एक आए। ऊंच मंदिर पटसार सोहाए'।
बहु बनान बहु भांति कुंदारा। घरे अनेक लाइ सुतधारा'।
'चउतरा ऊंच नीक घोरसारा'। 'लइ लोरिक तेहिं घर बइसारा'।
अरसी काढ़ि लोर कर दीन्हीं। बात बूझि गै नाऊं लीन्ही।
कवन देस हुत आए गोसाई। एहिं पाटन गौनइं केहि ठाई।
नाउं कहउ तुम्हं आपन अउ तुम्हं जेहि लगि आइ (आएहु)।
निकरत राउ देखि दरसन तेंहि गुन पूछि पठाएहु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७७, बी० १०५३-१०५७ ।

स्वीकृत (४)—(७) के स्थान पर बी० में सात पंक्तियाँ हैं—दे० पाठान्तर । ऐसा ज्ञात होता है कि प्रति का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित हो गया था, इसलिए छंद-व्यवस्था न समझने वाले किसी व्यक्ति ने यह प्रक्षेप कर डाला ।

शीर्षक—फ़िरिस्तादन राव हज्जाम रा बर लोरिक ।

पाठांतर—(१) १. बी० नाउ वाषर (रि) जाई झराई : ऊंच उतारा दीस सुहाई । (२) १. बी० बहु भंत के सौ पथर उसारा : गरें अनेक आहि-सुतधारा । (३) १. बी० ऊंचा जोवरु (चौवरु—फ़ा०) औ करसारा (घुरसारा—फ़ा०) । २. बी० कै (लै—फ़ा०) लोरिक तेहि ठाव उतारा (४)—(७) के स्थान पर बी० में है :

रावर ते नीरे तैसै आही : जो जस जोगु सो तस ताही ।
पाषर सै दोइ सेती आवा : मारि सुरिज कौ चांद लिवावा ।
हाथी औरति मैंमत माते : अते बहुत ते भातेहि भांते ।
हाक देई के पाइक बाजा : लोरिक षरग मुठि महि साजा ।
षरग काटि कैं मूठि उतारसि : कोई न राउ उही रन पारसि ।
चला राउ देषि मुन साई जिहि उहि कौ अवास ।
जाहि लोर तिहि हरदीं अब न आवै कोई पास ।।

अर्थ—(१) वे (लोरिक-चांदा) राजा के दिए हुए एक रावल (राज-भवन) मे आए; मदिर (प्रासाद) ऊंचा था और [उसमे] सुन्दर पटसार थे । (२) वह बहुत बनाव का था और बहुत भांति से कुन्दी किया हुआ था, उसको अनेक सूत्रधारों ने लग कर गढ़ा (निर्मित किया) था । (३) उसमे [बाहर बैठने के लिए] एक अच्छा चबूतरा था, और एक अच्छी घुड़साल थी, लोरिक को ले जाकर [नाई ने] उसी घर में बिठाया । (४) [तदनतर उस नाई ने] एक आदर्शिका (आईना) निकाल कर लोरिक के हाथ मे दी और जाकर नाई ने उसकी वार्त्ता पूछी । (५) [उसने कहा,] "हे स्वामी, आप किस देश से आए हैं और इस पाटन में किस स्थान पर जा रहे हैं ? (६) आप अपना नाम कहें और [वह प्रयोजन कहें] जिसके लिए आप आए हुए हैं। (७) [बाहर] निकलते समय राजा ने [आपका ?] दर्शन (रूप-रग) देखा, इसी गुण से उन्होंने यह पूछ भेजा है ।"

(३३३)

सुनि 'लोरिक' अस ऊतर कहा। सभ परिवार गोवर 'मोर' अहा।
'गरह संताएउं कत घर जावहुं'। कहा पंडित परदेस दिखावहु।
बैरी होइ 'खर' रकत पिपासा। 'लेन न देइ' सुक्ख महं सांसा।
'लोग' 'चाह' अहिताई करहीं। मुख देखत 'हूं' कानि न धरही।
जाति 'गोवरइ' अहउं 'बडवारू'। 'लोर' गोवर कुर नाउं 'हमारू'।
'गोवर' राजा सहदेउ महर ओंहि कइ धीय दुलारि।
'जेहि' कारन हम लीन्ह देसंतर अहइ सो' चांदा नारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७८, भो० पत्र ५ (नवीन)। बी० का कोई पूर्वज यहा पर त्रुटित था—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक बर हज्जाम रा।

भो० : पुरसीदन मुजइयन लोरिक रा व गुफ्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. भो० लोरिख। २. भो० मोरु। (२) १. भो० गरह सताप आनहि घर आवहि। (३) १. बी० गएउ। २. मै० लेइ न देहि। (४) १. मै० लोरिक। २. भो० जाइ, मै० चाहि। ३. मै० हम। (५) १. भो० गोवार। २. मै० बडारू। ३. मै० गोर। (६) १. मै० गोवर का। (७) १. भो० तेहि। २. मै० ऊहइ।

अर्थ—(१) लोरिक ने [उसकी बातें] सुनकर ऐसा उत्तर कहा (दिया), "मेरा समस्त परिवार गोवर में है। (२) पंडित ने [मुझसे] कहा, 'ग्रहों से सतापित होकर घर क्या जाते हैं? परदेश देख आएं। (३) [उनके प्रभाव से] वैरी रक्त का प्यासा हो जाता है, और, वह सुख में सांस नहीं लेने देता है, (४) [अपने] लोग भी अहित करना चाहते हैं और मुख देखते हुए भी कानि (लिहाज) नहीं करते है।' (५) जाति से मैं ग्वाल ही हूं किन्तु (कुल से) बडा हूं और लोर गोवर (गोपाल) मेरा कुल का नाम है। (६) गोवर का राजा [जो] सहदेव महर है, [यह] उसी की दुलारी दुहिता है; (७) जिसके कारण मैंने देशान्तर [का प्रवास] लिया (स्वीकार किया), यह वही चादा नारी है।"

(३३४)

होइ अहेरे राउ घर आवा। नाउव जाइ कहइ कर पावा।
बूझा राइ कवन इन्हं अहा। जस (जइस?) सुना तस नाउवं कहा।

राउ कहा कहं दीन्ह उतारा। ऊंच मंदिर नीक घोरसारा।
एहि नर नौ खंड प्रिथिमी जानइ। जस दिनियर तस किरित बखानइ।
सुनि राजइं असि कीरति कीन्हा। जो कुछु जगत मंदिर उन्ह दीन्हा।
आहि गोवर कर लोरिक नाउवं कहा जुझार।
जेहिं कारन राव रूपचंद मारा अउ हइ चांदा नारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७९। बी० का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मै० 'बाज आमदने राव अज़ शिकार व मअ़लूम करदन हज्जाम कैफियते लोरिक।

अर्थ—(१) आखेट से होकर राजा घर आया, तब नाई जाकर उससे [लोरिक-चांदा के] हाथ-पैर (नख-शिख) बताने लगा। (२) राजा ने पूछा, "ये [दोनों] कौन हैं ?" इस पर नाई ने जैसा कुछ सुना था, वैसा कह सुनाया। (३) राजा ने कहा (पूछा), "कहां उतारा (डेरा) दिया है ? नाई ने बताया, "एक ऊचे मंदिर और अच्छी घुड़माल में। (४) इस नर (लोरिक) को नौ खंड पृथ्वी जानती है और जैसे दिनकर के वैसे ही इसके कृत्यों का बखान करती है। (५) ऐ राजा सुनो, ऐसी कीर्त्ति करो कि जो कुछ जगत् में [हो सकता] है, वह सब उनके मंदिर में [प्रस्तुत करा] दो।" (६) नाई ने कहा, "यह गोवर का योद्धा लोरिक है, (७) और जिसके कारण उसने राव रूपचंद को मारा (मार भगाया), वह [उसके साथ की] नारी चांदा है।"

(३३५)

खेम कुसर निसि खेलि 'बिहानी'। रंग राती निसि पिरम 'कहानी'।
देइ पिछौरा राउ जोहारा। राउ मया कइ 'लोर' हंकारा।
'राउ बूझ' तुम्हं कैसें आएहु। बाट घाट कस आवन पाएहु।
नगर 'मुगेर(?)' 'जउहिं' हम आए। 'राइ' करिगा भेजि 'हंकराए'।
देखन पाय राइ के आएउं। दइय संजोगे आनि मेराएउ।
भलें लोर तुम्हं आएहु 'इंहवां' राखहु चित (चित्त) हमार।
जो किछु आहि 'हमारें' सो फुनि जानु तुम्हार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८०, भो० पत्र १ (नवीन)। बी० का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—म० : आमदने लोरिक पेश राव छेतम ।

भो० आमदन लोरिक बर राव छेतम व सलाम करदन ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० बिहानी । २. मैं० कहानी । (२) १. भो० बीर । (३) १. भो० राइ पूछ । (४) १. भो० भुगेर (मुगेर—ना०), मैं० सुगेर (मुगेर—ना०) । २. भो० जउ । ३. मैं० राउ । ४. मैं० बोलाए । (६) १ मैं इहवां । (७) मैं० हमारे ।

अर्थ—(१) क्षेम-कुशल पूर्वक खेल कर रात समाप्त हुई । प्रेम-कथनो के कारण [रात] रंग-राती (अनुराग-रक्त) रही । (२) [सबेरा होने पर भेंट में] एक पिछौरा (बड़ी चादर) देने के लिये लोरिक ने [आकर] राजा को जुहार की, तो राजा ने मया (ममता) कर लोरिक को बुलाया । (३) राजा ने पूछा, "तुम कैसे आए ? मार्गों और घाटों से तुम कैसे आने पाए ?" (४) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जब हम मुंगेर (?) नगर में आए, राजा करिगा ने मुझे [भृत्य] भेज कर बुलाया । (५) [वहां से] राजा के चरणो का दर्शन करने आया हूं, और दैव-संयोग से ही आकर मिल रहा हू ।" (६) [राजा ने कहा,] "हे लोरिक, अच्छा हुआ जो तुम यहां आए, तुम मेरे चित को [संतुष्ट?] रक्खो (मेरी इच्छाओं के अनुसार कार्य करो), (७) और जो कुछ हमारे पास है, वह तुम जानो कि तुम्हारा [ही] है ।"

(३३६)

सइ हथ राय बान कर लीन्हां । 'नियर' हंकारि लोर कहं दीन्हा ।
सीस 'लाइ कइ' लोरिक लीतिसि । रहंसि 'केकान राइ' फुनि दीतिसि ।
तेहि तुरिया चढि लोर फिरावा । हनी (नि) ताजनइ घोर दउरावा ।
रहसा लोर तुरिय जउ पावा । बचन सगुन 'जो' इहवां आवा ।
पुरुख सोइ जो परभुइं जाई । जगत सुनइ जेहि किरित भलाई ।
लोर चांद गोवर बिसारा 'कीतें' हरदीं बास ।
बरिस देवस अउ 'केतिक' मांसा कीन्हां भोग बेलास ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८१, भो० पत्र २ (नवीन) । बी० का कोई पूर्वज इस प्रसग में त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—मैं० : असबाब दहानीदने राव बर लोरिक रा व बर्ग सब्ज दादन ।

भो० : मरहमत करदने राव छेतम व बर्ग दादन लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) भो० बीर। (२) १. मैं० चढ़ाए। २. भो० कैंकान एक। (३)—(४) मैं० (३)।१=भो० (४)।१ मैं०, (३)।२=भो० (३)।१, मैं० (४)।१=भो० (३)।२, मैं० (४)।२=भो० (४)।२ स्वीकृत क्रम मैं० का है। (४) १. भो० हुउं। (५) १. मैं० तेहि। (६) १. मैं० कीनें। (७) १. मैं० कातिक।

अर्थ—(१) राजा ने स्वयं हाथ में बाना (पहनावा) लिया, और निकट बुला कर [उसे] लोरिक को दिया। (२) सिर से लगा कर लोरिक ने [उसे] ले लिया, पुनः (तदनंतर) राजा ने हर्षित होकर उसे एक घोड़ा दिया। (३) उस घोड़े को लोरिक ने चढ़ कर फिराया, और चाबुक से मारकर उस घोड़े को दौड़ाया। (४) लोर ने जब यह घोड़ा पाया, वह हर्षित हुआ, [और उसने मन में कहा,] "यही उस शकुन का वचन था जो यहां आया (प्राप्त हुआ)। (५) पुरुष वही है जो परभूमि (परदेश) में जाए और जगत् जिसकी भलाई के कृत्य सुने।" (६) लोर और चांदा ने हरदीं में निवास कर [इतना सुख पाया कि] गोवर को विस्मृत कर दिया। (७) बरस दिन और कुछ मास [वहां पर] उन्होंने भोग-विलास किए।

(३३७)

जनां सहस रचि राउ दौराए। चीवर कापर बाग फिराए।
दुलाइयनि बहोरि भरि लीन्हें। ते लइ चेरन्ह माथें दीन्हे।
चेरन्ह का(कां)वरि कांधइं किया। हरदि लोन तेल सब दिया।
चेरी दस चीर अभरन दीन्हें (लीन्हें ?)। अपर संजोग जो काउ न दीन्हे।
अनदन भांति खजहजा अहे। खाट पालकी पालिक लहे।
बहुल आभरन रायहि दीन्हें चांदहिं जनहु बरोक।
लोर चांद कहं पिता अस कीन्हें कौतुक भएउ सो लोक॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८२। यह कडवक परवर्ती से संबद्ध है यह प्रकट है। बी० का कोई पूर्वज यहाँ पर त्रुटित था—दे० कडवक ३२२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मैं० मताअ ख़ानः क़नीज़गान व ग़ुलामान व जामहा फ़िरिस्तादने राव लोरिक रा।

अर्थ—(१) राजा ने एक सहस्र जनों को रच (सज्जित) कर दौड़ाया, जो चीवर (?), कपड़े और बागे पहनाए हुए थे। (२) दुलाइयों को तदनतर भर (भरवा) लिया और उन्हें लेकर चेरों (सेवकों) के माथे (सिर) पर

दिया। (३) चेरों (सेवकों) ने कांवरों को कंधे पर किया (रखा), हल्दी, लवण तथा तैल —सब उन्हे दिया गया। (४) दस चेरियों ने चीर और आभरण लिए तथा और भी संयोग (सज्जा के सामान) उन्हें दिए गए जो कभी [किसी अन्य को] न दिए गए थे। (५) अनहोने भांति के खाद्य-भज्य थे, खाटें, पालकिएँ तथा पर्यङ्क उन्होंने पाए। (६) राजा ने बहुतेरे आभरण चाद (चांदा) को दिए मानो उसको बगेक में (सगाई के उपलक्ष्य में) दिया हो। (७) लोर और चांद (चांदा) को उन्होंने पिता के समान किया (माना), जिससे लोगों को कौतुक (कुतूहल) हुआ।

(३३८)

टाका 'सउ एक' लोरिक लीन्हां। बीरइं घालि नाउवं कहं दीन्हा।
अउरन्ह दीन्ह 'जिनहिं' जस जानां। सब ही लोक कहं दीतिसि पाना।
फुनि बस्तर आगें लइ आए। जेइ आए सो समंदि चलाए।
खोलि पेटारा कापर देखे। अभरन अछरिन 'कीन्ह' बिसेखे।
'चीर लउक' भरा खरवारू। जस चाहत तस दीन्ह करतारू।
चांद सुरुज मन रहंसे तिल तिल करहिं बधाउ।
एक समौ गोवर हुंत आए हरदीं पाटन 'रहाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८३, भो पत्र ४७ (नवीन)। बी० का कोई पूर्वज यहा पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

इस कडवक के बाद भो० मे तर्क 'सावन मास' है, जिसका कडवक कदाचित् ३४३ है, जो बहुत बाद में आता है, इससे ज्ञात होता है कि भो० का भी कोई पूर्वज यहां पर अस्त-व्यस्त अथवा त्रुटित था।

शीर्षक—मै० : बख्श करदने लोरिक दर शहर पाटन रा।

भो० : सखावत करदन लोरिक बराए क़स्र रा दरे शहर।

पाठान्तर—(१) १. भो० एक सौ। (१) १. मै० जेहि। २. मै० लोगन्ह। (३) १. भो० में चरण परस्पर स्थानातरित हैं। २. मै० चीर। (४) १. मै० आहि (आंहि—ना०)। (५) १. भो० चीरइं चीर। (६) १ भो० जाव।

अर्थ—(१) सौ-एक टंके लोरिक ने लिए और उन्हें बीड़े में डालकर उसने नाई को दिया। (२) औरों को भी [इसी प्रकार], जिसको जैसा समझा, उसने दिया और सभी लोगों को पान दिया। (३) तदनंतर वस्त्र [उसके]

आगे लाए गए, और जो आते गए उन्हें [उसने] वस्त्रों की भेंट देकर चलाया (विदा किया)। (४) पेटारे खोल कर [लोरिक ने] कपड़े देखे; आभरण [तो] अप्सराओं (के आभरणों से] भी विशेषता युक्त किए गए (बनाए) हुए थे। (५) चीर खरवारों में भरे हुए लौक (झलक) रहे थे, [लोरिक] जैसा चाहता था वैसा ही सृष्टि-कर्ता ने उसे दिया। (६) चांद (चांदा) और सूर्य (लोरिक) मन में हर्षित हुए और वे तिल-तिल (पूरे आयोजन के साथ) बधाइया करने लगे। (७) एक समय वह था कि वे गोवर से [संत्रस्त] आए थे, और एक यह हुआ कि हरदीं पाटन में [ऐसे सुख से] रहने लगे!

२३. मैनां-संदेश-निवेदन खण्ड

(३३९)

निसि दुख मैनहि रोइ बिहाए। सभ दिन रहइ नैन पंथ लाए।
मकु लोरिक एहि मारग आवइ। कइ पहिया गइ आपु जनावइ।
निसि दिन झुरवइ आस पियासी। रोवइ खिन खिन होइ निरासी।
लोर लोर कहि दिन परि आवइ। अउर बचन हिरि मुखहिं न आवइ।
तपतइं आछइ रइनि बिहाई। जसि मंछरी बिनु नीर मुरझाई।
बिरह सताई मैनां एहिं परि दिन अउ राति।
सइंहि लीन्हे दुख लोरिकहिं केरा बिरहा कीन्ह संघाति।।

सन्दर्भ—भो० पत्र १८ (नवीन)। मै० यहाँ पर अत्रुटित है, जो उसके चित्र से प्रकट है, किन्तु अगले कडवक के लिए प्रस्तुत कडवक नितान्त आवश्यक है, क्योंकि अन्यथा उसकी प्रथम पंक्ति कर्त्ताहीन हो जाती है। बी० का कोई पूर्वज यहाँ पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० : बयान करदन दुश्वारी मैनां।

अर्थ—(१) रात में दुःख मैनां ने रो-रोकर काटे, और समस्त दिन वह नेत्रों को [लोरिक के] पथ में लगाए रहती, (२) [यह सोच कर] कि संभव था कि लोरिक उस मार्ग से आ जाता, अथवा [पास] जाकर किसी पथिक से अपने को (अपना कुशल) वह विदित करता। (३) वह रात-दिन आशा की प्यासी रहकर संतप्त होती और निराश होकर क्षण-क्षण रोती। (४) दिन भर वह 'लोर' 'लोर' [ही] कह पाती, अन्य कोई वचन लज्जा के कारण उसके मुख से न आता (निकलता) था। (५) तप्त हुए-हुए ही उसकी रात्रि

व्यतीत होती, जैसे मछली बिना जल के मुर्झा जाती है। (६) इसी प्रकार मैंनां दिन और रात विरह से संतापित [रहती] थी, (७) [क्योंकि] उसने स्वयं ही लोरिक का यह दुःख ले रक्खा था और विरह को [अपना] संगी कर रक्खा था।

(३४०)

'दइ दइ संवन सुनी इक' बाता। आवा टांडु 'खाडु' सै साता।
'गुइंडइं' आइ 'संगति कइ' मेला। 'पूछहु आनि' 'कवनि' भुइं खेला।
'खोलिनि' नायक 'मंदिर' बुलावा। पूछेसि टांडु कंहवां हुंत' आवा।
कवन बनिजु लाधेउ परधानां। कवन 'राट' तुम्हं 'दीत पयानां'।
कवन लोग घरु कहां तुम्हारा। कवनु नाउं कहं कुटुबु' हंकारा।

'आसा लुबुधी 'पूछउं' जो परदेसी आइ'।
मोर बारु परदेसि बिरूधा 'मकहुं चाह' को पाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८४, भो० पत्र ४८ (नवीन), बी० ११६१-११६३।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'दिन एक', जिसका कडवक अप्राप्य है। इससे ज्ञात होता है कि दोनों के बीच में उसमें कुछ कडवक और रहे होंगे।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदने ख़ोलन सुरजन रा पुरसीदन अखबारे लोरिक।

भो० : शुनीदन मैंनां व खोलिन कि कसे बाज़रगान अज़ तरफ़ हरदीं आमदह।

पाठान्तर—(१) १. बी० दे दे सुनि सरवनि याह। २. मैं० षाडु, बी० षांड। (२) १. बी० गुइरैं, भो० गुंडइं। २. भो० संकति किए, बी० सकति कै। ३. बी० पुछसि आन, भो० पूछउ टांड। (३) १. बी० षौलनि। २. मैं० घरहिं। ३. मैं० पूछसि टांडु कहां हुत, बी० पूछसि टाडु कहां ते। (४) १. मैं० लाधउ परधानां, बी० लाद परधाना। २. भो० देस, बी० राठ। ३. मैं० देब पयाना। (५) १. बी० कहु कुटंबु। (६) १. बी० आस लुबधि मैं पूछौं, भो० आसा लुबधी हउं दिन पूछउं। २. भो० आव। (७) १. बी० मुकु चाहौ। २. भो० पाव।

अर्थ—(१) [मैंनां ने कहा,] "कान दे-देकर एक बात मैंने सुनी है : एक विशाल टांडा (व्यापारी-दल) आया हुआ है, जिसमें सात सौ [व्यापारी ?] हैं। (२) [गांव के] गवँडे में आकर उसने संगति (सार्थ) को डाल दिया है। ला (बुला) कर पूछो कि वह [यहां] आकर किस भूमि को खेल (जा) रहा

है।" (३) खोलिन ने [टांडे के] नायक को घर बुलाया और पूछा, "यह टांडा कहां से आया हुआ है? (४) हे प्रधान, तुमने कौन-सा वाणिज्य (सौदा) प्राप्त किया है और किस राष्ट्र (देश) को तुमने प्रयाण दिया (किया) है? (५) तुम कौन लोग (किस देश के?) हो और तुम्हारा घर कहां है? तुम्हारा नाम क्या है और कहां पर [तुम्हारा] कुटुंब पुकारा जाता (कहलाता) है? (६) जो भी परदेसी आता है, आशा-लुब्ध [होकर] मैं [उससे] पूछती (प्रश्न करती) हूं, (७) मेरा बालक परदेश में विलुब्ध (लुभाया हुआ) है, संभव है कि कोई उसकी चाह (ख़बर) पा जाए।"

(३४१)

मैन मंजीठि चिरौंजि सुपारी। नरियर 'गुवा लवंग' छुहारी।
'मोदक(?)मंहकउं' कूंकू चलावा। पत्रज बंभी गिनत न आवा।
पाट पटोर चंवर बहु भांती। 'हय मय सहस सहस कइ' पांती।
'हीर पंवार' रूप बहु 'तांबा'। 'बेनां चेना' अगरु 'भर' 'लांबा।
गोवर का बांभनु सुरजनु नाऊं। हरदीं पाटन परभुइं जाऊं।
बरद सहस दस आपन अउर मिले बहु आइ।
दखिन हुतें भरि 'लांबा' पाटन 'मेलसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८५, बी० ११९४-११९६।

शीर्षक—मै०: जवाब दादने नायक खोलिन रा कैफ़ियते बनिज।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क दिया हुआ है 'मैन मंजीठ', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १. भो० लौंग कपूर। (२) १. बी० नषतज पत्रज ('पत्रज' दूसरे चरण में भी है)। (३) १. बी० हमय साह सहस मैय। (४) १. बी० हरदी पावर। २. बी० ताबा। ३. बी० बीना चंदनु। ४. बी० भरि लांवा। (५) १. मै० अउ मेला। (६) १. बी० लाबा। २ बी० परभुई।

अर्थ—(१) [नायक ने कहा,] "मदन (मोम), मंजीठ, चिरौंजी, सुपारी, नारियल, गुवा (एक विशिष्ट प्रकार की सोपारी), लवंग, छुहाड़ी, (२) मोदक (?), सुगंधियां तथा कुंकुम को मैंने चलाया है, और पत्रज (तेजपत्ता) तथा ब्राह्मी (?) गिनती में नहीं आ रहे हैं; (३) पाट-पटोर, बहुतेरे भांति के चामर और सहस्र-सहस्र पंक्तियों में हय-मृग (पशु) हैं; (४) हीरे, प्रवाल,

बहुत-सा ताँबा, रौप्य (चांदी), वीरण (खस), चेना (कर्पूर) तथा अगुरु लादे (टाँडे) को भर रहे हैं। (५) मैं गोवर का ब्राह्मण हूं, सुरजन मेरा नाम है, परदेश हरदीं पाटन को जा रहा हूं। (६) दस सहस्र बरद अपने हैं (बैलो का बोझ अपना है) और [दूसरों के भी] बहुतेरे उनके साथ सम्मिलित हो गए हैं। (७) हम दक्षिण से इस लादे (टांडे) को भर कर [हरदीं] पाटन मे ले जा कर डालेंगे।"

(३४२)

सुनि पाटनु 'खोलिनि' तसु रोवा। नैन 'नीर' मुख 'बूढिइं' धोवा।
मैनां 'दौरि' पायं 'लइ' परी। सुरिजन 'बइसु कहउं एक' घरी।
नाह मोर हउं बारि बियाही। लइ गइ चांदा पाटन ताही।
लोरिक नाउं सुरुज कइ करा। सो लइ 'चांदइं' पाटन धरा।
मोहि तजि सुरिजु चांद 'लइ' भागा। दूसर 'समउ' आइ अब लागा।
'सभ' दिन नैन 'चुवहिं अउ' 'सभ' निसि जागत जाइ।
मोर संदेसु 'लोरिकहिं' कहियहु एहि परि रोइ बिहाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८६, का०, बी० ११९७-११९९।

बी० में तीसरी तथा चौथी अर्द्धालियां नहीं हैं।

शीर्षक—मैं० : गिरिय: करदन खोलिन व पाय सुरजन उफ्तादने मैना।

का० : दर पाय सुरजन उफ्तादन मैनां रा अहवाल गुफ्तन ऊ।

पाठान्तर—(१) १. का० खोइलिन, बी० पोलनि। २. बी० रगत। ३ मैं० बी० बूढी। (२) १. मैं० आइ। २. बी० लै। ३. बी० बैठु कहै येकै। (४) १. का० चांदा। (५) १. बी० लै। २ बी० समां। (६) १. का० सब। २. बी० चुवैहि औ, मैं० चुवहि पंथ। ३. मैं० अउ। (७) १. बी० लोर सौं कहियहु।

अर्थ—(१) [हरदीं] पाटन [का नाम] सुनकर खोलिन ऐसा रोई कि उस बुड्ढी ने नेत्रों के नीर (आंसुओं) से अपना मुख धो डाला। (२) मैनां दौड कर उसके पैरों को पकड़ कर [उन पर] गिर पड़ी, [और उसने कहा,] 'ऐ सुरजन, तुम बैठो तो एक घड़ी [अपनी बातें] कहूं। (३) मेरे स्वामी ने मुझे बालिका के रूप में (बाल्यावस्था में) ब्याहा था, और उसे चांदा लेकर पाटन चली गई। (४) [मेरे स्वामी का] नाम लोरिक है, जो सूर्य की कला है, उसको लेकर चांदा ने पाटन में रख छोड़ा है। (५) मुझे छोड़ कर वह सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को लेकर भाग गया, [और इतने दिनो से वह

भागा हुआ है कि] दूसरा समय (वर्ष) आकर लग गया है। (६) समस्त दिन मेरे नेत्र चूते रहते है और [समस्त] निशा मुझे जागते हुए जाती है, (७) मेरा यह संदेश लोरिक से इसी प्रकार रोते-रोते गुजारना।"

(३४३)

सावन मांस नैन 'झरि लाए'। 'उघरहिं नांहि' दिन 'एकउ' माए।
'बरिसि भरइ भुइं खार खडोला'। 'भुइं तस नव किय चीरु अमोला'।
'चख काजरु चखि रहइ न पावा'। खिन खिन 'मैनां रोइ बहावा'।
सावनि चांदु लोर 'लइ' भागी। मैनां नैन पूरि 'झरि' लागी।
इहि परि नैन 'चुवहिं' ओरवानी। 'सरि गइ हार डोरि तेहिं' पानी।
'जेहिं' सावन तुम्हं गंवने सो मैनां चखि लाग।
सुरजन कहसि 'लोरिकहि' 'मांजरि केर अभाग'।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २८७, बी० ११९९-१२०१।

भो० में कडवक ३३८ के बाद तर्क 'सावन मांस' तथा का० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क 'सावन' हैं, जो इसी कडवक के हैं।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियते माह सावन गुफ़्तने मैनां बर सुरजन आ च दुश्वारी बूद।

बी० : बारह मासा।

पाठान्तर—(१) १. बी० झरु लाये। २. बी० उघरैहि ना। ३. बी० येकै। (२) १. बी० बरस मेल भुई भरे खडौरा : भीनु सूकू नहि चीरु अमोरा। (३) १. बी० चषि चुषु काजरु रहै न पावै। २. बी० लोयन रोय वहावै। (४) १. बी० लै। २. बी० झरु। (५) १. बी० चुवैहि। २. बी० सुरि गाहार ढोर तिहि। (६) १. बी० जिहि। (७) १. बी० लोर सौ। २ बी० औ माजरि के भाग।

अर्थ—(१) "सावन मास में नेत्रों ने झड़ी लगाई और वे ऐसे भरे हुए रहते थे कि एक भी दिन खुलते नहीं थे। (२) वर्षा से भूमि के खार (खाल)-खड्ड (गढ़े) भर रहे थे, और भूमि ने भी उसी प्रकार [हरीतिमा का] नवीन और अमूल्य चीर कर रक्खा था। (३) आंखों का काजल [ऐसे समय में] आखों में रह नहीं पा रहा था, उसे प्रतिक्षण [रो-रो कर] मैनां बहा रही थी। (४) [ऐसे] सावन में चांदा जब लोरिक को लेकर भाग गई, मैना के नेत्रों में पूरित होकर [आंसुओं की] झड़ी लग गई। (५) नेत्र इस प्रकार

से ओलती [की भांति] चू रहे थे कि मेरे हारों की डोरी उस पानी से सड़ गई। (६) जिस सावन में [ऐ लोरिक,] तुम गए, वह सावन मैनां के नेत्रों मे आ लगा। (७) ऐ सुरजन, लोरिक से मंजरी (मैनां) का [यह] अभाग्य कहना।"

(३४४)

'भादौं मांस निसि भइ' अंधियारी। 'रइनि डरावनि हउं धनि' बारी।
'बिजुलि' 'चमकि मोर हियरा' भागइ। मंदिरु नांह बिनु धइ धइ 'लागइ'।
सग न साथी न 'सखी' 'सहेली'। 'देखि' फाट हिय मंदिर 'अकेली'।
'तेहि दुख' नैन फूटि तस बहे। धरती पूरि सागर भरि रहे।
निकरि 'चलउं पउ' 'चली' न जाई। 'पुहमी' पूरि रहा 'जलु' छाई।
दुरजनु बचनु 'संवन कइ लोर' 'परदेसहिं छाएउ'।
'मइं' 'लाए नैननि' दुइ बरिखा 'सुरिजन' रोइ 'बिहाएउं'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८८, भो० पत्र ४६ (नवीन), बी० १२०२-१२०४।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियते माह भादौं।

भो० : सख़्तीए माह भादौ गुफ़्तन मैनां पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० भादौ चमकि बरसैं, भो० भादौं बरसि चमक ('चमंकि' दूसरी अर्द्धाली में भी है)। २. बी० रैनि डरावैनि मेघ म। (२) १ बी० चंचर। २. भो० चमकि मोर हियउर, बी० चमकि मोरौ हियरा। ३. बी० भागै। ४. बी० लागै। (३) १. बी० सही। २. भो० सहेली। ३ बी० देख। ४. भो० अकेलीं। (४) बी० इहि परि। (५) १. बी० चलौं मुकु, भो० चलउं पग। २. बी० चाल। ३. भो० भूमिहि, बी० धरती। ४ बी० जरु। (६) १. बी० सुनि कैं नाहु, मैं० सवन कइ लोर। २. मैं० बिदेसहिं छाएउं, बी० परदेसहिं छायो। (७) १. बी० भो० में नहीं है। २ बी० लई नैन। ३. बी० मैं सुरिजन। ४. भो० बिहाएउ, बी० बुलाये।

अर्थ—(१) "भादौं मास में अंधेरी रात हुई (आई), वह रात डरावनी थी और मैं स्त्री बालिका थी। (२) बिजली चमक कर मेरे हृदय को भग्न करती थी, और [मेरा] मंदिर स्वामी के बिना [जैसे] पकड़-पकड़ कर मुझसे लग रहा था। (३) न [कोई] संगिनी थी, न साथिनी, न सखी और न सहेली थी, मंदिर में [अपने को] अकेली देखकर मेरा हृदय फट जाता था। (४) उसी दुःख के कारण नेत्र जैसे फूट गए हों, इस प्रकार बह निकले, और

धरती को पूरित कर वे सागरों को भर रहे। (५) यदि मैं निकल चलती, तो पैरों से चला न जाता, [क्योंकि] पृथ्वी को पूरित कर [वह] जल छा रहा था। (६) ऐ लोर, तुम दुर्जन का वचन सुनकर (मानकर) विदेश में छाए हुए हो। (७) ऐ सुरजन [अथवा स्वजन], दोनों नेत्रों में वर्षा को लगाए हुए मैंने उसे रो-रो कर व्यतीत किया।"

(३४५)

'चढ़ा' कुंवारु अगस्ति जनावा। तीर 'घटइ पइ' कंतु न आवा।
फूल कांस 'हांस' सर छाए। सारस 'कुरुलहिं खिडरिच' आए।
'चरुवा बारहि अपुरुब' बारीं। 'अति' रस भीनी नांह पियारीं।
नव 'रितु' लाग पितरपख होई। राइ 'रांक' घर 'सीजि(झि)' रसोई।
'मोंहि पीउ बिनु नित परइ' उपासू। 'संग न साथी भुगुति न' गरासू।
बारां 'तुरै' पलानि लोर 'जानिउं' घरि 'आइहि'।
रहा 'चितहिं(चित्तहिं) धरि मेच्छु सुरिंजन बहुल दिन लाइहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८८, बी० १२०५-१२०७।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के अनन्तर तर्क है 'चढ़ा कुंवार', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियते माह कुंवार।

पाठान्तर—(१) १. बी० चरा। २. बी० घटे पै। (२) १. बी० हंस। २. बी० कुररे पंडरिट। (३) १. बी० नरुवा परहि अपूरब। २. बी० सभ। (४) १. बी० रुति। २. बी० रंक। ३. बी० संचर। (५) १. बी० मैं पिय बिनु नित करौ। २. बी० सुख न सुहाई भुगति। (६) १. बी० तुरी। २. बी० जनि बेगि। ३. बी० आयहु। (७) बी० चिताह धरि चांदा औ सरिजानि बहु दिन लायोहु।

अर्थ—(१) "क्वार का मास चढ़ (लग) गया और अगस्त्य [तारक] जान (दीख) पड़ने लगा; जल घटने लगा, किन्तु कान्त (प्रिय) न आया। (२) कांस फूल उठे, और सरोवरों मे हंस छा गए, सारस बोलने लगे और खजन आ गए। (३) बालिकाएं (बालाएं) अपूर्व चरुवे (थालियों में दीप) जला रही थीं, [अपने] स्वामियों की वे प्रियाएं अत्यधिक रस-सिक्ता थीं। (४) नई ऋतु लग गई, और पितृ-पक्ष होने (मनाया जाने) लगा, राजा रंक सभी के घर में रसोई सीझी (पकी)। (५) [किन्तु] प्रिय के बिना

मुझे नित्य उपास ही पड़ा रहता था, न संगी था न साथी, न भोजन था न ग्रास। (६) मैं समझ रही थी कि [इन्हीं] वारों (दिनों) में घोड़े पर जीन कसकर लोरिक घर आएगा। (७) किन्तु हे सुरजन, वह म्लेच्छ अपने चित्त को पकड़े [रोके] हुए [विदेश में] रह गया और उसने बहुत दिन लगा दिए।"

(३४६)

कातिग 'निरमलि रइनि' सुहाई। 'जोन्ह' 'डाढि हंउ खरी' संताई।
'तेहिं परि' कामिनि सेज 'बिछावहिं'। 'कंतु' अमोलु 'भेंटि' 'गियं लावहिं'।
'कहउं' दिवारी 'देखहु' आई। उतिम परब 'रितु खेलहिं' गाई।
मोहिं लेखें सबु जगु अंधियारा। 'लइ गइ' चांद मोर उजियारा।
'एहिं बिरोग जउ' नांहु न आवा। रहा 'छाड़ि' 'पिउ' 'भएउ' परावा।
पायं लागि कइ 'सुरिजन' मो 'पति जाइ' 'मनाइहि'।
'हूवा' देव 'उठान' बीर 'पूजा' 'मिसु' 'आइहि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८६, भो० पत्र ५४ (नवीन), का०, बी० १२०८-१२१०।

शीर्षक—मैं०: कैफ़ियत माह कातिक।

भो०: सख्तिए माह कातिक गुफ़्तन मैना पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब लोरिक।

का०: सख्तिए माह कातिक गुफ़्तन मैनां पेश सुरजन।

पाठान्तर—(१) १. बी० निरमर रैनि। २. बी० जोवनि। ३. भो० का० ढाढि हौं जो, बी० डहि डहि हौंरु। (२) १. बी० तिहि बिधि। २. बी० बिछावैहि। ३. मैं० कंतहि। ४. मैं० फेरि, बी० भीरि। ५. बी० लै लावैहि। (३) १. बी० कहौहु। २. भो० देखहि, का० देखइ। ३. का० रितु खेलइ, बी० तौ पेलैंहि। (४) १. बी० ले गई। (५) १. बी० ईहि रूप रबि जौ। २. का० छाइ। ३. मैं० फुनि। ४. का० भएं, बी० भया। (६) १. मैं० सुरिजन। २. मैं० कंतहि जाइ। ३. बी० मनावोहु। (७) १. मैं० होई, भो० का० होंइहि। २. बी० उठावनु। ३. भो० का० पूजइ। ४. मैं० मिसु घर। ५. भो० आउ, बी० आवोहु।

अर्थ—(१) "कातिक में निर्मल और सुहावनी रजनी थी, किन्तु ज्योत्स्ना से दग्ध होकर मैं अत्यधिक संतप्त रही, (२) उसी प्रकार [इससे कि] श्रेष्ठ

कामिनियां शैया बिछाती थीं और अमूल्य कान्तों को भेंट (अंकों में ले) कर गले से लगाती थीं। (३) कहती (सोचती) कि वे आकर दीपावली देख जाएं और उस उत्तम पर्व और ऋतु को [गीत] गा-गाकर खेल जाए। (४) किन्तु मेरे लेखे (लिए) समस्त जगत् अंधकार पूर्ण था, [क्योंकि] मेरा उजाला तो चांद (चांदा) ले जा चुकी थी। (५) मुझे इसलिए विरोग (दुःख) था कि [इस सुऋतु में] मेरा स्वामी [लौट कर] न आया था, और वह मुझे छोड़कर पराया हो गया था। (६) ऐ सुरजन, तुम जाकर और [मेरी ओर से] पैरों में लग कर मेरे पति को मनाना। (७) [कहना कि] देवोत्थान हो गया, वह वीर देव-पूजन के मिस [घर] आ जाए।"

(३४७)

अगहन 'रइनि बाढ़ि' दिनु खीनां। दिन पर दिनु जाइ तनु छीना।
पवनु 'झुरक' तनु सीउ जनावा। 'सियर गहत घर कंतु न' आवा।
बिरहा 'सतुरु' 'देह' दौ 'लावइ'। भसम करइ मुख अंग 'चढ़ावइ'।
काम दगध रामां 'बेकरारू'। अस जीवनु 'जिनि होइ' करतारू।
चाद निसूगी 'हउं रे' बिगूती। 'छाडि सूकु रबि' 'कउं छरि' सूती।
'एहिं' परिहस 'ररि मरिहूं' चांद सुरिज 'लइ' भागि।
'आपन छाडि' 'करमुखी' सुरिजन पर 'गियं' लागि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८६, भो० पत्र ५० (नवीन), बी० १२११-१२१३। भो० तथा का० में पिछले कडवक के बाद 'अगहन' तर्क है, जो इसी का है।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियत माह अगहन।

भो० : सख़्तीए माह अगहन गुफ़्तन मैनां पेश सुरतनपैग़ाम मिनजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० रैनि बढी। (२) १. बी० झरकि। २. भो० सिर भुज लोर कंठ नहि, बी० सुरसर धट पे कंतु न। (३) १. बी० सतर। २ मैं० देह। ३. बी० लावै। ४. बी० चरावै। (४) १. भो० बेकरार, बी० बिकरारा। २. बी० जिन होय। ३. भो० करतार, बी० करतारा। (५) १. बी० हौ रु। २. बी० छडि सूकु रबि। ३. भो० कूझरि, बी० कौंछरि। (६) १. बी० ये। २. भो० दिन भरिऊं, बी० हौ मरिहौं। ३. बी० लै। (७) १. मैं० अबहुं न छाड़इ, भो० कानिहि छाडि। २. बी० कारमुषी। ३. बी० गै।

अर्थ—(१) "अगहन में रात बढ़ी हुई थी और दिन क्षीण हो गया था

दिन प्रति दिन [मेरा] तन क्षीण हो रहा था। (२) पवन झुर-झुर करके बहता और शरीर में शीत जात होता था, और (जब) शीत मुझे पकड़ रहा था, तब भी कान्त नहीं आया। (३) विरह शत्रु [अथवा सत्वर] देह में दावाग्नि लगाता, और उसको भस्म [बना] कर मुख तथा अंगों पर चढ़ाता था। (४) काम से दग्ध रमणी बेक़रार (बेचैन) थी; हे सृष्टिकर्ता, ऐसा जीवन [किसी का] न हो! (५) चांद निष्ठुर है और मैं तिरस्कृता हूं, वह शुक्र (काने बावन) को छोड़ और सूर्य (लोरिक) को छल कर सोई हुई है। (६) इस परिहास (अपमान) मे मैं रट लगाती हुई मर जाऊंगी कि चांद सूर्य (लोरिक) को ले कर भाग गई है। (७) ऐ सुरजन, वह काले (कलंकित) मुख वाली अपने [पति] को छोड़ कर अन्य [के पति] के गले लगी हुई है!"

(३४८)

'आइ पूस साईं पंथु जोवउं'। खिनु इकु राति दिवसु 'नहिं' 'सोवउ'।
सुरिजन 'केहिं परि सीउ सहारबि'। 'मरन न जाइ जियइ केइं पारवि'।
घर घर 'सउरि सुपेतिइं' साजहिं। 'घिरित' मांस बहु 'भांतिहि खाजहिं'।
'मइं' तनि चोला चीरु न 'सुहाई'। 'पिउ' बिनु 'रोहितास जनु' लाई।
'जानिउं सिसिर' कंतु सुनि 'आवत'। राइ 'रांक घर लइ धनि' रांवत।

'सुरजन' लोरु बनिजि गा 'हउं' निल 'ढारिउं' आंसु।
'कवनु' 'लाभ कहं भूलइ' लोरिक पूंजी होइ बिनासु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६०, बी० १२१४-१२१६।

शीर्षक—मै०: कैफ़ियते माह पूस।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क है 'आइ पूस', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १. बी० आयो पोसु नाह पथु जोऊ। २. मै० न। ३ बी० सोऊ। (२) १. बी० किहि परि सीउ सराअबि। २. बी० मरि न जाउ कै जीउ उबारबि। (३) १. बी० सौरि सपेटहि (सुपेतिहि—फ़ा०)। २. बी० घिरत। ३. बी० भांतेहि षाजैहिं। (४) १, बी० मोहि। २. बी० सुहाई। ३. बी० पिय। ४. मै० लूट पाट जस। (५) १. बी० जावत सुसर (सिसिर—फ़ा०)। २. बी० आवत। ३. बी० रंक लै घर निसि। (५) १. बी० सुरजनु। २. बी० हौं। ३. बी० ढारउं। (७) १. बी० कोनु। २. बी० कै भूलैं।

अर्थ—(१) "पूस आ गया और मैं जो स्वामी का मार्ग (देख) रही थी,

एक क्षण भर भी रात-दिन मैं नहीं सोती थी। (२) [मैं कहती,] ऐ सुरजन [अथव स्वजन,] 'मैं किस प्रकार शीत को सहन करूंगी ? मरा नहीं जा रहा है, [किन्तु] जीना [भी] कैसे संभव होगा ?' (३) घर-घर में लोग सौर-सुपेती (गद्दे-चादरें) सजा रहे थे और घी तथा मांस बहुत भांति से खा रहे थे। (४) किंतु मेरे शरीर पर चोली और चीर [भी] नहीं सुहाते थे, क्योंकि प्रिय के बिना ऐसा लगता था जैसे अग्नि लगी हुई हो। (५) मैंने समझा कि [मेरा] कांत शिशिर [का आगमन] सुनकर आ जाएगा, क्योंकि [इस ऋतु मे] राजा-रंक सभी घर में स्त्री को लेकर रमण करते हैं। (६) ऐ सुरजन, लोरिक वाणिज्य के लिए गया है, और मैं नित्य ही [इसके लिए] आंसू गिराती रही हूँ, (७) [और कहती रही हूँ,] 'ऐ लोरिक, तू किस लाभ के लिए [यह] भूल [कर] रहा है ? [देख,] तेरी पूंजी (स्त्री) का ही [इस लाभ के लोभ में] विनाश हो रहा है।"

(३४९)

'माह' मांस निसि 'परइ' तुसारू। 'कंपहिं' हार डोर थनहारू।
'कांपहिं' डसन नीर चखि झरा। बिरह अंगीठी 'हियंउरि' धरा।
'एक बिरहें अरु दहिउं तुसारा'। 'भा रे परहि यह जिवनु हमारा'।
तुम्हं बिन नांह 'अइसि हउं' भई। 'पुरइनि जइसि भूंजि डहि' गई।
'भरि हेवं[त]भोर अंक लाइउं'। 'लइ' गई चांद सुरिजु कत 'पाइउं'।

'हेवंत मोहि' बिसारि मेह्वु पर कामिनि 'रांवइ'।
'सुरिजन मुइउं' तुसारि बेगि कहि 'सूरिजु आवइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६०।२, बी० १२१७-१२१६।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियते माह मांस।

पाठान्तर—(१) १. बी० माघ। २. बी० परै। ३. बी० कंपैंहि। (२) १. बी० कंपैं। २. बी० हिये उपरि। (३) १. बी० इकु बिरहा अरु परै तुसारू। २. बी० भय रु परायोहु जीवनु हमारू। (४) १. बी० अैस हौ। २. बी० परवनि जैस भूंजि ठह। (५) १. बी० हीये हियो भीरि गै लाऊ। २. बी० ले। ३. बी० पाऊ। (६) १. बी० हीया होतें महिन (मुहिं—फ़ा०)। २. बी० रावैं। (७) १. बी० सुरिजनु मुयो। २. बी० लोरिकु आवैं।

अर्थ—(१) "माघ मास में रात में तुषार पड़ता था, [जिससे] भारी

स्तनों पर [पड़ी हुई] हारों की डोरियां कांपती थीं। (२) दांत कांप रहे थे और आंखों से जल (आंसू) झड़ (गिर) रहा था, [दूसरी ओर] विरह की अगीठी हृदय-उर में रक्खी हुई थी। (३) एक तो विरह से और दूसरे तुषार से मैं दग्ध हुई, इसलिए मेरा यह जीवन [जैसे] पराए का हो गया था। (४) [लोरिक से कहना,] 'हे स्वामी, तुम्हारे बिना मैं ऐसी हो गई थी, जैसे [तुषार-पात से] पुटकिनी (कमलिनी) जल-भुन गई हो। (५) हेमंत भर [मुझ पुटकिनी ने] अंकों से भोर (प्रभात) को ही लगाया ; क्योंकि सूर्य (लोरिक) को चांद (चांदा) ले गई थी, इसलिए मैं [पुटकिनी] उसे कहा पा सकी थी ? (६) हेमंत में वह म्लेच्छ मुझे विस्मृत कर दूसरे की स्त्री से रमण कर रहा था ! (७) हे सुरजन, मैं तुषार से मर गई; तू [जाकर] कहे, 'ऐ सूर्य (लोरिक), तू शीघ्र आ जा'।"

(३५०)

फागुनि सीउ 'चउग्गुन' कहा। 'उछर पवन सतगुन' होइ रहा।
फाग 'सराहउं लोरु जउ आवइ'। 'सीउ मरति गियं लाइ जियावइ'।
घरि घरि रचहिं 'डंडाहर' बारीं। आति सुहाग बहु राज दुलारी।
मुख 'तंबोलु' चखि काजर 'पूरहिं'। 'आंकि मांग सिरि चीरि सेंदूरहि'।
'नाचहिं फाग होइ' झनकारा। 'तेहिं रस भीनीं सबइ सयंसारा'।
रगत 'रोइ मइं' तस 'कइ' 'चोल चीर' रतनार।
कहि सुरिजन तोरि मैंनां 'भइ होरी जरि' छार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २९६ (?), बी० १२२०-१२२२। ऐसा लगता है कि मैं० यहां पर त्रुटित हो गई थी और उसके कई पत्र टूट कर निकल गए थे, इसलिए संख्या पुनः डालते समय जब बाद की पत्र-संख्या से मिली हुई पत्र-संख्या डाली गई, उसमें भूल हो गई है।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियते माह फागुन।

पाठान्तर—(१) १. बी० चवगुना। २. बी० आछरि जीउ सूक। (२) १. बी० सर्यो जै लोरिकु आवै। २. बी० सीय म मरत गै लाई जिवावै (३) १. बी० डंडारसि। (४) १. बी० तबोरु। २. बी० पूरा। ३. बी० भरहिं मांग सीस सिदूर पूरा। (५) १. बी० खेलहिं फाग करहि। २ बी० तिहि रस भीनी सभ सैंसारा। (६) १. बी० रोय मै। २. बी० कौ। ३. बी० चोरा ची[र]। (७) १. बी० जरि भई होरी।

अर्थ—(१) "फाल्गुन में शीत चौगुना कहा जाता है, किंतु पवन उच्छलित हो रहा था [इसलिए] वह सतगुना हो रहा था। (२) मैं फागु की सराहना करती यदि लोरिक आ जाता और [मुझ] शीत से मरती हुई को गले से लगा कर जिला देता। (३) बालिकाएं घर-घर में डंडाहर (?) रचती थी और बहुतेरी राजदुलारियां अत्यधिक सुहाग मे [थीं]। (४) मुख मे वे ताम्बूल [लेती थीं] तथा आंखों में कज्जल पूरती थीं, वे मांगें अंकित करती और सिर [के केश] चीर कर उसे सिंदूरित करती थीं। (५) वे फाग नाचती थी, जिससे झंकार होती थी, और उसी रस में भीनीं संसार में सभी थी। (६) मैंने [इस मास में] इतना रक्ताश्रु गिराया कि मेरी चोली और मेरा चीर लाल हो गए। (७) हे सुरजन, [लोरिक से जाकर] कह, 'तेरी मैना होली [की आग] में जल कर राख हो गई'।"

(३५१)

चैति बनसपति करी निकारा। हरियर बरन सेतु (सेत) रतनारा।
बिहसैं(से) क(कं)वरु अ(अउ)चंदनु गंधाना।
कुसुम बासु सहि भवरु लुभांना।
सुरिजन आई(इ) बसंतु तुलाना। पिउ पर बेली देषि लुभांना।
कतु बसंतु जौ(जउ) न घरि आवै। रितु वसंत मोहि देप(षि) न भावै।
लोरिक आय(इ) देषि फुलवारी। तुम्ह बिनु सूकै नारि ग(गु?) वारी।
यकसर नारि मरै निसि काटेंहि सेज बिछावै।
कहि सुर(रि)जन धन पास तु(तो)र तुल(तिल?) ऐक न पावै।।

सन्दर्भ—बी० १२२३-१२२५। मैं० भी यह कडवक रहा होगा—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "चैत्र में वनस्पतियों ने कलियां निकाली, जिससे वे हरी [वनस्पतियां] श्वेत और रत्नालु (लाल) हो रहीं थीं। (२) कमल विकास कर रहे थे, चंदन सुगंधि-विकीर्ण करने लगा था, एवं कुसुमों की सुवास से सारे भ्रमर उन पर भटक रहे थे। (३) [अन्यों के] स्वजन (आत्मीय) बसंत मे आ पहुचे थे किन्तु मेरा प्रिय अन्य की वेली (नारी) को देखकर उस पर लुभाया हुआ था। (४) क्योंकि मेरा कांत (पति) वसंत में घर नहीं लौट रहा था, वसत ऋतु को देखना [भी] मुझे नहीं भा रहा था। (५) [मैं कहती,] 'ऐ लोरिक, तू आकर अपनी फुलवाड़ी (यौवनवती स्त्री) को देख जा, तेरे

बिना यह ग्वालिन (?) नारी सूख रही है।" (६) यह अकेली (पति-विहीन) नारी रात्रि में [अपनी विरह-पीड़ा के कारण] मरती और [मानो] काटों पर अपनी शैया बिछाती थी, (७) [क्योंकि] ऐ सुरजन, कहना कि वह धन्या (स्त्री) तेरा-पार्श्व एक तिल भी नहीं पा रही थी।"

(३५२)

बैसाषा(ष)ह जौ तरवरु फरा। हियरे लाइ लोरिकु ही धरा।
तु (तो) रु अंबरांउ राषि केउ पारा। बिरसु आई पिउ आंब सुहारा।
न जानौ करहु कौन बन रहा। सुरिजन मोकौ(मकहुं)सुनौ तोर कहा।
करि कराप दिन दुष भरि काढ़ौ(ढौं)। नैन रगत नित मारग चाढौ(ढौं)।
आवहु सतुरैं बीर गुसाईं। षर होय(इ) भानु तपै बिनु सांई।
　　गौ बसंत रितु आहि हरि(परि?) सांई सेज न आयों (यो)।
　　सुरिजन नाहु भंवर परि दाष बेलि फर रांयो॥

सन्दर्भ—वी० १२२६-१२२८। मैं० में भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "वैशाख में जब वृक्ष फले, तब मैंने हृदय में लगा कर लोरिक को ही धारण किया। (२) [मैंने कहा,] 'तुम्हारे आम्राराम (अपने शरीर) की रक्षा मैं किसी प्रकार कर सकी; ऐ प्रिय, तुम आकर [अब] अपने आम्र-सहकार का विलास करो। (३) तुम न जाने किस बन में रहा करते हो; भला, ऐ स्वजन, मैं कहीं भी तो तेरा कथन (तेरा बोल) सुनूं! (४) कलाप करती (चिल्लाती) हुई मैं [अपने] दिन दुःख से भर कर काढ़ती (बिताती) हू, और नेत्रों का रक्त नित्य ही [तुम्हारे] मार्ग पर चढ़ाती हूं। (५) ऐ वीर स्वामी, तुम सत्वर ही आओ; तुम स्वामी के बिना, भानु प्रखर होकर तप्त हो रहा है।' (६) इसी प्रकार से वसंत [भी] चला गया किन्तु मेरा स्वामी शैया पर न आया, (७) [क्योंकि] ऐ सुरजन, मेरा पति भ्रमर की भांति [अन्य की] द्राक्षा-बेली (नारी-यष्टि) और उसके फलों (अधरों ?) पर अनुरक्त हो रहा था।"

(३५३)

तस कै चांद सुरिजु कनि जपा। जेठ मास महि उपर तपा।
तपताह जम (जग?) आहौं दही। बिरह कहांनी मो सौ कही।
अैस तपै षडवांनी न जानौ। सीतर नीरु दगध पै मानौ।

तिह गुनि चंदनु अंगि न चराऊं। बीना परिमलु अ[ग]रु न लाऊ।
रचि रचि मढु छावहि अधियारी। पिउ घरि रवनि रवैहि जग बारी।
सुर(रि)जन तपत जनमु गा सरि ज बारि जनयोहु (जनायेहु)।
मोर संदेस लोरिक सौं कहियहु जरता(त)हु आय(इ) बुझायेहु॥

सन्दर्भ—बी० १२२९-१२३१। मैं० में भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "चांद (चांदा) ने सूर्य (लोरिक) को इस प्रकार जपा, तब ज्येष्ठ मास मही-तल के ऊपर तप्त होने लगा। (२) जब जग (?) तप्त हो रहा था, तब मैं भी दग्ध हो गई और उसने [अपनी] विरह-कहानी मुझसे कही। (३) [ज्येष्ठ] इस प्रकार तप्त हो रहा था कि खाड का पानी (शर्बत) [कुछ भी नहीं] जान पड़ता था, तथा शीतल जल से, हो न हो, दाह ही का अनुभव होता था। (४) इसी गुण (कारण) से मैं अपने शरीर पर चंदन नहीं चढ़ाती थी, और बीना (बीरण—खस), परिमल और अगुरु नहीं लगाती थी। (५) [वर्षा की सन्निकटता के कारण] बहुतेरे लोग रच-रच कर (सुरुचि पूर्वक) अपने मढ़ (मंदिर—भवन) अधिकता से छा रहे थे, और जिनके प्रिय घर पर थे, जगत् भर में वे बाल-रमणियां [उनसे] रमण कर रही थी। (६) ऐ सुरजन, [ज्येष्ठ में] तप्त होते हुए यह जीवन उसी प्रकार गया जिस प्रकार सरिता का जल दिखाई पड़ा। (७) मेरा सन्देश तुम लोरिक से कहना, कि इस जलती हुई [नारी] को आकर वह बुझाए।"

(३५४)

आय(इ) अषाढ मेघ ग(घ)ररांने। नर नरवै पुहमी अगुराने।
छावहि मंदिर औ घर सारा। दीप गये बहुरे बनिजारा।
सब को चित करै घर केरी। मोहि घर चित नाहि(ह) अवसेरी।
पिय बिरहै तनि मासु घटावा। गा अषाढु पै कंतु न आवा।
जियरा मोर नांक होय(इ) रहा। पिय बिनु मरनु नितहि को सहा।
सुरिजन सावन बहुरेहि लागा कहि मैंना अब न सभारै।
हर भ(भं)डार कर टेका नैन लोहू भरि ठा(ढा)रै॥

सन्दर्भ—बी० १२३२-१२३४। मैं० में भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "आषाढ़ आया तो मेघ गड़गड़ाने (गर्जन करने) लगे,

पृथ्वी पर नर तथा नरपति [सभी] अंकुरित होने (अंगड़ाई लेने) लगे। (२) वे अपने मंदिर, घर और शालाएं छा रहे थे; जो बनजारे (व्यवसायी) द्वीपो को गए थे, वे भी लौट आए थे। (३) सभी-कोई (पुरुष) [अपने-अपने] घर की चिंता कर रहा था, और मुझे अपने घर की चिता इसलिए करनी पड रही थी कि [मेरा] स्वामी नहीं था। (४) प्रिय के विरह में मैंने शरीर का मास घटा (गला) दिया, और आषाढ [भी] चला गया किन्तु कान्त [वापस] न आया! (५) मेरा जी नाकों आ गया था, क्योंकि प्रिय के बिना मरण नित्य ही कौन सहन करता? (६) ऐ सुरिजन, सावन पुनः लग गया है, कहना कि मैंना अब अपने को नहीं संभाल [पा] रही है; (७) वह घर और भांडार पर हाथों को टेक कर नेत्रों में लहू [के आंसू] भर-भर कर ढाल रही है।"

(३५५)

मै सभ दुख तुम्हं 'आगें' रोवा। चांद 'नांह मोर देहु' बिछोवा।
तू 'हरि' पूनिउं चांद 'सपूनी'। खट रितु 'कीनी' सेज 'मोरि' सूनी।
कहि सुरिजन अस चांद न 'कीजइ'। नांहु मोर मोहिं दखिना 'दीजइ'।
एकु 'बरिसु मोर गा' बिनु नाहां। दई का(क) डरु' 'कीजइ' चित माहा।
'तुहूं आहि तिरिया कइ' जाती। पिय बिनु 'मरसि रइनि हिय फाटी'।
तू 'रे' निसूगी नारि सूग 'नहिं मन माहिं' जानसि।
'लीन्हें फिरसि नांह मोर कस अबहूं नहिं' आनसि॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३८ (नवीन), बी० १२३५-१२३७। मैं० इस अंश मे त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० : हमः हाले खुद गुफ़्तन मैंनां पेश सुरजन पैगाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० आगैं। २. बी० नाहि मोहि दीन्ह। (२) १. बी० हहि। २. बी० सवानी। ३. बी० गइ (कीनी—फ़ा०) ४ बी० मोरी। (३) १. बी० कीजै। २. बी० दीजै। (४) १. बी० बरसु भौ मो। २. भो० कइ। ३. बी० कीजैं। (५) १. बी० तूंहैहि आहि तिरी की। २. बी० रैंनि मरत फुटि छाती। (६) १. बी० र। २. बी० [म]न माहिं न। (७) १. बी० गई तीनि रुति आहि नाहु मोरैं अजहु न।

अर्थ—(१) " 'ऐ चांदा,' [मैंना ने कहलाया,] 'मैंने [अपना] समस्त दुख तेरे आगे रो-सुनाया, [तुझसे प्रार्थना है कि] तू मुझ से अलग किया

हुआ मेरा पति दे दे। (२) ऐ पूर्णिमा की संपूर्ण चांद, उसे अपहृत करके तू मेरी शैया [पिछली] छः ऋतुओं में सूनी कर चुकी है।' (३) ऐ सुरजन, [मेरी ओर से] उससे कहना कि 'ऐ चांद, ऐसा तुझे न करना चाहिए, मेरा स्वामी तू मुझे दक्षिणा [के रूप में] दे दे। (४) मेरा एक वर्ष बिना स्वामी के जा चुका है, [भला अब भी] तू चित्त में दैव का डर कर! (५) तू भी स्त्री की जाति [की] है; तू भी प्रिय के बिना रात्रि में हृदय के फटने से मर जाएगी। (६) [किन्तु] तू निष्ठुर नारी है, और मन में करुणा करना नहीं जानती है। (७) तू मेरे स्वामी को कैसे (क्यों) लिए फिर रही है? अब भी क्यों उसे [वापस] नहीं ला रही है?' "

(३५६)

काहे 'कहं बिधि हउं' औतारी। 'बरु औतरतहि मरतिउं' बारी।
चांद मया करि 'दइ' अहिवातू। मोहिं वारि सिर 'ऊपरि' छातू।
यह दुखु भारु सहइ को 'पारइ'। 'तेहि निसि रोइ दिवस मोहिं जारइ'।
'सोरह' करां 'सरगि' परगाससि। 'बारह' मंदिर सेज तूं डाससि।
सहस करां सूरिजु उजियारा। 'साईं' मोर 'तोहि भएउ' पियारा।
पाइं 'परउं जउ' 'उगवसि' 'अउ' सुरिजन पूजा सारउं।
'जारि करां जो प्रगासइ तासउं कइसें पारउं'॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३६ (नवीन), बी० १२३८-१२४०। मैं० इस अंश में त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

भो० में पिछले कडवक के बाद आया हुआ तर्क 'काहे' इसी का है।

शीर्षक—भो०: वाक़अ़ हाल खुद गुफ्तन मैंना पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब लौरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौ हौ बिधि। २. बी० बा(ब)रि औतरत मरती। (२) १. बी० देहि। २. भो० बारी (बारि—ना०)। ३. बी० उपरि। (३) १. बी० बारा। २. बी० तिहि निसि राई तनु यो जारा। (४) १. बी० सोराह। २. बी० सुरिजु (दे० परवर्ती चरण)। ३. बी० बाराह। (५) १. बी० नाह। २. बी० तुम्ह भयो। (६) १. बी० परौं जौ। २. भो० गौनसि। ३. बी० औ। (७) १. बी० छडि करा परगट हाई तास्यौ कैसें पारौं।

अर्थ—(१) ["ऐ चांद,] विधाता ने मुझे अवतरित (उत्पन्न) ही क्यों किया? इससे तो अच्छा होता कि अवतरित होते ही मैं, ऐ बालिका, मर

गई होती। (२) ऐ चांद, तू मुझ पर स्नेह करके मेरा अहिवात वापस कर, और [मेरे] सिर पर का छत्र मुझे वार (दे डाल)। (३) यह दुःख-भार कौन सहन कर सकता है? इसी से रात में मैं रोती हूं और दिवस मुझे जलाता है। (४) तू सोलह कलाओं से स्वर्ग (आकाश और धवलगृह) को प्रकाशित करती [रहती] है, और बारह मंदिरों (राशियों और भवनों) में तू [अपनी] शैया बिछाती है, (५) [और इस समय] सहस्र कलाओं से प्रकाश-पूर्ण सूर्य (लोरिक), मेरा स्वामी, तुझे प्रिय हो गया है!' (६) ऐ सुरजन, [उससे कहना,] 'यदि तू [उस सूर्य—लोरिक को] उदय कर दे तो मैं तेरे पैरों पड़ूँ, और तेरी पूजा सारुं (करूँ)।' (७) किन्तु जो मुझे [अपनी] कलाओं से जला कर [अपना] प्रकाश करती है, उससे मैं कैसे [अपने प्रिय को पा] सकती हूं?"

(३५७)

चाद निसूगी तो पा सरना। पिय मोर उपरि का तो धरना।
कौन बैरु मै(मइं) तो सौ कीन्हा। दे चिल्हवांसु नाहु मोर लीन्हा।
तोरी मांग सिंदूर संवारै। मोहि माथै नित करवतु सारै।
तोहि बहु फूल हारु पहिरावै। मोरै मारगि का(कां)ट बिछावै।
पून्यों चांद देहि घरवासा। लोरिक पाटनि नारि कर पासू।
सांवर चीर मैल तन आंग मू(मूं)ड अति रूख।
कहि सुरिजन तोरी मैंना माजरि भई अति सूप॥

सन्दर्भ—बी० १२४१-१२४३। मै० इस अंश में त्रुटित है—दे० कड़वक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "ऐ निष्ठुर चांद, मुझे तेरे चरणों की शरण है, मेरे प्रिय के ऊपर तुझे क्या (कौन-सा) अधिकार है? (२) मैंने तुझसे कौन-सा बैर किया था, कि तूने चील्हवांस (चील्हपाश—चील्हों को फंसाने का कठिन फंदा) करके मेरे स्वामी को [मुझसे ले] लिया? (३) [अब] वह तेरी माग में सिंदूर संवारता (रचता) है, और मेरे मत्थे पर नित्य करपत्र (आरा) सारता (चलाता) है; (४) तुझे वह बहुतेरे पुष्पहार पहनाता है, और मेरे [जीवन के] मार्ग में वह कांटे बिछा रहा है। (५) ऐ पूर्णिमा की चांद, तू उसको [उसके] घर का निवास दे, उस लोरिक को जिसे तू [हरदीं] पाटन में ऐ नारी- अपने पाशों में कर रही है। (६) मेरा चीर श्यामवर्ण का हो रहा है मेरा शरीर मैला हो रहा है मेरे अग और सिर अत्यधिक रूक्ष हो

रहे हैं। (७) ऐ सुरजन [लोरिक से] कहना, 'तेरी मैनां मांजरी अत्यधिक शुष्क हो गई है।' "

(३५८)

मोर भतारु 'सरगि लइ रावसि'। 'अउ निसि मोहिं' सिर ऊपरि आवसि।
बाभन देव 'लोक' मोहि दीन्हां। सो लइं 'लोर पेलि कइ' लीन्हा।
तू बिनु लाज कानि 'तोहि' नाहीं। नाहु मोर गोवसि परिछाहीं।
मोहि राखसि अपनें उजियारें'। लोरु रवसि पर घर 'अंधियारे'।
बावन 'पुरुस जउ' तोर बियाहा। 'लोरिक मोरु गहसि दहुं' काहा।
सुरिजन 'बिनउ चांद कहं पठवहि लोर दिवाइ'।
छाडि देहु घर 'आवइ मोहि जिय' आस 'तुलाइ'॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ५२ (नवीन), बी० १२४४-१२४६। मै० इस अंश मे त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० : बकिनायत गुफ़्तन मैनां हाले खुद पेश सुरजन पैगाम बजानिब चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुरगि लै रावसि। २. बी० औ निसि मोहि। (२) १. बी० लोग। २. बी० लोगह देषत। (३) १. बी० तो। (४) १. बी० मुहि रषिसि आपनै उजियारा। २. बी० अधियारै। (५) १. बी० बीरु सु। २ बी० लोरु मोरु करिसी धौ। (६) १. बी० बिनय चांद कर पठई को पियै सनाहु जाई। (७) १. बी० आवै मोर जिउ। २. बी० तुलाई।

अर्थ—(१) "[ऐ चांद,] तू मेरे भर्त्तार (पति) को आकाश मे ले जाकर उसके साथ रमण करती है, और रात्रि में तू मेरे सिर के ऊपर आती है! (२) जिसको ब्राह्मणों, देवताओं और समाज ने मुझे दिया, उस लोरिक को तूने [मुझे] धकेल कर ले लिया। (३) तू बिना लज्जा की है, और तुझे मर्यादा [का ध्यान] नहीं है, इसीलिए तू मेरे स्वामी को [अपनी ?] परछाही मे छिपा रही है। (४) मुझे तो तू [अपने] प्रकाश में रख रही है, जब कि [मेरे] लोरिक से तू पराए घर में और अंधेरे में रमण कर रही है। (५) जब कि तेरा विवाहित पुरुष बावन [विद्यमान] है, क्या (क्यों) तू मेरे लोरिक को पकड़ रही है?' (६) ऐ सुरजन, चांद को (से) [मेरी ओर से] निवेदन करना, कि वह लोरिक को मुझे दिला (दे) कर भेज दे; (७) उसे छोड़ दे कि वह घर आए और मेरे जी की आशा पूरी हो "

(३५९)

मोर खिलवना अपुर(रु)बु अहा। देषत कीरु मंजारी गहा।
दूध भातु जो(जें)वनु नित देत्यौं। सगरी राति हिये परि लेत्यौं।
सेज पिरम रस सून्यौं आवत।
अंब सहरा (सहारि) डार चरि रावत।
तिहि तू चांद गगन लै गई। मास हीन हौ (हौ) पिपिना भई।
रसु लै निरसु कीन्ह तुम्ह लोरा। दीजै अबहि बियाहा मोरा।
सुर(रि)जन चांद गवन परदेसाह उंजियार।
हौ(हौं)रु निलषनि पिय बिनु मंदिर मोर अंधियार ॥

सन्दर्भ—बी० १२४७-१२४९। भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तक 'मोर खिलवना' आता है, जो इसी का है।

अर्थ—(१) "मेरा वह खिलौना—क्रीड़ापक्षी—(लोरिक) अपूर्व था, मेरे उस [क्रीड़ा-] शुक को देखते-देखते मार्जारी (चांदा) ने ले (छीन) लिया। (२) उसको मैं नित्य ही दूध-भात का भोजन देती थी, और सारी रात हृदय पर लिए रहती थी। (३) शैया में वह प्रेम-रस में भर कर शून्य (एकान्त) में आता था और [मेरी यौवन-वाटिका के] आम्र-सहकार की डालों (विभिन्न अंगों) पर चढ़ कर रमण करता था। (४) उसको, ऐ चांदा, तू अपने आकाश (धवलगृह) को चढ़ा ले गई, और मैं मांसहीन होकर प्रक्षीण हो गई ! (५) लोरिक का समस्त रस लेकर तूने उसको नीरस कर दिया है, [भला] अब भी तू मेरा विवाहित [पुरुष] दे दे !' (६) ऐ सुरजन, चांदा तो परदेश जाकर प्रकाशपूर्ण हो रही है; (७) किन्तु मैं प्रिय के बिना लक्षण-हीना [हो रही] हूं और मेरा मंदिर (भवन) अंधकार-पूर्ण [हो रहा] है।"

(३६०)

सुरिजन पाव रही लइ मैंना। 'बनिजु' तुम्हार मोर दुखु बैना।
लादि टांड 'तहं चलहु' गुसाईं। 'जेहि' पाटनि 'गा' लोरिकु साईं।
'जेहि' पाटन(नि) गइ चांद सभागी। 'तेहि' पाटनि 'गवनहु मोहि' लागी।
'जेहि' पाटनि पिउ रहा लुभाई। 'लोभ(भि)नि' 'चांदहि लइ' घरि आई।
'तेहि' पाटनि 'लइ बनिजु' 'पसारौ(र)हु'।
अउ बेसहइ कहं लोरु हकारौ र हु

देउं तुरी 'चढु' सुरिजन 'उडइ' पवनु पंखि(ख) लाई(इ)।
दस 'गुन लाभ देव मइं तो कहं' लोरु 'वेसाहइ' जाई(इ)॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ५३ (नवीन), बी० १२५०-१२५२।

भो० में इस छंद के बाद तर्क 'खोइलिन नायक' है, जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—भो०: पाए उफ़्तादन मैंनां अज़ बराए रसानीदन पैग़ाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० बनजु। (२) १. बी० तू चालु। २. बी० जिहि। ३. बी० है। (३) १. बी० जिहि। २. बी० तिहि। ३. बी० मोकौं गुहनै। (४) १. बी० जिहि। २. भो० लोभी। ३. बी० चांद न ले। (५) १. बी० तिहि। २. बी० लै बनजु। ३. भो० पसारा। ४. बी० औ बिसहन कौ। ५. भो० हकारा। (६) १. बी० चरु। २. बी० उडिरु। (७) १. बी० गुनौ लाभ देऊ मैं तोकौं। २. बी० बिसाहै।

अर्थ—(१) सुरजन के पैर मैंनां ने पकड़ लिए, [और उससे कहा,] "तुम्हारे बनिज के लिए मेरे दुःख के वचन हैं। (२) [इस प्रकार का] टाडा लाद कर तुम, हे गोसाईं, वहाँ जाओ, जिस पाटन (महानगर) को मेरा स्वामी लोरिक गया है। (३) जिस पाटन (महानगर) को भाग्यशालिनी चांदा गई है, उसी पाटन (महानगर) को तुम मेरे [कार्य के] लिए जाओ। (४) जिस पाटन (महानगर) में [जाकर] मेरा प्रिय लुब्ध हो रहा है, [जिससे कि] वह लोभिनी चांदा को लेकर [भी] घर आए। (५) तुम उसी पाटन (महानगर) में यह बनिज ले जा कर पसारो, और इसे क्रय करने को लोरिक को बुलाओ। (६) ऐ सुरजन, मैं तुम्हें घोड़ा देती हूं, जिस पर तुम पवन के पंखे लगा कर उड़ो। (७) यदि तुम लोरिक को क्रय करके लाए, तो मैं तुम्हें [अन्यथा होने वाले] लाभ का दस गुना दूंगी।"

(२६१)

'खोलिनि' नाइकु दुहुं कर गहा। 'आपनि पीरि हियइं कइ' कहा।
लकुटि हाथ अंधरी कइ लिई। 'हउं' बिनु लकुटि टेक मोरि 'गई'।
'पियरि' धूप 'अब' जीवन मोरा। बहु पछिताउ' 'रहसि' तुम्ह लोरा।
बूढ़ि 'बैसि' 'खोलिनि' 'कुंबिलानी'। 'तुम्हं' बिनु पूत सींच को पानी।
आइ देखु 'हउं अंथवति आहा'। 'अंथएं' आइ करउ फुनि 'काहा'।

मोहि 'जि[यत] जिय' सुरिजन लोरिक आइ 'देखाउ'।
'नैन नीर भरि' 'साइर' [धो]इ 'पियउ दुइ पाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६७, भो० पत्र ४० (नवीन), बी० १२५३-१२५५।

शीर्षक—मैं० . गुफ़्तने खोलिन सुरजन नायक रा ब रवानः करदन।

भो० : गुफ़्तने खेलिन वाक़अ् हाल ख़ुद व ज़ईफ़ी पैग़ाम बजानिब लोरिक।

(६) तथा (७) में कोष्ठकों के अंश मैं० में कीट-भक्षित होने के कारण निकल गए हैं।

पाठान्तर—(१) १. भो० खेइलिन (खोइलिन); बी० पौलनि। २. बी० आपन पीर हिये की। (२) १. भो० लकुटि तो अंधरी कइ गई, बी० लकुटी हाथ अधर की लई। २. बी० हौ। ३. भो० लिई। (३) १. बी० पियर। २. भो० यह। ३. बी० होय। (४) १. मैं० भइसि, बी० बैसि। २. भो० खेलिन। ३ मैं० कुमिलानी। ४. भो० तेहि, बी० अस। (५) १. बी० हौं अथवलि अहा। ३. बी० अथवे। ४. मैं० आए करियहु, बी०, आइ तुम्ह करिहौ। ४. बी० कहा। (६) १. बी० जीउ जौ। २. बी० दिपावा। (७) १. बी० दासि तुम्हारी। २ भो० सरवर, बी० होइ रही। ३. बी० पीउ दोई पाव।

अर्थ—(१) खोलिन ने नायक को दोनों हाथों से पकड़ा, और [उससे] हृदय की अपनी पीड़ा कही, (२) ' "[चांदा ने] इस अंधी के हाथकी लकुटि (लकड़ी) ले ली; [अब] मैं बिना लकुटि (लकड़ी) की हूं, [क्यों कि] मेरी टेक चली गई! (३) अब मेरा जीवन [संध्या की] पीली धूप है, [इसके रहते-रहते तुम न आए तो] तुम्हें, ऐ लोरिक, इसका बहुत पछतावा रहेगा। (४) अपनी वृद्धावस्था में खोलिन [लता] कुम्हला गई है; हे पुत्र, तुम्हारे बिना उसे पानी से कौन सींचे? (५) तुम आकर देखो, मैं अस्तमित हो रही हूँ, अस्तमित हो जाने के बाद पुनः तुम आकर [ही] क्या करोगे?' (६) ऐ सुरजन, यदि मुझे [मेरे] जीते-जी लोरिक को आकर दिखाओ, (७) तो अपने नेत्रों के जल से सागर भर कर और [उससे] तुम्हारे दोनों पैर धोकर मैं पिऊं।"

२४. संदेश-प्राप्ति तथा स्वदेश-आगमन खण्ड

(३६२)

'कवनु' बनिजु 'तुम्ह' नाइक 'कीन्हां'। सोक संताप बिरह दुख 'लीन्हा'।
'दुद' उदेग उचाट बिसाहा। अति बैराग 'खंभार' जो आहा।
'अरथु दरबु' 'सभै(भइ) बीसरा'। बाखर गूनि बिरह 'परजरा'।

'आहर दांवरि' 'सभ' दौ लागा । झार न सहइ साथु 'सभु' भा(भां)गा ।
मारग 'घर' 'तेहीं(हिं)' 'जरतइ' जाई । मैनां काम न आगि बुझाई ।
'दानि ते मांगत' दानु 'सहारत' 'अउ बैठे' बटवार ।
कहत सुनत 'दौं' दाधे सुरिजन 'के पइसार' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६८, भो० पत्र ४१ (नवीन), बी० १२५६-१२५८ ।

भो० में पिछले कडवक के वाद तर्क है 'कौन बनिज', जो इसी कडवक का है ।

भो० में इस कडवक के नीचे बाद वाले कडवक का तर्क है 'मिरिग पंथ' ।

शीर्षक—मैं० : रवानः शुदन सुरजन''' सूए हरदीं पाटन ।

भो० : पैग़ाम फ़िराक़ हासिल शुदन सुरजन राव व रवां करदन अज़ गोवर बजानिब लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौनु । २. बी० देपु । ३. भो० लीन्हा । ४. बी० भो० दीन्हा । (२) १. बी० बहुल । २. मैं० खबार । (३) १. भो० अरती मरन । २. मैं० सभ पाखर भरा, भो० धरन सम भरा । (४) १. बी० अहिरंत दांव । २. बी० सौ, मैं० सब । ३. मैं० सब (५) १. बी० पर (घर—फ़ा०), भो० लन । २. भो० में नहीं है, बी० तांह । ३. बी० जरतन (जरतइं—फ़ा०) । (६) १. बी० दांनू मांगहि । २. बी० में नहीं है । ३. बी० औ मागहि । (७) १. बी० सभ । २. मैं० नेकहि उपकार, बी० के व्यापार ।

अर्थ—(१) [लोग सुरजन से कहते थे,] "ऐ नायक, तुमने कौन-सा वाणिज्य किया है कि तुमने शोक, संताप तथा विरह-दुःख ले रक्खा है ? (२) तुमने द्वन्द्व, उद्वेग, उच्चाट (अरति), अत्यधिक विराग, तथा खभार (क्षोभ) को मोल ले लिया है ! (३) अर्थ तथा द्रव्य—सब तुम्हें विस्मृत हो गए हैं, और [तुम्हारे] बाखर और गून विरह-दुःख से प्रज्वलित हो रहे है ! (४) तुम्हारे आहर और दांवर—सब में [वह] दावाग्नि लग गई है, जिसकी ज्वाला न सह सकने के कारण तुम्हारा समस्त सार्थ (व्यापारी-दल) भग्न हो गया है । (५) मार्ग के घर उससे जलते ही जा रहे हैं, क्योंकि मैनां की कामाग्नि नहीं बुझ रही है ।" (६) दानी (कर उगाहने वाले) जो दान मांगते हुए [उगाहने का कार्य] संभाल रहे थे, और जो बटपार (डाका डालने वाले) बैठे हुए थे, (७) सुरजन के प्रवेश से कहते-सुनते [भर में] उस दावाग्नि में दग्ध हो गए ।

(३६३)

'मिरिघ जो' पंथु लांघि 'कइ' जाहीं। धूम वरन होइ 'छाडि' पराहीं।
जांवत 'पंखि' उरध उड़ि गए। किसन बरन कुइला जरि भए।
'जेहि सरि जाई होइ संतारा'। करिया 'दहे' नाव 'कंडहारा'।
सायर 'डाहि मंछ डहि डहें'। 'डहे कुरुजवा' 'सरवर' अहे।
'अइसनि झार ब्रिरह कइ' भई। धरती 'डाहि गगन लहि' गई।

सरगि 'चंद्र मुंह मइला' 'अउ' 'धूम' मेंघ भए कार।
सुरिजन 'बनिजि' 'तुम्हारे' उबरे 'बूढ' न 'बार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६६, भो० पत्र ५१ (नवीन), बी० १२५६-१२६१।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत दर फ़िराक़ सुरजन गोयद।

भो० : अज़ फिराके मैनां अहवाल सोख्तन व जानवरान दस्ती व माहयान दर आब सोख्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० मिग ज। २. भो० जो, बी० करि। ३. बी० माझ, मै० जाइं। (२) १. बी० पंष। (३) १. मै० चालहि सुरजन होइ संतारा, बी० जिहि याह बातनि भई झारा। २. बी० दाधे। ३. बी० गधारा (कंडहारा—फ़ा०) (४) १. बी० माझ मछ सब दहे। २. बी० दहे करजूवा। ३. मै० जलहर। (५) १. बी० अैस झार बिरहै की। २. बी० लागि गगनि लहु। (६) १. बी० चाद महि लागौ जाई। २. बी० औ, भो० में नहीं है। ३. भो० धरमग, बी० दर। (७) १. बी० बनजि। २. बी० तुम्हारैं, मै० तुम्हारे। ३. बी० बूड। ४. मै० पार, बी० हार।

अर्थ—(१) [लोग कहते,] "जो मृग [तुम्हारे] मार्ग को लांघ कर जाते हैं, वे धूम्र-वर्ण के होकर और [मार्ग को] छोड़कर पलायित हो जाते हैं। (२) जितने पक्षी ऊपर से उडकर गए, वे भी जलकर कृष्ण वर्ण के और कोयला जैसे हो गए! (३) जिस सरिता में संतारा होने (संतरण) के लिए आप जाते हैं, उस नाव के करिया और कर्णधार जल जाते हैं! (४) सागर के दग्ध होने से उसके मत्स्य दग्ध हो रहे हैं, और वे क्रौंच जल गए हैं जो सरोवरों में थे। (५) विरह की ज्वाला ऐसी हुई है कि धरती को दग्ध कर वह आकाश तक चली गई है। (६) आकाश में चंद्र का मुख मलिन हो गया है और धूम से मेघ काले हो गए हैं। (७) ऐ सुरजन, तुम्हारे इस वाणिज्य से बुड्ढे और बालक [तक] कोई नहीं बचे हैं।"

(३६४)

मास चारि चलि बाट 'खुटाई'। हरदीं पाटन उतरा जाई।
पाटन नगर 'पाइ' औधारा। दीख धौरहरु 'ईंगुर' द्वारा।
सुरिजन वस्तर साजि 'फिराए'। नरियर 'गूवा' थार 'भराए'।
लौंग खिजूर चिरौंजी 'लिए'। सुरिजन भेंट लोर कहुं 'गए'।
पूंछत गंवने 'लोर दुवारा'। 'परतिहार' 'भर बइठे बारा'।
बात 'जनावहु बीर कहं' परदेसी 'एकु आएउ'।
सोवत लोरु धौराहर 'पंवरियइं जाइ जगाएउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३००, बी० १२६२-१२६४।

शीर्षक—मै० : रसीदन सुरजन दर शहर पाटन व खुद रफ़्तन दर मुलाक़ात लोरिक।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क हैं 'मास चारि', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १. बी० घटाई। (२) १. बी० पाउ। २. बी० हींगरु। (३) १. बी० फिरावा। २. बी० गोवा (गूवा—फ़ा०)। ३. बी० भरावा। (४) १. बी० लई। २. बी० दई। (५) १. बी० लोरिक बारू। २. मै० प्रतीहार। ३. बी० भरि बैठ दुवारू। (६) १. बी० जनावोहु जाइ बीर। २. बी० यकु आयो। (७) १. बी० पौरियेहि आई जगायो।

अर्थ—(१) चार मास चल कर (चलते रहने पर) बाट समाप्त हुई और [सुरजन] हरदीं पाटन जा उतरा। (२) पाटन नगर में उसने पैर रक्खा और उसे ईंगुर के वर्ण का धवलगृह (प्रासाद) दीख पड़ा। (३) सुर-जन ने वस्त्र सज कर बदले (पहने), नारियल और गुवा (सुपारी) से थाल भराए। (४) लवंग, खजूर और चिरौंजी लिए हुए सुरजन लोरिक से भेंट करने को गया। (५) पूछता-पूछता वह लोरिक के द्वार पर गया (पहुंचा)। द्वार पर प्रतीहार और भट बैठे हुए थे। (६) [उसने कहा,] "बीर [लोरिक] को यह बात सूचित करो कि एक परदेशी आया हुआ है।" (७) लोरिक धवलगृह में सो रहा था, उसे पौरिए ने जा कर जगाया।

(३६५)

'खिन इक' नैन नींद 'सहं आए'। 'कहुलइ' 'पौरिया' आइ जगाए।
'बांभनु एक पंवरि हइ' ठाढ़ा। तिलकु दुवादसु 'मसतगि काढ़ा'।

'पोथी कांखि' हाथ बइसाखी । अन(नं)त 'कानि दुहु 'भेजइ' राखी ।
'जनेऊ कांधि' 'तरि' धौति कखाई । 'अउर धौति माथइं पहिराई' ।
रिगु 'जजु' साम अथरबनु पढ़ा । आइ 'परंतरि' 'रउरिइं' चढ़ा ।
पंडितु पढ़ा 'बिध(द)वांसिक 'पोथा बांच पुरान ।
बिरह भाख 'पइ' भाखइ' दूसर 'भाख' न जान ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०१, बी० १२६५-१२६७ ।

शीषक—मै० . वेदार करदन दरवान बर (?) लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० तिल यक । २. बी० मैं लाये । ३. बी० कतहि । ४. मै० पौइया । (२) १. बी० बंभनु देउ परोहितु । २. बी० मस्तकि गाढा । (३) १ बी० पतरी काष । २. बी० भीतरि । (४) १ बी० कधि जनेउ । २. मै० किर । ३. बी० और धोति माथैं पहराई । (५) १. मै० जुग । २. बी० बरंतर (परंतर—फ़ा०) । ३. बी० देहरि । (६) १. बी० सहदे परि । (७) १. बी० पै । २. बी० भाषै । ३. म० भखा ।

अर्थ—(१) एक क्षण [लोरिक के] नेत्र नींद में आए थे कि [नायक के] कहते भर में पौरियों ने आकर उसे जगा दिया । (२) [उन्होंने कहा,] "एक ब्राह्मण पौरी पर खड़ा है, जिसने मस्तक पर द्वादश तिलक काढ़ (बना) रखा है । (३) कांख में वह पोथी और हाथ में बैसाखी लिए हुए है, वह [आपके] दोनों कानों के लिए अनंत राखियां भेज रहा है । (४) [उसके] कंधे पर जनेऊ है, [और उस के] तले कखाई (कांखों से होती हुई रक्खी) धोती है, और उसने मस्तक पर भी धोती (धुली हुई पाग) पहन रक्खी है । (५) वह ऋक्, यजु, साम और अथर्वण (वेदों) को पढ़े हुए हैं और प्रान्तर मे आकर रावल में चढ़ आया है । (६) वह पढा हुआ पंडित है, विद्वान् है और पुराणों के पोथे बांचता (पढ़कर सुनाता है), (७) [किंतु] वह, विरह की भाषा ही भाष रहा है, दूसरी कोई भाषा [जैसे] वह जानता न हो !"

(३६६)

लोरु 'बचन' सुनि पंवरि सिधारा । 'पंवरि' बरंभनु आइ जुहारा ।
'बीरहिं बिप्र' 'आसिका(षा)' औधारी । दीरघ 'आइ तुम्ह रूप' मुरारी ।
'सुभ' कल्यान 'रिधि बहुलि' पाएहु । लखि 'औधारि' सहंस ओरगाएहु ।
'अनंत' कोरि जुग राजु 'करीजउ' । तुरी 'पीठि' खांडइं जसु 'लीजउ' ।
'रूपवंत' धनवंत सुलक्खिन । सिरीवंत जजमान 'विचक्खिन' ।

असि 'कइ बहुतइं आसी(सि)सा' बीर लोरिकहिं' दीन्ह ।
'फुनि' पटरइं 'चढ़ि बैठेउ' सुरिजन 'परति(पतरि)' हाथ 'कइ' लीन्ह ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०२, बी० १२६८-१२७० ।

शीर्षक—मैं० : बेरून आमदन लोरिक व मुलाक़ात करदन बा सुरजन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बीर । २. बी० पौरि । (२) १. बी० विरह बिप्परि । २. मैं० सुनत । ३. बी० आय तुम्हारौ । (३) १. बी० मैं० सिधि । २. बी० बहुत रिधि, मैं० बुधि बहुलि । ३. बी० अधार । (४) १. बी० अंन । २. बी० करीजा । ३. बी० पूठि । ४. बी० लीजा । (५) १. बी० पुत्रवंत । २. बी० बिचिषिन । (६) १. बी० कँ पढी आसिका । २. बी० लोर कहु । (७) १. मैं० पुनि । २. बी० चरि बैठा । ३. मैं० पोथि । ४. बी० कर ।

अर्थ—(१) लोर यह वचन सुनकर पौरी पर गया, तो पौरी पर ब्राह्मण ने आ कर जुहार की । (२) [तदनंतर] उस विप्र ने वीर [लोरिक] को आशीर्वाद प्रस्तुत किया, "हे रूप-मुरारी, तुम्हारी आयु दीर्घ हो ! (३) तुम बहुतेरे शुभ, कल्याण तथा ऋद्धियां प्राप्त करो और देख तथा अवधार कर सहस्रों को सेवक (अनुचर) बनाओ ! (४) अनंत कोटि युगों तक तुम राज्य करो और घोड़ेकी पीठ पर [सवारी करते हुए] खड्ग से यश लो ! (५) तुम रूपवान्, धनवान् और सुलक्षण हो, तुम श्रीमान, यजमान (यज्ञ करने वाले—पुण्यात्मा) और विचक्षण हो !" (६) इस प्रकार करके उसने वीर लोरिक को बहुतेरे आशीर्वाद दिए । (७) तदनंतर सुरजन फलक (पीढ़े) पर चढ़ कर बैठा, और उसने [लोरिक की] जन्म-पत्री को हाथ में कर (ले) लिया ।

(३६७)

भेंट 'आपि' 'फुनि परति (पतरि) पसारी' ।
मेख रासि तुम्हं रूप मुरारी ।
मेख 'बिरिख अउ' मिथुन 'भनीजइ' । करक सिंघ कन्या 'जो गनीजइ' ।
'तुला ब्रिचिक' 'धनु आइ बुलावइ' । मकर कुंभ 'गुन बैन सुनावइ' ।
'मेष चंद्र' जनम 'घरि' आवा । 'तिसरे' घरि सूरिजु दिखरावा ।
'सतएं' मंगरु आइ 'अवासू' । 'नवएं भरइं' बिहपै 'परगासू' ।
चारि 'नखत' तुम्हं 'दाहिन' गिनि जि जोइसी देख ।
मगरु 'बुद्ध' बिरसपति 'जनमै(म)हि 'चंद्र' बिसेख ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०३, बी० १२७१-१२७३।

शीर्षक—मैं० : दीदने सुरजन तालअ् लोरिक व तासीरे सितारगान शाद व नहस।

पाठान्तर—(१) १. बी० दीन्ह। २. मैं० में अस्पष्ट है। (२) १. बी० बृष औ। २. बी० कहीजै। ३. बी० जु भनीजै। (३) १. बी० तुल बृश्चिक। २. बी० धन गुन अरथावै। ३. बी० औ मीन सुहावै। (४) १. बी० मेषहि चंदु। २ बी० भरि। ३. बी० तिसरै। (५) १. बी० सातवै। २ बी० अवासा। ३. बी० नवमै घरि। ४. बी० परगासा। (६) १. बी० गरह। २. बी० दाहिनै। (७) १. बी० सूरु। २. मैं० जनम। ३. बी० चदु।

अर्थ—(१) भेंट अर्पित कर तदनंतर ब्राह्मण ने जन्म-पत्री पसारी [और कहा,] "हे रूपमुरारी, तुम मेष राशि के हो। (२) [राशियां] मेष वृष और मिथुन कही जाती हैं और कर्क, सिंह और कन्या गिनी जाती हे। (३) तुला, वृश्चिक तथा धनु आयु बुलाती (बतलाती) हैं और मकर तथा कुभ गुणों के वचन सुनाती हैं। (४) मेष का होकर चन्द्र जन्म के घर मे आया है और तीसरे घर में सूर्य दिखलाई पड़ रहा है। (५) सप्तम मे मगल आवास में आया हुआ है और नवम घर में बृहस्पति का प्रकाश है। (६) चार नक्षत्र तुम्हारे दाहिने हैं, जिन्हें ज्योतिषी गिन कर देख रहा है (७) मंगल, बुध, बृहस्पति और जन्म में चन्द्र का वैशिष्ट्य है।"

(३६८)

'चउथें बुध सुख(क्ख)किछु आवइ'। 'बिहफइ सउं जिमि' राजु 'करावइ'।
दुसरें 'मंगर पाज परवानइ'। परिहरि पापु धरम 'पंथि' 'आनइ'।
छठें 'सनीचरु' 'करै(रइ)' मिरावा। 'गइ' लखिमी फुनि 'हाथहि' आवा।
राहु केतु बहु 'दिवस डोलावहिं'। 'मिलइं कुटुंबि घर देस तें' आवहि।
'जउ न होइ अस जीउ उतारउं'। 'गुनित टूट तउ' पोथा 'फारउं'।
'खाटि निबू(बौ)री रोमथा' दाख बेलि फर 'खाव'।
'पाप कुंड सब तजि' लोरिक गंगा 'सुद्ध नहाव'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०४।१, बी० १२७४-१२७६।

शीर्षक—मैं० : अैजन लहू।

पाठान्तर—(१) १. बी० औ चौधर जौ सूरिजु आवै। २. बी० विहई सो जमु। ३. बी० करावै। (२) १. बी० सुकरु बाच परवानै। २. मैं०

कहं । ३. बी० आनै । (३) १. बी० सनीसरु । २. मै० दीख । ३. बी० गौ । ४. बी० हाथहु । (४) १. बी० चौमु डुलावहिं । २. बी० मिलै कुटबु घरि दस वै । (५) १. बी० जौ न होइ तौ जनेउ तोरौं । २. बी० गिनत चूक तौं । ३. बी० बोरौं । (६) १. मै० गंग नीर तुम्ह अन्हउब (तुल० दोहे का दूसरा चरण) । ५. बी० षाई । (७) १. बी० पति परजा सभ (दे० अगला कडवक) । २. बी० सुध होइ न्हाई ।

अर्थ—(१) "चौथे स्थान पर बुध है, इसलिए तुम्हें कुछ सुख आएगा (मिलेगा), बृहस्पति जैसे तुमसे राज्य कराएगा । (२) दूसरे स्थान पर जो मंगल है, वह तुम्हारा पाज (पर्याय—*अधिकार-विशेष*) प्रमाणित करेगा और पाप का परित्याग कर (करा कर) तुम्हें धर्म-पथ पर लाएगा । (३) छठे स्थान पर जो शनि है, वह मिलाप कराता है, [उसका प्रभाव यह होगा कि] गई हुई लक्ष्मी पुनः तुम्हारे हाथ आएगी । (४) राहु और केतु बहुत दिनों तक घुमाते रहते हैं और [*इनके कारण*] कुटुंबीजन जो घर तथा देश में आते हैं, वे मिलते हैं । (५) ऐसा न हो, तो मैं अपनी जीवा (अपना जनेऊ) उतार दूं, और यदि मेरा ज्योतिष का विचार त्रुटिपूर्ण हो तो मैं [अपनी] पोथी फाड़ डालूं । (६) तुमने खट्टी (कड़वी) निबौरी (पर-स्त्री) को रोमंथा है, किन्तु तुम पुनः द्राक्षा-वल्ली (विवाहिता स्त्री) के फलों को खाओगे (भोगोगे) । (७) और पापकुंड (पर-नारी के संग) को सम्पूर्ण रूप से छोड़ कर, ऐ लोरिक, तुम शुद्ध गंगा का स्नान (विवाहिता का भोग) करोगे ।"

(३६९)

'उत्तिम' 'समउ' 'सब सुख घर जाइहु' । पति परजा 'सब दूध अन्हाइहु' ।
राजा चंद्रु पाटि बइसारा । 'मंति' बिरसपति 'सुरिजु उभारा' ।
'बिसवां पंदरह' धरमु 'जनावइ' । पापु पांच 'बाईं दिसि' 'पावइ' ।
अनु चौदह 'तृणु(नु)' बिसवां साता । 'बाव' सीउ बिसवां नौ 'बा(पा?)ता' ।
'सोरह बिसवां' बिरिधि बखानिय । 'बारह बिसवां मोर तोर जानिय' ।
राजपाटु तुम्हं 'गोवरां आहइ' मैनां केर 'गोसाइं' ।
'चांदा' गगनि 'चढ़ाएहु' मैनां धरती काइं ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०४।२, भो० पत्र ६४ (नवीन), बी० १२७७-१२७९ ।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियते सितारगान गोयद ।

भो० : तालअ् ए सअ्द नमूदन सुरजन अज़ रफ़्तन लोरिक वतन क़दीम खुशूद । खुशवद ।

पाठान्तर—(१) १. भो० अवौं । २. बी० मास । ३. भो० सब ही सुख जाइहु, बी० भला रहसा जाई । ४. बी० हन्हाई । (२) १. बी० मंत्रि । २. बी० कही बिचारा । (३) १. मै० पंदरह बिसवा । २. भो० जगावइ, बी० भनीजै । ३. बी० बिसवा जु । ४ बी० गनीजै, भो० पावा । (४) १. भो० रतन सु । २. बी० बाइ । ३. बी० बाताह । मै० में पंक्ति है—सतरह बिसवा कहउं तउ मानिय : बिसवां दोय पाप गएउ जानिय (किंतु 'पाप' ऊपर आ चुका है) । (५) १. मै० अन बिसवा दस, बी० सोराह बिसुवा । २. बी० बिरधि बखानौ । ३. भो० खर बिसवां दुहुँ सेबन जानिय, बी० विसुवा दसें तेज फनि जानौ । (६) १. बी० गोबर रहै, भो० लोरिक हइ । २. भो० मैं केर, बी० मै केर कहा । (७) १. मै० चांदहि । २. बी० चरायहु । ३. भो० नाही गाइं, बी० उतरी काइं ।

अर्थ—(१) उत्तम समय में समस्त सुखपूर्वक तुम घर जाओगे और [तुम] पति (स्वामी) और [तुम्हारी] प्रजा—सभी दूध से स्नान करोगे। (२) [नक्षत्रों का] राजा चंद्र सिंहासन पर बिठाता है, और सूर्य बृहस्पति को मंत्री के रूप में उभाड़ता (उठाता—लाता) है । (३) [तुम्हारे राज्य में] पन्द्रह बिस्वा (२० में से १५ भाग) धर्म ज्ञात होगा और पांच बिस्वा (२० में से ५ भाग) पाप बाईं दिशा (उपेक्षा) प्राप्त करेगा । (४) अन्न चौदह बिस्वा तथा तृण सात बिस्वा हुए, वात और शीत को नौ बिस्वे प्राप्त हुए । (५) पुन: दस बिस्वा (२० में से १० भाग) वृद्धि कहिए और बारह बिस्वा (२० में से १२ भाग) मेरा-तेरा (राग-द्वेष) समझिए । (६) तुम्हारा राज-पाट गोबर मे [लिखा हुआ] है, और तुम मैंनां के स्वामी [लिखे हुए] हो, (७) फिर चांद (चांदा) को तुमने आकाश पर क्यों चढ़ा रक्खा और मैनां को धरती पर रख छोड़ा है ?"

(३७०)

मैंनां सबदु 'बिपर' जु सुनावा । 'सुना' 'लोर' हिएं गहबरि आवा ।
'चांद बात' बांभन कत पाएहु । अउ 'मैंनां कइ' आइ सुनाएहु ।
कहु पंडित 'फिर कित हुत' आवा । 'केइं' 'तूं' हरदीं नगर पठावा ।
मैंनां नांउ 'कहां' 'तूं' सुनां । 'अउ' चांदा 'कर' कहुबां 'गुनां' ।
तु न होसि बाभन परदेसी देखउ लखिन आहि सहदेसी

खेह पाय तोर 'झारि' 'बरंभन' अपनें सीस 'चढ़ावउं'।
माइ भाइ 'मैनां कर' कुसर खेम 'जउ पावउं'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०५।१, भो० पत्र ६१ (नवीन), बी० १२८०-१२८२।

शीर्षक—मै० : अैज़न लहू पुरसीदन लोरिक।

भो० : शुनीदन लोरिक हाल वाक़अ मैनां व गिरियः करदन बा-फ़िराक बराय मैनां।

पाठान्तर—(१) १. मै० बीर, बी० विपरि। २. मै० सुनतइं। ३. बी० लोरि। (२) १. मै० मैनां बात। २. मै० अउ चांदा कहं, बी० औ मैना की। (३) १. बी० तूं कत हुंते। २. बी० के। ३. मै० तुम्हं। (४) १. भो० कहा। २. बी० तैं, मै० तुम्हू। ३. बी० औ। ४. मै० खर। ५. बी० मना। (५) १. मै० होइ, बी० होहि। २. बी० देष्यों। (६) १. बी० झारौं, भो० मे नहीं है। २. भो० बांभन, बी० बभन। ३. भो० चढावहुं, बी० चराऊं। (७) १. बी० औ मांजरि मैनां। २. भो० जउ पावहुं, बी० जौ पाऊं।

अर्थ—(१) विप्र ने जब मैनां का शब्द (नाम) सुनाया, तो उसे सुनते ही लोर के हृदय में विह्वलता आ गई। (२) [उसने पूछा,] "चांदा की वार्ता को, ऐ ब्राह्मण, तुमने कहां पाया, और मैनां [के नाम] को कहां आकर सुनाया है? (३) ऐ पंडित, तदनंतर तुम कहो, तुम कहां से आए हो और तुम्हें किसने हरदीं [पाटन] नगर भेजा है। (४) मैनां का नाम तुमने कहा सुना है, और चांदा का कहा सुना है? (५) तुम, ऐ ब्राह्मण, परदेशी नहीं हो, तुम्हारे लक्षण देख रहा हूं कि तुम सहदेशी (स्वदेशीय) हो। (६) ऐ ब्राह्मण, तुम्हारे पैर की धूल झाड़ कर अपने सिर पर मैं चढ़ाऊंगा, (७) यदि [तुमसे] माता, भाई और मैनां का क्षेम-कुशल पाऊंगा।"

(३७१)

'कुवरू' भाइ 'तोरि' महतारी। लोगु 'कुटुंबु घर' मैनां 'नारी'।
लोरी चित 'रइनि दिनु आहहिं'। नैन 'पसारि तोहि' मारग 'चाहहिं'।
अंन पानी चखि देखि न 'भावइ'। 'जागहिं रइनि' दिनु नींद न 'आवइ'।
'पथि बटाऊ' पूछहिं लोरा। 'कोउ न कहइ सु कूसर' तोरा।
सूकि सो मैनां 'पांजरि' भई। 'झार बिरह' अधिकु जरि गई।
'डरियहि ताहि निसूगि लोर सुनि' जो दइयहि न 'डराइ'।
तजि 'कइ' 'बार बियाहा आपन' 'लीन्हे फिरै(रइ)' पराइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०५।२, बी० १२८३-१२८५।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'कुंवरू', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने सुरजन वख़ैरे सलाहे हमा अज़ीजान।

पाठान्तर—(१) १. बी० कवरू। २. बी० तोर। ३. बी० कुटंबु घरि। ४ बी० [ना] री। (२) १. बी० रैनि दिन अहहीं। २. बी० पसारैहि। ३ बी० चंहंही। (३) १. बी० भावै। २. बी० जागैहि निसि। ३. बी० आवैं। (४) १. बी० देहि बधाई औ। २. बी० कोई कहै न कोसर (कूसर–फा०)। (५) १. मैं० मैंनां मैंनां। २. बी० प्यंजरु। ३. बी० तोरी झार। (६) १. बी० तिहि रु निसूगें डरिये लोरा। २. बी० पत्याई। (७) १. बी० तजि। २. बी० बार बियाही अपनी। ३. मैं० लीन्हां पुरुख, बी० लीन्हौ फिरैहि।

अर्थ—(१) [ब्राह्मण ने कहा,] "कुंवरू, जो [तेरा] भाई है, तेरी माता, [तेरे] लोग, कुटुंबी और घर [वाले] तथा [तेरी] स्त्री मैंनां (२) तेरी ही चिन्ता में दिन-रात रहते हैं, और नेत्र पसार कर तेरा मार्ग देखते हैं। (३) अन्न तथा पानी आंखों से दिखने पर उन्हें नहीं भाते हैं, रात में वे जागते है तथा दिन में उन्हें नींद नहीं आती है। (४) वे पथिकों और राहगीरो से, ऐ लोरिक, पूछते है, किन्तु कोई तेरा कुशल नहीं वताता है। (५) सूख कर मैंनां पंजर हो गई है और विरह की ज्वाला से [और] अधिक जल गई है। (६) तुम्हें उससे डरना चाहिए जो नि.शूक (निष्ठुर) हो, और ऐ लोर, सुनो, जो दैव से न डरती हो, (७) और जो अपने बचपन के विवाहित [पुरुष] को छोड़ कर अपर पुरुष को लिए फिरती हो।"

(३७२)

'हउं रे बनिजु' 'गोवरां' 'लइ आएउं'। 'घिरित' 'लेइकहं कुवरू बुलाएउ'।
'लइ गए' मंदिर जहां 'भंडसारा'। 'अउ तौलइ किय' 'बया' हंकारा।
'पूछिसि' कवन 'बनिजु' तुम्हं आनां। कवन 'देस' 'तुम्हं' 'कीत' पयाना।
'कहेउं' देव मइं 'गोवरु छावबि'। 'गएं' मांस 'दुइ' 'पुरुब चलावबि'।
कहेउं 'सबदु मइं' आपनु ठाऊं। 'गोवर क' बांभनु सुरिजनु नाऊं।
'मोहिकों कहा सुरजन हरदीं संदेस लइ जाइ'।
जननि तोरि औ 'सांवरि मैंनां' 'परी दुवइ लइ पाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०६।१, भो० पत्र ४२ (नवीन), बी० १२८६-१२८८।

इस के नीचे भो० में अगले का तर्क है आउ तुम्ह बर

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत आवरदन वनिज गुफ़तने सुरजन पेश लोरिक।

भो० कैफ़ियत खेलख़ानः लोरिक गुफ़तन पेश लोरिक पैग़ाम बजानिब मैनां।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौं ह बनजु। २. भो० गोबर। ३. बी० लै आये। ४. बी० घिरत। ५. मै० लेन कों कुंवरू बुलाएउं, बी० लिये कौ कंवरू बुलाये। (२) १. बी० ले गयो। २. मै० भो० भटसारा। ३. बी० औ तौलौं काहु। ३. बी० बियाहि। (३) १. बी० पूछसि। २. बी० बनजु। ३. बी० राठ। ४. मै० हुत। ५. बी० दीत। (४) १. मै० कहा, बी० कह्यो। २. भो० गोबरु जावउं, मै० गोबरां आएउं। ३. मै० गए, बी० गयो। ४. बी० दस। ५. मै० भो० पुरुब चलावउं, बी० पूर चलावबि। (५) १. मै० लोर सभ, भो० सबद अउ। २. भो० गोबर क, मै० बी० गोबर का। (६) १. बी० इतनौ सुनि कै उनि दुष कीन्हौ बिरह आगि न बुझाइ, भो० कुवरू राघहि जौन मिस अहिरइं दई न जाइ। (७) १. मै० सांवरी, बी० सांवर। २. भो० पाय परी लइ धाइ, बी० परी पाय लै आइ।

अर्थ—(१) "मैं गोबर में वाणिज्य ले आया, और घी लेने को मुझे कुंवरू ने बुलाया। (२) वह मुझे [तुम्हारे] मंदिर में वहां ले गया जहां भांडशाला थी और तौलने के लिए उसने एक बया (तौलने वाले) को बुलाया। (३) उसने पूछा, 'तुम कौन सा वाणिज्य लाए हो, और किस देश को तुमने प्रयाण किया है?' (४) मैंने कहा, 'हे देव, मैं अभी तो गोबर में ही रहूंगा, फिर दो मास जाने (बीतने) पर पूर्व की ओर प्रस्थान करूंगा।' (५) हे लोर, मैंने अपने स्थान का शब्द (नाम) बताया और कहा, 'मैं गोबर का ब्राह्मण हूं और मेरा नाम सुरजन है।' (६) उन्होंने मुझसे कहा, 'हे सुरजन, तू हरदीं [पाटन] को [हमारा] सन्देश ले जा।' (७) [तदनंतर] तेरी जननी और सांवली—मैनां दोनों ही मेरे पैरों को पकड़ कर [उन पर] गिर पड़ीं।'

(३७३)

'जउ तुम्हं पुरुबहि बनिजु' चलावबि। मैना 'कह मइं गोहन' आवबि।
'छाड़' न आंचरु गहु कइ रही'। 'दुख की(कइ) बूडी 'बिरह 'कइ' दही।
'खोलिनि' आंचरु आइ छुडावा। 'कहिसु संदेसु जेहिं पिउ' आवा।
'मोहि देखत लइ बइठि' कटारी। अस 'कहि आजु मरउं' कंठ सारी।
'खोलिनि' धरि धरि 'करतिइ' अहा। मैनां 'दीखि' मरन पइ चहा।

'बनिजु' छाड़ि 'मइं लादेउं' मैनां केरु संदेसु ।
बेगि आजु चलु गोवर 'लोर तजहु' परदेस ।।

सन्दर्भ—मै० : पत्र ३०६।२, भो० पत्र ४३ (नवीन), बी० १२८६-१२६१ ।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत लहू ।

भो० : कैफियत मैनां गुफ़्तन सुरजन बाफ़िराक़ हाल बाज़ नमूदन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जब तेहि पूरबि बनजु । २. बी० मैनां गौहनि तब तेहि । (२) १. बी० छाडि । २. मै० कर गहि रही, बी० गहु करिही । ३. मै० अति दुख पूरि, भो० दुख कइ बूढि । ४. बी० की । (३) १. भो० खोइलिन, बी० षौलनि । २. मै० कहु संदेसु लोर जेहि, बी० कहि संदेसु जस जिहि पिउ । (४) १. बी० मैं देषत लै पेट । २. बी० कहि आजु मरौ । (५) १. भो० खोइलिन, बी० पौलनि । २. मै० धर धरि, बी० धर धग, भो० धरहरि । ३ मै० करति, बी० करती । ४. बी० देषि । ५. भो० मरइ पैं । (६) १. बी० बनजु । २. बी० मैं लाद्यौं । (७) १. मै० लोरिक तजि, बी० लोर तजौहु ।

अर्थ—(१) "मैनां ने कहा, 'यदि तुम वाणिज्य पूर्व की ओर चलाओगे, तो मै तुम्हारे साथ आऊंगी (चलूंगी) ।' (२) वह [मेरा] अंचल नही छोड़ रही थी, और हठ कर रही थी वह दुःख [के जल में] डूबी हुई और विरह [की अग्नि में] दग्ध थी । (३) खोलिन ने आकर [मेरा] अंचल छुड़ाया [तो मैनां ने कहा,] '[मेरा] सन्देश इस प्रकार कहना जिससे मेरा प्रिय आ जाए ।' (४) मेरे देखते ही वह कटारी लेकर बैठ गई और ऐसा कहने लगी, 'आज मैं गला काटकर मरूंगी ।' (५) खोलिन धर-पकड़ करती रही, किन्तु मैनां दीखी कि वह, हो न हो, मरना चाहती थी । (६) [अतः] वाणिज्य छोड़कर मैंने मैनां का सन्देश लाद लिया । (७) आज ही तू शीघ्र गोवर चल, और ऐ लोरिक, तू परदेश को त्याग ।"

(३७४)

'मइल' चीरु सिर तेलु न 'जानइ' । बहु दुख लोरिक तोर 'बखानइ' ।
'कहत' संदेस नैन 'झर पानी' । 'बरिसहिं' मेघ जइस खरवानी ।
'बुडि बुडि मरइ' थाह नहि 'पावा' । करिया 'बिहुनि' तीरि को 'लावा' ।
मैनां रूप देखि का 'देखउं' । अउर रूप 'सयंसारि न पेखउं' ।
सीप एक 'कन' 'करइ' अहारू । किहिं परि जियइ जान करतारू

'रवनि ठवनि' गज 'गवनीं' मैनां बिधि 'असि' औतारी ।
'नैन न सूझहि धीर मुंचहि लोरिक नित हियं उर पजरइ नारी' ।।

सन्दर्भ—मै० ३०७।१, बी० १२६२-१२६४ ।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'चीर मइल', जो इसी का है ।

शीर्षक—मै : कैफ़ियत शिकस्तगी हाले मैंनां गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैल । २. बी० जानै । ३. बी० बषानै । (२) १. बी० कहसि । २. बी० भरि पानी । ३. बी० बरसैहि । (३) १. बी० डबि डबि मरैहि । २. बी० पावैहि । ३. बी० नहीं । ४. बी० लावहि । (४) १ बी० देष्यौ । २. बी० सैसारि न लेष्यौ । (५) १. बी० दिन । २. बी० करै । (६) १. मै० रूपवंतिहि (?) । २. बी० गामिनि । ३ बी० में नही है । (७) १. बी० तिह चिताह न मिरवोह मेघहि मैन बिसारि ।

अर्थ—(१) "[वह] मैला चीर [पहनती है] और सिर में तेल [देना] नहीं जानती है; वह, ऐ लोरिक, तेरा बहुतेरा [विरह-] दु.ख बखानती (कहती) है । (२) संदेश कहते समय उसके नेत्रों से आंसू झड़ने लगे; और वे इस प्रकार झड़ रहे थे जैसे मेघ प्रखर वर्ण से बरस रहे हों । (३) वह [उस अश्रु-सागर में] डूब-डूब कर मर रही थी, किन्तु थाह नहीं पा रही थी; वह कह रही थी, 'करिया (पतवार पकड़ने वाले) के बिना मुझे पार कौन लगाए ?' (४) मैनां के रूप को देखकर मैं क्या देखू ? मैं संसार में [उसके रूप जैसा] अपर रूप नहीं देख रहा हूं । (५) वह केवल एक सीपी कण (नाज) का आहार करती है; वह किस प्रकार से जीती है, यह सृष्टिकर्त्ता ही जानता है । (६) वह रमणी, ठवनि [वाली] और गज-गामिनी है, मैनां को विधाता ने ऐसा अवतरित किया है । (७) ऐ लोरिक, उसके नेत्रों से सूझता नही है, वह धीरज छोड़ती रहती है, और नित्य ही वह नारी अपने हृदय-उर मे प्रज्वलित होती रहती है ।"

(३७५)

सुनि संताप मैनां कर रोवा । लोरिक 'हिएं कइ' कसमर धोवा ।
अब मैनां बिनु 'रही(हा?)' न जाई । देहि पंख बिधि जांउं उड़ाई ।
'मदिर' जाइ मैनां मुख 'देखउं' । 'बिनु मुख देखे' 'मरन पइ' लेखउ ।
दिवसु 'गएउ' निसि आइ तुलांनी । बांभन बात न करति 'खुटांनी' ।
सुरिजन 'जाइ' 'संपरि कइ आवहु' । 'लइ जेंवन आपनां' 'करावहु' ।

दाम लाख दुइ 'लेहुं बरंभन' बरद 'सहस्स भरावहु' ।
मोर गवनु 'दिन' दुसरें तुम्हं 'फुनि' 'गोहनि' 'आवहु' ।।

सन्दर्भ—मैं० ३०७।२, भो० पत्र १९ (नवीन), बी० १२९५-१२९७ ।

शीर्षक—मैं० : ज़ारी करदने लोरिक अज़ शुनीदने दुश्वारी मैनां ।

भो० : शुनीदन लोरिक हाल बेहालिए मैनां व गिरियः कन्दन ब फ़िराके हाल बाज़ नमूदन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हीय कै । (२) १. बी० म्ह्यो । (३) १. मैं० जउ न । २. बी० देपौं । ३. भो० बिनु मुख जा जीवन, मैं० तउ यह जीवन । ४ भो० मरन कै, बी० जीवनु न । ५. बी० लेषौं । (४) १. बी० गया । २ बी० घटांनी (खुटांनी—फ़ा०) । (५) १. बी० आइ । २. बी० संपग्नि कै आवोहु, मैं० सीस अन्हवावहु । २. बी० कै जीवनु औ पानि, मैं० लइ अपुना कह जेवन । ३. बी० करावोहु । (६) १. मैं० देउं हंउ, बी० लेहु । २. बी० सहस इक जाइ भरावोहु । (७) १. भो० में नहीं है । २. बी० दूसरे । ३. भो० पुनि । ४. बी० गौहनि । ५. बी० आइ ।

अर्थ—(१) मैंनां का संताप सुनकर लोरिक रो पड़ा और उसने [आंसुओ से] हृदय की कालिमा धो डाली । (२) [उसने कहा,] "अब मैंनां के बिना रहा नहीं जा रहा है; ऐ बिधाता, तू पंख दे कि मैं उड़कर [उसके पास] चला जाऊं, (३) और मैं घर जाकर मैंनां का मुख देखूं; बिना [उसका] मुख देखे, हो न हो, मैं [अपना] मरण समझ रहा हूं ।" (४) दिन गया और रात्रि आ पहुंची, किन्तु ब्राह्मण के द्वारा कही जाती हुई बात न समाप्त हुई । (५) [तब लोरिक ने कहा,], "ऐ सुरजन, तुम जाओ, स्नान करके आओ और अपने को ले जाकर भोजन कराओ । (६) हे ब्राह्मण, तुम [मुझसे] दो लाख दाम लो और तुम एक सहस्र बरदियां (बैलों का बोझ) भरा लो, (७) मेरा जाना दूसरे ही दिन होगा, और तब तुम मेरे साथ आओगे (चलोगे) ।"

(३७६)

मैंनां बात 'त्रिपर जउ' कही । 'सुनतहिं' चांद 'राहु परि' गही ।
'पूनिउं' 'जइस मुख' 'दीपत जो' अहा । गई 'सो' जोति 'गहन' होइ रहा ।
'अउ' 'सो' सुरिजु 'जनम' घरि 'जाइहि' ।
सिंघ रासि 'लइ' गगनि 'चढ़ाइहि' ।
'बहुरा' लोरु मंदिर महिं आवा । 'कहा' चांद 'पिउ भया' परावा ।

उट्ठि पानि लइ 'पाउ पखारहु'।
तुम्ह 'जे(जें)वउ' अउ बिपरु 'हंकारहु'।
'कवनिउं भांति न 'बइसइ' 'संधू आहि गरास'।
'लोरिक' 'जेवन जेंवहि' चांदइं किय उसवास'॥

सन्दर्भ—मैं० ३०८, भो० पत्र ५५ (नवीन), बी० १२९८-१३००।

शीर्षक—मैं० : बाज़ आमदन लोरिक व खानः व मुतफ़िकर गश्तने चादा अज़ अखबारे मैंनां।

भो० : कैफ़ियते मैंनां गुफ़्तन लोरिक बा चादां ऊ ग़मगीन शुदन चादा अज रफ़्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. मैं० जउ बांभन, बी० बीर (बिपर—फ़ा०) जौ। २ भो० सुनइ, बी० सुनताह। ३. मैं० राहु जनु, बी० राह पर। (२) १. बी० पून्यो। २. भो० बी० मुख़ निसि। ३. बी० दीप जु, मैं० दीपत। ४. बी० सु। ५. भो० कार, बी० षीन। (३) १. मैं० अब, बी० अबहि। २. बी० सु। ३. मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०)। ४. मैं० अपनें। ५. बी० जाई। ६ बी० लै। ७. बी० चराई। (४) १. मैं० बहुरि। २. भो० कहेउ। ३. मैं० चित भएउ। (५) १. मैं० पाइ, बी० पाव। २. बी० पषारौहु। ३. भो० जेवहुं, बी० जीवोहु। ४. बी० हकारहु। (६) १. मैं० कवन, बी० कौनहि। २ भो० दीसइ, बी० बैसई। ३. भो० सज्जन हूं कर आस, बी० लोरिक किछू उदास। (७) १. मैं० लोर, बी० लोरहि। २. भो० जेंवन संभाखइ, बी० जीवनु सनेहा। ३. भो० चांदा परा उपास, बी० चांदहि कियो उपास।

अर्थ—(१) जब ब्राह्मण ने मैंनां की वार्त्ता कही, उसे सुनते ही चाद राहु की भाति ग्रस्त हो गई। (२) उसका जो मुख पूनों के चन्द्र जैसा दीप्त था, [उसकी] वह ज्योति चली गई और [उसे] ग्रहण [जैसा] हो रहा। (३) [उसने अनुमान कर लिया कि] अब सूर्य (लोरिक) जन्म-गृह को जाएगा, और सिंह राशि को लेकर आकाश पर चढ़ेगा। (४) लोरिक लौटा और मंदिर (घर) में आया, तो चांदा ने [मन में] कहा कि उसका प्रिय [जैसे] अन्य का हो गया था। (५) [उसने कहा,] "उठकर और पानी लेकर पैर धो लो, तुम स्वतः जीमो और [जीमने के लिए] ब्राह्मण को बुला लो।" (६) वह [स्वयं] किसी प्रकार नहीं बैठ रही थी, [मानो उसे] सधू (सुरजन) का ग्रास (ग्रहण) हुआ हो। (७) लोरिक जब कि जेंवन जीम रहा था, चांदा ने उपवास किया।

(३७७)

कारि राति दुख 'रोइ' बिहाई। भा 'भिनुसारु' उठा 'रिरियाई'।
पाटन 'राउ' लोरु हंकरावा। चला बीरु राजा पहिं आवा।
'राउ' पूछ घरि 'कूसर आहा'। 'कहु लोरिक' कस पाएहु 'चाहा'।
'अनचीतउ' आइ एकु बनिजारा। माइ भाइ हउं 'घरहिं' हंकारा।
'कहेसि आजु मोरें संगि आवहु'। 'मकु जियतइं मुख देखन पावहु'।
'तेहिं दिन हुत' 'अन पानी न भावै(वइ)' घरु बाहरु न मुहाई(इ)।
उठइ आगि सिर 'पा लहिं' बिनु देखें न बुझाई(इ)।।

सन्दर्भ—मै० ३०६, बी० १३०१-१३०३।

शीर्षक—मै० : विदाअ करदने लोरिक बा राव छेतम।

पाठान्तर—(१) बी० गई। २. बी० भुनसारु। ३. बी० रवि आई। (२) १. बी० राय। (३) १. बी० राव। २. बी० कोसर (कूसर—फा०) अहा। ३. बी० कहहु लोर। ४. बी० चहा। (४) १. बी० अन जौ। २ बी० घरह। (५) १. बी० कहै लोरु अैसै घरि आयहु। २. बी० मुकौ जीवै मुघु देष्यों पायहु। (६) १. बी० तवतै मोहि। २. मै० अन पानी (७) १. बी० पाइ लहु।

अर्थ—(१) काली रात [लोरिक ने] दुःख में रो-रोकर व्यतीत की और सवेरा हुआ तो वह रिरियाता हुआ उठा। (२) [हरदीं] पाटन के राजा ने लोरिक को बुलवाया तो वह वीर चला और राजा के पास आया। (३) राजा ने पूछा, "घर पर कुशल तो है? कहो लोरिक, वहां के कैसे समाचार तुम्हें मिले हैं?" (४) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "अचानक एक वनजारा आया, [उसके द्वारा] मुझे मेरी माता और भाई ने घर बुलाया है। (५) उसने कहा है, 'यदि तुम आज मेरे संग आ जाओ तो कदाचित् तुम [उनका] मुख उनके जीवित रहते हुए देखने को पा जाओ।' (६) उसी दिन से अन्न-पानी नहीं भा रहा है और घर-बाहर [कुछ] नहीं सुहा रहा है; (७) सिर से पैर तक आग उठती है और उन्हें देखे बिना बुझ नहीं रही है।"

(३७८)

राइ घोर 'सै दुइ' पलनाए। पाइक 'सै दुइ साथ दिवाए'।
कापरु आनि लोर पहिरावा। समदि बीरु कछु 'साथ' दिवावा।
'समुद' बीर किछु साथ तुम्हं 'जाएहु'। गोत्ररु देखि पलटि घरि 'आएहु'।

'फांदि' सुखासन चांद 'चलाई' । 'इहि पछिताउ कतइ हुउं' आई ।
बरद सहस 'एक संधू भरा' । पाटनु छाड़ि 'सीउं ऊतरा' ।
'राहु' गरह जस गरही चांदा 'मुख' अंधियार ।
'सिंघ रासि रबि पालटौं(टउ)' सुरिजन के उपगार ।।

सन्दर्भ—मै० ३१०, बी० १३०४-१३०६ ।

शीर्षक—मै० : विदाअ् करदन राव ब मदद दिहानीदन बर लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सै दोइ. मै० सहस दोइ । २. बी० सौ दोइ सै बुलाये । (२) १. बी० दरबु । (३) १. बी० तौ लहि । २. बी० जायुहु । ३. बी० आयोहु । (४) १. बी० डाड । २. मै० चलावा । ३. बी० बहु पछितानी कत हौं । (५) १. बी० दस सूठी भरे । २. बी० सुवनु उतरे । (६) १. बी० राहु । २. बी० भई । (७) १. मै० मीन रासि धनि बैरिनि ।

अर्थ—(१) राजा ने दो सै घोड़े पलानों से सज्जित कराए और साथ के लिए दो सै पदाति दिलाए । (२) कपड़े लाकर (मंगा कर) उसने लोरिक को पिन्हाए, और उस वीर को विदा करते हुए कुछ वीर उसको साथ [के लिए] दिलाए । (३) [उसने कहा,] "ऐ वीरो, प्रसन्नतापूर्वक तुम में से कुछ इसके साथ [गोवर तक] जाना, और गोवर देख कर घर लौट आना ।" (४) [लोरिक ने] सुखासन कसवा कर चांदा को चलाया; उसे यह पछतावा था कि वह यहा क्यों आई । (५) एक सहस्र बैल संघू (सुरजन) ने भरे और पाटन छोड़ कर वह उसकी सीमा पर उतरा । (६) राहु के ग्रह से जैसे ग्रस्त हो, वैसा ही अंधेरा (अंधकारपूर्ण) चांदा का मुख हो गया । (७) सुरजन के उपकार (उपाय) से सूर्य (लोरिक) सिंह राशि (मैना) की ओर पलट गया है ।"

(३७६)

लवटि चांद लोर 'सों' कहा । 'पलटि' नीरु 'गंगा नइ' वहा ।
'पिरिति' लाइ 'तइं मोसिउं' तोरी । 'जहवां टूटि फुनि तहंवां' जोरी ।
'तोहि' न खोरि हुउं 'बुधि(द्धि)चुकानी' । 'कइ' सनेह हरदीं तइं आनी ।
तेहिं दिन 'संवरु वाच जेहिं' कीन्हीं । अब 'हौ ठेलि कुवां' महि दीन्हीं ।
बाहं 'देइ' 'धनि' नाव 'चढ़ाई' । 'फुनि रु(रे) काटि गुन' गांग बहाई ।
बहुरि लोर चलु हरदी 'रहहिं बरिस दुइ' चारि ।
वाचा 'पुरवहि आपनि साईं' बिनवइ दासि तुम्हारि ।।

सन्दर्भ—मै० ३११।१, बी० १३०७-१३०९।

शीर्षक—मै० गुफ़्तने चांदा लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सौं। २. बी० पलटा। ३ बी० गंडानी। (२) १. बी० पिरति। २. बी० तै मोसौं। ३. बी० जहा टूट हुत तहा ही। (३) १. बी० तुहि। २. मै० सरगि लुकानी। ३. बी० कै। (४) १. बी० सभरु बात जु। २. मै० लै गोवर। (५) १. मै० देहि। २. बी० तैं। ३. बी० चराई। ४. मै० अब गुन काटि। (६) १. बी० रहाह बरस दोई। (७) १. बी० पूरनि बाचे। २. बी० बिनत्रै।

अर्थ—(१) चांदा ने लौट कर (पलट कर) लोरिक से कहा, "[समुद्र मे बह कर जाता हुआ] जल [अब] पलट कर [पुनः] गंगा नदी में बह [कर जा] रहा है! (२) मुझसे प्रीति लगा कर तूने उसे तोड़ दिया, और जहां से वह टूटी हुई थी, वहां तूने उसे पुनः जोड़ दिया! (३) [किन्तु] इसमें तेरा दोष नहीं है, मैं ही बुद्धि में चूक गई थी जब तू स्नेह कर मुझे हरदीं लाया। (४) तू उस दिन को स्मरण कर जिस दिन तूने [स्नेह के निर्वाह का] वचन किया (दिया) था, किन्तु अब तू ने मुझे कुएं में ढकेल दिया! (५) बाटें देकर तूने [इस] स्त्री को [जीवन की] नाव पर चढ़ाया था, [किन्तु] पुन तूने [उसकी] नाव की रस्सी काट उसे गंगा में बहा (डाल) दिया। (६) ऐ लोरिक, तू हरदीं लौट चल, वहां पर हम दो-चार वर्ष [और] रहें। (७) ऐ स्वामी, तू अपना वचन पूरा कर, तेरी दासी [तुझ से] यह विनय करती है।"

(३८०)

'हउं जानउं' राजा 'कइ' जाई। अपनें हुतें 'नहिं होब तुराई'।
'अउ अस जानउं पुरुख कइ जाती। सेज न 'देखत एकउ' राती।
'देस देसंतर तोहि संग' धाई। 'बनखंड गौनेउं' थिर न रहाई।
'करिहु त सोइ जेहि होइ मेरावा'। 'तुम न खोरि हम चाहत पावा'।
'कुआ नातर' मोरें संग आवसि। 'जियहि लाइ धनि अपने रावसि'।
मंगरु बुधु (द्धु) बिरसपति 'सुकुरु सनीचर' 'काहु'।
'चांद' सुरिजु 'लइ अंथवा' 'बारह घरहि उतिराहु'॥

सन्दर्भ—मै० ३११।२, बी० १३१०-१३१२।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक बर चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौं जानौं। २. बी० की। ३. बी० न होत

पराई। (२) १. बी० हौ जानौं (तुल० प्रथम अर्द्धाली) मानसाहं की। ३. बी० देख्यों येकै। (३) १. बी० दोय सह करै येक कौं। २. बी० घर घर गमनी (गमनइ—फ़ा०)। (४) १. बी० घरह सेव जिहि होय न मिरावा। २. बी० तिह न साथु मनंसह कर भावा। (५) १. बी० हौं जानों। २. बी० जीभ (जियहि—फ़ा०) लाई मोहि नषत दिषावसि। (६) १. बी० सुकरु सनीसरु। २. मैं० राहु। (७) १. बी० कैतु। २. बी० लै आंथवा। ३. बी० वरहै घरह उलराहु।

अर्थ—(१) "ऐ राजकन्या", [लोरिक ने कहा,] "मैं जानता हूं, कि अपनी ओर से उतावली (जल्दी) न होगी, (२) और ऐसा (यह) [भी] जानता हूं कि पुरुष की जाति एक भी रात को सेज नहीं देखती है। (३) तुम्हारे साथ देश-देशान्तर की दौड़ लगाकर मैं वनखंड गया और स्थिर न रहा। (४) तुमने वही किया जिससे मिलाप होता, इसमें तुम्हारी [ओर से] कोई त्रुटि नहीं हुई और तुमने [भी] अपना चाहा हुआ प्राप्त किया। (५) अन्यथा तुम मेरे साथ कहां (क्यों) आतीं ? तुम अपने जी के लिए ही, हे स्त्री [मुझसे] रमण करती हो। (६) अब तुम मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि [में से] किसी को पकड़ सकती हो, (७) [और] या तो तुम सूर्य (लोरिक) को लो, [और उसके साथ] बारह घरों (राशियों और ग्रहों) में उतराओ।"

२५. मैनां-सतीत्व-परीक्षा खण्ड

(३८१)

सूरुज दिस्टि सिंघ घर गई। मीन 'ठाउं हुत अठई' भई।
'संवन न करइ' चांद कर कहा। 'संग बइठ दुइ लाकर' रहा।
'पहर राति उठि कीन्ह' पयानां। 'दिवस' बीस एक जाइ तुलानां।
'कोस बीस तेहिं गोबरां लागइ'। 'उतर देवहां लोग डरि भागइ'।
'घर घर गोबरां' बात जनाई। 'द्यो(देव)हा' कौन[उ?]उतरि गा आई।

खाई कोटु 'संवारहिं' 'बइठे सबइ झुझार'।
'जउ' लहि राउ गढु 'होइ लागइ' 'तउ' लहि लोग संभार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१२, बी० १३१३-१३१५।

शीर्षक—मैं० : रवान: करदने लोरिक व चांदा सूए गोवर।

पाठान्तर—(१) १. बी० रासि हुतें अथई (अठई—फ़ा०)। (२) १. बी० श्रवन न सुना। २. बी० सिध पंथ मनु लावत। (३) १. बी० राति दिवसु वोहु। २. मै० कोस। (४) १. मै० तीस। २. बी० गोबर तेंहि आये। ३ बी० तबैंहि ति किनहू बात जनाये। (५) १. बी० गोवर लोगहि। २ मैं० कोउ एक राउ। (६) १. बी० सवारैंहि। २. बी० संवहे सबै जुझार। (७) १. बी० जौ। २ बी० साजै। ३. बी० तौ।

अर्थ—(१) सूर्य की दृष्टि सिंह [राशि की मैंना] के घर गई और वह मीन (चांदा) के स्थान के आठवीं हुई। (२) सूर्य (लोरिक) चाद (चादा) के कथनों पर कान नहीं कर रहा था, [यद्यपि] वह उसके साथ दो दण्ड तक बैठा रहा। (३) फिर एक प्रहर रात रहे उठ कर उसने प्रयाण किया, और बीस-एक दिन में [स्वदेश] जा तुला (पहुंचा)। (४) वहा से गोवर बीस कोस लगता था; वह [जब] देवहां में उतरा, लोग डर कर भागने लगे। (५) गोवर में घर-घर यह बात विज्ञप्त हो गई कि देवहा मे कोई आ उतरा था। (६) [गोवर में] लोग खाई और परकोटा संवारने लगे, और सब योद्धा [यथास्थान] बैठ गए। (७) [वे कह रहे थे,] "जब तक [शत्रु] राजा गढ़ से हो लगे, [तब तक] लोग [खाई और कोट] संभाल ले।"

(३८२)

घर घर 'गोवरां परा खभारू'। 'कहहिं' आजु 'राखइ' करतारू।
'तलवा' कोटु झराई खाई। परी राति सभ 'पवंरि' बंधाई।
सोन रूप 'सब गांठी करहीं'। घरहिं 'उतारि इकंतेहि सरहीं'।
मैंनां के 'जियं अइस' जनावा। 'एइं दर' 'हुतें' भए कोउ' आवा।
जो 'रे' बात लोरिक 'कइ कहा'। 'मकहुं सो भैया आवतु 'अहा'।
सांझ परी 'माइ खोलिनि' मोरे 'चितहि जनायो(एउ)'।
राति लोर की चाह घनेरी भोर होत पिउ आयो(एउ)'॥

सन्दर्भ—मं० पत्र ३१३, बी० १३१६-१३१८। बी० प्रति इसी कड़वक तक लिखित है, इसके आगे के अंश के लिए उसमें १३ पृष्ठ सादे छोड़े हुए है, और एक पृष्ठ पर २½ कड़वकों का औसत है, इसलिए बी० के इस त्रुटित अंश में अनुमान से २९-३० कड़वक और हो सकते थे।

शीर्षक—हैबत उफ़्तादन दर शहर गोवर।

पाठान्तर—(१) १. बी० गोबर परा खरभारु। २. बी० कहमि।

३. बी० राधै। (२) १. बी० तलब। २. बी० पौरि। (३) १. बी० मल काठी गडही (गांठी करहीं—फ़ा०)। २. मैं० उसारहिं ढांकि हरदीं ('धरहिं' आ चुका) है। (४) १. बी० चित अैस। २. बी० हरदीं। ३. बी० अबहि को। (५) १. बी० ह। २. बी० की कहै। २. बी० मुकु। ३. मैं० पहुना (?)। ४. बी० अहै। (६) १. बी० मा पौलनि। २. बी० चिताइ जनायो, मैं० चितहि असि आई (७) मैं० आजु राति के सपनहि लोरिक सुधि पाई।

अर्थ—(१) गोवर में घर-घर अशांति मच गई, [लोग] कहने लगे, आज सृष्टिकर्त्ता ही हमारी रक्षा करे! (२) परकोटे के तल और खाई झराए (गहरे कराए) गए, और रात पड़ी तो समस्त पौरियां बंधवा (बंद करा) दी गई। (३) सोना और रूपा (चांदी) सब लोग गांठों में कर रहे थे वे उन्हें उतार-उतार कर रख रहे थे, और [उन्हें गाड़ने के लिए] एकान्त में जा रहे थे। (४) [किन्तु] मैनां के जी में ऐसा जान पड़ने लगा कि कोई यहाँ उक्त दल से होकर आया था; (५) जो लोरिक की बात कहता, ऐसा कोई भाई कदाचित् आ रहा था।" (६) [वह कहने लगी,] "ऐ मां खोइलिन, [अब] संधि (शांति) पड़ी (प्रतीत हुई) है, क्योंकि मेरे चित में यह जनाई पड़ा है (७) कि रात में मुझे घनी चाह लोर की थी, तो भोर होते ही प्रिय आ गया।"

(३८३)

गाउं कोठारइ परा उपासू। मैनां कें चित अनंद हुलासू।
सोवन बहोरि राति जो भूली। देखि तराइन मैनां फूली।
रहंसि उठी चित बहु निसि जागी। पछिली राति नींद फिरि लागी।
लागत नैन सपन एक आवा। भा बिहान तइ कोउ नसावा।
खोलिनि पूछ सुनहु दहुं मैनां।
परति सांझि जउ बकतिहिं मैनां (बैनां)।
तोर मन कालि जो रहसा पाइहु पिय कइ चाहि।
सपन[इं?] गनि गुनि मैनां कहु किछु देखिउ आहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१४।

शीर्षक—मैं०: ख़्वाब दीदने मैनां अज़ आमदने लोरिक।

अर्थ—(१) गांव और कोठार में उपास पड़ा हुआ था, [किन्तु] मैनां के चित्त में आनन्द और उल्लास था। (२) और वह जो रात मे सोना भूल

गई थी, तारिकाओं (सखियों) को देख कर वही मैनां फूल उठी। (३) क्योंकि वह चित्त में हर्षित हो उठी थी और वह बहुत रात तक जागती रह गई थी, पिछली रात्रि (रात्रि के पिछले प्रहर) में उसे पुनः निद्रा आ गई। (४) नेत्रों के लगते ही एक स्वप्न आया (दीख पड़ा), किन्तु प्रभात होने पर किसी ने [उस स्त्री को जगाकर] उसे नष्ट (भंग) कर दिया। (५) खोलिन पूछने (कहने) लगी, "ऐ मैनां, सुन; यदि तू कोई वचन कहती, तो संधि पड़ती (शांति मिलती)। (६) तेरा मन कल जो तक हर्षित हुआ था, क्या तूने [अपने] प्रिय का [कुशल] समाचार पाया? (७) स्वप्न को सोच समझ कर, ऐ मैनां, तू कहे कि क्या तूने कुछ देखा है।"

(३८४)

दिन भा लोरिक मारी बुलावा। गोवरां कस दहुं बात जनावा।
अस जनि कहु कि लोर पठाएउं। जउ को पूछ कहसि हउ आइउ।
फूल करंड भरि माली लीतेसि। फिरि फिरि गोवरां घर घर दीतेसि।
देखि फूल मैनां तस रोई। फूर सो भरहि जिनहि पिउ होई।
नाह मोर परदेसहि छावा। फूल पान मोहि देखि न भावा।
बर कइ हार मेलेसि माली बचन न भोलि।
बास लागि सति मैनां उठहि बैन अस बोलि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१५।

शीर्षक—मै० : तलबीदन फ़िरिस्तादने लोरिक गुलफ़रोश रा बर मैना बागुल।

मैना ने खोलिन से अपने स्वप्न के बारे में क्या कहा, पिछले कडवक के बाद इस आशय का एक कडवक संभव है यहां और रहा हो।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो लोरिक ने माली को बुलाया [और कहा,] गोवर में किस प्रकार इस बात की सूचना दी जाए [कि मैं हरदीं से वापस आ गया हूं]? (२) ऐसा न कहे कि तू लोर का भेजा हुआ है; यदि कोई पूछे तो कहे कि तू [स्वयं] आया (गया) है।" (३) माली ने फूल की टोकरिया भर ली और उन्हें फिर-फिर गोवर में घर-घर में दिया। (४) उन फूलों को जैसे ही देखा, मैनां रोने लगी; [उसने कहा,] "फूल वे भरती हैं जिनके प्रिय होते हैं। (५) मेरा स्वामी तो परदेश में छाया हुआ है, मुझे फूल-पान देख कर नहीं भाते हैं।" (६) माली ने जबर्दस्ती [उसके गले में] हार डाल दिया, तो भी वह उसके वचनों में न भूली। (७) किंतु सती मैनां को जब

उन फूलों में पति की सुवास लगी (जान पड़ी), तो वह इस प्रकार का वचन बोल उठी।

(३८५)

कहंसि न मारी कत हुत आवा। फूल बास मइं लोरिक पावा।
जानउं अस तूं लोर पठावा। सपनइं मांझ जाउ देखिउं आवा।
लागि वास मोर हिया जुड़ाना। अइस फूल पिउ लोरिक आना।
लोर नाउं लइ बहु दुख रोई। जनु सांवन बीर बहूटी होई।
सूरुज कर मारग हउं चाहउं। लइ गइ चांद कहां अब नाहउं।
देवस सुहाए रोवउं रैनि जागतहिं जाइ।
पायं लागि मइं बिनवंउं जउ परदेसी आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१६।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने मैना बर गुलफ़रोश रा ख़बर।

अर्थ—(१) "ऐ माली, तू कहता क्यों नहीं कि कहां से आया है? फूलों में मैंने लोरिक [के फूलों ?] की वासना पाई है। (२) मैं ऐसा जान रही हूं कि तू लोर का भेजा हुआ है, क्योंकि मैंने स्वप्न में देखा है कि वह आया हुआ है। (३) [इन फूलों की] सुवास लगी, तो हृदय शीतल हो गया; ऐसे ही फूल प्रिय लोरिक लाया करता था।" (४) [तदनंतर] लोर का नाम ले-लेकर वह [अपना विरह-] दुःख बहुत रोती रही; [उसकी आंखों से रक्त के अश्रु ऐसे गिरे] मानो सावन में बीर बहूटियां [निकल पड़ी] हों। (५) [उसने कहा,] "मैं सूर्य (लोरिक) का मार्ग देख रही हूं। मेरे स्वामी को चांदा ले कर चली गई थी; अब वह स्वामी कहां है?। (६) सुहावने दिनों में रोती हूं और रातें जागते ही जाती हैं। (७) मैं तुम्हारे पैरों से लग कर विनय करती हूं, तुम बताओ यदि वह परदेशी आया हुआ है।"

(३८६)

सुनहु न फिर भिय हउं परदेसी। ताहि संझाइ मोर सहदेसी।
सो देखु मोंहि कों घरहिं चलावा। गोबर सपदि मइं देखन आवा।
महरि देखि हंउ दही कहं आएउं। तोर बिरह जस अउर न पाएउं।
तब तूं सुद्धि लोर कइ पावसि। लइ कइ दूध जउ बेगां आवसि।
फूल मोर तोरीं झार सुखाने। छार भए अउ जरि कुंबिलाने।

बहुल लोक पुर आवा मकहुं बोल सुधि कोइ ।
बेगां आउ त पीछें ओ ठां मेरावा होइ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१७ ।

शीर्षक—मैं० जवाब दादने माली बर मैनां रा ।

अर्थ—(१) [माली ने कहा,] "ऐ बेटी, तू सुन न, मैं परदेशी हूं, तू उससे मिले जो मेरा सहदेशीय है । (२) उसने देखो, मुझे अपने घर भेजा और मैं तत्काल [उसके घर को] देखने के लिए गोवर आ गया । (३) तुझे महरी देख कर मैं [यहां] दही के लिए आया, किन्तु तेरा विरह जैसा मैंने और [किसी का] न पाया । (४) तू लोर की सुधि तब पाएगी, जब तू [वहां] दूध लेकर शीघ्र आएगी । (५) मेरे फूल तेरी ज्वाला से सूख गए; वे राख हो गए और जलकर कुम्हला गए ! (६) बहुतेरे लोग पुर में आए हुए है, सभव है कि कोई [उसकी] सुधि बोले (कहे) । (७) यदि तू शीघ्र आए, तो [आने के] पीछे उस स्थान पर उनसे मिलना हो जाए ।"

(३८७)

दिन भा मैनां बेगां गई । अउर सहेलि जनीं दस लिई ।
बेचत दूध घर गईं [लुगाईं ?] । दही कहं लोरहिं महरि बुलाईं ।
महरीं जेति सब लोरिक देखीं । देखत मैंना अउर न लेखीं ।
[तउ ?] हि लोर चांदा कहं बोलिसि ।
सीपि सेंदूर चंदन तन घोलिसि ।
[आ ?] गूं छाड़ि जउ पाछूं आवा । चमकि चमकि धनि पाउ उचावा ।
ओहि कर दूध दहि लीजिए दस गुन दीजिय दान ।
सती रूप जिसु देखेउं तेंहिक बड़ाई मान ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१८ ।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तने मैंनां बा सहेलियां दर बेगां व तलबीदन लोरिक मैंनां रा ।

मैं० (२)।१ में अंतिम शब्द छूटा हुआ लगता है। और (४)।१ तथा (५)।१ में कोष्ठकों के स्थानों पर पत्र फटकर निकल गया है ।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो मैंना शीघ्र ही गई, और [साथ में] उसने दस जनीं सहेलियां ले लीं । (२) वे [स्त्रियां] दूध बेचती हुई [उस माली के] घर गई, तो लोरिक ने उन महरियों को दही के लिए बुलाया ।

(३) जितनी महरियां थीं, उन सब को लोरिक ने देखा, किन्तु मैनां को देखते ही औरों को उसने [कुछ] न लेखा (ध्यान में रक्खा)। (४) तभी लोरिक ने चांदा को बुलाया [और कहा,] "सीपियों में कर सिन्दूर और चंदन [रख लेना और] सभी के शरीर पर लगाना।" (५) आगे के उस स्थान को छोड़कर जब वह पीछे [हट] आया, तो उस स्त्री (मैनां) ने चौंक-चौंक कर पैर उठाया। (६) [लोरिक ने कहा,] "उसका दूध-दही लो और दस गुना दान (दाम) [उसे] दो। (७) जिसे मैंने सती के रूप में देखा है, उसका बड़प्पन मानो।"

(३८८)

लइ कइ 'दूध तउ' दरब दिवावा। सीप सेंधउरा 'मांग भरावा'।
सेंदुर चंदन 'सभ कोइ' लेई। मैनां 'आपुन' करइ नहि देई।
सेंदुर सो कर जेहि पिउ होई। नांह मोर हरदीं हइ सोई।
'जउ लहि वह तजि मोहि कहं गवा'। तउ लहि 'हम'अस साध न 'भवा'।
'निसि दिन हउं दुख आंसू रोवउं'। नींदि न आवइ कइसें 'सोवउं'।
रोवत दिस्टि खुटानी 'खीनि भई चख जोति'।
चांद सुरुज तेहि परखइ 'बास (?) परी भुइं लोट'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१६, भो० पत्र ५६ (नवीन)।

शीर्षक—मै०: खरीदने लोरिक शीर व देहानीदने माल बर लोरिक मैनां रा।

भो०: सितवन लोरिक शीराज़ाने अज़ मैनां व माल दिहानीदन व आजमूदन मन दिल रा।

मै० में (५) में प्रारंभ का अक्षर त्रुटित है तथा 'आसू' शब्द छूटा हुआ है।

पाठान्तर—(१) १. भो० दहि दूध। २. भो० आनि चढ़ावा। (२) १. मै० सब को। २. भो० आपुहि। ३ भो० नहि। (४) १. मै० [जउ] लहि मोहि को वह तजि गएऊ। २. भो० मोहि। ३. भो० भएऊ। (५) १. भो० दिन दिन आसू लोहू रोवउं। २. भो० सोवउं। (६) १. मै० गई चक्ख कइ जोति। (७) १. भो० बीज परइ भुईं टूटि।

अर्थ—(१) [महरियों से] दूध लेकर तब [उन्हें लोरिक ने] द्रव्य दिलाया, और [चंदन-भरे] सीप तथा सिंदूर-पात्र से [उन की] मांग भराई।

(२) [शृङ्गार के लिए] सिन्दूर और चन्दन सभी कोई ले रही थी, किन्तु मैना अपना नहीं करने दे रही थी। (३) [उसने कहा,] "सिन्दूर वह करता है जिसका प्रिय (पति) होता है; मेरा जो स्वामी है वह तो हरदी में है। (४) जब तक वह मुझे छोड़कर गया हुआ है, तब तक मुझे ऐसी साध नहीं हो सकती है। (५) मैं रात-दिन दुःख के आंसू रोती रहती हूं। नींद नहीं आती है तो मैं कैसे सोऊं? (६) रोते-रोते मेरी दृष्टि समाप्त हो गई और चक्षुओं की ज्योति क्षीण हो गई है, (७) [क्योंकि] मैं चांद (चांदा) और सूर्य (लोरिक) को परख रही हूं और [उनकी] वासना (?) में पड़ी हुई भूमि पर लोटती (लुंठित होती) रहती हूं।"

(३८९)

लोरिक मैंनहि 'जान' न देई। करइ धमारि मरम सभ लेई।
मैंनां कह मन ताहि संझाई। मोर नैन आ ही मीत रचाई।
तइ 'का' दीखि 'हउं वेसा दारी'। 'तहं तूं' मों सउं 'करसि' धमारी।
जानसि अस 'तईं' 'बारी भोरी'। थाप देइ मोहि 'घालत' चोरी।
'आपन नांह' त रहंस संझाई। मोर टाउं 'का करसि' बोलाई।

कोह बहुत कइ मैंनां चली(लि) भइ ओहि क आवास।
चांदा 'भइ तव पालिंक ऊपर' धरि बइसारिसि पास॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२०।१, मसा०।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'लोरिक', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मै० : अैज़न लहू। मसा० : नीज गुज़ाश्तने लोरिक बर मैना रा बे बाज़ी व लाग दरयाफ़्त करदन।

पाठान्तर—(१) १. मसा० चलइ। (३) १. मसा० कै। २. मसा० मइ अकुल कुवारी। ३. मसा० तव तै। ४. मसा० करइ। (४) १. मसा० तइ। २ मसा० सूवा सारी। ३. मसा० घालब। (५) १. मसा० अपने मान। १ मसा० तोर रहन। (७) १. मसा० तब पालिक सों।

अर्थ—(१) लोरिक मैनां को जाने नहीं दे रहा था, [उसके साथ] वह धमार (हास-परिहास) कर रहा था और [इस प्रकार से] उसका समस्त मर्म ले रहा था। (२) [इस पर] मैनां कहने लगी, "मेरा मन उसी [प्रिय] से मिलेगा और मेरे नेत्र उसी मित्र द्वारा रचाए (रंजित) होंगे। (३) तुझे क्या मैं वेश्या और दारी दिखी हूं और इसलिए तू मुझसे ऐसी धमार कर रहा

है ? (४) क्या तू मुझे इस प्रकार भोली बालिका समझता है, और चोरी में डालते हुए मुझे थाप दे रहा है (मुझे चोरी करने के लिए बढ़ावा दे रहा है) ? (५) अपना स्वामी हो तो हर्ष और मिलन है। तू इस स्थान पर मुझे बुलाकर मुझसे यह क्या कर रहा है ?" (६) बहुत क्रोध कर मैनां उसके आवास से होकर चली। (७) चांदा तब पलंग के ऊपर हुई और उसे भी पकड़ कर उसने पास में बिठा लिया।

(३९०)

पिरम समुंद अतिय अवगाहा। जउ जग बूड न पावइ थाहा।
चहुं दिसि कइसें थाह न पावइ। मानुस बूड़इ तीर न आवइ।
मोरें रोए सायर भए। धरती पूरि सरग लहि गए।
फूटी (टि) आंखि जनु आंसू भए। परइं सो छाइ बान न(नहि) रहे।
तेहि गुन हउं तो नैन न देखउं। राति चांद दिन सूरुज लेखउं।
जान देहि घर आपन मोरिहि सासु मोहिं माइ।
बिसए संताप मइं बैठउं काल्हि पास तुम्हं आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२०।२।

शीर्षक—मैं० : अँजन लहू।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "प्रेम का समुद्र अति गहरा है, यदि जगत् डूबे (डुबकी लगाए), तो भी उसका थाह न पाए। (२) चारों ही ओर किसी भी प्रकार से वह थाह नहीं पाएगा; मनुष्य उसमें डूब जाएगा और तीर पर नहीं आएगा। (३) मेरे रोने से सागर हो गए और वे धरती को पूरित करके आकाश तक जा पहुँचे। (४) मानो आंखों के फूटने से आंसू हुए, वे आच्छादित पड़ (हो) रहे हैं, [इसलिए मेरे नेत्र अपने] वर्ण में नहीं हैं। (५) इसी कारण में तुझे नेत्रों से नहीं देख पा रही हूं, [बस] रात में चांद को तथा दिन में सूर्य को लेखती (ध्यान में रखती) हूं। (६) मुझे तू मेरे घर जाने दे; मेरी सास है जो मेरी मां है। (७) संताप के विश्राम करने (शमित होने) पर मैं कल तेरे पास आ कर बैठूंगी।"

(३९१)

उदए भानु 'अउ' राति बिहानी। महरीं 'देवहां' जाइ तुलानी।
मैनां देखत मंदिर बुलाई। बहुरि चांद वह बात चलाई।
कहु 'दहुं मैनां सू(सु)रुज जसि करा। सो लइ 'चांदहि पाटन' धरा।

मोहि तजि 'सूरु' चांद लइ भागा। बरहां 'चांद' आइ अब लागा।
जउ 'पइ' कतहूं चांद हउं 'पावउं'। 'कारा कइ मुह' 'सरग हंडिहावउं'।
जस ओइं कीति संझाई तस जग करइ न कोइ।
जइसन दाह ओइं मोहि दीन्हां तइसन दाह ओहि होइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२१, भो० पत्र ५६ (नवीन)।

शीर्षक—मैं० : बाज़ रफ़्तने मैनां दर पैकां वा सहेलियान खुद।

भो० : अज़ शब सुबह गाह रौशन बर आमदन व पुर्सीदन मैना व पुरसीदन चांदा।

पाठान्तर—(१) १. भो० में नहीं है। २. भो० देवहा। (३) १. भो० ओइं सुरुज चांद जसि। २. भो० चादइं हरदीं। (४) १. भो० सुरुज। २ मैं० मास। (५) १. मैं० में नहीं है। २. भो० देवस चांद जउ। ३. मैं० पाएउं। ४. भो० कार मुंह कइ। ५. मैं० नगर फिरावउं (७) १. मैं० दुहु मोहि दीन्हेउ। २. मैं० दुहुक।

अर्थ—(१) भानु उदित हुए और रात समाप्त हुई, तो महरियां देवहा जा तुलीं (पहुंचीं)। (२) मैंनां को देखते ही उसे भवन मे बुला कर चांदा ने पुनः वह बात चलाई। (३) "ऐ मैंनां, [तेरे] सूर्य (लोरिक) की जैसी कला है, उसे कह।" [मैंनां ने कहा,] "उसको लेकर चांदा ने [हरदीं] पाटन मे रख छोड़ा है। (४) वह सूर्य (लोरिक) मुझे छोड़ कर और चांदा को लेकर भाग गया, और अब बारहवां चांद (चांद्र मास) आ लगा है। (५) यदि कहीं मैं चांदा को पा जाऊं, तो [उसका] मुख काला कर उससे आकाश मे चक्कर लगवाऊं। (६) जैसी उसने साठ-गांठ की वैसा जगत् मे कोई नही करता है। (७) जैसा दाह [उसने] मुझे दिया है, वैसा ही दाह उसे भी हो!"

(३६२)

चांदइं आपनि कीति बड़ाई। 'मैनां' बूझत रही लजाई।
बोलत बोलत भई चिन्हाई। कहसि न चांद कहां हुति आई।
बर कइ चांदइं 'झूझ उपावा'। 'भया झूझ' जस दाउद गावा।
'तब उठि लोरिक आपु जनावा। मैंनां रही लोर जउ पावा।'
लोरिक 'चांदहि' तस कइ हरकी। 'झूझन कारन' बहुरि न भरकी।
चेरी सात पांच कहं बोलिसि 'मैनहि' जाइ संवारि।
आजु 'राति मैनइं घर' जाउं 'ओहिकि हइ' बारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२२, भो० पत्र ५७ (नवीन)।

शीर्षक—मै० : बुजुरगी खुद नमूदन चांदा व अहानत करदन मैनां।

भो० : बुजुरगी व बलंदी खुद गुफ़्तन चांदा व शनाख़्तन मैनां व जग करदन चांदा।

पाठान्तर—(१) १. मै० मैनहि। (३) १. मै० जूझ उपावा, भो० जूझ उचावा। २. भो० भई जूझ। (४) १. भो० में उपर्युक्त (५) यथा (४) है और यथा (५) है : अबहु समुझि नहि रहइ लजाई : आपनि चाद जो कइत बुलाई। (५) १. मै० चांदा। २. भो० चांदा जूझी न। (६) १. मै० मैनां। (७) १. भो० राति मइ ओहि घर, २. भो० राति हइ ओहि करि।

अर्थ—(१) चांदा ने अपनी बड़ाई की, तो मैना के पूछते (प्रश्न करते) हुए वह लज्जित हो रही। (२) बातें होते-होते चिन्हाई (पहचान) हो गई [तो मैनां ने कहा,] "ऐ चांदा, कह न कि तू [यहां] कहां से आ गई ?" (३) [तब] चांदा ने बल कर युद्ध उत्पादित किया और ऐसा युद्ध हुआ जैसा दाऊद ने [पहले] गान किया है। (४) तब लोरिक ने उठ कर अपने को बताया, और मैनां रुक गई जब उसने लोरिक को पा लिया। (५) लोरिक चादा को इसलिए मना करने लगा, कि युद्ध करने के लिए वह फिर न भड़के। (६) सात-पांच चेरियों को (से) उसने कहा, "जाकर मैनां को संवारो। (७) आज रात मैं मैनां के घर जाऊंगा, [आज] उसी की बारी है।"

(३९३)

मैनां चेरिन्ह लइ अन्हवाई। मुंगिया 'सारि' आनि पहिराई।
दुसरें पाट 'जउ ओहि बइसारे'। मुखि तंबोल चखि काजर 'सारे'।
बदरी हुत जनु उ(उं)छटि 'नीसरा'। देखि सुरुज तब चांदा बिसरा।
राति जाइ 'तउ' नारि मनाई। 'चांदहु' चाहि अधिक 'पइ' पाई।
'पहिलइ' दुक्ख जउ नारि बखानां। राखेसि मान लोर जस जाना।
कहिसि सुरुज धनि 'चांदा (चांद) लइ कस दीतिउं तोहि' दोस।
'हम मैनां जेउं तोतें' 'न रहसहुं' चांद परोस॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२३, भो० पत्र ५८ (नवीन)।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'मैनां चेरिन' जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : दर शब रफ़्तने लोरिक दर ख़ान: मैनां व दिल खुश करदन ऊ रा ।

भो० : ग़ुसल दादन कनीजगान बर मैनां रा व किसवते ख्वास आरास्तन बर खान: बुरदन ।

पाठान्तर—(१) १. भो० सारी । (२) १. मैं० जउ बइसारेसि । २. मैं० सारेसि । (३) १. भो० निसरा । (४) १. मैं० कइ । २. मैं० चांदा । ३. मैं० तइ । (५) १. मैं० पहिल । (६) १. भो० छाड़ि जउ मई कीता । (७) १. भो० हमारिहि छांह जस तरइनि । २. भो० रहि हहि ।

अर्थ—(१) मैनां को चेरियों ने ले जाकर स्नान कराया, उसे लाकर मुंगिया साड़ी पहनाई । (२) [फिर] दूसरे पाट पर जब उसे बैठाया, उन्होंने उसके मुख में तांबूल दिया और आंखों में कज्जल लगाया । (३) [उस समय वह ऐसी लगी] मानो वह बादलों से उछट कर निकला हुआ [चंद्र] हो । तब उसे देखकर सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को भूल गया । (४) तब रात को जाकर उसने स्त्री (मैनां) को मनाया [और कहा,] "तुझे, हो न हो, मैंने चांदा से भी अधिक [सुंदर] पाया है ।" (५) जब नारी ने पहले (विरह) के दुःखों का वर्णन किया, तो लोर ने जैसा-कुछ वह जानता था, उसके अनुसार उसने उसका मान रखा । (६) सूर्य (लोरिक) ने कहा, "ऐ धन्या (स्त्री), चांद (चांदा) को लेकर मैंने तुम्हें कैसे दोष (दुःख) दिए ? (७) [किन्तु] हे मैनां, मैं जैसा हर्षित तुझसे होता हूं, वैसा चांदा के पड़ोस (पास) में नहीं होता हूं ।"

२६. गृह-आगमन खण्ड

(३९४)

गोवरां अपजस बात जनाई । मैनां राखिसि ताहि संझाई ।
अजई के घर खोलिनि गई । लागि गोहारि बात असि भई ।
भा असवार घोर दउरावा । लोरिक सुनि कइ झूझन आवा ।
दौरि खांड अजई सिर दीन्हां । टाटर टूट लोर तेहि चीन्हां ।
तउ हि उतरि कइ भए अंकवारा । ... ...मंइं तुइं मारा ।

काहि लागि तुहुं ढांकिसु उठि आपन घर आउ ।
आगें दइ कइ लोरिक लीतेसि जाहि पूत तुम्हं पाउ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२४।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क 'गोवरा' है जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० ख़बर कुनानीदने लोरिक दर शहर गोवर अज़ आमदने ख़ुद।

मैं० में (५)।२ में छोड़ा हुआ अंश सामने के चित्र का रंग उभड़ आने से अपाठ्य हो गया है।

अर्थ—(१) गोवर में यह अपयश की बात विज्ञप्त हो गई कि मैनां को [किसी ने] साठ-गांठ कर रख लिया है। (२) अजई के घर खोलिन गई [और उससे कहा,] "तू मेरी गुहार लग, क्योंकि बात ऐसी हुई है।" (३) [अजई] सवार हुआ और उसने घोड़े को दौड़ाया, यह सुनकर लोरिक युद्ध करने के लिए आया। (४) दौड़कर अजई ने [उसके] सिर पर खड्ग दिया, [जिससे] उसका टाटर टूट गया तो उसने लोरिक को पहचान लिया। (५) तभी वे [घोड़ों से] उतर कर अंकपाली में हो (बँध) गए। [अजई ने कहा,]"...... मैंने तुम्हें मारा। (६) किस लिए तुम ढंके (छिपे) हो ? उठ कर अपने घर आओ।" (७) उसने लोरिक को आगे कर लिया और कहा, "तुम जिसके पुत्र हो, वह [माता—खोलिन] तुम्हें पाए !"

(३८५)

चढ़ि [?] तुरै लोर घर आवा। पायं लागि कइ माइ मनावा।
मांत कह[इ] अस पूत न कीजइ। बूढ़ि माइ कहं दोख न दीजइ।
खोलिनि बहुअइं दोऊ आनीं। चांदा मैनां दूनइं रानी।
पाइ परीं अकवारइं धरीं। काजर सेंदुर दोऊ करीं।
आगिनि परजारि कइ रसोइ बघारी। कोठा बारी सेज सवारी।
चांद सुरुज अउ मैनां बरिस सहस भा राजु।
गावहुं गीत सहेलियां गोवर बधावा आजु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२५।

शीर्षक—मैं०: दर ख़ानः आमदने लोरिक ब पाय मादर उफ़्तादन।

अर्थ—(१) घोड़े पर चढ़ कर लोरिक घर आया। पैरों से लगकर उसने माता को मनाया। (२) माता कहने लगी, "पुत्र ऐसा न करो, बूढ़ी माता को दोष (दुःख) न दो।" (३) खोलिन दोनों बहुओं को लाई। चांदा और मैनां [अब] दोनों रानियां थीं। (४) वे उसके पैरों में पड़ीं और [तदनंतर] उन्होंने उसे अंकपाली में पकड़ा (भरा)। दोनों ने कज्जल और सिंदूर [से

शृंगार] किए। (५) अग्नि जलाकर उन्होंने रसोई बघारी (तैयार की) और उन्होंने कोठे, बाटिका और शैया को संवारा। (६) [मैनां की सखियों ने कहा,] "चांद (चांदा), सूर्य (लोरिक) और मैनां का सहस्र वर्षों का राज्य हुआ! (७) सहेलियो, गीत गाओ, आज गोबर में बधावा (हर्ष का आयोजन) है।"

(३९६)

लोरिक पूछहि कहु मोहि माई। कत दहुं मैनां कत हुत भाई।
तोरें पाछें बावन आवा। बैनां मैनां काढ़इ लावा।
अजई करि गोहारि उठि धावा। बैनां मैनां आइ छुड़ावा।
तउहि महरहुं नाउव चलावा। मांकर कहं अस बोलि पठावा।
कहा लोर इहिं देस परानां। हरदीं पाटन जाइ तुलानां।
भई बेर हइ मांकर मारि गाइ लइ जाहि।
ऐसइ बीर कतहुं दहु पाइय सवंरू (कुवंरू?) राढ को आहि॥

सन्दर्भ—मै० पुत्र ३२६।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने लोरिक मादर रा व जवाब दादने मादर।

अर्थ—(१) लोरिक पूछने लगा, "मेरी माता, कहो कि मैनां कहां थीं और भाई कहां था?" (२) [उसने कहा,] "तेरे [जाने के] पीछे बावन आया और बैनां और मैनां को वह [घर से] निकालने लगा। (३) अजई ने गुहारी की और वह उठकर दौड़ा; उसी ने बैनां तथा मैनां को आकर छुड़ाया। (४) तभी महर ने भी नाई भेजा और मांकर को ऐसा कहला भेजा: (५) उसने कहा, "लोर इस देश से भाग गया है और हरदी पाटन चला गया है। (६) ऐ मांकर, [उपयुक्त] वेला हो गई है, तू मार-पीट कर उसकी गाएं ले जा। (७) ऐसा (तेरे जैसा) वीर कहीं क्या पाया जाता है? राढ़ (बलहीन हुआ) संवरू (कुंवरू?) [तेरे समक्ष] कौन (क्या) है?"

(३९७)

सुनि कइ मांकर कटक चलावा। बोहां 'कुंवरुहि मारइ धावा'।
'बहुल कटक सिउं' मांकर अहा। एक कुंवरू कर दहुं काहा।
राजा पहं 'कुंवरू चलि' आवा। 'बांगर मांकर कुंवरू' मरावा।
'अस दुख पूत तोहि बिन भएऊ'। 'परिहंस' गाढ़े न कोउव गएऊ।
'कुंवरू मारा नाउव सुनावा'। राजा कापर 'तेहिं' पहिरावा।

एक 'दुख पूत मोहि' तोरा दूसर 'ओहि क जउ' लाग ।
दिवस रोइ कइ फेकरउं राति जाइ मोहि जागि ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२७, भो० पत्र ६ (नवीन) ।

भो० में इस कडवक के बाद तर्क है 'डारहि हाथ', जो अगले कडवक का होगा । इसके आगे के कडवक किसी प्रति में नहीं मिलते हैं । जैसा कि बी० के संबंध में कडवक ३८२ की सन्दर्भ-टिप्पणी में कहा गया है, असंभव नहीं कि पूरी रचना में इसके आगे भी १४-१५ कडवक रहे हों ।

शीर्षक—मै० : अंजन······। भो० : शुनीदने मांकर कैफ़ियत रफ़्तने लोरिक व आमदन बालश्कर व गुश्तन संवरू व बुर्दने मांद गाव ।

पाठान्तर—(१) १. मै० कुंवरू मारन धावा । (२) १. भो० बहुत कटक सिउं, मै० बहुल कटक महं । (३) १. भो० तउ संवरू । २. भो० धरि करि मांकर संवरु । (४) १. भो० देखि पूत अस पीछेइं भएउ । २. मै० बिरहे (५) १. भो० कुंवरहि नाऊ हंकारइ आवा । २. भो० तेहि । (६) १. भो० में अपाठ्य है । २. भो० ओहिकर ।

अर्थ—(१) यह सुनकर मांकर ने कटक चला दिया और वह वोहां में कुंवरू को मारने दौड़ पड़ा । (२) मांकर बहुतेरे कटक से (के साथ) था, एक (अकेला) कुंवरू भला क्या करता ? (३) कुंवरू जब चल कर राजा के पास [उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए] आया, तो वक्र (कुटिल) मांकर ने कुंवरू को मरवा डाला । (४) ऐसा दुःख, हे पुत्र, तेरे बिना (न रहने के कारण) हुआ और इस परिहंस (परिहास पूर्ण स्थिति) और संकट में कोई [सहायक] न हुआ (५) जब नाई ने कुंवरू का मारा जाना सुनाया, तो राजा (महर) ने उसे वस्त्र पहनाए । (६) एक दुःख तो, हे पुत्र, मुझे तेरा था ही, दूसरा जो उसके लिए हुआ, (७) दिन भर मैं रो-रो कर चिल्लाती रहती हूं और रात मुझे जागते-जागते बीतती है !"

परिशिष्ट

प्रक्षिप्त कडवक

[**कोष्ठकों के बाहर दी हुई संख्याएँ प्रक्षिप्त माने गए कडवकों की क्रम-सख्याएँ हैं, और भीतर दी हुई संख्याएं स्वीकृत कडवकों के साथ उनकी स्थिति का निर्देश करती है।**]

१. (२४ अ)

पौरि छाडि चलि भींतर गयो। येक पौरि फिरि दा (दो) उ भयो।
अस धौ बाहरु दक्खिन बाउ। जिव बिसंभर गा उठै न पाउ।
तर उपरि धरि वानी फिराई। बांस काटि सरके(कि)हि सब छाई।
जरी जरत पट उटंग किवारा। भये (?) झरोखा सजे दुवारा।
ही (हीं) गुर चित्र कियो रतनारी। कनक नीर स्यौं भरी छिहा[री]।
भींतर के (कै?) राजा मनि बारी फूली सोवन जाइ।
घर घर नीर बह(हु)ल तर आनी गंग बहाइ॥

सन्दर्भ—बी० ७५-७७।

मैं० यहां पर अत्रुटित है, जो कडवकों के साथ दिए हुए चित्रों से प्रकट ह, और उसमें यह कडवक नहीं आता है। फिर इसमें भवनों का जो वर्णन है, वह खाई और परकोटे के वर्णनों को देखते ही बहुत रंक प्रतीत होता है' यथा (३) में कहा गया है कि उनमें वांस काट कर सरकंडे से सब छाजन की हुई थी; पुनः, आगे चांदा की चौखंडी का जो वर्णन उसके लोरिक द्वारा आरोहण के प्रसंग में किया गया है, उसकी तुलना में यह वर्णन बहुत हेटा है। इन कारणों से यह कडवक प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

२. (३१ अ)

का गा येकइ········न भना। कुहकत देषि महरि सिर धुना।
कह धौं बात जु पूछौं रोइ। बा(बां)झ बेलि फर कैसें होइ।
न्योतिहौ(हौं) जौ आनीये कागा। ज(न)य(ज)नौ कवन धरम फरु लागा।
भयों सपूरन दसयें मासा। जनमि चांद मनि पूजी आसा।
अति रुपवति करम आगरी। काकौं या धन बिधना धरी।

चांद सुरिज तेहि निरमरा सहदयों गिनीं जु बारि ।
गन गंधर्व रिषि देवता देषि बिमोहे नारि ॥

सन्दर्भ—बी० १००-१०२ ।

मैं० यहां पर अत्रुटित है, जो कडवकों के साथ आए हुए चित्रों से प्रकट है । इस कडवक में फूला रानी को निस्संतान बता कर सिर पीटते हुए उससे कौए से संतानोत्पति के विषय में प्रश्न कराया जाता है, और कौए के बिना कोई युक्ति बताए ही गर्भ के दस मास पूरे हो जाते है और चांदा का जन्म हो जाता है । यह प्रसंग-योजना असंगत और अटपटी लगती है । पुनः दोहे का दूसरा चरण बिल्कुल ज्यों का त्यों आगे आए हुए कडवक ८२ का दूसरा चरण है, जैसा वह मैं० में भी है । अतः यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है ।

३. (५३ अ)

सुन सखी मांह मांस कइ बाला । अपुनें (?) रांग सभइ धनि राता ।
कर गहि रवन्ह कंठ लइ लावइं ।
अति पियारि सखी (सुख ?) सेज बिछावइं ।
तिल दिन बाढि होइ तिल धानी । हउं तिल एक पिय संग न जानी ।
रइनि डेरावनि बरबरि(?) कारी । घटइं न आवइ बजर कइ मारी ।
जागत लोयन आछइं राते । फिरि........................राते ।
रइनि तुसारें कछू न हेरउं(रिउं) रहउं(हिउं) भुव बरु गियं लाइ ।
सउर सुपेती कंत बिनु तिल एक थांमि न जाइ ॥

सन्दर्भ—शि० । मैं० यहां पर त्रुटित है ।

शीर्षक—शि० : कैफ़ियत करदन फ़िराक़ माह फागुन पेश सहेलियान जुदाई शौहर [स्पष्ट है कि फ़ारसी शीर्षक अशुद्ध है ।]

इसके पूर्व पौष का भी एक कडवक रहा होगा, यह शि० में दिए हुए उसके चित्र से प्रकट है, किन्तु यह बारहमासा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है, क्योकि माघ मास का उल्लेख तो स्वीकृत ५१ में आ चुका है, जो मैं० तथा बी० मे मिलता है । पुनः बी० यहां पर अत्रुटित है, और उसमें संबंधित वर्णन मे शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा के प्रतिनिधि मासों माघ, ज्येष्ठ तथा भाद्र के वर्णन आए हैं । ऐसा लगता है कि इन तीस मासों के बर्णन के स्थान पर एक पूरे बारहमासे की शि० में की गई थी

४. (५३ आ)

चइत मांस सव (?) खेलहिं········ । ···············भुइं(?)········· ।
जो[व]हु कतहुं सबहिं जग भूली । सभइं वना फति धरती फूली ।
नौ खंड फूले फूल सोहाए । मंदिर मंदिर··············· : ।
सखी बसंत सभं (?) देखइं आई । ···························· : ।
हीं उर जइस वइसंदर बरई । ······················ : ।
... ... ।
... ... ।।

सन्दर्भ—शि० ।

शीर्षक—अपाठ्य है ।

प्रथम अर्द्धाली अधिकतर अपाठ्य है । पत्र के फट जाने के कारण (३)।२ का उत्तरार्द्ध (४)।२, (५)।२, (६) तथा (७) शेष नहीं हैं ।

इसके पूर्व फाल्गुन का भी एक कडवक रहा होगा, यह शि० में पाए जाने वाले उसके चित्र से प्रकट है ।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी ।

५. (२१० अ)

मोरा मरमु चांद तैं सुना । तुम्ह फुनि कहहु जु तुम्हरें मना ।
जहां मन पिय के नेहु न होई । पर बेदना न जानै कोई ।
सारस हिरन जु वनह बसाहीं । बाझु प(पि)रीतम झूरि मराहीं ।
जिह पै दई न पिरम पिलावा । सो कस आपै मानु [स] कहावा ।
सब बुधि तिहि पहि कहै सयाना । इह जगि पिरम सुवादु जि जाना ।
कहु रसु आपुनु चांदा जिहि चितु सुनै सिराइ ।
नेह कहानी भावै पिरति न हिये बुझाइ ।।

सन्दर्भ—बी० ६४६-६४८ ।

चांदा की स्नेह-साधना सुनने के लिए लोरिक को इस प्रकार का अनुरोध करने की आवश्यकता नहीं थी । बाद के कडवक में चांदा ने जो अपनी स्नेह-साधना का परिचय दिया है, उसके लिए ऐसे शिथिल अनुरोध की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है : 'पर बेदना न जानै कोई' (२), 'जिह पै दई न पिरम पिलावा' (४), और 'पिरति न हिये बुझाइ'—आदि बहुत शिथिल उक्तियां लगती हैं । इसके साथ ही यह भी दर्शनीय है कि मै० यहां

पर अत्रुटित है : इसके पूर्व और पश्चात् के—दोनों कडवक उसमें एक ही साथ दिए हुए हैं, दोनों के बीच में कोई चित्र भी नहीं है। इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

६. (२७८ अ)

चाहौं पंडित पूरब दिस चला। घरी महूरत गिनि कहि भला।
अस गिनि पंडित कहौ संजोगू। मया करै जनु राजा लोगू।
जस सुष होइ नगर कर वासा। औ राजा भल पुरवै (वइ) आसा।
गिनहु मोर औ चांदा रासी।
प(घ)री धरत जस (जनि?) गिनत भुलासी।
यह फुनि बात न कहिहहु काऊ। जस नरु सुनै न सहदे राऊ।
सोवन जरित लै(लइ) अंगुठी लोर बिप्र कौहु दीन्ह।
गनि गुसाईं औ भल भाषौहु फुनि बिनती बहु कीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ८५८-८६०।

मैं० तथा म० यहां पर अत्रुटित हैं, पुनः इस कडवक का मुख्य भाव कडवक २७९ के (१) में आ जाता है, जो बी०, मैं० तथा म० में समान रूप से है, और दोनो को प्रामाणिक मानने पर पुनरुक्ति होती है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

७. (२७९ अ)

'बिहफइ' नारि आइ 'समुझाई'। चांद चीर 'जेइं बहुरि' फिराई।
चंदनु 'सीतर' 'घसि तनु' लावा। 'बेइलि' चंपा भरि सीस 'गुंदावा'।
तिलक मांग चखि काजर कीन्हां। तीस पान मुख बीरा दीन्हां।
अभरन पहिरा 'अउ गियं' हारू। 'हाथन्ह मेंहदी किएउ' सिंगारू।
'सोरह' करां सपूरन भई। लोर लागि 'मालिनि घर' गई।
'जिमि हिं(?) नखत लखि पाई' 'गरह जो भई' निसंक।
सुरिजु सनेही चांदा 'पूनिउ' भई करंक॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४४।२, बी० ८६४-८६६।

मैं० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से प्रकट है, पुनः दिन ही में चांदा कैसे अपने घर से निकल कर मालिन के घर गई, जहां उसे लोरिक भी मिल गया, यह नहीं बताया गया है। अतः यह तथा बाद का अतिरिक्त कडवक प्रक्षिप्त लगते हैं।

शीर्षक—म० : रसीदन बिरस्पति बर चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहपै । २. बी० समझाई । ३. बी० भाप-हरि । (२) १. म० उसीनर । २. बी० सो घसि । ३. बी० बेलि । ४. बी० चरावा । (४) १. बी० औ गैं । २. बी० हाथा महदी सभै । (५) १. बी० सोराह । २. बी० मारति कैं । (६) १. बी० जिन्हा न पिलहि पायो । २. बी० गाजहु भए । (७) १. बी० पूत्यो । २. म० कलंक कलक ।

८. (२७९ आ)

दिनु भा 'बिहफइ' आइ तुलानी । 'भई' उतावलि चांदा रानी ।
सुरिजु सुमंतु 'बिरस्पति' पावा । लेत खांड 'मालिनि' घर आवा ।
पाइंतु धरि 'तउ' चांद 'बोलाई' । 'बिहफइ कही सो जनु दिन पाई' ।
बिहसति चांद लोर पहिं गई । सीसु नाइ धनि ऊभी' भई ।
'अइस' चलहु न सुधि 'कोउ' पावा । सांझ चलहु 'न कोउ गोहनि' आवा ।
'लोरिक' कहा सुनहु 'दहुं' 'चांदा' गवनु करबि अब 'सांझ' ।
भोग बिरास पिरम रस हरदीं पाटन 'मांझ' ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४५।१ [यह संख्या बाद की है, क्योंकि इसका '४' पूर्ववर्ती कडवक के '४' से भिन्न है]; बी० ८६७-८६९ ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'रइनि खेलि', जो स्वीकृत कडवक २७८ का है ।

शीर्षक—दस्तान रसीदन बिरस्पति बा चांदा अस्त ।

मैं० यहां पर अत्रुटित है, अतः यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहपै । २. बी० भइ । (२) १. बी० चांद तुम्ह । २. बी० मारन । (३) १. म० जौ । २. बी० बुलाई । ३. बी० बिहपै कहा सुनहु धन आई । (४) १. म० ठाढी । (५) १. बी० तैसै । २. बी० को । ३. बी० को गौहनिन । (६) १. बी० लोरक । २. बी० धौं । ३. बी० में नहीं है । ४. बी० साझ । (७) १. बी० माझ ।

९. (२८० अ)

लइ लोरिक धरु बारु दिखावा । देखि चांद 'किछु चितहिं न लावा' ।
चलहु लोर 'पुनि हो भिनुसारा' । लागु 'गोहार सब' लोगु हमारा ।
'मुकु(मकु)' सुनि 'पावइ' बावन बीरू । 'परहि दगध पुनि मोर' सरीरू ।

'ओहि' देखत 'कोइ जाइ न पारइ'। 'बोलत बोल मांझ मुंह मारइ'।
'अरजुन जइस धनुक कर गहइ'। 'ओहि कइ हाक न हस्ती सहइ'।
'औगी भुय(भइ ?) तुम्ह आछौ चांदा' 'अइसइं' मोहि न डराउ।
'राउ' रूपचंद बांठा 'मारेउ' अब बावन परि जाउ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४७।२, बी० ८७३-८७५।

मं० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से प्रकट है। लोरिक ने चांदा को उसका घर-बार क्यों दिखाया, इसका कारण नहीं समझ पड़ता है। इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

शीर्षक—म० : दस्तान आमदन चांदा जेर क़स्र वाफ़्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० कुछु चित न सुहावा। (२) १. बी० होयहै भुनसारा। २. बी० गोहार स। (३) १. म० मत। २. बी० पावै। ३. बी० बिरह दगध फुनि मोहि। (४) १. बी० उहि। २. बी० को जान न पारा। ३. बी० बात कहत सिर मुष महि मारा। (५) १. बी० अरजन जैस धुनषु कर गहै। २. बी० उहि की हाक न मानई रहै। (६) १. म० कहहि लोर सुनहु तुम्ह चांदा। २. बी० अैसैं। (७) १. बी० राव। २. बी० मार्यो।

१०. (२८० आ)

'ओडन खांड मैनां लइ' सूती।
'सब (सहि)' निसि जाग बिरह कइ' भूती।
दुहुं 'मिलि घंसि तइ रोइ संचारा'। 'करहि गहत जनु उठी झनकारा'।
मैनां मांजरि रूप मुरारी। 'एहि गुन कतहुं (कहत) न देखउं नारी'।
ओडन गाढ (खांड)' 'गेंडुवा (कुंडौर) सिर धरा'।
'नैन नीर चख झरि झरि परा (काजर झरा)'।
काउ ऊंच नहि बोलसि बोलू। अउगुन करति राखि 'मोर' तौलू।
'एत रूप (सरूप)' सयानी 'अउ कुलवंती बारि (नारि)' संजोग।
तुम्हं 'पंथ[नहीं है]'चांदा मनु राता'। अब 'तेहि[नहीं है]परा' बिजोग॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४७।१ तथा १४८।१, बी० ८७६-८७८।

[म० में यह कडवक दो बार आया है अत: प्रथम बार का पाठ सामान्य

रूप से देते हुए दूसरी बार का कोष्ठकों में दिया जा रहा है] ऊपर दिया हुआ पाठ म० का है, बी० के पाठान्तर यथास्थान नीचे दिए जा रहे हैं। मै० यहां पर अत्रुटित है, और ओडन-खांड तो अपना लोरिक लेता ही गया है (दे० ओडन खांड लीरकर गहा—परवर्ती कडवक), पुनः कडवक का संगठन संदिग्ध है : (१), (२), तथा (४) ओडन-खांड से संबंधित हैं शेष पंक्तियां मैनां की आत्म-प्रशंसा की हैं। अतः यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है।

शीर्षक—म० : दस्तान शमशीर व सिपर लोरिक गिरफ़्तन मैनां।

टिप्पणी—पहले स्थान पर इस कडवक के बाद तर्क है 'लइ लोरिक घर', जो इसके पहले आने वाले कडवक का है, और दूसरे स्थान पर कडवक के बाद तर्क है 'कार' जो स्वीकृत २८१ का है।

पाठान्तर—(१) १. बी० ओडन सिर दे मैनां। २. बी० सब। ३. बी० की। (२) १. डी० घाटेहि मिलि रइ संचारी। २. बी० कर गहि जान उठै झनकारी। (३) १. बी० इहि ढग कतहुं पिर्यीय न नारी। (४) १. बी० सिरहते लीन्हा। २. बी० रोइसि लाख बहुत दुष कीन्हा। (५) १. बी० मौ। (६) १. बी० अते सरूप। २. बी० गावति जोग। (७) १. बी० अस नेहु। २. बी० चांद मनु बीधा। ३. बी० सो पर्यो।

११. (२८१ अ)

रहु कवरू भल बात न जानैहि। अनजनते कस काहि बखानै।
रंग कर बूड न पावै लीरू। चांद रहा रंग मोर सरीरू।
बात सबै याह षंड षंड गई। मुहि लगि चांद कलंकी गई (भई?)।
अब जौ रहौं त लागै लाजा। चांद मरै फुनि हमरे काजा।
दइ कर लिष्या सु मेट(टि) न जाई। महर धिया संग मो सहा आई।
मैना माजरि तजि कै रंगु चांद सौं कीन्ह।
दुष ता निसहि बहु फिरि कैं अबहि दिसंतरु लीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ८८२-८८४।

मै० तथा म० यहां पर अत्रुटित हैं, और रंग का तर्क लोरिक कुंवरू से करता, यह कम संभव प्रतीत होता है। यों भी भागने की इस जल्दी में संवाद का खिचना कम संभव और स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसलिए यह तथा बाद के तीन अतिरिक्त कडवक प्रक्षिप्त लगते हैं।

१२. (२८१ आ)

बोला कंवरू सुनि धौं लोरा। कहा करामि चांद फुनि तोरा।
अति बड महर धिया संग आयें। कुर कौ बहुत अंकरंकु लाये।
छाडि देहु घर आपनै जाई। जस नहिं परिहंसु महर कराई।
अत सुनि महर करसि बड बैरु। हम डरु आहि होइ तुम्ह पैरु।
बोछ पुरषु अस करिहै काजा। सरग कार मुष होइ घर लाजा।
भल न कीन्ह अस लोरिक चांदा कै बैराई।
माइ बूढि औ माजरि मैना गंगा दीन्ह बहाइ॥

सन्दर्भ—बी० ८८५-८८७।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

१३. (२८१ इ)

सुनी बात लोरिक भइ झारा। फिरि फिरि गोवरु निरषि निहारा।
चांद तेहि संका मनि करै। बचनु भाषै बाइकु न सरै।
झूरै मनहि औ[रु] डर षाई। बैरु न अस तुम्ह महरु कराई।
महरि बचनु इक मोसौं कीन्हा। आधे गोबर राजु मोहि दीन्हा।
राउ रूपचंद बांठा मार्यौं। असमै गोबरु महरु उबार्यौं।
फुनि चांदा लागें मनु मोरा। येह परि तुम्ह सौ पर्यों बिछोरा।
अब तुम्ह [भ]ऐ सयाने पौलनि करिहौ सार।
बिरहिनि माजरि मैना झूर न देहु किहि भार॥

सन्दर्भ—बी० ८८८-८९१।

यह कडवड भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। इस कडवक में पांच के स्थान पर छः अर्द्धालियाँ है, यह भी सन्देह-जनक है।

१४. (२८१ ई)

कुंवरू कहा लोर अस भावै। बिरह जरत अम्ह कैस कलावै।
एकै लोर सुनहु मोरी बाता। देषहु नारि जिसे मनु राता।
अति बर राई बराई गये। यंद्र अहल्या तिवई रये।
देषहु चंदु कलंकी भयो। रावन सीय हेतु फुनि गयो।
नल पंडौ कौं कहिये गियानू। तुम्ह फुनि तिय संग भये अयानू।

मैंनां रूप न तीवई देष्यों इहि सैंसारि।
कहा भाई तुम्ह तजिहौ कहौ सु मोहि बिचारि ॥

सन्दर्भ—बी० ८९२-८९४।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

१५. (२८२ अ)

भादौ मास निसा अंधियारी। मन महि डरै न चांदा नारी।
छाइ रह्यौ घन मेंघ अडंबरु। जानु कि धरती लागौ अंबरु।
बरषत नान्ही बूंद सुहाई। चली चांद सुधि काहु न पाई।
फिर ताहु कौउ न दीसै लोगू। सभ को अपनै करै संभोगू।
इक अंधियारी बरसैहि मेहा। ता रुति भौगी तजैंहिन गेहा।
चांद चल लै लोरु तहा अति अंधियारी रैंनि।
को नहि दीसै ना मिलै बोल न कोउ बैंनि ॥

सन्दर्भ—बी० ८९९-९०१।

यह तथा आगे के चौदह कडवक चांदा-लोरिक की उस खोज से सम्बन्धित हैं जो दोनों के गोबर छोड़ने पर महर के द्वारा कराई जाती है, और जिसमें असफल होने की सूचना बावन को दी जाती है। इनमें लोर-चांदा का भागना भादों में बताया गया है (२८२ अ. २), जबकि स्वीकृत कडवकों में वह सावन में कहा गया है (२७५.२)। मैं तथा म० यहां पर अनुदित हैं, और उनमें इन पन्द्रह कडवकों में से एक भी नहीं है, अतः ये निश्चित रूप से प्रक्षिप्त हैं।

१६. (२८२ आ)

बीती निसा भयो भुन सारा। कहै बिरसपति बोलहु बारा।
दिन दिन रैंनि दुषह विहांनीं। आजु कि तुम्हारी झार बुझानी।
मनमहि भेदु बिरसपति जानैं। कबहीं दूसर पहि न बषानै।
तबहि नरायन चेरि बुलाई। चांद न बोलै देषहु आई।
उठी बिरसपति सेज निहारी। सो जनही कही उपइ बारी।
कहै बिरसपति चांद सुनि भेदु न जानै कोऊ।
औगुनु मोहि भयो कछु तौ मोहि कहि समुझाऊ ॥

सन्दर्भ—बी० ९०२-९०४।

१७. (२८२ इ)

मंदिर महि चांदा छिपि रही। ढूढत रांनी चांद न लही।
सूना मंदिरु सेज सब सूनी। देनि बिरसपति झोंहा रूनी।
सबै तरायनि तहां मुरझाई। मंदिर माहि परी बिलल्लाई।
ऐक बार चांद तुम्ह आवोहु। मुषा कवरु तुम्ह आइ दिषावोहु।
अहो बिधाता भयो बिवोगू। देषि करंकु हसै सभ लोगू।
तवहि बिरसपति उतरी कह्यो महरि सौ जाई।
सैज सून चांदा की मंदिर देषौ आई॥

सन्दर्भ— बी० ६०५-६०७।

१८. (२८२ ई)

महरि महरु मंदिर चरि धावा। चांद दुलारी देष न पावा।
सूनी सेज चांद तहं नांही। मूरछि परा झुरैहि मन मांहीं।
इक अफसोसु झूरिहै कोऊ। अहो चांद कहु लै गयो कोऊ।
गोवर माहि उठ्यो बहु सोरू। रैनि बडी तहा होइ न भोरू।
कोउ(ऊ) सुधि न जानै काहू। अहो सोरु योहु कौनु अगाहू।
निसि अंधियारी रैनि डरु कोय न बाहरि जाई।
चांदा सुधि न जानहीं तहा को कहै न आई॥

सन्दर्भ—बी० ६०८-६१०।

१९. (२८२ उ)

मनहि बहु करै बिलापा। अहे बिधात दीन्ह सतापा।
अबहि दिषावोहु वारा मोरी। कौन पाप मो धीया बिछोरी।
चांद दुलारी मो कोहु देहू। कै मो जीउ कढि कै लेहू।
कौं रस हौ यह ऐत बियोगू। इक दुषु औरु हसै सभ लोगू।
तुम्ह बिनु औरु न कोय मिलावै। तुम्ह पसाइ अब चांदा आवै।
महरि महरु मूरछि परहि कोन उठावै आई।
अति वियोग चेता नही तबहि न मुरछा जाई॥

सन्दर्भ—बी० ६११ ६१३।

२०. (२८२ ऊ)

पवनि छतीसक आये बारा । लही सु तवहिं चांद की सारा ।
कोइ कहै उपइ वाह गई । कोइ कहै देवाह् हरि लई ।
रूपवंति संदरि जैसे बारी । यंद्र अषारैं भइ पियारी ।
कोई कहै किने हरि लीन्ही । देषि सरूप यंद्र कौह् दीन्ही ।
कोई कहै राकसु लै जाई । सीय समान कि देपी आई ।
बाजुर मुधि कोई लहै कबहू वोहु ले जाई ।
बहुत दिवस वोहु येक दिन पर्‌यो देषि मुरझाई ॥

सन्दर्भ—बी० ६१४-६१६ ।

२१. (२८२ ऋ)

उठि महरु बिरसपति बूझै । तो कौहु चांद गइ निजु सूझै ।
तबहि बिरसपति झूरै नैना । गहबरि मनि तहा बोलै बैना ।
जौ हौ भेदु चांद कौ पाऊ । तौ हौ चांद कैसै गेहि न धाऊ ।
जेत वियोग कौर तनि सहै । बारै बार बिरसपति कहै ।
महरि रोसु तहा अधिका कीन्हा । साचु बिरसपति तै कछु दीन्हा ।
मुन्यों बिरत मै नर महि लोरिक सौं कछु नेहु ।
अवहि पठावोहु कोइ जनु ढूढहु ता घर गेहु ॥

सन्दर्भ—बी० ६१७-६१६ ।

२२. (२८२ ऋ)

महरु क [हा] यह दोय जन धावोहु । लोरिक कौ बेगि लै आवोहु ।
दोय जन बेगि लोर घरि आवा । घर महि ढूढा लोरु न पावा ।
मैना पौलनि दोऊ जागी । लोरिक नही दाह तनि लागी ।
देषि कछु नहि बोल ऊभारा । मनमहि जाना लोरिक मारा ।
मोर कहत लोरकु ना रहा । तैसै करत अबहि करु लहा ।
दोइ जन घरु ढूढताह् तहा न पावहि लोरु ।
सही पिरम रस चांदा कहु लेइ सु नाठा चोरु ॥

सन्दर्भ—बी० ६२० ६२२

२३. (२८२ लू)

घर महि नही लोर हथियारा। दीठी सूनी सेज अपारा।
दोउ नेवर चांदा तने। चलत पंथ तै बोलहि घने।
लोर उतार सेर पर धरा। चांदा लेइ पयाना करा।
वै दोई नेव जनाह पिछानै। दोउ लेय महर पहि आनै।
देषि महरु तहां उठा रिसाई। लोरिक कुनबा मारहु जाई।
मंत्री कहहि राय सुनु अैसी करै न कोई।
यकु करंकु तुम्ह चांद लगि दूसर मारत होइ॥

सन्दर्भ—बी० ९२३-९२५।

२४. (२८२ लू)

जाइ भौहरै मैना पैठी। पैलनि आई तहा ही बैठी।
भीतिरि रोवै झौहां दोऊ। जातेहि बाहरि सुनै न कोऊ।
इकु रोवैहि अरु डरिहैहि षरी। लोरिक लागि अवस्था परी।
महरु कहै कोऊ जनु धावोहु। लोरिक चापि पकारि लै आवोहु।
महरु कि मंत्रिह तो समुझावा। लोरिक कहहु कौन दिस धावा।
महर लाज उपनी घनी कछु न बोलै बैनि।
तब मंत्री बाहरि कहैहि देषु छमासी रैनि॥

सन्दर्भ—बी० ९२६-९२८।

२५. (२८२ ए)

मंत्री कहहिं निवारहु रोजू। जलमहि जाते लहै न षोजू।
निसि अधियारी भादौं मासा। देषि गगनु रो लेइ उल्हासा।
बहुरि बात यह नगुन लीजा। लेताह अकंरकु कुर कीहु दीजा।
अैसे हुइय न होय कै काऊ। सुनि करि समझा सहदे राऊ।
जा दिनि जनमी चांदा बारी। मंत्रेहि तिहि दिन बात बिचारीं।
परथसि चिन्ता गरभ की उपनी अंगि अपार।
ईछ करी देवाह तनी पाछै जनमी बार॥

सन्दर्भ—बी० ९२९ ९३१

२६. (२८२ ऐ)

जा दिनि चांद कि परगट भई। चिंता महर तनी नहि गई।
देस देस का नरवै राई। तिन्ह की सुधि गोवर महि आई।
महरि न उतरु काहू दीन्हा। बहुरिह काहू पयाना कीन्हा।
करम सजोग जैत घर ब्याही। बावन बरु पायो लिह ताही।
इक बावनु अरु चषि है कानी। मनमहि डरी चांदा रानी।
कुर करंकु ता दिन दियो सीर न राष्यौं ताहि।
चांद कि बरजी नां रही तब घरि आइ आहि॥

सन्दर्भ—बी० ६३२-६३४।

२७. (२८२ ओ)

लोरिक पूठि ये बिधि आवै। जै आवै तौ षरी लजावै।
बाजुर ताहि रूप मुरझावा। राव रूपचंद जा लगि आवा।
गोवरु सहरु राई तहां जारा। पाईक बहुत महर कर मारा।
अति कऊ घरि चांदा गई। हमरै जानै भल अस भई।
बहुत द्यौस चांदा जौ रहती। कौन जानै कछु चांदा करती।
अब तिस गयाह जु भल भई उपनी अंगेह सिधि।
जानौ औषध बाहरी गइ निरंतर ब्याधि॥

सन्दर्भ—बी० ६३५-६३७।

२८. (२८२ औ)

रासि जनम की महरि सचारी। असि नाह भली बिचारी।
अब यह बात कहे जो कोऊ। मोर सांस नां लहिहै कोऊ।
पर इक पाइक कौंहु बुलाई। बावन सुधि कहौ अब जाई।
यकु लोरिकु अरि यनु यहु मोरा।
मो तेहि अधिकु कि बावन तोरा।
जैसै बावनु आडा आवै। ता पहि लोरु जान नहि पावै।
इकु जनु भेज्यौं महरि तहा बावनु कहियो जाई।
सुनि करि बावनु रौसु करि चरा तुरंगम धाई॥

सन्दर्भ—बी० ६३८-६४०।

२९. (२८२ अ)

बाहुरि महरि बात न चलाई। यहै सुधि लोरिक सभ पाई।
गइ सु चांदा सबही जानी। गोबर माहि किनै न बषानी।
कुरि करंकु काहू कै आवै। ताते उत्तिमु अधिकु लजावै।
बोछा पुरुषु ने जानै ग्यानू। तैसौ मानु तैसौ अपमानू।
कुरि करंकु नरवै कै लागै। प्रगटै सुधि सुरायाहू आगे।
लाज उपनी महर कैं कछु सुपु अंगि न होई।
चांद करंकी बाताह गोवरि कहै न कोई॥

सन्दर्भ—बी० ६४१-६४३।

३०. (२८६ अ)

परि गई चांदा हेठि न काऊ। कछु न सभारै हाथ न पाऊ।
लोरहि दुहु चषि नीद न आवै। जागै झूरै बहुरि मंतावै।
हिरदै पोलनि मैनां नारी। झूरि झुरि लोरिक मनहिं बिसारी।
उठि उठि लोर भौ थोरू। रैनि छमासी होय न भोरू।
देषी चांदा सूत न जागै। दुहु चषि लोरिक नीद न लागै।
रवनि ठवनि गजगामिनि मैना दइ सवार।
मै कस जानौ अबही केरि करै इहि बार॥

सन्दर्भ—बी० ६५६-६५८।

इस तथा बाद के तीन कडवकों में चांदा नाव पर अकेली चढ़ कर चल देती है, और जब नाविक उससे अनुचित प्रेम का प्रस्ताव करता है, गहनों के किनारे पर ही छूट जाने का बहाना करके वह नाव को वापस कराती है और तब उसके साथ लोरिक भी नाव पर सवार होता है। इन कडवकों में इस शंका का समाधान नहीं है कि जिस लोरिक के लिए उसने विवाहित पति और पिता का घर छोड़ा, उसको सोता छोड़ कर चांदा ने नदी पार करने की चेष्टा क्यो की। प्रसंग के स्वीकृत कडवकों से इनका विरोध स्पष्ट है (दे० २८८ अ-आ की टिप्पणी)। २८६ अ. ६ लगभग वही है जो आगे ३७४.६ है। फिर म० यहां पर अनुदित है और, उसमें ये नहीं है। अतः ये अवश्य ही प्रक्षिप्त है।

३१. (२८६ आ)

रैनि बिलाप करत मुरझाना। उठी चांद जहा उगयो भाना।
चांदहि षेवट देषि हकारा देषत परि गा दुइ बिसभारा

षिन इक मूरछि बहुरि नि जागा। चाहत अधिक रंग मनु लागा।
सुरंग देषि षरी जहां नारी। फुनि षेवट यह बात उभारी।
कहौ कौन तू अस कै आई। सषी सहेली को न सहाई।

फुनि चांदा अस बोली षेवट पारि पठाऊ।
मोत्यों हारु मै देहों तू बड बार न लाऊ॥

सन्दर्भ—बी० ६५९-६६१।

३२. (२८६ इ)

लोरु न जान चांद चरि नावा। षेवट षेव चला जस धावा।
अरघ लागि फुनि [नि] रषिसि आहैं। चांद रवन अस षेवटु चाहैं।
चांदहि पूछ तोर कस भाऊ। कहहु मोहि कस करहु पसाऊ।
मोरें आहि जु भल वरि नारी। कहहु तौ करिहौं दासि तुहारी।
कर गहि बाह चांद गै मेलैं। झरकि छुडाइ चांद तह ठेलैं।

जिहि रुति दाष सुपकणी बाईस तिहि मुष रोगु।
दई लेष सब पाइ है का मनि बौरे हस लोगु॥

सन्दर्भ—बी० ६६२-६६४।

३३. (२८६ ई)

चांद कहा मोहि औटे लेहू। हम सुरंग होय जस नेहू।
अरथ मो सभ पारै राहा। मैं बहरी हा औ काहा।
चलहु अरथु लै आवह जाई। फुनि मनसा तुम्ह है सु कराई।
हरषा षेवटु नाव बहोरी। अस तिरिया मोहि बिधि लै जोरी।
पिन इक काजि करौ न कुभाऊ। ऐ गौहनि कै दुसस(र) न आऊ।

षेइ नाव ले आवा अब घन करिहौ काह।
रंग करं धन छाडै रंगु सैसार अथाह॥

सन्दर्भ—६६५-६६७।

३४-३५ (२८८ अ-आ)

चांदा नारि उतावरि चली। खेवट कहा बात इइ भली।
गई चांद जहं लोरिक रहा। खेवट सरंगा बइसि एक अहा

गुन बांधे वह खेवट सरगा घेरत आइ।
लइ कइ पार उतारउं सो धनि जउ लहि लोक तहं आइ॥
मांझ गांग हुत खेवट कहा। कवन नारि घर कंहवां अहा।
रइनि कहां तुम्हं कीन्ह बसेरा। नदीं न देखेउं गांउ न खेरा।
घर हुंत बिहिया चलिउं रिसाई। घरि एक राति गांग हूउं आई।
तूं मेहरी कइ जाति अकेली। साथ न कोऊ सखी सहेली।
काहे न कोउ मनावन आवा। जेहिं घर आहि सो आव न पावा।
सासु ननंदि मोरि माखिउं दीख न कूंवह पनार।
मोर साई बिरुद्धा तेहि छाडीउं घर बार॥
चांदहिं खेवट सों अस कहा। अभरन मोर वंहि पारहिं रहा।
खेवट सरंगा खांचि लइ आवा। बोलतहिं लोरिक मांथ उचावा।
दीन्हि तिराई खेवट कही। दुइ जन चले न तीसर अही।

सन्दर्भ—मैं० २३७।१.३ तथा २३९.४ के बीच।

शीर्षक—पहले दोहे के बाद है: सवार शुदन लोरिक चांदा बर कश्ती; तथा दूसरे दोहे के बाद है: गुजार शुदने लोरक व चांदा अज़ आबे गांग।

स्वीकृत २८८ म० पत्र १५३।१ पर पूर्ण कडवक के रूप में दिया हुआ है, अतः यह प्रकट है कि म० पाठ में ये पंक्तियां कभी न रही होंगी और कदाचित् उसके किसी पूर्वज में भी न रही होंगी।

इन पंक्तियों के सन्दर्भ में भी प्रश्न यह उठता है कि लोरिक को इस पार ही छोड़ कर चांदा को अकेले नदी पार करने की उतावली कौन-सी थी? स्वीकृत कडबकों में कहा गया है कि [उस औघट घाट पर] कोई नाविक न देख कर लोरिक ने एक छलना का आश्रय लिया, [वह छिप गया] और चादा बार-बार अपने को इस अभिप्राय से दिखाने लगी कि [उसे अकेली जान कर] कोई नाविक कदाचित् आ जाता, और जब एक नाविक उसे सरंगा के निकट दिखाई पड़ा, उसने अपना कंगन चमकाया। जब चांदा को अकेली देख कर एक केवट सरंगा लेकर आया, तब लोरिक भी प्रकट हो गया और लोरिक तथा चांदा—दोनों उसके सरंगे पर चढ़ गए; केवट इस पार ही रह गया और लोरिक करिया लेकर सरंगा खेने लगा। दोनों ने दैव-संयोग से नदी पार की और वे डूबते डूबते बचे। यदि घटना किसी और प्रकार से घटित हुई होती

जैसी कि ऊपर की अतिरिक्त पंक्तियों में वह घटित होती बताई गई है, तो स्वीकृत कडवकों में भी वह उसी प्रकार से वर्णित होती। स्वीकृत कडवकों और इन दो कडवकों की पंक्तियों में इस प्रकार स्पष्ट विरोध है। फलत: ये अतिरिक्त पंक्तियां निस्संदेह प्रक्षिप्त हैं।

३६. (२६६ अ)

'धीमर' जाइ 'राइ' गुहरावा। कौतिगु एकु 'जो रे' दिखरावा।
तितिया एक 'जो दइय' उपाई। सरग 'हुते जनु' आछरि आई।
'अइसी तिरिया कतहुं न देखेउं'। चांद 'तराइनि' एक न 'लेखेउं'।
'पुरुख एकु आहइ ओहि' पासा। देखत 'दुहुं कहं मारि गइ' सांसा।
'अउर' पिटार 'सब सोनइ' भरा। 'अदस न जानउं केहि कहं' धरा।
चलहि राउ ओहि 'मारि कइ' 'तउ लइ आइय जाइ'।
'घरहि मांझ होइ उजियारा' 'अस तिरिया जउ आइ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १५७।२; बी० १०३१-१०३२।

शीर्षक—दस्तान रवाने शुदन बावन तरफ़ ख़ान: ख़ुद।

मै० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से प्रकट है, धीमर के कहने पर राजा ने क्या किया यह भी कडवक में नहीं कहा गया है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० धीवरि। २. बी० राउ। ३. बी० दई। (२) १. बी० जु दई। २. बी० हुतें जानौं। (३) १. बी० ऐसी तिरी न काहू देख्यौं। २. बी० तरायनि। ३. बी० लेख्यौं। (४) १. बी० पुरुषु येकु जौ है वहि। २. बी० रहै लेहि मर। (५) १. बी० और। २. बी० सुवन सब। ३. बी० अैस न जानौं कहां है। (६) १. बी० मारहु। २. बी० चांद लिआवहु जाई। (७) १. बी० घरिह माहि उजियारा। २. बी० अैसी तिरी जौ आई।

३७. (३०७ अ)

राजइं आगे लोर हंकारा। अंकउं लाइ पाट बैसारा।
बूझइ बात लोर मोंहि कहऊ। मास चारि तुम्हं इहवां रहऊ।
फुनि भइं पठउब पाटन लोरा। बार न बंका होइ जेंहि तोरा।
चांदहि आनि मंदिर बइसावहु। तुम्हं संजोइ पटसार उतारहु।
घोर आनि बांधहु घोरसारा। सार करउं जानउं परिवारा

सुनि लोरिक असि विनई राजा हम न रहाँहि।
गोवर छाड़ि हम आए इहवां अब हरदी दिसि जाँहि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५८। इसके स्थान पर एक अन्य कडवक शेष ती प्रतियों में मिलता है और इसके पूर्व और बाद के कडवकों में, जो मै० मे १ है, हरदीं जाने का जो कथन है, इस कडवक के दोहे में उसकी पुनरुक्ति। इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

३८. (३११ अ)

सवहिं बहेलियां केरी(रि) खुटानी। नियरी मींचु दई विहि आनी
पइसि बीर कोपिया सब जीवां। ओही धनुक [?] बरु गीवा
जो संभारइ सो तस मारा। को रोवइ को करइ पुकारा
एक मुह मोड़ उठे सौ मुहाई। वहु मारे वहु गए पराई
जातहिं मरहिं जान नहीं पारइं। आगें भाजइं पाछें निहारइं

ढे(डे)ढउ सहंस वहेलिया तिन्हकों मीचु घटानि।
कउआ चीलिह सो फाग भा जंबुक गीध अघानि॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३१ (नवीन)।

इस कडवक के अन्त में प्रति में कडवक ३११ आ का तर्क है।

शीर्षक—जंग कर्द लोरिक बा अहेरियान व योजबानान व बअजे गुरुतन्द व बअज़े गुरेख्तन्द।

यह तथा इस प्रसंग के कोई अन्य कडवक न मै० में हैं और न बी० मे, जो इस अंश में अत्रुटित है। इसलिए इस प्रसंग के कडवक प्रक्षिप्त हैं।

३९. (३११ आ)

रगत रोहिनी आवइ गंधाई। चला लोर छोडिहि सो ठाईं।
बहुरि बीर ओडन कर लीन्हां। पुरुब दिसा तब पायंत कीन्हा।
कर कइ गहे ते सोहर सूते। चउरासी लख निंद्रा भूते।
रुंड मुंड महि मेदिनि बा(पा)रा। वहु रोवहिं बहु करहिं पुकारा।
सवरत नदी जो 'भई पंवारा। डाकिनि जोगिनि उतरि न पारा।

चलो(लेउ) सो बनखंड लोरिक बसेउ बीर बनजाइ।
पाकरि रुंख देखि करि तेहिं तर रहइ लुभाइ॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३२ (नवीन)।

भो० में इस कडवक के अन्त में एक तर्क है जो बाद के का होगा

शीर्षक—जाए जंग गुजाश्तः खाने शुद चांदा व लोरिक तरफ़ हरदीं ।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

४०. (३२८ अ)

गारुरि संमदि चांद 'लइ' चला । 'ओहि तेइं बात कहेसि' अति भला ।
बाईं 'दिसि' तूं लोर न जाइसि । 'दहिनीं' बाट बहुत 'फर पाइसि' ।
पिरम भुलान 'वह बोलु न मानइ' । बाट 'चलत सो हारि न जानइ' ।
'डांडी कइ लोरिक' चांद 'चलाई' । 'दहिनी दिसि ओइं दिस्टि न लाई' ।
सूरु आपन 'डंड छाडहिं' कहां । जहां 'बरजहिं ठाढ हइ' तहां ।
'बार अंठउं तेइं' जाइ तुलानां लोरिक सारंगपूर ।
दिन कर मूंडु उचावा राता 'जइस' सिंदूर ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७३, बी० ११२२-११२४ ।

मैं० इस स्थान पर अत्रुटित है और उसमें एक भी कडवक सारंगपुर तथा वहां के द्यूत-युद्ध से संबंधित नहीं है, पुनः इसमें लोरिक बावन को मारने की बात कहता है (३२८ औ. ४), किन्तु कथा में बावन इससे हार कर गोवर लौट गया है (२९७.१), इसलिए तेईस कडवकों का यह प्रसंग प्रक्षिप्त लगता है ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'हिया सिरान' जो ऊपर आए हुए कडवक ३२८ का है, जिससे ज्ञात होता है कि म० का आदर्श या उसका कोई पूर्वज यहां किंचित् अस्त-व्यस्त हो गया था ।

शीर्षक—म० विदाअ् करदन लोरिक हकीम रा ।

पाठान्तर—(१) बी० लै । २. बी० दाहिनि बाट कहसि (तुल० दूसरी अर्द्धाली) । (२) १. बी० दिस । २. बी० दाहिनि । ३. बी० फिरि (फर—फा०) आइसि । (३) १. बी० बोलु नहिं मानैं । २. बी० चला बोहु हरि न मानैं (तुल० प्रथम चरण का तुक) । (४) १. बी० डंडी कैं लोरिकि । २ बी० चलावा । ३. बी० दाहिनि दिस वाह द्रिष्टि लगावा । (५) १. बी० बरु छाडैं । २. बी० बजिये ठाढा ही (हइ—फ़ा०) । (६) १. बी० सुर अंथवत डडु । (७) १. बी० जैस ।

४१. (३२८ आ)

सागर पुर जौ लोरिकु आवा । सायर तीर महापति पावा ।
पूछ महापति कत हूतें आवसि खेलु जुवा धन बहुत कमावसि

उहु जु आहि जुवा कौ रूखा। देषत हिये होइ अति सूषा।
लोरु सुनाई तौ परु पैसारे। सारि आनि कै पासा ढारै।
बैसि जाइ तहां कूंकू लोरा। देषौ यहै जुवा फरु मोरा।
बोर तरै जावै सा छलु करि ढाकी सारि।
सारि हाथ लै महापति आवा पहिल बार उनि पारि॥

सन्दर्भ—बी० ११२५-११२७।

४२. (३२८ इ)

सारि हाथ लै महापति आवा। पासा [लो?]रि जु देषं धावा।
कहसि महापति मै भी पेलवि। हाथ लेइ तौ पासा मेलबि।
विदू चौकु दुई तैसा जानौ। दस जोरत हुत लेपैं आंनौ।
पाच तीन औ साता ढारौ। सात दूवा चौकु संभारौ।
ये दावै तौ माझ बुलाऊ। बीती बार छकर चलाऊ।
बाराह दूवा पासै पेलहि हम परदेसी बार।
सुरिजु चांदु सरगि स्यों यब कै बीती पार॥

सन्दर्भ—बी० ११२८-११३०।

४३. (३२८ ई)

दूसर बार जु लोरिकु हारसि। अभरन उपरि हाथु उभारसि।
ऐकु दाउ पै षेलि बिनानीं। सूर उतपि तब चौहां आनी।
नव दस सेती येक न ढारैं। तौ याहि तिरिया जूबा हारैं।
परै न दाऊ चांद बुझावा। बूझा लोरु पाट उलटावा।
देषि महापति कोहु उचावा। चांदा मनहि हुवा पछितावा।
थाप येक उठि लोरिक मारसि महपति परा लुटाई।
बडी बार कै समुझा सब बुधि गई घटाय॥

सन्दर्भ—बी० ११३१-११३३।

४४. (३२८ उ)

जाइ महीपति लोगु चलावा। भाई महापति असपति आवा।
आगैं लोरिक पीछैं धना। जाई परे झाऊ के बना।
दाहिनी दिस ते पनिच बजावा। पाछैं धरि कें आगें आवा।

बहुते लोग बहुत असवारा। षांड पाइका होय चमकारा।
कहै लोरु तुम्ह जाहु पराई। हम आगै तोरी रहै न बडाई।
छाड़ि जाहु तुम्ह तिरिया मत जहु मूंड कटाई।
येक बार लरु हम सौ सभ को जाहु पराई ॥

सन्दर्भ—बी० ११३४-११३६।

४५. (३२८ ऊ)

लोरिक आई षरगु चमकावा। असपति आ.........आवा।
फरी कटि लोरिकि अस मारा। मूड काटि कैं माझ अडारा।
दूसर रावत आगै सरा। माथ घाउ दै लौरिक धरा।
पाऊ फिराई लोरु तस मारसि। मूडु काटि कैं बांह बिदारसि।
यको बीरु न उहि पहि जाई। बेलुक परग माथ पै खाई।
राउ कहै तस करिये जौ यह तिरी रहाइ।
राषसु येकु महापति ल्याइस लोरहि सूझ न जाइ ॥

सन्दर्भ—बी० ११३७-११३९।

४६. (३२८ ऋ)

चांद देषि तौ सुरिजु न देषौ। सुरज का बांनु चांद भरि छेकैं।
लोरिक कहा चांद सुनु आई। राषसु लागा सुझ न जाई।
मंतरि चांद कैं राषसु भागा। लोरिकु बहुर सूत जस जागा।
देषि लोरिक राषस कैं सांधा। माझ काटि कीतसि दोई आधा।
धुनषु साधि चांदा तस तानसि। बहुते रावत ठाढे आनसि।
लवटा लोरु नगर महि आवा बैर(रि)हि भयो तरास।
मारि नगरु मै सभ उठि जारौ महपति कत तू जासि ॥

सन्दर्भ—बी० १०४०-१०४२।

४७. (३२८ ऋ)

लवटा लोरु नगर महि आवा। बैठा पौरि महापति पावा।
झूट पकरि कैं उहिकौ लीतसि। मूड काटि कै दुहु दिस कीतसि।
राय वस्तु दंडु देई पठावा। लोरिक लीन्ह पाट पहिरावा।
जिय भुंजि के उठि चला। कोई सुगनु हुवा तिह भला।
पैसत हरदी बेस्यां आई। चांदा ओरि सुरिजु ले आई।

माथ नाइ कैं सेवा कीतसि चांदा रही लजाई।
निश्चल नगर सुहावै की तिथि हरदी पाटण रहिया छाई॥

सन्दर्भ—बी० ११४३-११४५।

४८. (३२८ लृ)

चांद सुरिजु महुवरि आवा। पाटण माझ उतारा पावा।
टका सहंस चारि उनि दीता। पाटन भीतरि राना कीता।
षांड षुरहरी काढि जिवावा। कागरु आनि लोर पहिरावा।
येक आन मोरि दूसर तोरी। तोरी बहुल मोरि फुनि थोरी।
... ... ।

दिवसु लोरु महुवरि पै आछै साझ परी घर जाई।
आधी राति चांद स्यों सुरिजु केरि कराई॥

सन्दर्भ—बी० ११४६-११४८। एक अर्द्धाली बी० में नहीं है।

म० प्रति महुवरि-ओलगानी के इस प्रसंग के पूर्व ही खंडित हो गई है, किन्तु यह प्रसंग उसमें भी रहा होगा, यह निम्नलिखित पंक्ति से प्रकट है जो म० में तोता योगी द्वारा किए गए चांदा के अपहरण प्रसंग में है—

हम फुनि हरदीं पाटन जानी। राजा महोर कीनि ओलगानी।

(३२८ अ ट. ५)

४९. (३२८ लॄ)

चांद राति जौ कीन्ह सजाई। राज कहा यह कत हुतें आई।
महतें कहा सुरिजु लै आवा। चांद का भाउ सरगि कत पावा।
उहि की जोति भया उजियारा। परि गा राजा जिउ न संभारा।
औरि गरह सब मारि अडारै। जूझु सुरिज स्यौं कोई न पारै।
राव कहा महता कस कीजै। दरबु सूर दै चांदा लीजै।

महतें कहा सुनौ धौ राजा वोल्यौ मनहि बिचारि।
चांद नारि तौ पाइये सुरिजु हरेवैहि मारि॥

सन्दर्भ—बी० ११४९-११५१।

५०. (३२८ ए)

राजा 'महता' इकु मंतु कीन्हा। लोरु बुलाइ पान 'लइ' दीन्हां।
लोरिक काजु 'अम्हारा कीजइ'। पतिया मोरि हरेवहि दीजइ

पतिया 'बात आगें' अरथायसि । 'पतिया भाइ अरथ जसु पायसि' ।
घोरा कापरु लोरहि दीन्हां । 'इहवंहि संमदत आंको लीन्हा' ।
'तउहि त' लोरु 'साहि' घरि आवा । 'चांद भेंट लइ' केतनि धावा ।
'त्रस करि सो कैकान' अडावा रात जु राजा दीन्ह ।
घोरइं चढ़ि 'तव' लोरिकु लीन्हां चांद जु सांबर कीन्ह ॥

सन्दर्भ—शि०, बी० ११५२-११५४ ।

शीर्षक—शि० : अज़ मशविरत वज़ीर करद बर्ग दाद राव महोर लोरिक रा ब फ़रस्तादन नाम खुद बिरादर ।

कड़वक के अंत के चार शब्द शि० में अपाठ्य हैं ।

पाठान्तर—(१) १. बी० महतें । २. बी० लैं । (२) १. बी० हमार कीजै । २. बी० दीजैं । (३) १. बी० पानि अैस । २. शि० पढतहि पतिया लोरहि लायसु (?) । (४) १. बी० लोरिकि हरषित वैहि सो लीन्हा । (५) १. बी० तैहि । २. बी० साह । ३. बी० ठाढ आगैं होइ । (६) १. बी० धन कैं सांबर आनि । (७) १. बी० कै ।

५१. (३२८ ऐ)

लोर हरेव कटक नेरावा । राउ अहेरे षेलन आवा ।
हाथी सहस चारि लै आवा । उट घोर मोहि गनत न पावा ।
रावत पाइक धानुक आये । और पषरिया लाष चराये ।
बेलिक षांड जैस उजियारा । तारा सरगि गनि को पारा ।
स्यंगनि घंटा और पयाना(?) । टंडौ हररौ करत पयाना ।
षेलति षेलति आवति राजा देषि बीर असबार ।
पूछौ योहु को पायकु भेवा कत हूतें आइ मुरारि ॥

सन्दर्भ—बी० ११५५-११५७ ।

५२. (३२८ ओ)

पाइक आगैं आइ मिलाना । कत तूं षतरी आइ तुलाना ।
राजा महुवरि हौं जु पठावा । देषौ राव अहेरैं आवा ।
जिह कौ मुहवरि सरगि चलावै । पाती दे करि इहा पठावै ।
कहसि लोरु तुम्ह आपु उबारौहु । पतिया देषहु बहुरि सभारौहु ।
पाई क? सायेहि लोरिक आवा देकर पतिया पाउ उठावा

पाढि कै पतियां अलगै बोलसि लोरहि लेहु मझाई ।
तैसै ले धरि आवौहु जैसें निसरि न जाई ॥

सन्दर्भ—बी० ११५८-११६० ।

५३. (३२८ औ)

लोरिक कौ सब लोगु बुलावै । सुमती लोरु नेर नहि आवै ।
ढुक राहेहि कें भजि जु जाई । बहुरि न जीवत बैसे आई ।
हौ सु आहि जिह बाठा मार्यौ । अैरु गगेउ रूपचंदु हार्यौ ।
बावनु म(मा)रि बीर हौं आयो । चांद महर धी तिरिया पायों ।
हाथ खाड लै लोरु उठावा । जूझें रावत वेगि बुलावा ।
बहुते राव देषि मोहि भागेहि तू स राड को आहि ।
मूड काटि कें पैरि बधाऊं ना तरु जिउ ले करि जाहि ॥

सन्दर्भ—बी० ११६१-११६३ ।

५४. (३२८ अं)

सुनि कै राजा कोपु उचावा । आपन कोइ मरन तूं आवा ।
तुहि कै मीचु दई दिषरावा । तौ तू मो सौं जूझे आवा ।
कौन अ(आ)हि जो करै ढिठाई । कहौ हकारि जींउ लै जाई ।
सुन न बोलु उभो पै आहै । रावत मन जूझे पै चाहै ।
सगरे कटकहि सरगि चलाऊ । नातरु ईहां मूडु कटाऊ ।
बहुते रावत बहुत इक घोरा लोरिक ते पन आव ।
फरिया लीन्ही पाव न छाडौ रोपि रहौ दोइ पाव ॥

सन्दर्भ—बी० ११६४-११६६ ।

५५. (३२८ अः)

तीसर साहन घोर चलावा । तरप षांड लौरिक सिरि आवा ।
स्याउ (?) वोडन दुहु दिस कीतसि । चरू भरवि वहि लोहू पीतसि ।
येक हाथ कें पकरि अडारै । दूसर हाथ मेलि तस मारै ।
देषि हरेव फासु करि लावा । चिरियेहि जैसै लोरु बिधावा ।
काटा फासु हरेव कर धरा । उभरा लोरु हरेउ षसि परा ।

मूड काटि कैं पैरि बधायसि तव उठि चलिया बीर।
गाइ दरबु सभु लै आवा चांदनु लाइ सरीर॥

सन्दर्भ—बी० ११६७-११६६।

५६. (३२८ क)

लोरिक बूरी पाटन आवा। जेठा पूतु हरेव का पावा।
नाउ बलालु औरु पुनवंता। ठाकुरु भला औरु गुनवंता।
जिय का दानु बलालहि दीतसि। अरथु दरबु सबु उहिका लीतसि।
बैरी उहिका मारि अडारसि। ठाव हरेव क टीका सारसि।
आपनु नायेहि नगरु बसावा। अवरै बस्तु लेइ घरि आवा।
हरदी आइ तुलांना लोरिक महुवरु देषि डराई।
गाइ दरबु हरेव कारे माधी गढ़ महि दीन्ह पठाई॥

सन्दर्भ—बी० ११७०-११७२।

५७. (३२८ ख)

सुनि कैं महुवरि कोटु लवावा। जानसि लोरिक मारन आवा।
गढ महि गभिनी गामु सरावैहि। फाट धरति तौ आपु लुकावैहि।
अैसौ दुरोहु राव दुषु कीता। हरदी पाटन वा दुषु दीता।
जौ व पुरुषु तू आहि सयाना। पर की तिरिया देषि लुभांना।
जैसौ दुरायहु राय न कीजै। अगि चराइ भेदु नहि दीजै।
राजहि अैस न छाजई परतिय देषि लुभाई।
लोभी पापु सकौरै लोभहि पापु न जाई॥

सन्दर्भ—बी० ११७३-११७५।

५८. (३२८ ग)

महुवरि सुरिजु आनि गै लावा। देइ दरबु बहु घरहु चलावा।
लवटा सुरिजु चांद पहि आवा। सुरिजु देषि चांद जिउ पावा।
आपुनु दुख सबु चांद सुनावा। महुवरु राउ गरहु भरि आवा।
ज्यों ज्यों आपनु मोहि न दीन्हा। त्यों त्यों राव चाहि जिउ लीन्हा।
अस दुषु लोरिक तुम्ह बिनु भया। अैस कालु सो दूभरु भया।

आजु राति जौ सुरिजु न आवति कालि राहु मोहि लीत ।
हौ तौ उहि कौ बोलु न मानति जौ करौत सिर दीत ॥

सन्दर्भ—बी० ११७६-११७८ ।

५६. (३२८ घ)

सूरी(रि)जु चांदा आगै चला । नगर माहि देषि घरु भला ।
तहु वहा लोरि धौरहरु कीता । काढि जीउ तौ चांदहि दीता ।
चांदहि राति सुरिजु जौ आवा । अगरु धसाइ चंदनु तनि लावा ।
चांद सुरिज सब नषत बसारा । षेलहि दूवै फूल कि मारा ।
बाह बाह गै राति बिहावहि । नैन नैन देषि द्यौस गवावैहि ।
षाड घीउ जस मिरिया आछैहि कोई कतहूं न जाइ ।
पिरम मात जस भूले अैसैं रहैं लुभाइ ॥

सन्दर्भ—बी० ११७६-११८१ ।

६०. (३२८ ङ)

सावनि चांद सुरिज सौ माती (?) । रवै रैनि दिनु पिरम की माती ।
सायर देषि नित नित जाहीं । हंसा जोरी केरि कराहीं ।
निसि अंधियारी बरसै पानी । चांद सुरिज लै सुरगि लुकानी ।
पिरम पियाला रस भरि लेहीं । सेज चरे धर पाउ न देहीं ।
....

चारि मास इक चित भई षेलहि रहस दोउ षेल ।
येक सेज इक बैठहि दुहु महि होय चित मेल ॥

सन्दर्भ—बी० ११८२-११८४ । कड़वक की एक अर्द्धाली नहीं है ।

६१. (३२८ च)

माह मास निसि सौरि बिछावहि । पिरम रसायनि धरे भरावहि ।
बिरहु पकरि कै आनि मिरावा । घिरत षांड सौ भूजि पकावा ।
सेज चरे नित रली कराहीं । यहै रसायनु चुवत पिवाहीं ।
सुरिजु चांद लै भीरि गै सोवै । दोइ जन देषत येको होवै ।
चांदा सुरज सुरज जस भई सुरुज चाद चाद होइ गई

सुरिजु चांद को भाषै चांद बोल उठि देई।
पान चांद कौहु दीयहि सूरिजु उठि कै लेई ।।

सन्दर्भ—बी० ११८५-११८७ ।

६२. (३२८ छ)

जेठ मास भरि फूल बिछावै। कुस चंपा लै सीस गुथावै।
सेंदुर चदनु सीसु भरावै। अवरु मनोहरु थनहरि लावैं।
बिहसिचि चांदा पहरै आंगी। अन दोइ भाति सुरंग सुरंगी।
सहमा नैन करति अति हाला। दही पषारति लंबे बाला।
जै लै चांद सुरिज पर जाई। सुरिजु चांद सौ रली कराई।
जे(ये)कु बरसु भा चांद सुरिज सौ सोइ कतहु न जाइ।
सुरिजनु आइ उतरा गोवर तो मैनां सुधि पाय ।।

सन्दर्भ—बी० ११८८-११६० ।

६३. (३२८ अ क)

उठि गइ चांदइं नीदि भलि आई। जस सपने हउ नागहिं खाई।
कहिसि बिचारि पंथ सिर जाहीं। सपन कि सउथुक बूझिय नाहीं।
सुठि चारि मइं सौतुक दीसी। काल्हि रेनि जउ बन महं पईसी।
करम हमार सिद्‌ध एक आवा। जेहिं हुत हम तुम्हं फेरि मेरावा।
पाउ सिद्‌ध कर छांडेउं नाहीं। जब लगि जीवहिं सेव कराही।
देइ असीस सिद्ध असबोला तूं मोर भाइ।
बाट मांझ एक तोंता जोगी मत चांदहि लइ जाइ।

सन्दर्भ—म० पत्र १७३ ।

यहां पर मै० तथा बी० अत्रुटित हैं और उनमें यह तथा प्रसंग के परवर्ती ११ कडवक नहीं मिलते है। बी० में इस सर्पदंश तथा चांदा-अपहरण प्रसंगों के स्थान पर महापति और असपति से द्यूत-युद्ध का प्रसंग है। लगता है कि ३२८ अ के बाद म० के किसी पूर्वज के खंडित हो जाने पर इन प्रसंगों की कल्पना कर ली गई, जो कथा के किसी लोक-गाथा रूप में भी नहीं मिलते हैं।

शीर्षक—म० बहोश शुदन चादा आजा ? लोरिक गुफ्त

६४. (३२८ अ ख)

लोरिक जउ तोहि पीरा परही । चांद तोरि जउ तोंता हरही ।
दइय संवरि मोहि संवरेसि लोरा । ठांउं ठांउं मइं आउब तोरा ।
एतना कहि सिध चला उड़ाई । चांद लोर ओइ रहे लुभाई ।
धरि इक ओहिं सिर बइठ नवाए । फुनि उठि चलि कइ बाट खुटाए ।
दिवस चारि जो चलतहिं भए । नगर एक पइसार तेहि गए ।
लोरिक कहा चांद तुम्ह बइसहु हउं सो नघ(ग)र महं जांउं ।
कनिक आनि ओलावती परि जेवन कछु रे करांउं ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७४ ।
म० में इस कडवक के बाद तर्क 'चांद मढ़ी' है, जो अगले कडवक का है ।
शीर्षक—म० : चूं लोरिक तुरा रोज़ बद उफ़्तद मारा याद कुन ।

६५. (३२८ अ ग)

चांद मढ़ी बइसारि छपाई । लोर नगर महं सउदइं जाई ।
तोंतइं छपिउ देखि तउं पावा । छंद लाइ चांदा पहं आवा ।
आसन मारि बइठ तह आई । अब मो पहं कित चांदा जाई ।
सींगी पूरि नाद तिसु कीया । कीन (?) बैसंदर बरा तेहि दीया ।
सुनतहि चांद बेधि तसि गई । रीझति मरन सनेही भई ।
जइस अहेरिया पापरधि मिरिग बेधि लइ जाइ ।
तोंता भएउ अहेरिया चांदहि गोहन लाइ लाइ ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७४ ।
शीर्षक—म० : दरमियान बुतख़ानः हिन्दुआं चांदा रा मानद ।

६६. (३२८ अ घ)

सींगी पूरि मंतु सो लावा । चांद मन किछु चेत न आवा ।
चांदा गोहन लइ चला भुलाई । गाव गीत अउ किछु न कराई ।
तइसिइ संग भइ चांद सभागी । गांव गांव फिर गोहन लागी ।
देखि सिद्ध अउ कंथ अधारी । भूली किछु न संभारी बारी ।
चादहि प बि सरा सभ बिसरा लोर जीयन जो अधारू

सुन नीद रव रूरे पाछे हेर न बारि।
लोर आइ जउ देखइ मढ़ी चांदा बिनु अंधियारि ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७५।

म० में इस कडवक के बाद तर्क 'सूनि' है, जो अगले का है।

शीर्षक—म० : चीज़ी अफ़सून आं जनां ख्वांद कि चांद दीवान शुद।

६७. (३२८ अ ङ)

सूनि मढ़ी देखि लोरिक रोवा। काहे कहं बिधि कीन्ह बिछोवा
अब हउ जउ रे सरग चढि धावउं। तउ नहिं खोज चांद कर पावउ
लोर चहूं दिसि भइं भइं आवा। खोज चांद कर राति न पावा
रैनि गई पै चांद न पाई। उठा सुरुज चलि खोज कराई
आजु राति जउ चांद न पाई। सारस परि रे मरउं उडाई
ठांव ठांव जउ लोरिक बूझइ धनियां एक सुधि पाई।
अथएं सुरुज चांद जसि तिरिया तोंता दिख लइ जाई ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७५।

शीर्षक—म० : चूं लोरिक आमद चे बीनद कि चांद: दर बुतखान: नेस्त

६८. (३२८ अ च)

लोरिक जउ तोंता सुनि पावा। खोजतहि खोजि जाइ नियरावा
नगर एक पइसत सुधि पाई। तोंता संग तिरिया एक आई
बीर नगर तउ चाहन लागा। फीक (?) होत तोंता कर रागा
सुनतहि नाद लोर गा आई। देखि चांद मन रही लजाई
दौरि लाँर तोंता कर गहा। अरे भिखारी तोहि मारउं काहा
धरें जटा लइ चला राव पहं तोहि फिरावउं सूरि।
झूठिहि जटा लागि बिहरानीं ओहट भा चलि दूरि ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७६।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'आंखि काढ़ि' जो अगले का है।

शीर्षक—म० : चू शुनीद लोरिक कि दस्त पा बुरीद: बरदरस्त।

६९. (३२८ अ छ)

आंखि काढ़ि कइ तोंता धावा। लोर कहा हउं एइं पइ खावा
लोरिक भागि चला जो डराई। मंत तोंता मोहि फ(भ)सम कराई

तोंतइं खा(घा)लि लोर मोंकरावा । सिद्ध बचन हुत मन मह आवा ।
सिद्ध आइ लोरिक पंथ ठाढा । लोरहि तोंतहि बोल जउ बाढा ।
दूनउं कहहिं मोरि जोई । दोउन्ह मांझ मगावज होई ।
चांदा ठाढी कौतुक देखइ मुंह मह बकति न आव ।
बिकी खेल अउ गीत भुलानी रावल सीस डोलाव ।।

सन्दर्भ—म० पत्र १७६ ।

शीर्षक—म० : चश्म कुशादह करदन व दीदन तोंता लोरिक रा ।

७०. (३२८ अ ज)

सिद्ध कहइ तुम्हं काहे जूझहु । करहु गियान अब मन महं बूझहु ।
सभा करहु अउ करहु बिचारा । दहुं को जीतइ को रन हारा ।
जूझइ चाहि जउ पूछा भला । बांन्हां जोरे लोरिक चला ।
चांद साथ भइ अउ सिध भवा । भीतर नगर सभा महं गवा ।
नगर अथाई बइठि जउ दीठी । इन्द्र सभा परि सभा बईठी ।
सभा संवारि जउ रावत बइठ उहांई जाइ ।
चारि खंड का न्याव निवारहि एकउ भर नहिं जाइ ।।

सन्दर्भ—म० पत्र १७७ ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क 'आइ' है जो अगले कडवक का है ।

शीर्षक—म० : दरमियान जोगी व लोरिक गुफ्त शुदन ।

७१. (३२८ अ झ)

आइ चहूं मिलि कीन्ह जुहारू । जूझि मरत हहिं करहु बिचारू ।
बोला सभा कहहु दुहुं आई । काहि लागि तुम्हं जूझहु भाई ।
एक एक आपनि बात चलावहु । झूठ सांच आपन तुम्हं पावहु ।
उठि लोरिक तउ अइसा कहा । बइठि तोंतइं यहि चेटक अहा ।
सींगी पूरि चांद हरि लीन्हां । सगरिइं रइनि खोज मइ कीन्हां ।
खोजत पाएउं तोंता धरेउं बिहरि गए बार ।
छुवंतहि जटा लागि बिहरानीं जानां सब संसार ।।

सन्दर्भ—म० १७७ ।

शीर्षक—म० : हर चहार कस सलाम रसानीदः अस्त ।

७२. (३२८ अ ञ)

पूछइ सभा कहहि दहुं लोरा। कवन लोग घर कहवां तोरा।
कहवां अइसि तिरी तंइ पाई। काकरि रही यह कहवां जाई।
काहे निसरेहु दुइ जन होई। इतर साथ नहि आईहिं कोई।
कवनि पुहुमि हुत लोरिक आएहि। कहवां जाहि कहां वह गाएहि।
घर हुत काहे निसरे लोरा। लोग कुटुंब किछु कहे न तोरा।
काहि लागि तुम्हं निसरे सांच कहहु तुम्हं बात।
हम फुनि देखि नियाव निबारहि पूंछहिं तुम्हरी बात।।

सन्दर्भ—म० पत्र १७८।

म० मे इस कडवक के बाद का तर्क स्पष्ट नहीं है।

शीर्षक—म०: गुफ्त जोगी ज़न मन अस्त।

७३. (३२८ अ ट)

तोता कह मोरि बारि बियाही। परी राड तोरइ को आही
सभा कहइ दहुं अब का कीजइ। इन्ह दुहुं कहं कस ऊतर दीजइ
दोउ कहहिं यह मोरी जोई। इन्ह दुहुं महं हर साखि न होई
वह तोंता यह रावन अहइ। धनि पूछहि दहुं वह का कहइ
चादहि मन किछु चेत न आवा। अइस मंत्र पढि तोतइं लावा
लोर कहा यह मोरी तिरिया अनु मोहि गोहन आइ।
भा भिखारि हइ तोंता जोगी सकति चढ़इ लइ जाइ।।

सन्दर्भ—म० पत्र १७८।

शीर्षक—म०: गुफ़्तन जोगी कि ई ज़न मन अस्त।

७४. (३२८ अ ठ)

जाति अहिर हम लोरिक नांऊ। गोवर नगर हमारेउं ठायू
सहदेउ महर कि चांदा धिया। महर बियाह बावन सिउं किया
बावन केरि नारि लइ आएउं। चांदा तिरी महर धिय पाएउ
हउं जो आहि जेइं बांठा मारा। आसो राव रूपचंद हारा
हम फुनि हरदीं पाटन जानी। राजा महुवरि कीनि ओरगानी

चांद सनेह जउ निसरेउ छाड़ि कुटुब घर बार ।
तुम्हरे देस यह तोंता जोगी रहा होइ बटपार ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७६ (?) ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनतहि' जो इसी प्रसंग के बाद के किसी कडवक का रहा होगा, जो अब प्राप्त नहीं है ।

शीर्षक—म० : पुरसीदन ज़ात गुआल इस्म लोरिक जन चांदा ।

७५. (३३१ अ)

'तब कै (गै) लोरु' 'राइ गोहरावा' । बहुरि गंगेऊ गरहु होइ आवा ।
चाद लेउं ताहि सरगि 'चलावउं' । 'सभैं' 'तराइन मांझ बइसावउ' ।
कहा लोर तुम्हं खांड 'संभारहु' । 'मोहि सिउं गंगेऊ तुम्हं नहि पारहू' ।
एक खांड 'लोरिक' तस लावा । फरी 'काटि' टाटर महिं आवा ।
बापु बापु 'कइ' आपु 'उबारेसि' । भाइ माइ'कइ' 'ओइं जिउ हारेसि' ।
'कहेसि' चेर 'तोर होइहउ' 'लेइ डंडु जिउ राषि' ।
कहा लोर सुनुं 'गंगेऊ' 'अइस बोलु केहि' 'आखि' ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १५८।१; बी० १०५८-१०६० ।

मैं० यहां पर अत्रुटित है और यह प्रसंग भी अकस्मात आया हुआ है, इसलिए यह प्रसंग प्रक्षिप्त लगता है ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'डंडु लै', जो बाद के कडवक का है ।

शीर्षक—म० : दास्तान बाज़ मुश्तइद शुदन व आमदन राव गंगेऊ बर लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. म० पहिलैं लोरिक । २. बी० राय गुहनावा (गुहरावा—ना०) । (२) १. बी० चलाऊं । २. म० सरग । ३. बी० तराय महि बैसाऊं । (३) १. बी० आपु उबारहु । २. बी० मोसैं गंगेव कहा तुम्ह पारौहु । (४) १. बी० लोरक । २. म० फाटि । (५) १. बी० कैं । २. बी० उबारसि । ३. बी० कैं । ४. बी० उहु जिउ हारसि । (६) १. बी० कहसि । २ बी० तोरौ होइहौं । ३. म० अकसर कइ मुंह झारिव । (७) १. म० कहेसि सेवक । २. बी० गंगेव । ३. बी० अैस बोलु तू । ४. म० भाखि ।

७६. (३३१ आ)

डडु ले लोरिक कीत पयाना । पाकुरि देषत आइ तुलाना ।
षाई पीई करि दून्यो बसे । नागिनि चांद सोवत निसि डसे ।

उठा जबहि सूरीजु परगासा । चांद गरै देष्यै नहि सासा ।
हाथ चलाइ पाव धरि पाई । लोरिक जानौ प(व)रग की षाई ।
कर पलोय ले र तस कीता । तुहि तरि आइ पूर दुषु लीता ।
मूड मारि कै रोवै उभी बाह पसारि ।
दई बिधाता चांद जिवावोहु बरि मोहि घालहु मारि ।।

सन्दर्भ—बी० १०६१-१०६४ ।

म० में भी यह कडवक रहा होगा क्योंकि म० पत्र १५८ पर इसका तर्क है । बाद वाला कडवक म० में हे ही । किन्तु मै० यहां पर अत्रुटित है और इस तथा ३३१ ई के सारे बिस्तार स्वीकृत कडवक ३१३ तथा ३१७ में आ चुके है, जो बी० तथा अन्य प्रतियों में समान रूप से हैं । इसलिए यह तथा बाद के दो कडवक प्रक्षिप्त लगते हैं ।

७७. (३३१ इ)

सात दिवस लगि 'सरग' 'डफारा' । 'सूक सनीचर' आनि बइसारा ।
राहु केतु '[त?]स' देखत अहा । सूरिज 'मेंह पाउ नहि रहा' ।
'बुध' बिरसपति दोउ 'बुलाए' । चांद कि चिंत करहु 'दुहुं आए' ।
'बरु' मोहि लइ 'करि' मारि 'अडावहु' । चांद मोर 'पइ' आजु 'जियाबहु' ।
'करिकैं' 'बछा' 'के ढाई' 'धरे' । मीन सिंघ 'आगूं होइ खरे' ।
सुरिजु 'कि रोवत तिरियइं' 'अउरु' नखत को आहि ।
'ओहिकि' झार सरगि सभ 'जरईं' 'अउर' धरति 'कस' आहि ।।

सन्दर्भ—म० पत्र १६३, बी० १०६५-१०६७ ।

शीर्षक—म० : दास्तान करदन लोरिक अज़ सूर चांदा ।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुरिज । २. बी० डभारा (डफारा—फ़ा०) । ३ बी० सुकरु सनीसरु । (२) १. म० यह । २. बी० सीस पाइ बहबहा । (३) १. म० सुक्र । २. बी० बुलाई । ३. बी० तुम्ह आई । (४) १. बी० बरि । २. बी० कै । ३. बी० अडावोहु । ४. बी० पै । ५. बी० जिबावोहु । (५) १. म० ककुहा । २. बी० अछ । ३. बी० कहौ लै । ४. बी० धरी । ५ बी० कौं आगें बरे । (६) १. बी० रोवै तौ तिरिया रोवहि । २. बी० और । (७) १. बी० उहि की । २. बी० जरिहहि । ३. बी० और । ४. म० को ।

७८. (३३१ ई)

पाकुरि काटि लोर चिय रचा। झाप देइ मै राषौं बचा।
तिहि षिन येकु गारुरी आवा। कनक जप देकैं चांद जगावा।
सुरिजु पाव गारुर कै परा। चांद अमावस पून्यों करा।
रहसा सुरिजु चांद गैं लाई। सुरिजु चांद लै माथ चराई।
पानी सुरिजु वारि सिर पीता। पून्यो चांद गारुरी कीता।
मरत्यों तें रु जगायो जब हौं करौं वधाई।
लोर पसाइ चांद मैं पाई गहनै गही छुड़ाई॥

सन्दर्भ—बी० १०६८-१०७०।

म० यहां पर अत्रुटित है और उसमें यह कडवक नहीं है, किन्तु इस प्रसंग के अन्य दो कडवक म० में भी है, केवल यही नहीं है, इसलिए लगता है कि यह कडवक म० अथवा उसके किसी पूर्वज में प्रतिलिपि करने से रह गया। यह कडवक भी प्रक्षिप्त है—दे० ३३१ आ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शब्द-कोश

इस शब्द-कोश में केवल उन्हीं शब्दों को संकलित करने का यत्न किया गया है जिनके संबंध में भाषा अथवा अर्थ-संबंधी स्पष्टीकरण आवश्यक था, और उन शब्दों के भी प्रयोग के कुछ ही स्थल निर्दिष्ट किए जा सके है। आशा है कि इस प्रयास से रचना के प्राचीन भाषा-रूप और अर्थ को समझने मे सहायता मिलेगी। संख्याएं क्रमश: कडवकों और उनकी पंक्तियों की हैं।

अउ : अओ : अतस्—यहां से, इसी समय से २३१.१। अउ : वह, ३३४.७। अउंछ् : आउछ् : आकुंच्—आकुंचन करना, सिमटना १३१.७ (तुल० 'उंछ्')। अउर : अवर : अपर—और, अन्य ५९.६, १४४.७, ३८७ १। अकबार। अंकवारी : अंकपाली—आलिंगन ७५.५, ७५.६, २६५.७, ३९४.५। अकुरी : अंक+डी—आंकड़ी, जिसकी सहायता मे बरहा अटकाया जाता था २८०.३। अंगिराय्—अंगडाई लेना ६३.१। अंगीठी : अग्नि+इष्टिका ५१ ३। अंछ्—खिचले हुए होना, आधिक्य के साथ होना २८.७। अंथव् अस्तम्+इ—अस्तमित होना, शान्त होना ३०९.६ (दे० आंथव्)। अंबराई आम्रराजि १९.१। अंबराउं। अंबरांव : आम्राराम २५९.४। अकरक कलक २२३.२, २२८.५। अक्खत : अक्षत—समूचा चावल १६५ ५, २४४.५। अखार : अक्खाड : अक्षवाटक—अखाड़ा, मल्ल-भूमि १११.६। अगर : अगुरु ३४१.४। अगियारि : अग्गिआरिआ : अग्निकारिका—अग्नि कर्म २४४.३। अगुर : आकर (?)—आकर पदार्थ, जिससे अन्य पदार्थों की रचना होती है २.७। अगुसारय् : अग्र+सारय्—आगे बढ़ाना, आगे चलाना १२६.१। अघाय् : अग्घव्—तृप्त होना १६१ ७, १७२.३। अचंभा : अत्यद्-भुत (?) १७१.१। अचगर—औद्धत्यपूर्ण, अन्यायपूर्ण ३०१.६। अजोर् योजय्—जोड़ना ७५.३। अठाउ : अस्थान २७४.२। अडागर : अडक्खिय+डा—बिना कुचला हुआ, समूचा २७.४, १४७.३। अतिरेख : अतिरेक—आधिक्य ६६.५। अथाई : आस्थानिका—गोष्ठी २६.१। अधारी—आसन-क्रिया करने के समय हाथों को टेकने की एक लकड़ी १६४.३। अनत : अन्यत्र

४४२। अनवट : अंगुष्ठ : पैर के अंगूठे का आभरण-विशेष २२८ ६। अनवन : अण्ण+वण्ण : अन्य+वर्ण—अनोखा, अद्‌भुत ३०.२, ८८.१। अनांरी : अणाढिय : अनादृत—तिरस्कृत ६५.४। अनियार—अनी (बर्छी की-सी नोक) वाला ७६.७, ३२४.२। अनीं : अनीक—सेना १२२.५। अपान : अप्पाण : आत्म—जीव ३१५.७। अबेर : अबेला—देरी ६०.५। अभिर्—भिड़ना २६२.२। अभुवाय् : अभ्युपपद्—कृपा अथवा आश्रय प्राप्ति के लिए [इष्ट देवता की] सेवा में पहुंचना [अथवा उसे व्यक्त करने के लिए किसी नावित द्वारा सिर का हिलाया जाना] १७९.६, २६१.४। अरकत : आरक्त ७६ ३। अरग्—चुप होना २६०.१। अरघ : अर्घ—पूजा की सामग्री, पूजा का आयोजन १४१.६। अरथ : अर्थ—धन ३४.४। अरसी : आदर्शिका—आईना ७३.४, ३३२.४। अलख : अलक्ष्य—जो दृष्टि में न आ सकता हो ३१२.५। अवगाह्—जल में प्रविष्ट होना ९८.७। अवगाह : अवगाढ—गंभीर, गहरा २१ २, ७८ ६, २०५.५। अवघट : अप+घट्ट—बुरा घाट २८६.७। अवधार् : अव-धारय्—निश्चय करना ३६६.३। अवसान : अवसन्न—अवसादपूर्ण २२४.३। अवास : आवास ३६७.५। असकिति : असत्कृत्य—असत्‌कार्य ३७.३। असरार : असराल—निरंतर १९४.३। असरौ : आश्रय—आसरा ९९.३। अस्तानी : अस्त्यान—उपेक्षा, तिरस्कार २३४.१। अस्थन : स्तन ७७ ७, १९६.३। अहिआन्—अभिज्ञान करना पहचानना ३३१.२। अहेर : आखेट २४३.७।

आएस : आदेश—नमस्कार, ['आदेश' कहकर नमस्कार करने वाला] योगी १६७.१। आंक : अंक—चिह्न, पहिचान ६१.२। आंत : अंत्र—आंत ७८.५। आंथव् : अत्थम् : अस्तम्+इ—अस्त होना २८.५ (दे० अंथव्)। आंब : आम्र—आम २६१.७। आख् : अक्ख् : आ+ख्या—कहना २९५ ४, ३११.६। आगर : अग्र—बढ़ा-चढ़ा, बढ़कर २०.६, ३६.६, २४१.६। आछ् अस्—होना ३२.६, ७२.४, १७५.४, २५६.७। आछरि : अप्सरस्—अप्सरा ८२ ३, २४६.१। आथि—थी ७५.४। आधि—मानसिक व्यथा ४७.१। आन् : आ+नी—लाना ४६ १, २३९.४। आन। आंन : अन्य और, दूसरा ११३.३। आरौ—आहट २२५.४।

ईंगुर : हिंगुल—सिंगरफ २४.३, ३०.१। ईठ : इष्ट—२५८.५।

उंछ् : आकुंच—आकुंचन करना, गात्र—संकोच करना १९८.३, ३९३ ३ (तुल० 'अउंछ्')। उग् : उग्ग् : उद्+गम्—उगना, निकलना १३९.६। उघर् : उग्घड् : उद्+घट्—खुलना २४१.५। उघार् : उग्घाड् : उद्+

घाटय्—खोलना १५७.७। उचाट : उच्चाटन—कार्यादि में अरति २४६.४। उचाव् : उच्चय्—उठाना ५४.४। उजार : उज्जड [दे०]—ऊजड, निर्जन स्थान ३२२.५। उजियार : औज्ज्वल्य—प्रकाश, निर्मलता ४१.३, ७१.३। उजियार : उज्ज्वल—प्रकाशपूर्ण २७५.७। उजियारि। उजियारी : यथा 'उजियार' : १०१.७। उटव्—साहस करना, बाज़ी लगाना १८५.४, २१४ २। उतराय् : उत्तर् : उत्+तॄ—[पानी आदि से] ऊपर या बाहर आना ३८०.७। उदिनल : उदिण्ण : उदीर्ण—उदीयमान ६६.४, १८४.१, २७८.७। उदेग उद्वेग २४६.४। उधस् : उद्ध्वस्—उध्वस्त होना, तितर-बितर होना २२०.३। उपटाव् : उत्पातय्—उठाना, उमडाना ३२२.२। उपन्—उत्पन्न होना २१६.६। उपराज् : उपरच्—उत्पादित करना १८५.२। उपहर : उप्पेहड [दे०]—आडबर युक्त २४३.२। उपाय। उपाव् : उप्पाअ् : उत्पादय्—निर्मित करना ७७ ५, १६४.५। उबर् : उव्वर : उद्+वृ—शेष रहना, बच रहना १२६.७। उबार् : उव्वार : उद्+वर्त्तय्—बचाना १३६.३, २५७.४। उभर्। ऊभर—उब्भ (ऊर्ध्व) होना, उठना १२६.१। उभार् : उब्भाड्—उब्भ (ऊर्ध्व) करना, उठाना ३२६.५। उरेह् : उल्लिख्—रेखांकन करना १६३.१। ऊतर : उत्तर ६४.४। ऊबट : उव्वट : उद्+वर्त्म—अटपटा मार्ग २८१.४।

ऊभ : उब्भ : ऊर्ध्व—उठा हुआ २७७.४, २६१.७।

एकसर—अकेला ३५१.६। एत : इयत्—इतना ७३७।

ओछ : उच्छ : तुच्छ १२१.३। ओर : अवर : अपर—अन्य [छोर] २८ ५, १७८.३। ओरग् : ओलग् : अवलग्—सेवा करना ११२.१। ओरगाव्—सेवा या चाकरी कराना ३०२.५। ओरगावन—सेवा, चाकरी ३२ ६। ओरमाव् : ओलंब : अव+लम्ब्—लटकाना, नीचा करना ६५.३। ओरवानी—ओलती ३४३.५। ओरहन : उपालम्भ २६६.१, २७२.५। ओल्लार्—लिटाना १५४.१। ओहट : अपघट्टक—दूर का स्थान ३६.२।

कउ : कदा—कब २२३.४। कंडहार : कर्णधार २०५.६, ३६३.३। कवर : कमल २५६.७। कक्कर : कर्कर १४८.२। कखाव्—कांखों मे से करते हुए धारण करना ३६५.४। कचपची : किचि-पचिअ : कृत्ति-प्रचित—कृत्तिका से समृद्ध [नक्षत्र माला] १६२.४। कचोर : कच्चोल—कटोरा, प्याला ७५.२, १३७.४। कट—शरीर-यष्टि ३३.६। कटवां—काटकर पकाया जाने वाला पदार्थ १४५.२। कटार : कर्त्तर १२५.४। कत : कुत—क्यों (?) ६१.५। कनइ—पास ११६.२, १७१.४। कनिक : कणिक—आटा ४२ ६ कबि काव्य १४४ ६ कबित कवित्त काव्य १८ १। कबिलास

फली जिसके स्पर्श से खुजली होती है १८२.१ । कोंप : कुड्म—कोंपल ५७.६ । कोटवार : कोट्टपाल—नगर अथवा गढ़ का रक्षक २४.७ । कोठा कोष्ठ—प्रकोष्ठ ३९५.५ । कोठार : कोष्ठागार—नाज का संग्रहागार ३८३.१ । कोड : कोड्ड [दे०]—खेल-कूद २८.६, ५६.३, २६७.४ । कोरि : कोडि कोटि—करोड़ १३०.३ । कोह : क्रोध ३८९.६ । कोहाय्—क्रुद्ध होना, रोष करना ४४.७ । कोही : कोहिल्ली [दे०]—तापिका, तवा २३०.४ ।

खंड—कथा का अंश ६४.६, ३२९.४ । खंडवानी : खण्ड+पानीय–पानी में खांड का घोल १५१.१ । खंडौर : खण्ड+पूर । खण्ड+वर्त्तक—खाड (शक्कर) का लड्डू १९४.५ । खंध्—गंध देना २७.२ । खंधाई—गधी २५.३ । खजहजा : खाद्य+भ्रज्ज्य+क—खाद्य (वे पदार्थ जो अपने प्रकृत रूप में खाए जाते हैं) तथा भ्रज्ज्य (वे पदार्थ जो भून कर या तल कर खाए जाते हैं) : १५२.७, २१३.३, ३३७.५ । खभार : क्षोभ—अशांति १३९.१, ३८२.१ । खरवार : खल्लवार : बड़ा पेटक, पेटारा ३३८.५ । खरी : खडिआ खटिका—खड़िया मिट्टी ३३२.२ । खलीती : स्खलित—बल अथवा साधन से हीन २१९.६ । खस् [दे०]—गिरना ३१०.६ । खाई : खाति—खाई २३.१, ३८१.६ । खांड : खड्ड : खड्ग—खांडा २०२.४ । खांब : स्कम्भ—खभा ७१.४ । खिरउरा : क्षीर+पूरक । क्षीर+वर्त्तक—दूध का लड्डू ४०.२ । खिस् : दे० :—गिरना २३.७ (दे० 'खस्') । खीर : क्षीर १४९.१ । खीरोदक क्षीरोदक—एक प्रकार का श्वेत झिलमिला वस्त्र १५३.१ । खुट् : क्षी—क्षय होना खंडित करना ६०.१, २१७.२, ३८८.६ । खुरुहुरी : क्षुद्र फली २७.६ । खूट—टुकड़ा १४२.५ । खूना : क्षुण्ण—मर्दित-चूर्णित [शरीर वाले साधु] २०.२ । खेम—कुसर : क्षेम-कुशल ३३५.१ । खेर । खेरा : खेडय : खेटक—जन-समूह, गांव १३०.४, २५२.६ । खेरी : खेटिका—फलक, ढाल ११०.४ । खेल्—क्रीड़ा करना २७८.१ । खेवट : कैवर्त्त—केवट २८७.२ । खेह—धूल ३१४.३ । खोंपा—सिर के बालों का जूड़ा १९५.४ । खोर् : खोड् [दे०]—अग—मार्जन करना २१.५ । खोरि—त्रुटि, दोष ३१४.७ । खोरी—गली २५.६ । खौंद : खाविन्द [फ़ा०]—स्वामी, पति १०.७, ११.१ ।

गंडुवा : कन्दुक—तकिया १९६.१ । गर—गरगच (?), वह टीला जो किसी गढ़ के बाहर उसके भीतर लक्ष्य-वेध करने के लिए बनाया जाता है ९२.१ । गरुव : गुरु+क—भारी २३३.१ । गह : ग्रह—ग्रहणीय [पेय] ७५.२ । गहबर—भाव-पूरित १.७ । गांग : गंगा २२७.७ । गाज् : गज् गर्ज्—गर्जन करना ८७.१ । गाढ : गड्ढ : गर्त्त—गड्ढा ९२.१ । गारि

गल्ल—बात १२०.४। गारुरि : गारुड—सर्प के विष को मंत्रादि के द्वारा उतारने वाला ६५.४। गास : ग्रास—कवर १४९.४। गियं : ग्रीवा ५०.३। गुन् : गुणय्—विचार करना २३६.१। गुन : गुण—रस्सी, डोरी ६७.१। गुनियारी—गुणनीय वार्त्ता (?) ३२९.५। गुहार—पुकार १०५.५, २९२.१। गुवा। गूवा : गुवाक—एक जाति की सुपारी १८.३, ९२.५, ३४१.१। गूद . ग्रथ्—गूथना २७.५। गोइंद : गोपेन्द्र—गोविन्द ८२.६। गोव् : गोपय्—छिपाना २३०.३, ३५८.३। गोवर : गोपुर। गोकुल—नगर-विशेष १८.२ [तथा पुन अनेक बार], गोवार : गोपाल—ग्वाला २५.१। गोहन [अवधी]—साथ १६५.४, ३१८.४।

घाउ : घात : घाव ५८.२, ३२४.३। घात—घाव ११०.४। घाम घम्म : घर्म—धूप ५२.१। घाल् : घल्ल् [दे०]—डालना ५९.४, ३२५.५। घोर : घोटक—घोड़ा ९४.५।

चउतरा : चत्वरक—चबूतरा ३३२.३। चंदरावलि : चन्द्रावली—जिसकी कहानी कुतुबन ने 'मृगावती' नाम से लिखी है ६०.७, ६१.५। चख : चक्खु चक्षुप्—आंख ३४३.३। चरुवा : चरु+क—थाली, पात्र-विशेष ३४५.३। चलन : चरण ८०.१, ८५.१। चांद चीर—एक प्रकार का महीन श्वेत वस्त्र ७३.३। चाक : चक्क : चक्र ७५.१। चाचरि : चर्च्चरी—फाग, फाग की धूम १२९.५। चिल्हवांसु—चीलहों को फसाने का कठिन फंदा ३५७.२। चीय : चीअ—चिला ३२५.३। चीस्—चीत्कार करना १९७.४। चेना—चीनी कर्पूर ३४१.४। चेर : चेड : चेट—सेवक ४२.३, पुत्र १२२.७, १२३.४, १२३.५, १२४.४, १२५.२, १२५.३, १२५.५ ['कुंवरू के चेर' को १२५.६ मे 'कुवरू क पूत' कहा गया है]।* चोख : चोक्ख [दे०]—शुद्ध, पवित्र २१२।

छइल : छइल्ल—छैला १६७.५। छंद : छद्म ११३.६, २१४.३। छठि : षष्ठी १८८.१। छपय : छप्पय : पट्पद—भ्रमर १३७.४। छग्हंटा छल-कृत्य (?) २८.१। छाज् : छज्ज् [दे०]—शोभा देना ६६.१। छात छत्र ८.१। छार : क्षार—राख ३५०.७। छाला : खल्ल [दे०]—खाल, चर्म १६४.३। छिनारि : छिण्णा+डी [दे०]—असती, कुलटा स्त्री २५१.५, २५०.४। छेक् [अवधी]—अवरोध करना ९१.७।

ज : जइ : यदा—जब १४०.६, १७१.७, २४८.४। जइ। जउ : यदि

---

* 'चेर' का यह अर्थ पुरानी पंजाबी में भी मिलता है, यथा : एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु। (जपुजी पौड़ी ३०)

३७.४, १९८.७, २५६.५। जउ : यदा—जब ४६.७, १९८.३। जजमान यजमान—यज्ञ कराने वाला, पुण्यात्मा २५.२। जमधर : यमदंष्ट्रा—शस्त्र-विशेष १२३.५। जरम : जन्म—जीवन ४३.५, ९५.४। जलकुक्कुरी—जल कुक्कुटी—मुर्ग़ाबी २२.३। जलहर : जल-स्थल—जलाशय ५१.५। जाई जाया २८४.३। जांवत : यावत्—जितना १४३.७। जाजर : जज्जर . जर्जर—कुरकुरा, ख़स्ता ४०.१, १४६.१। जाड : जाड्य—शीतजनित जड़ता ५.१४, ५६.३। जार् : ज्वालय्—जलाना ९६.६। जिन्—जीतना १३५.१। जूत : जुत्त : युक्त—जोड़, जोड़ी का १२५.७। जूरा : जूट : जूड़ा, केश-कलाप ६५.५। जे : पादपूर्ति में प्रयुक्त किया जाता अव्यय, अवधारण सूचक अव्यय १९७.६। जेत : यावत्—जितना १५२.५ ३८७.३। जेंव्—जीमना ३१३.३। जेवनार। जेवनारि : जीवन-वारि—रसोई ३९.२, २०६.१। जोई : योगिता—स्त्री २८.१, ३७.४, २९७.३। जोग : योग—संयोग, मिलन ३०८.२। जोगित। जोगिति : योग्यता—सामर्थ्य ३४.६, ५७.३, ९७.४। जोन्ह् : ज्योत्स्ना ३१३.४। जोर : योग्य—जोड़, समकक्ष २५६.३।

झर : क्षर्—गिरना, टपकना ३४९.२। झर। झल : ज्वाला १८०.६, २४९.३। झरना : क्षरण २१.१। झरोखा : जालाक्ष ५४.३। झांख्—झांकना २३.४। झार : ज्वाला ५६.४, १३९.३। झारि [अवधी]—संपूर्ण रूप से ९३.२, १४२.३, १९३.१। झीन : क्षीण १३७.३। झुरव् : ज्वालय्—जलाना ४३.६। झूझ् : युध्—युद्ध करना ११२.१ झूझ : जुज्झ : युद्ध २६.४। झूर् ज्वल्—संतप्त होना १६४.४।

टकोर—जिह्वा को चटखाकर निकाली जाने वाली ध्वनि-विशेष ११५.२। टका—एक पुराना सिक्का ३०७.३। टांक : टंक—एक पुरानी तौल जिसके छ गुणित का छटांक होता था २८१.४। टांक—टंका, एक पुराना सिक्का ३३८.१ (दे० 'टंका')। टांकिनि : टक्किनी—टक्क (पंजाब) देश की स्त्री, जाति-विशेष की स्त्री २४५.१। टांड : टंड [दे०]—व्यापारी-दल, सार्थ ३४०.१। टिकाइत : तिलक+आयत्त—जिसे तिलक लगता हो, सामंत ३४.७। टेसू : किंशुक १२९.४।

ठाढ : ठड्ढः स्तब्ध—खड़ा [अवधी] ८२.३, २११.३।

डंड : दण्ड—मार्ग १४०.५। डंडाहर : दण्ड+भर—भारी डंडा १२९.३। डफार—धाड़ २३५.७। डांड : दण्ड—कर २६.७। डांग : डगा [दे०]—लाठी, यष्टि १०६.१, २९८.१। डांगवइ : डंगवइ : द्रंगपति : एक सामान्य शासक जिसकी एक घोड़ी के लिए, जो दिन में घोड़ी रहती और

रात में अप्सरा हो जाती थी, कृष्ण ने उस पर आक्रमण किया था, जिससे उसकी रक्षा भीम ने की थी (दे० डंगवै पर्व—संपा० डा० शिवगोपाल मिश्र, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) १६८.२। डाक : डक्क [दे०]—वाद्य-विशेष २०.४। डाभ : दर्भ ३२६.६।

ढाठी—मुंह का बंधन ८८.५। ढुक्—पहुंचना ११६.२।

त। तइ : तदा—तब १२०.६, १३२.५। तउ : तदा—तब ६७.५। तंव् : तम्—तप्त होना ११६.६। तंबोर। तंबोल : ताम्बूल—[।] सज्जिन : पान २२०.५, २४५.६। तबल [फ़ा०]—बड़ा ढोल ८७.१। तरई : तारिका ३०.५। तरस् : तृष्—प्यासा होना २६२.४। तराई : तारिका २४७.४। तरास : त्रास—डर ११६.६। तरास : त्रास—चाबुक ११८.६। तरासा : त्रासिन्—त्रास देने वाला ७०.१, ७०.५। तवारा : ताप ५४.४। तायन : तर्जन—चाबुक ११४.३। तारा : तडाग—तालाब २०.१। तारि : तीक्ष्ण १३२.२, १३३.६। तारी : तालिका—सूची ६.६; तारी : ताल+इका—ताली, हथोड़ी १०४.१। तिअ : तिग्ग : तिग्म—तीक्ष्ण ७३.२। तिर् : तृ—तैरना ११६.४। तिरिच्छ : तिर्यक्—तिर्छा १३०.७। तिरीअ : तीक्ष्ण १३.३। तुंग : उत्तुंग—अत्यधिक ऊंचा ८८.५। तुचा : त्वचा २६६.१। तुराई। तुराई : त्वरा—वेग, शीघ्रता ६०.४, ३८०.१। तुल्—तुल जाना, पहुंच जाना १८१.१। तूर : तूर्य—तुरही (वाद्य-विशेष) ८७.५, १२६.५। तौर्—तौलना ३२६.७।

थनहर। थनहार : स्तन+भर—भारी स्तन ७७.२, १०७.३। थाक : थक्किअ—श्रान्त २६१.१। थाक् : थक्क्—श्रान्त होना २१६.७। थाल : स्थाल ७७.१। थाह : स्थाघ ६८.३, ३७४.३, ३८६.२। थोर : स्तोक—थोड़ा १६४.२।

दइजा : दायाद ४२.१। दखिना : दक्षिणा ३५५.३। दर : दल ६०.५। दर-मर्—दलित-मृदित होना २५.६। दह : ह्रद—कुंड, जलाशय ५१.६। दहा : दद्ध : दग्ध—जला हुआ ३३०.१। दारिउ। दार्यौ : दाडिम—अनार का दाना १८.४। दारी : दारिआ [दे०]—वेश्या, वारांगना २५२.५। दिब : दिब्ब : दिव्य—तप्त लौहादि, जिनका स्पर्श मध्य युग में अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए करना पड़ता था ६६.४। दिया : दीअअ—दीपक ४१.३, १५६.२। दियार [अर०]—प्रदेश १.१। दुअरिया : दौवारिक—द्वार-रक्षक १५६.६। दुमना : दुर्मनस्—दुःखित या खिन्न मन वाला २५५.४. ३०५.७। दुलारू : दुर्ललित—प्यार से बिगाड़ा हुआ-

अत्यधिक प्रिय ४६.३ । दुहेल : दुःखित ४४.२, २३२.६ । देर—धारी ३०.४ । देवर : देउल : देव-कुल—देवस्थान २०.१ । देवउठान : देवोत्थान ३४६.७ । द्योस : दिवस १८.७ ।

धना : धन्या—स्त्री ७६.४ । धनि : धन्या—स्त्री ८० । धर : धरा १०३.२ । धाइ : धात्री—धाय, उपमाता १५७.६ । धानुक : धाणुक्क धानुष्क—धनुर्धर ४६.५, ६७.६ । धाह—धाड़ ३१०.१ । धिय : दुहितृ—कन्या ६६.२, १७५.१ । धौराहर : धवलगृह—प्रासाद ३०.१, १५३.२ ।

नइ । नई : नदी १५.३, ८६.१, २०६.५, ३७६.१ । नख् : नघ्—लांघना २८६.५ । नखत : नक्षत्र ६६.३ । नगर खंड—नगर की शक्कर, सफेद शक्कर, चीनी २७.४ । ननद : ननादृ—पति की बहिन ४४.६ । नयर : नगर २५६.४ । नरवइ : नरपति—राजा २५६.६ । नाऊ : नापित—नाई ३३१४ । नाख् । नाख् : नाशय्—फेंकना १०५.६ । नांग : णग्ग : नग्न १५० ३, २६२.५ । नांह : नाथ—स्वामी, पति ३४४.२ । नावित : ज्ञापित—दरसनिया, वह व्यक्ति जो किसी देवी-देवता की उपासना करता और उससे आदेश प्राप्त करता [हुआ विज्ञप्त करता] है १७६.६, २६१.४ । नास् नश्—भागना ११७.१ । निखात : निक्षत—निहत, मारा हुआ १५०.१ । निरांतर : निरन्तर ७५.२ । निचल : निश्चल २५५.३ । निमानी निर्मानित—तिरस्कृत २१२.५ । नियर : निकट ३२५.३ । निरंजन निरञ्जन—निर्लिप्त ब्रह्म ३१२.५ । निरु—निश्चित रूप से २२१५ । निसर् : णिस्सर् . निर्+सृ—बाहर निकलना ३१६.१ । निसु [अवधी]—ठेठ, बिल्कुल १५६.६ । निहार् : णिभाल् : निभालय्—देखना ६८.५ । नेत . नेत्र—एक प्रकार का रेशमी वस्त्र ४१.२, १५१.१ । नैनूं : नवनीत—मक्खन १४६.३ । नौता : निमंत्रण १४२.४ । नौहार—प्राण लेने वाला, वधिक ५४.५ ।

पइ : परम्—हो न हो २५८.१, ३१३.७, ३७३.५ । पइठ् : प्रविश्—प्रविष्ट होना १८४.१ । पइस् : प्रविश्—प्रविष्ट होना २११.१ । पइसार प्रवेश+का—प्रवेश ३१६.१, २६२.७ । पउ : पद—पैर ८१.२, ३२२ ३ । पउदर् पद—दलित करना ११७.७ । पउनारी : पद्म-नाल+इका ७६ २ । पगति : पंक्ति ८१.२ । पवरी : प्रतोली—मुख्य द्वार २४.६, २६.५, ६२ १ । पवार । पंवारी (दे० 'पवार') । पंवारा : पवाद : प्रवाद—लंबी गाथा २८ ५ । पखर्—अश्व-हस्ती आदि को पाखर से सज्जित करना ८६.१ । पखार् प्रक्षाल्—धोना ६८.४, ३७६.५ । पखिना : प्रक्षीण—अत्यधिक दुर्बल ३५६ ४

पजर् : प्रज्वल्—जलना ३७४.७। पटतार्—पड़ताल या जांच करना १०६ १। पटसारी : पट+शालिका—शामियानी ४१.१। पटुवा : पट्टवाप—बुनकर १३१.३। पटोर : पट्ट-कूल—रेशमी वस्त्र ३१.७, ४०.३। पडिवाह : प्रतिवाह—आक्रमणों को रोकने वाला, शत्रु को पीछे धकेलने वाला ८.२, ८.६। पतांगी पत्तगी : पत्रांङ्गिका २६१.२। पतिय् : प्रति+इ—प्रतीति करना ५८ ५, २६५.६। पतियार : प्रत्यय+डा—विश्वास ३२६.५। पनच : प्रत्यञ्चा ६७.१। पनवार। पनवारि : पर्णमाला—पत्तल १४२.६। पनवारी : पर्ण+वाटिका ६२.२। पबार् : पवाड् : प्र+पातय्—गिराना, फेंकना ८६ ५, २६०.३। पयान : प्रयाण ६०.१। पर् : पार् : पारय्—सकना २६८.४। परतर : प्रान्तर ३६५.५। परख् [अवधी]—प्रतीक्षा करना ११४ १। परचुर : प्रचुर १२३.५। परजर् : प्रज्वल्—जलना १०३.१। परजार् प्रज्वालय्—जलाना, १२०.१। परबार् : प्रपातय्—गिराना, फेंकना १५६ ३। परसन : प्रसन्न १७६.७। पराकिरिति : प्राकृति—आकृति, रूप ६३.७। पराय् : परा+अय्—पलायित होना, भागना २६.२। परि—प्रकार से, भांति से १५८.७, १५६.३, १७१.३, २२३.५, ३४२.७। परि : परम्—हो न हो ३३६.४। परिछाहीं : प्रतिच्छाया १६२ १। परिछेव : परि+छिद्—काटना, काटकर अलग करना २१५.३, २७७.३। परिमल—एक प्रकार का सुगंधित लेप २७.२। पलान् : पर्याणय्—पर्याण (ज़ीन आदि) से सज्जित करना ४०.५, ८७.६। पलुह्। पल्हुव् : प्ररुह—अंकुरित होना, हरा-भरा होना २१३.२, ३२४.५। पवनि—पाने वाली जातियां, जो विवाहादि के अवसरों पर नेग-चार (पुरस्कार) आदि पाती हैं २४५.५। पवान प्रमाण—तक ८२.२। पवार : प्रवाल—मूंगा २७.७, ३४१.४। पसार् प्रसारय्—फैलाना ३७१.३। पसार : प्रसार ४१६.५। पसाव : प्रसाद—कृपा १२०.२, ३०७.१। पसेज : प्रस्वेद—पसीना ६६.३। पहिय : पथिक ३३६.२। पाई : पादत्री—जूती, चप्पल ८५.१। पाइंत (दे० पायंत)। पा पाअ : पाद—पैर ८१.५, १८२.५ पांडे . पंडिअ : पण्डित ३६.२। पाट पट्ट—फलक, सिंहासन ८.१। पाट—पटका, कमरबंद ११४.२। पाउ . पाअ : पाद—चरण ३५.१। पाऊ : पाउअ [दे०]—वस्त्र १२३.२। पाख पक्ख : पक्ष २८४.२। पाखर : पक्खर [दे०]—सन्नाह, सन्नाह-सज्जित सैनिक १३३.३। पाज : पज्जा : पर्याय—अधिकार-विशेष ३६८.२। पाट। पाटा पट्ट—फलक, पीढ़ा, सिंहासन १५१.५। पाट—पटसन, रेशम १८७.१। पाटन : पत्तन महानगर ३६० २ ५। पाथर : पत्थर : प्रस्तर ६२ ४।

पाधर : पद्धर—रण में अप्रवृत्त सैनिक या भृत्य १०४.२। पान : पण्ण : पर्ण—पत्ता २२.४, ८३.४;—सज्जित तांबूल २६.३। पापधि : पापर्द्धिक—वधिक, बहेलिया २२३.५, २५४.७। पापरधि : (दे० पापधि)। पायंत . पादत्र (?)—प्रस्थान का प्रतीक २७७.७, ३१६.१। पायक : पदातिक—पैदल सैनिक या सिपाही ४६.५, ८६.३, १०४.२। पार् : पाड् : पातय्—गिराना २३६.५। पार् : पारय्—सकना १२१.५, २८१.७, ३२६.३। पारधि : पारधी : पापर्द्धिक—वधिक, बहेलिया ६७.२, १४२.६, १४३.१। पालक। पालिक : पर्यंक—पलंग १९५.१, ३८९.७। पावरी : पादत्री १६४.२। पावस : प्रावृट्—वर्षा २७५.२।पास : पार्श्व १७७.७। पिछउरी पश्च+पटी—पीठ पर डाला जाने वाला वस्त्र-विशेष, चांदनी १३५.४। पियासा : पियासत्—प्यासा ३२८.२। पियर : पीत+डा—पीला २२६ ३, ३६१.३। पिरथमी : पृथ्वी १.६। पिरम : प्रेम ७२.१, २८९.१, ३२३.१, ३२४.१-७। पीहर : पितृगृह—मायका २९५.७। पुख—बाण का अग्र भाग १८५.५ (दे० फुंक)। पुरग : पुडग : पुटक—आच्छादन ३३.६। पुरइनि पुटकिनी—कमलिनी २२.४, ३४०.४। पुरुस : पुरुष—पुरुप की लंबाई (जो ३½ हाथों की मानी जाती है) २३.१। पुनिउं : पूर्णिमा २६६.३, ३५५.२। पूर् : पूरय्—पूर्ति करना, भरना ८४.४। पेखन : प्रेक्षणक—तमाशा २८.१। पेटार : पेटक+डा ३३८.३। पेल् : प्रेरय्—ठेलना, ढकेलना ३५८.२। पैन—जुए का दाव २१४.२। पोइनि : पद्मिनी ७७.४। पोखर : पुष्कर—तड़ाग २०.१। पोर : पर्वन—गांठ ८२.३। पोह—गोबर की छोत, बैल की बिष्ठा २३१.१। पौनि (दे० पवनि) २५.५।

फटिक : स्फटिक—बिल्लौर १६४.१। फतिगा : फडिंगा—पतिगा ३३.७। फर : फड्ड : स्पर्धक (?)—फड़, जुए की बिछी हुई बाज़ी १०५ २। फरहरा [अवधी]—पताका १२३.१। फांद : फंद : स्पन्द—फाग १९० ७। फास : पाश—फांसी का फंदा १८५.६। फिट्—नष्ट होना ३१८.२। फूल फुल्ल—खिला हुआ पुष्प २७.१, ३८५.३। फुंक : पुंख—बाण का अग्रभाग ११५.५, २९३.७ (दे० पुंख)।

बइस् : उपविश्—बैठना ६३.२, ३४२.२। बइसाखी—वह लकड़ी जिसे टेक देकर कमजोर पैरों वाले चलते हैं ३६६.३। बउसाउ : व्यवसाय—पुरुषार्थ ७६.५, १८३.३। बंदन—तिलक, रोली २५०.२। बकति : वक्ति—वाक्य, कथन ७.२, १६९.३, १९६.६। बखान् : बक्खाण् [दे०]—वर्णन

बिट+डा—चरित्रहीन व्यक्ति २५२.६ । बिड : विट—चरित्रहीन व्यक्ति, धूर्त २२६.७ । बिथर् : वित्थर् : वि+स्तृ—फैल जाना २६० ६ बिधांस् : विध्वस्—विध्वस्त करना ७५.७, २५६.१ । बिनती । बिनाती विज्ञप्ति—कथन, निवेदन १४०.७, ३२६.६ । बिनान : विज्ञान १०.३, २५.४, २६.१, ३०.३, ५६.२ । बिपाउ—पाद-हीन, पंगु, निश्चेष्ट ६४.७ । बिरवा : विटप २१०.६ । बिरार : बिडाल १५४.६, २२१.२ । बिरिछ : वृक्ष २३८.२ । बिरी : वीटिका—[पान का] छोटा बीड़ा (दे० 'बीरी') । बिरुद्धा . विलुब्ध ५३.६, ५३.७, ३४०.७ । बिला : वि+ली—विलीन होना । १७१.३ । बिलोअ : वि+लोड्य—मंथन करना २५२.७ । बिसर् : वि+स्मृ—भूलना ७२.२ । बिसव् : विश्रम्—विश्राम करना १८६.७, १६२.५, २७८.२, ३६०.७। बिसहर : विषधर—सर्प ६५ १, २५३.५, ३१४.५ । बिसाउ : विस्वाद २३६.६ । बिसार : विशाल ३५ २, ८७ ५ । बिसार . विषाक्त ५८.१ । बिहफइ : बिहप्फइ : बृहस्पति—एक स्त्री-पात्र [जो कथा में अनेक बार आया है] । बिहर् : बिहड् । विघट्—टूटना २२१.५ । बिहाऊ । विधावित—उल्लसित, प्रस्फुरित ५४.१ । बिहाव् : वि+हा—परित्याग करना, व्यतीत करना ३६.५ । बिहेर् : बिहेड् ' वि+हेटय्—पीड़ा पहुँचाना, मारना २५४.७ । बीजु।बीजुरी : विज्जु : विद्युत १५८.७ । बीरा : बीलय—ताटंक ८४.१ । बीरा : वीटक—[पान का] बीड़ा २६ ५, ४६.२, १११२.६, ३०८.३ । बीरी : वीटिका—[पान की] बीड़ी २४०.२ (दे० बिरी) । बुकाव् [अवधी]—चावना, फांकना ६०.३ । बुझ् : विधम्—[अग्नि का] शांत होना २०१.१ । बुझाव् : विध्मापय् [अग्नि को] शात करना २३६.७ । बुडकाव् : ब्रोडय्—डुबाना १३.२ । बूड् : ब्रुड्—डूबना ७८.७, २८८.७ । बेकरार : बेक़रार [फा०]—बेचैन १३८.१, १६५ ४, ३४७.४ । बेगर—अलग ३१.२ । बेडिनि : विटा—नटिनी, अवधी-क्षेत्र मे अब भी बेडियां-बेड़िनो की एक जाति है, किन्तु वह प्रायः नाचने-गाने का व्यवसाय करती हैं, नटों-नटनियों की जाति अलग है १६१.४ । बेना : वीरण—उशीर, खस २७.३, ३४१.२ । बेलक—एक विशिष्ट प्रकार का बाण ११६ २ । बेसव् : विसाध् (?)—क्रय करना ५८.४ । बेसवार : वेसवार—धनिया आदि मसाला ४२.६, १४५.६ । बेसहनि : विसाधनीय—क्रय की जाने वाली वस्तु १५६.१ । बेसा : वेश्या २५२.५ । बेसाह् : विसाध्—क्रय करना १८७ १ ३६०.७ । बैन : वयन : वचन ३६०.१ । बैना : विवाहादि के अवसरो पर संबंधियों आदि को दी जाने वाली मिठाइयां २६८.१ । बैसंदर : वैश्वानर—

मेल् [दे०]—छोड़ना, डालना १९०.५, २६०.७, २७२.१। मल्हान—झूमकर चलने की गति ८१.३। मेहरी : महिलिका—स्त्री २९७.५, ३१८.२। मैगर : मदगलित—मदमत्त ८९.६। मैंनां मांजरि : मदन-मञ्जरी : कथा की पात्र-विशेष, लोरिक की विवाहिता स्त्री २८२.६, ३५७.७। मैमंत : मदमत्त ११३.१। मोअ् : मोच्य—मुक्त करना, बिताना ५१.२। मोंख : मोक्ष ९७.५, मोती : मौक्तिक १६६.१ मोकर् : मुच्—मुक्त होना २६२.४। मोकराव् मोचय्—मुक्त करना ४२.७। मोर् : मोड् : मोटय्—मोड़ना ७९.२।

रइनि : रयणी : रजनी २२.७, १५५.१, ३४६.१। रई : रइअ : रचित—रंजित (?) २२०४। रजाएसु : राजादेश ६१.२, ६३.७। रयन : रत्न १४४.३। रर् : रड् : रट्—चिल्लाना १५४.७, २८२.७। रवं : रम्—रमण करना २३०.५। रवनि : रमणी १९५.४। रसोइ : रसवती—रसोई १४५.१। रहरा : रभस्+डा—हर्ष, सुख ५०.६, ६१.५। रहंस : रभस्—हर्ष, सुख ८५.७, १८६.३, २५५.७, ३९३.७। राउत : राअउत : राजपुत्र ८७.१। राउर। राउल : राजकुल—राजभवन ३३२.१, ३६५.५। रांक : रक—दरिद्र ३४६.५। रांध : राद्ध : रद्ध—पक्व, पकाया हुआ ९३.३। रांध : रद्धि [दे०]—महान्, श्रेष्ठ ४४.५। राध : राध : राद्ध—पास में आगत ८३.१, २४८.६। राग—टांगों का कवच ११९.५। राज्—शोभित होना १५६.१। राव् : रांव् : रम् २४९.६, २५३.४, २८४.४, ३४९.६। राजनेत : राजनेत्र—एक जाति का चावल १४८.३। राट : राट्ठ : राष्ट्र—राज्य १२.५ ३४०.४। राढ : रड्ड [दे०]—सिसक कर गिरा हुआ, शोकादि के कारण क्षीण हुआ ३९६.७। रात : रत्त : रक्त—लाल, सुंदर ४४.३। रात : रत्त रक्त—अनुरक्त ५६.५, २०८.७। राय : रात : रक्त—अनुरक्त ३५२.७। रावत : राजपुत्र—सामंत २५.४। रावट—एक प्रकार का काला और चिकना पत्थर २१.७। राही : राहिय : राधित—अभीप्सित ६५.७। रिहारी : रेखा (?)—कार्य-शैली (?) ४५.२। रूअ : रूप १८५.७। रूंख : वृक्ष २०१.७। रूप : रौप्य—चांदी ४६.३, ३४१.४। रेस [दे०]—वास्ते, लिए २६२.४। रेह् : लिख्—[चित्र में] लिखना, अंकित करना १९३.२। रोझ : ऋष्य—नील गाय १४३.२। रोमथ् : रोमंथय्=जुगाली करना। चाबे हुए को चाबना ३६८.६। रोहितास : रोहिताश्व—अग्नि, जिसके वाहन लाल घोडे माने गए हैं १०३.१।

लग—काया, शरीर ८२.१। लखन : लक्षण ६३.५। लहन—प्राप्य,

प्रारब्ध ३१४.७। लांछन : लाञ्छन—कलंक २६६.१। लाघ् : लभ् (?) प्राप्त करना ३४०.४। लिलार : ललाट १२.२। लिह् : लिख्—लिखना १६३.५। लुक् : लुक्क् [अवधी]—छिपना ६०.७। लुर् : लुण्ठ्—लोटना ६५.१। लेजु : रज्जु—रस्सी २३४.३। लोट् : लुण्ठ्—लोटना ३८८.७। लोयन : लोचन १८१.५, २२०.५।

वानी : पानीय २१३.२।

सइं : स्वयं १३०.२ १४०.६, ३३६.७। सउं : समम्—साथ ४८.५, ११२.७, १२३.७, १६३.४ (दे० सेउं)। सउतुक : सप्रत्यक्ष (?) १७१.१। सउर : सउड [दे०]—पलंग का गद्दा ४२.५। संकर : संकट १०४.५। सकिरित : संस्कृत १२.४। सकरी : शृङ्खला ८४.०। सकार् : सक्कार—सत्कार करना, सम्मान करना ३५.४। सच् : स+चि—उपचय करना १६३.२। संजोइ : संयोग—सज्जा, रण-सज्जा और उसके उपकरण १०२.७। सजोग (यथा 'संजोइ') ३०१.२। संझा : सं+ध्या—मिलना ३८६.१, ३८८.२ ३८६.५, २६१.६। संतावा : सताविअ : सतापित—संतप्त किया हुआ २४६.४। संतार : संतरण ३६३.३। संदूर : शार्दूल—शरभ १८१.२। संनेह : सनेह : सन्देह ७४.५। संपर्—स्नान करना ३७५.५। संभार्—संभालना, स्मरण करना १३६.१। सपूरन : सम्पूर्ण ३०८.६। संवन। सवन : श्रवण—कान ६२.१, १८०.७, ३४०.१। संवर् : स्मृ—स्मरण करना १८६.२। संवार् : सभार्य—मसाला आदि से संस्कृत करना, निर्माण करना १८३.५। सगर सकल २३.५, १४६.५ : सगाई : स्वकत्व—सगपना, संबंध ३५.३। सजन स्वजन १८६.५। सती—सत्यनिष्ट २०५.१। सतुर : सत्वर—त्वरा के साथ ३१८.४। सद् : शब्द २०१.३। सनीछर : शनैश्चर ३२.५। सपूरन : सम्पूर्ण ३०८.६। समंद् : समद् : सम्+आदा—भेंट करना, विदा करना १६०.३, ३३८.३। सयंसार : संसार १४.५, १४.६, ३२.२। सर : शर—चिता १०१.७। सर् : सृ—जाना १०४.३। सरइ : शराव—सकोरा ४३.५। सरंगा—एक प्रकार की नाव २८७.२। सरग : स्वर्ग—आकाश ८४.२ : सरभरि—सादृश्य २४२.२। सरागति : शराक़त [अर०]—जमात ४१.७। सराप : शाप ३१६.३। सलोनी—भुजाओं का आभरण-विशेष २६०.३। ससिहर : शशधर—चन्द्रमा ६६.५। सह—समस्त २६४.२, २६७.३, ३५१.२। सहदेउ : सहदेव—प्रसिद्ध पांडव विद्वान् २५७.२। सहदेसी : सदेशीय (?)—एक ही देश का निवासी ३७०.५ सहरी शफर+इका—छोटी मछली ५१.६ (दे० सिहरी) सहार सहकार की एक विशिष्ट जाति ३५६.३ सहार्

सभालना २६२.६ । सही : सखिन्—सखी १६६.१ । सांझि : सन्धि=शान्ति ३८२.६, ३८३.५ । सांठि : संठिइ : संस्थिति—पूंजी ३२६.२ । सांध् : सं+धा जोड़ना, लगाना, ३२३.१ । सांभर : सांभल : शम्बल—मार्ग के लिए ली गई भोजनादि सामग्री ८६.६, २०५.६ । सांसउ : संशय ११७.१, २६३.१ । सातु सक्तु—सत्तू ४५.३ । साथ : सत्थ : सार्थ—समूह, प्राणि-समूह ३६२.४ । साथरी : स्रस्तरी—चटाई २५७.४ । साथी : सार्थिक—सार्थ का व्यक्ति ३२२.१ । साध : सद्धा : श्रद्धा—आकाङ्क्षा ४४.४, १३६.७, २११.५ । सान शाण—शान का पत्थर ६७.२ । सायर : सागर ३१६.४, ३४४.२ । सार्य—सभाल करना, संवारना ७६.४ । सारि : शालि—चावल १४८.१ । सारी सारिका—मैना १६.२ । सारी : साडिआ : शाटिका—साड़ी १३६.२ । साल् शल्यय्—शल्य के समान पीड़ा पहुँचाना ५८.२ । साहन : साधन—सैनिक बल २३७, ३०२.३ । साहनी : साधनिक—सेनापति ८६.३ । सियर : सीय+डा शीत ४६.४ । सियार : शृगाल—स्यार १५४.६ । सिरज् : सृज्—सृष्टि करना १ १-५, २.१-६, ३.१-६, ४.१-६, ५.१-६ । सिरवाहि : शिरो व्याधि ५६.३ । सिराय्—पूरा पड़ना, सार्थक होना ४५.७, २१८.७ । सिराव् शीतलय्—शीतल करना २११.५ । सिलउटी : शिला+पट्टिका—सिल ७६.३ । सिहरी : शफरिका—मछली २२.२ (दे० सिहरी) । सीउ : सीअ शीन ५१.२ । सींग । सींगा : शृंग—सींग के आकार का वाद्य-विशेष ८७ ५, १२६.५ । सींगी : शृंग—सींग का बना हुआ वाद्य-विशेष २०.५ । सीप सुत्ति : शुक्ति—सीपी ४८.४ । सींह : सीह : सिंह २६.१, ३६.१ । सुखासन—एक प्रकार की पालकी या पालकी-गाड़ी (तुल० 'रामचरित मानस' २.१८६) ८८.७, २४६.६, ३०७.२ । सुगाय् : शुकाय्—शुक की भांति संदेह या अविश्वास करना २५०.६ । सुद्धि : शुद्धि—समाचार ३८६.४ । सुभर—भली भांति, भरा हुआ, भरपूर २१.१ । सूक : सुक्क : शुष्क ६१.१ । सूग : शूक—करुणा ३५५.६, ३५७.१ । सूत : सुत्त : सुप्त—सोया हुआ १६५.४ । सूध शुद्ध—शांत २६५.७ । सून—प्रसून, पुष्प २७.१, १६५.६ । सूवा—शुक १६.२ । सेउं : समम्—साथ २४६.१ (दे० सउं) । सेंधउरा: सिन्दूर पूर—सिन्दूर का पात्र ७७.२, २४७.१, ३८८.१ । सेवाइ : सेवार : सिवा [फ़ा०]—अतिरिक्त, अधिक १७.६, ६२.५ । सोनी : सौवर्णिक—कलशों-दीवालो आदि पर सोने का पानी ढालने वाला २५.४ । शोर : शोर [फ़ा०] ३०६ ६ । सोवन : सोवण्ण : सौवर्ण—स्वर्ण-निर्मित १३७.१, २४८.२ । सोहाग सौभाग्य ६४ १ ७४ २ ।

हकार् : आकार्य—पुकारना १०४.७। हंकार : हक्कार : आकार—पुकार ८६ ३। हटतार : हट्ट+ताल—हाटों में ताला लगाने की स्थिति ९२.१। हर : गृह—घर ३५४.७ (दे० पद्मावत ३७८.९)। हग्गि : हडि—[काष्ठ की] वेड़ी ७४.३। हरुव : हलुक : लघु+क—हल्का २३३.२। हांडी : भाण्ड+इका—पात्र-विशेष १५२.६। हास : हंस १४६.१। हार्—थकना २७६.४। हिर्—हिलना १९६.४, ३३६.४। हिरि : ह्री—लज्जित होना ११८.७। हिरगाना—हिलग करना, पास लाना २४२.४। हिलोर : हिल्लोल—बड़ी लहर २४५.२। हींड्—चलना-फिरना २५.६। हुल्हस् : उल्लस् उल्लसित होना १.७। हेठ : हेट्ठ : अघस् (?)—नीचे का भाग २१२.७।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१८	१८×२०=३६०	१८×४=७२
१०	१०	जान	षान
१५	१६	वाणी	वर्णिका (वर्ण)
१६	१६	(अंबराऊं)	अबराउ (अंबराऊं)
२८	१८,१६	सात, सातो	साठ, साठो
४२	२८	श्रेस्ठतर	श्रेष्ठतर
४३	११	'वह'	'दह्व'
४६	२८	कह	कइ
४७	२६	देखुन	देखन
५०	११-१२	व्रजाशनि	वज्र-अशनि
५८	२७	जब चला	जब दिल चला
७१	३०	के	क
७३	१३	मेहरहे	मोहरए
८१	१७	भी	और
६३	८	मांगौ(ग)हु 'सो'	'मांगौ(ग)हु' सो
१०३	१	ओर	लोर
११५	१	बाद में	पहले
१२२	२४	(पुत्र)	(पुत्र) का
१२६	१२	बिजली	बिचली
१३०	३०	पार	पाखर
१३८	१	नियन्त्रण	निमंत्रण
१५२	१८	डकारा	डफारा
१५२	२६	वे	ब
१६३	३०	ऐसी	ऐसे
१६४	७	भेंमरु	भेंभरु
१६६	५	भैंमर	भेंमर
१७१	२८	देई	दई
१७६	२०	है । तुम्हें	तुम्हें
१६२	६	वई	दई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९६	२६	धहि	धनि
१९७	३०	छटि	छूटि
१९८	२०	[स्वामि-द्रोह]	[स्वामि-द्रोह में]
२०२	५-६	रंग···तू [अपने]	तू अपने रंग···
२०६	१७	'सेज (?)'	'सेज रबंहु रै (?)'
२०७	२६	उरौहु	उतरौहु
२०८	२५	उठा	उटा
२१०	९	त त(क?)बही	त (क ?)बही
२११	१०	पत्र	पर
२१९	२५	नैत न	नैनन
२२५	४	मैंनां	खोलिन
२२६	२५	बर	मर
२४१	१	'आपैहु(प)'	'आपैं(प)हु'
२४८	२९	कहो	कहे
२५१	१०	हागर	हार
२५२	२	अंबरबां(व)हि	अंबरांब(व)हि
२५६	१	हारी	हार
२७२	१५	ग्रहा	ग्रह
२७६	१०	अतर	ऊतर
२७७	८	दूं	उत्तर दूं
२८८	९	का	को
२९६	२१	जाई	जोई
२९६	२३	देई	दई
३०६	१३	अगले	कडवक ३२१ म
३०७	१९	सावन	सरवन
३२४	१२	जो वह	जो
३२४	२६	बर	मर
३२८	१	मी०	म०
३४३	८	फूल	फूले
३४९	१४	अ(अउ)	औ(अउ)
३७२	२३	बेलो का	बैलों का
३८१	५	जाउ	जउ
४४०	२४	प्रक्ष	अक्ष

लेखक के अन्य ग्रन्थ

तुलसी-संदर्भ (तुलसी-विषयक शोध-निबंध-माला)
विवेक कार्यालय, प्रयाग। १९३५

तुलसीदास (डी० लिट्० के शोध-प्रबंध का हिंदी रूपांतर)
हिंदी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय। १९४२
(चतुर्थ संस्करण १९६४)

अर्द्धकथा (भूमिका तथा संपादित पाठ)
हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय। १९४३

हिंदी पुस्तक-साहित्य (१८६७-१९४२)
हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, प्रयाग। १९४५

रामचरितमानस का पाठ (तुलसी-ग्रंथावली, भाग १, खंड १)
हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, प्रयाग। १९५०

रामचरितमानस (तुलसी-ग्रंथावली, भाग १, खंड २)
हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, प्रयाग। १९५०

जायसी-ग्रंथावली (भूमिका तथा संपादित पाठ)
हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, प्रयाग। १९५२

बीसलदेव रास (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)
हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय। १९५३

नंद बत्तीसी (भूमिका तथा संपादित पाठ) हिन्दी अनुशीलन,
भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग। १९५७

छिताई वार्ता (भूमिका संपादित पाठ तथा अर्थ)
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। १९५७

लोरकहा (भूमिका तथा संपादित पाठ)
क० मु० हिंदी विद्यापीठ, आगरा। १९५९

मधुमालती—मंझन कृत (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)
मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, प्रयाग। १९६१

रासो-साहित्य-विमर्श (रासो-परंपरा से संबंधित शोध-निबंध-
माला) साहित्य भवन प्रा० लि०, प्रयाग। १९६२

पृथ्वीराज रासउ (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)
साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी १९६३

१५. **राउलवेल और उसकी भाषा** (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)

मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, प्रयाग। १९६२

१६. **पद्मावत** (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)

भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग। १९६३

१७. **मधुमालती**—चतुर्भुजदास निगम कृत (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। १९६४

१८. **जिणदत्त-चरित** (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)

सहसंपादक—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल,

श्री महावीर अतिशय क्षेत्र, जयपुर। १९६६

१९. **वसंत-विलास और उसकी भाषा** (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)

क० मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा। १९६६

२०. **कुतब-शतक और उसकी हिंदुई** (भाषा, भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)

भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता। (प्रेस में)

२१. **मृगावती**—कुतुबन कृत (भूमिका, संपादित पाठ तथा अर्थ)

प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा। (प्रेस में)